केदारखण्ड पुराण

खण्ड १

स. (डा.) कृष्णकुमार

केदारखण्डपुराणम्

(मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत समीक्षा)

सम्पादक:
विद्यामार्तण्ड डा० कृष्णकुमार
आयुर्वेदालङ्कार
(एम० ए० साहित्याचार्य,
पी० एच० डी०, डी० लिट्)

प्राच्य विद्या अकादमी
मिश्रा बाग, कनखल (हरिद्वार)

केदारखण्डपुराणम्

(मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत समीक्षा)

सम्पादक:
डा0 कृष्णकुमार

प्रकाशक:
प्राच्य विद्या अकादमी
मिश्रा बाग, हनुमानगढ़ी
कनखल (हरिद्वार)

पुन: मुद्रित: 2002
मूल्य: रु0 350.00

वितरक
मयंक प्रकाशन
मिश्रा बाग हनुमानगढी,
कनखल

मुद्रक:
मनोजकुमार
278, गोविन्दपुरी,
हरिद्वार 249401

प्राक्कथन

भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, इतिहास और दार्शनिक चिन्तन की दृष्टि से पुराणों का महत्त्व असंदिग्ध, निर्विवाद और सर्वमान्य है। वस्तुत: भारतीयता का मुख्य आधार पुराण ही हैं, जो कि वैदिक साहित्य के अनन्तर सर्वमान्य प्रामाणिक वचनों को प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में मानव-जीवन से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का विशद विवेचन एवं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक संहितायें आर्य जाति के धर्म और संस्कृति की मूल हैं, तथापि उनकी विशद लोकसम्मत व्याख्या पुराणों में ही है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्राचीन ऋषियों ने पुराणों के रूप में विशाल-व्यापक साहित्य की रचना की थी। सामान्यत: इसमें १८ पुराणों और १८ उपपुराणों की गणना की जाती है। इनका लेखन, संग्रह और सम्पादन सत्यवती पुत्र पाराशर व्यास के नाम से प्रसिद्ध है।

अठारह पुराणों एवं अठारह उपपुराणों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रदेशों से सम्बन्धित पुराणों की रचना भी मध्य युग में हुई। इनमें एक पुराण 'केदारखण्ड पुराण' भी है। यह पुराण केदारखण्ड (गढवाल) प्रदेश से सम्बन्धित है। 'केदारखण्ड पुराण' के प्रत्येक अध्याय के अन्तिम भाग के पादलेख[1] से तो यह प्रतीत होता है कि यह 'स्कन्दपुराण' के अन्तर्गत है, परन्तु वास्तव में यह उससे भिन्न ही है। 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' का एक उपखण्ड 'केदारखण्ड पुराण' भी है, परन्तु वह 'केदारखण्ड पुराण' प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' से बिलकुल भिन्न है। प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' केदारखण्ड (गढवाल) की सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक और भौगोलिक परम्पराओं को अभिव्यक्त करता है। केदारखण्ड क्षेत्र (गढवाल) से सम्बन्धित होने के कारण यह पुराण गढवालवासियों के लिये तो बहुत अधिक आदरणीय है ही, इस क्षेत्र के धार्मिक महत्त्व के कारण सभी भारतीयों के लिये आदर का पात्र है।

पौराणिक साहित्य में हिमालय देवतात्मा और पृथिवी का मानदण्ड हैं[2]। कालिदास

---

१. इति श्री स्कान्दे केदारखण्डे एकाशीतिसाहस्र्ये केदारमण्डलप्रशंसावर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्याय:।

२. अस्त्युत्तरस्यां दिशि वै गिरीशो हिमवान् महान्।

.... मानदण्ड इव क्षिते:।।

शिवपुराण-पार्वतीखण्ड १.१४

इस कथन की सम्पुष्टि करते हैं[1]। हिन्दुओं के अधिकांश तीर्थ यहां हैं। हिम से आच्छादित और नित्य-सलिला, निर्मल-पवित्र सरिताओं से भरे इस उत्तुङ्ग महान् पर्वत पर सभी प्रकार की धनसम्पत्तियां हैं। यह परम ब्रह्म का, सभी देवताओं का निवास है। हिमालय के पांच खण्ड हैं- नेपाल, कूर्माचल, केदार, जलन्धर और कश्मीर। इनमें केदारखण्ड मध्य हिमालय है तथा गंगा- यमुना की उद्गम भूमि है। इन सरिताओं के नाम-श्रवण, दर्शन, ध्यान और स्नान से त्रिविध संताप नष्ट होते हैं, महान् सुख प्राप्त होता है, कल्याण होता है और परम गति प्राप्त होती है। 'केदारखण्ड पुराण' इस क्षेत्र की सभी विशेषताओं को, महत्ता को प्रकट करता है। अतः यह पुराण सभी भारतीयों के घरों में सरल, सुबोध और सुपाठ्य रूप में होना आवश्यक है।

'केदारखण्ड पुराण' का प्रकाशन बहुत समय पूर्व १९०५ ई० में नन्दप्रयाग से, टिहरी नरेश की प्रेरणा से हुआ था। संस्करण बहुत पुराना हो गया है एवं उपलब्ध पाण्डुलिपियों के अनुसार इसमें संशोधन की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस संस्करण से विषय भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता है। बहुत समय से यह उपलब्ध भी नहीं हैं, किन्तु कहीं कहीं पुस्तकालयों में कोई प्रति दृष्टिगोचर हो जाती है। 'केदारखण्ड पुराण' का एक संस्करण मूल संस्कृत में वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से पत्राकार रूप में २० वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में प्रकाशित हुआ था। सामान्य पाठक उसको न तो समझ सकता है और नाहीं विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह भी इस समय उपलब्ध नहीं है। इन दोनों ही संस्करणों में 'केदारखण्ड पुराण' की भूमिका और समीक्षा भी नहीं है, जिससे भक्त सहृदय पाठक इसके विषयों को सरलता से समझ सकें।

इस प्रयास की परम आवश्यकता थी कि 'केदारखण्ड पुराण' का एक विवेचनात्मक संस्करण इस प्रकार से सम्पादित होकर अनुवाद सहित प्रकाशित हो, जिसमें विस्तृत समीक्षात्मक भूमिका हो, विषय को स्पष्ट करने वाली विषय-सूची हो, श्लोकों का सरल-सुबोध भाषा में अनुवाद हो और केदारखण्ड से सम्बन्धित विभिन्न तत्त्वों को स्पष्ट करने वाले लेख हों।

सन् १९८२ ई० में, जबकि मैं गढवाल विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर कार्यरत था, 'केदारखण्ड पुराण' के समीक्षात्मक अध्ययन तथा हिन्दी अनुवाद के लिये एक शोध योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली में प्रस्तुत की थी। इसको आयोग ने स्वीकार कर वित्तीय सहायता प्रदान की थी। उस समय मेरे निर्देशन में कार्य करने वाले अनेक शोध छात्रों ने भी इस पुण्य कार्य में उत्साह के साथ अपना योगदान किया। डा० ललिताप्रसाद पाण्डेय ने इसमें काफी समय तक कार्य कर कुछ

---

१. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

कुमारसम्भव १. १ ।।

अध्यायों का अनुवाद किया ओर कुछ लेख लिखे। इसके अतिरिक्त कु० रश्मि खंडूरी, कु० उषा विष्ट, कु० जयन्ती जुगरान, श्रीमती शैलबाला चमोली और कु० अंजलि उनयाल का भी इस पवित्र कार्य में योगदान रहा। अनेक वर्षों की कठोर तपस्या से तथा शोध छात्र-छात्राओं के सहयोग से इस अध्ययन को पूरा किया गया। इसके लिये केदारखण्ड (गढवाल) के विविध स्थलों की पैदल यात्रायें कर प्रत्यक्ष दर्शन करके शोध कार्य को अन्तिम रूप दिया गया। ये सभी छात्र-छात्रायें वात्सल्य और आशीर्वाद की पात्र हैं। परम प्रभु केदारेश्वर की अनुकम्पा से वे सभी अच्छी स्थिति में है और उन्नति कर रहे हैं।

'केदारखण्ड पुराण' के इस संस्करण को सम्पादित और प्रकाशित करना अति श्रमसाध्य है और महान् धन के व्यय की अपेक्षा भी रखता है। प्राच्य विद्या अकादमी ने 'केदारखण्ड पुराण' के इस संस्करण को प्रकाशित करने का निर्णय लिया था। परन्तु यह संस्था धन के अभाव में इस सम्बन्ध में बहुत समय तक कुछ न कर सकी। अब इसे प्रकाशित करने का साहस इसलिये कर रही है कि भारत सरकार के राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ने इस प्रकाशन के लिये प्रोत्साहन और सहयोग देना स्वीकार कर लिया है। इस पवित्र और पुण्य कार्य के लिये प्राच्य विद्या अकादमी तो राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की कृतज्ञ है ही, भारतीय संस्कृति, केदारखण्ड और गङ्गा-यमुना के प्रति भक्ति रखने वाले सभी जन उसके प्रति अनुगृहीत है।

प्राच्य विद्या अकादमी के सदस्यों और पदाधिकारियों ने भी इस पुराण के प्रकाशन के लिये महान् सहयोग प्रदान किया है। उन सबके प्रति मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ। वस्तुतः यह प्रकाशन एक सामूहिक प्रयत्न, सहयोग और सद्भावना का ही परिणाम है। डा० निरूपण विद्यालंकार, श्री बंसीधर पोखरियाल, डा० भारतभूषण विद्यालंकार, डा० महावीर आदि विद्वानों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनका सहयोग और परामर्श मुझको सदैव प्राप्त होता रहा।

'केदारखण्ड पुराण' का प्रस्तुत संस्करण भारतीय जनों की सेवा में प्रस्तुत है। आशा है कि यह भारतीयता के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखने वाले सभी जनों की आकांक्षा को पूरा करने वाला होगा।

वैशाख- १, २०५० वि० सम्वत्

१३ अप्रैल, १९९३

विनीत

कृष्णकुमार

निदेशक प्राच्य विद्या अकादमी

कनखल (हरिद्वार)

भूमिका

१. पुराणों का महत्त्व और उनकी रचना

भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य की दृष्टि से पुराणों का बहुत अधिक महत्त्व है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म, राजनीति, दर्शन और सामाजिक संगठन के मूल आधार पुराण हैं। पुराणों में मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का विस्तृत वर्णन है।

पुराण शब्द का अर्थ है- प्राचीन आख्यान, प्राचीन घटनाओं को बताने वाले ग्रन्थ, जगत् की आदि प्राचीन सृष्टि, उत्पत्ति और विकास के क्रम को बताने वाली पुस्तकें, पुरुष और प्रकृति के स्वरूप का चिन्तन करने वाला साहित्य और प्राचीन भारतीय परम्पराओं को प्रतिपादित करने वाली संहितायें।

पुराणों की रचना कब हुई और किसने की, इस विषय को सप्रमाण प्रस्तुत करना और प्रतिपादित करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य कार्य अवश्य है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार पुराणों की रचना सत्यवती के पुत्र पाराशर व्यास ने की थी। पुराणों की संख्या अठारह कही जाती है और अठारह ही उपपुराण हैं। अन्य भी पुराणों-उपपुराणों के नाम मिलते हैं। इन सभी के रचयिता महर्षि कृष्ण द्वैपायन बादरायण व्यास कहे गये हैं। इसके साथ ही महर्षि व्यास को 'महाभारत' का रचयिता और वैदिक संहिताओं का सम्पादन करने वाला भी कहा जाता है।

आधुनिक समालोचकों के अनुसार पुराणों की रचना के प्रारम्भ का समय सामान्यतः ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से ईसा की पांचवीं शताब्दी माना गया है। यह समय कुछ पहले का और बाद का भी हो सकता है। पुराणों में अनेक राजवंशों का वर्णन है, जिनके आधार पर भी इनके रचना-काल को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

२. पुराणों का वर्ण्य विषय

पुराणों में सृष्टि की रचना और लोक-व्यवहार से सम्बन्धित सभी विषयों का वर्णन है। 'विष्णु पुराण' के अनुसार वर्ण्य विषयों के आधार पर पुराण का लक्षण निम्न है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

अर्थात्, पुराणों में पांच विषयों का वर्णन है-

(१) सर्ग- सृष्टि की उत्पत्ति
(२) प्रतिसर्ग- प्रलय और उसके पश्चात् सृष्टि की पुनः उत्पत्ति
(३) वंश- देवताओं और ऋषियों की वंशावलियां
(४) मन्वन्तर- प्रत्येक मनु का समय और उसकी प्रमुख घटनायें
(५) वंशानुचरित- प्रमुख राजाओं और राजवंशों के विवरण

पुराणों में इतिहास की सामग्री प्रचुर मात्रा में है। अतः अनेक विद्वानों ने पुराणों को विश्व-सृष्टि का इतिहास कहा है।

पुराणों में अन्य भी अनेक विषयों के वर्णन हैं। जैसे - प्रार्थना, उपासना, उपवास, व्रत, तीर्थ, दर्शन, धार्मिक कर्मकाण्ड, विविध प्रकार के तकनीकी विषय, जैसे-ज्योतिष, शरीरशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या, यन्त्रविज्ञान, पशुविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, व्याकरण, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आदि। पुराण प्राचीन भौगोलिक ज्ञान का भी विशद चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इससे न केवल भारतवर्ष की ही, अपितु विश्व के और ब्रह्माण्ड के भी भूगोल और खगोल का काफी ज्ञान प्राप्त होता है।

पुराणों का महत्त्व विशेष रूप से धार्मिक और आध्यात्मिक समझा जाता है। एक प्रकार से ये हिन्दू जाति के मूल धर्म-ग्रन्थ हैं। हिन्दुओं की धार्मिक परम्परायें, कर्मकाण्ड और लोक विश्वास बहुत कुछ पुराणों में प्रतिपादित किये गये हैं। यद्यपि हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का मूल आधार वैदिक और स्मृति साहित्य है, तथापि पुराणों को वेदों के व्याख्या ग्रन्थ मानकर हिन्दू धर्म का मूल कहा गया है। इनको पञ्चम वेद भी कहा जाता है। तो भी पौराणिक मान्यताओं में वैदिक मान्यताओं की अपेक्षा से पर्याप्त अन्तर हो गया है।

पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय और पुनः सृष्टि के विस्तृत विवरण दिये गये हैं। इनमें प्रतिपादित ईश्वरोपासना सरल है। ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी गई है। पुराण देवताओं की भौतिक शक्तियों के स्वरूप को मूर्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनका अपना एक विशिष्ट रूप है। मनुष्यों को अच्छे या बुरे कर्मों के आधार पर एवं भक्ति के आधार पर विविध लोकों की प्राप्ति होती है। पुराणकारों ने ईश्वर की तीन शक्तियों-सृष्टि की उत्पत्ति रक्षा और विनाश के आधार पर तीन महादेवताओं-ब्रह्मा, विष्णु और महेश की कल्पना की, जो कि मूल रूप में एक ही हैं। इनकी भक्ति, उपासना और प्रार्थना कल्याणकारी है। अन्य इन्द्र आदि देवता उस परम

प्रभु की और प्रकृति की महान् शक्तियां हैं। महादेवताओं के और देवताओं के अपने लोक हैं। इस उपासना-प्रार्थना के लिये अनेक कर्मकाण्डों की कल्पना की गई। पृथिवी पर भी देवताओं के विशिष्ट स्थलों की कल्पना हुई। उनको तीर्थ मान कर तीर्थयात्रा का विधान हुआ।

३. पुराणों की अठारह संख्या और उनका संक्षिप्त परिचय

पुराणों के अनुसार मौलिक रूप से पुराण एक ही था[1]। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इनकी रचना के विकास के लिये विचार किया। मौलिक रूप से इसमें एक करोड श्लोक थे। महर्षि व्यास ने इनका सार चार लाख श्लोकों में प्रत्येक द्वापर युग में घोषित किया। पुराणों की कोई प्राचीन परम्परा थी या आरम्भ में एक ही पुराण था या यह कल्पना मात्र है, इन सब तथ्यों को निश्चित रूप से कहना कठिन है। पुराणों की संख्या, जो लोक में प्राप्त हैं, अठारह है-

(१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णुपुराण, (४) वायुपुराण, (५) श्रीमद्भागवतपुराण, (६) नारदपुराण, (७) मार्कण्डेयपुराण, (८) अग्निपुराण, (९) भविष्यपुराण, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (११) लिङ्ग पुराण, (१२) वराह पुराण, (१३) स्कन्दपुराण, (१४) वामन पुराण, (१५) कूर्मपुराण, (१६) मत्स्यपुराण, (१७) गरुडपुराण और (१८) ब्रह्माण्डपुराण।

इन पुराणों का संक्षिप्त परिचय निम्न है-

(१) ब्रह्मपुराण-

ब्रह्मपुराण अष्टादश पुराणों में आदि और प्रथम माना जाता है। इसमें २४५ अध्याय तथा १४००० श्लोक हैं। इसको 'आदि ब्रह्म' पुराण भी कहते हैं।

ब्रह्मपुराण' ब्रह्मविषयक पुराण है। इसमें पुराणसम्मत सभी विषयों का समावेश हुआ है। अन्य देवों का भी इस पुराण में वर्णन है। २१ अध्यायों (३०-५०) में पार्वती विषयक आख्यान हैं। इसमें अनेक प्राचीन तीर्थों-के वर्णन माहात्म्य सहित वर्णित हैं (अध्याय ७०-१७५)। भगवान् कृष्ण का वर्णन है। सूर्य की उपासना है। सांख्य-योग की समीक्षा की गई है। भूगोल का विशेष वर्णन नहीं है।

१. मत्स्यपु० ५३,३-११, वायुपुराण १.६०-६१, ब्रह्माण्डपुराण १.१.४०-४१, लिङ्गपुराण १.२.२, नारदपुराण १.९२, पद्मपुराण ५.१.४५-५०

२. धर्मशास्त्र का इतिहास चतुर्थ भाग पृ० ३८१

(२) पद्‌मपुराण-

'स्कन्दपुराण' के पश्चात् 'पद्‌मपुराण' आकार में सब पुराणों में विशाल है। यह 'महाभारत' से लगभग आधा और 'श्रीमद्भागवत पुराण' से तीन गुना है। इसमें श्लोकों की संख्या ५५००० है। विष्णु भक्ति का प्रतिपादक यह पुराण अति विशाल है। इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं- बंगाली संस्करण और देवनागरी संस्करण।

देवनागरी संस्करण आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली के अन्तर्गत चार भागों में प्रकाशित हुआ है। 'पद्‌मपुराण' में पांच खण्ड हैं- (१) सृष्टि खण्ड, (२) भूमि खण्ड, (३) स्वर्ग खण्ड, (४) पाताल खण्ड, और (५) उत्तर खण्ड। इस पुराण के भूमि खण्ड से विदित होता है कि इसमें पहले ये ही पांच खण्ड थे। परन्तु बाद में छः खण्डों की कल्पना भी की गई। 'पद्‌मपुराण' के बंगाली संस्करण में आज भी पांच खण्ड हैं।

'पद्‌मपुराण' के सृष्टि खण्ड के ८२ अध्यायों में समुद्रमन्थन, पृथु की उत्पत्ति, पुष्कर तीर्थ के निवासियों का धर्मकथन, वृत्रासुरसंग्राम, कार्त्तिकेय की उत्पत्ति, रामचरित, तारकवध आदि कथायें हैं। सृष्टि खण्ड पांच पर्वों में विभक्त है- पौष्कर पर्व, तीर्थपर्व, तृतीय पर्व (दक्षिणा देने वाले राजाओं का वर्णन), चतुर्थ पर्व (राजाओं का वंशानुकीर्तन) और पंचम पर्व (मोक्ष साधन)।

भूमि खण्ड में भी अनेक कथायें हैं। सोमशर्मा नामक ब्राह्मण की पितृभक्ति, राजा पृथु का जन्म और चरित्र, आध्यात्मिक संवाद, विष्णुभक्ति की कथा और च्यवन महर्षि की कथा इसमें है।

स्वर्गखण्ड में विभिन्न देवलोकों का; देवता-भूत-पिशाच-विद्याधर-अप्सरा-यक्ष आदि के लोकों का वर्णन है।

पाताल खण्ड में नागलोक का विशेष रूप से वर्णन है। व्यास द्वारा १८ पुराणों को रचे जाने की कथा भी इसमें है।

उत्तरखण्ड सबसे विशाल है तथा इसमें २८२ अध्याय हैं। इसमें वैष्णव मत से सम्बन्धित विविध आख्यानों, व्रतों, उत्सवों आदि का वर्णन किया गया है।

(३) विष्णु पुराण-

वैष्णव दर्शन का मूल आधार 'विष्णुपुराण' है। इसके खण्डों को अंश कहते हैं। इस पुराण में ६ अंश और १२६ अध्याय हैं। प्रथम अंश में सृष्टि वर्णन, द्वितीय अंश में भूगोल और तृतीय अंश में आश्रम सम्बन्धी कर्तव्यों और वैदिक शाखाओं का निर्देश है। चतुर्थ अंश विशेष रूप से ऐतिहासिक है। यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और कुरु इन पांच क्षत्रिय वंशों का भिन्न भिन्न अध्यायों में वर्णन किया गया है। पञ्चम अंश में कृष्ण के अलौकिक चरित का वर्णन है। षष्ठ अंश में प्रलय और भक्ति का वर्णन

है। चार युगों- कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग को दर्शाकर कलियुग के दोषों का वर्णन किया गया है।

(४) वायु पुराण-

'वायु पुराण' को अति प्राचीन माना जाता है। इसमें ११२ अध्याय और मूल रूप से १२००० श्लोक थे। बाद में इसमें अनेक अध्याय और श्लोक जोड़े गये, जो २४००० तक हो गये। इस पुराण में चार खण्ड हैं, जो पाद कहलाते है। ये हैं- प्रक्रियापाद, अनुषङ्गपाद, उपोद्‌घातपाद और उपसहांरपाद।

'वायुपुराण' भौगोलिक वर्णनों के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता शिव के चरित्र का विस्तृत वर्णन करना है। परन्तु यह साम्प्रदायिकता से दूषित नही है। इस पुराण में कृष्ण के अवतारों का भी वर्णन है और गुप्तवंश का वृत्तान्त दिया गया है।

(५) श्रीमद्‌भागवत पुराण

'श्रीमद्‌भागवत पुराण' में १२ स्कन्ध और १८००० श्लोक हैं। यह पुराणों के पञ्च लक्षणों से समन्वित है तथा महनीय आध्यात्मिक रूप को प्रकट करता है।

'श्रीमद्‌भागवत पुराण' में भूगोल तथा खगोल, वंश और वंशानुचरित का विस्तृत वर्णन है। श्रीकृष्ण को भगवान् का रूप चित्रित करने तथा उनकी ललित लीलाओं का विवरण देने में यह पुराण अद्वितीय है। यह पुराण भगवान् विष्णु की महिमा का प्रतिपादक है। 'भागवत पुराण' के माहात्म्य का विचार कर पंडितों में कहावत प्रसिद्ध हुई "विद्यावतां भागवते परीक्षा"।

(६) नारद पुराण

'नारद पुराण' भगवान् विष्णु की भक्ति का प्रतिपादक है। इस पुराण के दो भाग हैं। प्रथम भाग में १२५ अध्याय हैं और दूसरे भाग में ८२१। सम्पूर्ण पुराण में २५००० श्लोक कहे गये हैं। परन्तु वर्तमान उपलब्ध प्रति में १८१०१ श्लोक मिलने हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'नारद पुराण' का बहुत महत्त्व है। इसमें १८ पुराणों की विस्तृत अनुक्रमणी है। व्याकरण, ज्योतिष, छन्दः आदि शास्त्रों का वर्णन अलग अलग अध्यायों में किया गया है। विष्णु, राम, हनुमान्, कृष्ण, काली, महेश, वेद आदि का इसमें विधिवत् निरूपण है। पूर्व भाग में वर्ण और आश्रम के आधार, श्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि के विधान हैं।

(७) मार्कण्डेय पुराण

'मार्कण्डेय पुराण' आकार में छोटा है। इसमे १३८ अध्याय और ९००० श्लोक

हैं। पर्जिटर ने इस पुराण का अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

प्रसिद्ध 'दुर्गासप्तशती', जो भगवती दुर्गा की स्तुति का स्तोत्र है, 'मार्कण्डेय पुराण' का ही अंश है। इस पुराण में दुर्गा के चरित्र का विस्तृत वर्णन है। प्राचीन समय की प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी महिषी मदालसा का जीवन चरित भी इस पुराण में विस्तार से है। इस पुराण के प्रवक्ता महर्षि मार्कण्डेय होने से इसका नाम 'मार्कण्डेय पुराण' हुआ।

(८) अग्निपुराण

'अग्निपुराण' मूल रूप में 'वह्निपुराण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें ३८३ अध्याय हैं और १५००० से कुछ अधिक श्लोक हैं।

'अग्निपुराण' में 'रामायण' और 'महाभारत' की कथा दी गई है। ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्रत, राजनीति, आयुर्वेद आदि शास्त्रों का वर्णन है। छन्दःशास्त्र का निरूपण आठ अध्यायों में है। अलङ्कारशास्त्र, व्याकरण और कोष के विषयों का अनेक अध्यायों में वर्णन है। योगशास्त्र के यम-नियम आदि आठ अंगों के विवरण हैं। अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों के सार का संकलन है। 'श्रीमद्भगवतगीता' का सारांश भी वर्णित है।

(९) भविष्यपुराण

'भविष्यपुराण' में १४५०० श्लोक हैं। इसमें सूर्य-पूजा का विशेष रूप से वर्णन है। विभिन्न राजवंशों का इतिहास भी इस पुराण में है। 'पाराशर स्मृति' की कुछ व्यवस्थाओं का संकेत भी किया गया है।

'नारद पुराण' द्वारा दी गई अनुक्रमणी के अनुसार 'भविष्य पुराण' में पांच पर्व हैं- ब्राह्मपर्व, विष्णुपर्व, शिवपर्व, सूर्यपर्व और प्रतिसर्ग पर्व।

इस पुराण का नाम 'भविष्य पुराण' इसलिये हुआ, क्योंकि भविष्य में होने वाली अनेक घटनाओं को वर्णित किया गया है। इसमें मंगोलों, मुसलमानों आदि के आक्रमण का भी वर्णन है।

(१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' विशाल आकार का पुराण है, जिसके चार खण्ड हैं- ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड और श्रीकृष्णखण्ड। चार खण्डों में इसका प्रकाशन आनन्दाश्रम पूना से हुआ था। इस पुराण में २७६ अध्याय तथा १८००० श्लोक हैं।

ब्रह्मखण्ड में ३० अध्याय हैं, जिनमें कृष्ण द्वारा सृष्टि की रचना का वर्णन है। १६ वें अध्याय में आयुर्वेद का उपदेश है। प्रकृतिखण्ड में भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार प्रकृति अपने को समय-समय पर दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा के रूप में

परिणत करती है। गणेशखण्ड में गणपति के जन्म, कर्म और चरित का वर्णन है। सावित्री और तुलसी की कथा भी विस्तार से दी गई है। श्रीकृष्ण खण्ड में १३३ अध्यायों में कृष्ण और राधा का विशेष वर्णन है।

(११) लिङ्गपुराण

'लिङ्गपुराण' अपेक्षाकृत लघुकाय है। इसमें १६३ अध्याय और ११००० श्लोक हैं। 'लिङ्गपुराण' में लिङ्गोपासना की उत्पत्ति और शङ्कर के अवतारों का विस्तृत वर्णन है। इस पुराण के दो भाग हैं- पूर्व भाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग में शिव द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन है ओर वैवस्वत मन्वन्तर से लेकर कृष्ण के समय तक के राजवंश वर्णित हैं। इस भाग में लिङ्गोपासना का भी प्रतिपादन है। उत्तरभाग में पशु तथा पशुपति की व्याख्या की गई है तथा शिव की प्रसिद्ध अष्ट मूर्तियों के वैदिक नामों का उल्लेख है। यह शैव तन्त्रों के अनुकूल है। 'लिङ्गपुराण' में ओङ्कार के रहस्यमय अर्थ पर विशेष बल दिया गया है।

(१२) वराहपुराण

'वराहपुराण' पूर्णरूप से वैष्णव पुराण है। विष्णु ने वराह का रूप रख कर पृथिवी का पाताल से उद्धार किया था। इस कथा से विशेष सम्बन्ध रखने के कारण इस पुराण का नाम 'वराहपुराण' हुआ।

'वराहपुराण' में २१७ अध्याय और २४००० श्लोक हैं। परन्तु कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी से जो संस्करण प्रकाशित हुआ है, उसमें १०७०० श्लोक हैं।

'वराहपुराण' में मधुरा-माहात्म्य (अध्याय १५२-१७२) और नचिकेतोपाख्यान (अध्याय १९३-२१२) ये दो अंश अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(१३) स्कन्दपुराण

इस पुराण का आकार सबसे विशाल है। इसके श्लोकों की संख्या ८१००० है। इसके दो संस्करण हैं- खण्डात्मक और संहितात्मक।

संहितात्मक संस्करण में, 'सूतसंहिता' के अनुसार ६ संहितायें हैं- (१) सनत्कुमारसंहिता, (२) सूतसंहिता (३) शङ्करसंहिता, (४) वैष्णवसंहिता, (५) ब्राह्मसंहिता और (६) सौरसंहिता। इन संहिताओं में वर्तमान समय में केवल पहली तीन्न ही उपलब्ध हैं।

खण्डात्मक संस्करण के अनुसार इसमें ८ खण्ड हैं- (१) माहेश्वरखण्ड, (२) वैष्णवखण्ड, (३) ब्रह्मखण्ड, (४) काशीखण्ड, (५) तापीखण्ड, (६) रेवाखण्ड, (७) अवन्तीखण्ड और (८) प्रभासखण्ड। माहेश्वरखण्ड में दो खण्ड सम्मिलित हैं-

(१) केदारखण्ड और (२) कुमारिकाखण्ड। ब्रह्मखण्ड के भी दो भाग हैं- (१)ब्रह्माख्यखण्ड और (१) ब्रह्मोत्तरखण्ड।

'केदारखण्ड' नाम से एक अन्य पुराण भी उपलब्ध है। इसमें हिमालय के केदारखण्ड (गढवाल) क्षेत्र का वर्णन है। इस 'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता ने इसको 'स्कन्दपुराण' के अन्तर्गत ही बताया है। परन्तु उसका यह कथन यथार्थ नहीं है। 'स्कन्दपुराण' का 'केदारखण्ड' अंश और गढवाल से सम्बन्धित 'केदारखण्ड पुराण' सभी दृष्टियों से, विषयगत दृष्टि से भी भिन्न हैं। सम्भवतः गढवाल (केदारखण्ड) से सम्बन्धित 'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता ने अपनी कृति को महनीय प्रतिपादित करने के लिये इसको स्कन्दपुराणान्तर्गत कहा।

भौगोलिक क्षेत्रों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करना 'स्कन्दपुराण' के विविध खण्डों की विशेषता है।

(१४) वामनपुराण

'वामनपुराण' लघुकाय पुराण है। इसमें ९५ अध्याय और १०००० श्लोक हैं। वामनपुराण के दो भाग किये गये हैं- पूर्व तथा उत्तर। इसमें चार संहितायें हैं - माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी। वामनपुराण में विष्णु के वामन से प्रारम्भ करके विभिन्न अवतारों का विशद वर्णन है। इसके साथ ही शिव, शिव का माहात्म्य, शैव तीर्थ, उमा, शिव-विवाह, गणेश की उत्पत्ति, कार्तिकेय का चरित आदि विभिन्न प्रकरणों का इसमें वर्णन है। धर्मशास्त्र के विषयों का भी संक्षिप्त वर्णन 'वामनपुराण' में है।

(१५) कूर्मपुराण-

'कूर्मपुराण' नामकरण इसलिये हुआ, क्योंकि भगवान् विष्णु ने कूर्म का अवतार लेकर इस पुराण का उपदेश राजा इन्द्रद्युम्न को किया था। परन्तु सामान्यतः यह शैव पुराण ही है।

उपलब्ध 'कूर्मपुराण' में दो भाग हैं- पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध । पूर्वार्द्ध में ५३ और उत्तरार्ध में ४६ अध्याय हैं। उपलब्ध कुल श्लोक संख्या केवल ६००० है।

कहा जाता है कि 'कूर्मपुराण' अतिविशाल था और इसमें १८००० श्लोक थे। 'विष्णुपुराण' के अनुसार १७००० तथा 'मत्स्यपुराण' के अनुसार १८००० श्लोक 'कूर्मपुराण' में होने चाहियें। नारद सूची के अनुसार इसमें चार संहितायें थीं- (१) ब्राह्मी (२) भागवती, (३) सौरी और (४) वैष्णवी। परन्तु अब केवल ब्राह्म संहिता उपलब्ध होती है।

'कूर्मपुराण' में शैव और वैष्णव दोनों विषयों का वर्णन होने पर भी शिव की महिमा अधिक है। शाक्त सम्प्रदाय से सम्बन्धित तत्त्व भी हैं। शक्ति की पूजा पर बल

दिया गया है।

(१६) मत्स्यपुराण-

'श्रीमद्भागवत' और 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में 'मत्स्यपुराण' के श्लोकों की संख्या १९००० कही गई है। परन्तु आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित 'मत्स्यपुराण' में २९१ अध्याय और १६००० श्लोक हैं। इसमें भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार का विस्तृत वर्णन है। इसमें प्रारम्भ में ही मन्वन्तर का सामान्य वर्णन करके पितृवंश का विशेष वर्णन किया गया है।

भगवान शंकर का विस्तृत वर्णन करने के कारण 'मत्स्यपुराण' को शैव पुराण भी कहा गया है। इसमें त्रिपुरासुर के साथ शंकर के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इसकी अन्य विशेषतायें हैं- पितरों का वर्णन, प्रयाग-काशी-नर्मदा आदि के भौगोलिक विवरण, ऋषियों के वंश-वर्णन, राजधर्म, देवताओं की प्रतिमाओं का विधान आदि। इसके ५३ वें अध्याय में पुराणों की विषयानुक्रमणी है।

(१७) गरुडपुराण-

यह पुराण गरुड और विष्णु के संवाद के रूप में है। 'गरुडपुराण' में २६४ अध्याय और १८००० श्लोक हैं। इसके दो खण्ड हैं- पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड। २२९ अध्यायों के पूर्वखण्ड के आरम्भ में विष्णु और उनके अवतारों का वर्णन करके आगे विविध विद्याओं का वर्णन किया गया है।

उत्तरखण्ड में ३५ अध्याय हैं, जिनको प्रेतकर्म के नाम से जाना जाता है। मृत्यु के अनन्तर मनुष्य की क्या गति होती है, कर्म के अनुसार वह किस योनि में जन्म लेता है, कौन-कौन से भोग भोगता है, इनका उल्लेख है। प्रेतकर्म, प्रेतयोनि, प्रेतश्राद्ध, यमलोक, यमयातना, नरक आदि का विशेष चित्र 'गरुडपुराण' में अङ्कित किया गया है। श्राद्ध के समय इस पुराण का पाठ किया जाता है।

(१८) ब्रह्माण्ड पुराण-

'ब्रह्माण्डपुराण' की गणना भी १८ महापुराणों में है। इसमें १२००० श्लोक और १०९ अध्याय हैं। वायु ने इस पुराण का उपदेश महर्षि व्यास को दिया था। प्रसिद्ध रामचरित 'अध्यात्मरामायण' इसी पुराण का अंश है, जिसमें राम की कथा आध्यात्मिक रूप से कही गई है। इस पुराण में अनेक स्तोत्र एवं कवच कहे गये हैं। इनमें प्रसिद्ध हैं- गणेशकवच, तुलसीकवच, हनूमत्कवच, सिद्धलक्ष्मीस्तोत्र, सीतास्तोत्र, ललितासहस्रनाम और सरस्वतीस्तोत्र।

४. उपपुराण

अठारह पुराणों के अतिरिक्त अनेक उपपुराणों की भी उपलब्धि होती है। इनकी संख्या भी १८ कही जाती है। अठारह उपपुराणों के सम्बन्ध में दो मत हैं। प्रथम मत के अनुसार अठारह उपपुराण निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार (२) नृसिंह, (३) नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वासा, (६) कपिल, (७) मानव, (८) अनुशासन, (९) आदि, (१०) कालिका, (११) साम्ब, (१२) नान्दी (१३) सौर, (१४) पाराशर, (१५) आदित्य, (१६) महेश्वर, (१७) सोम और (१८) वसिष्ठ।

'गरुडपुराण' के अनुसार १८ उपपुराण निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार, (२) नारसिंह, (३) स्कन्द, (४) शिवधर्म, (५) नारदीय, (६) आश्चर्य, (७) कपिल, (८) वामन, (९) औशनस, (१०) ब्रह्माण्ड, (११) वारुण, (१२) कालिका, (१३) माहेश्वर, (१४) साम्ब, (१५) सौर, (१६) पाराशर, (१७) मारीच और (१८) भार्गव।

'हिन्दू धर्मकोश' में उपपुराणों की संख्या २९ कही गई है। वे निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार
(२) नरसिंह
(३) बृहन्नारदीय
(४) शिव अथवा शिवधर्म
(५) दुर्वासा
(६) कापिल
(७) मानव
(८) औशनस
(९) वारुण
(१०) कालिका
(११) साम्ब
(१२) नन्दिकेश्वर
(१३) सौर
(१४) पाराशर
(१५) आदित्य
(१६) ब्रह्माण्ड
(१७) माहेश्वर
(१८) भागवत
(१९) वसिष्ठ
(२०) कौर्म
(२१) भार्गव
(२२) आदि
(२३) मुद्गल
(२४) कल्कि
(२५) देवीभागवत
(२६) बृहद्धर्म
(२७) परानन्द
(२८) पशुपति
(२९) हरिवंश

५. स्थानीय पुराण

पुराणों और उपपुराणों की रचना के अनन्तर स्थानीय भौगोलिक आधार पर

अनेक पुराण रचित हुये। इनमें स्थानीय विशेषताओं का विस्तृत विवरण दिया गया हैं।

पुराणों में हिमालय को पांच खण्डों में विभाजित किया गया है- नेपालखण्ड, मानसखण्ड, केदारखण्ड, जलन्धरखण्ड और कश्मीरखण्ड। हिमालय के इन पांच खण्डों को आधार बना कर, इनके भौगोलिक परिवेश, सांस्कृतिक वातावरण और धार्मिक विशेषताओं को प्रदर्शित करने के लिये, महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हुये पुराण लिखे गये। जैसे कि नेपाल के सम्बन्ध में 'हिमवन्त पुराण', कुमायूं के सम्बन्ध में 'मानसखण्ड पुराण', गढवाल के सम्बन्ध में 'केदारखण्ड पुराण' और कश्मीर के सम्बन्ध में 'नीलमतपुराण' लिखे गये। जलन्धर खण्ड के सम्बन्ध में किसी पुराण की रचना के प्रमाण नहीं मिलते। इन पुराणों की रचना उस समय हुई होगी, जबकि उत्तरी भारत का अधिकांश भाग मुसलिम आक्रमणों से त्रस्त हो गया था। धार्मिक वृत्ति के अनेक जन अपने प्राणों और धर्म की रक्षा के लिये अपने घरों को छोड़ कर पुण्यभूमि हिमालय में चले आये थे। यहां आकर उन्होंने विविध आबादियों और तीर्थों का विकास किया। प्राचीन धर्मग्रन्थों और अन्य साहित्य में हिमालय की महिमा का वर्णन पहले ही विद्यमान था।

हिमालय क्षेत्र अति प्राचीन काल से धार्मिक क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। विशेष रूप से मध्य हिमालय का क्षेत्र, जो किसी समय केदारखण्ड के नाम से प्रसिद्ध था और अब गढवाल कहलाता है, धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यहां गङ्गा, यमुना आदि नदियों के पवित्र उद्गम हैं। पतितों को पवित्र करने वाली और पापों का विनाश करने वाली गङ्गा नदी की महिमा इस देश में हजारों वर्षों से प्रचलित है। यह नदी हिमालय के मध्य खण्ड, केदारखण्ड से उदित होती है ओर अन्य सभी नदियों के जल को अपने में समेट कर पर्वतों से उतर कर उत्तर भारत के मैदानों को सींचती हुई बंग समुद्र में विलीन हो जाती है।

केदारखण्ड क्षेत्र की पवित्रता और यहां के तीर्थों की यात्रा 'रामायण' और 'महाभारत' के युग से भी पहले से रही थी। जिस समय इस क्षेत्र में शेष भारत से आकर धार्मिक वृत्ति के लोग बसे, उन्होंने इस क्षेत्र की महिमा को और भी अधिक गौरवान्वित किया। देवताओं की क्रीडास्थली अनेक पर्वत- मन्दाराचल, मेरु, कैलास, हेमकूट, भृगु आदि इसी के अङ्क में थे। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार त्रेतायुग में ब्रह्महत्या के दोष का निवारण करने के लिये अपने भाइयों के साथ भगवान् राम ने तथा द्वापर युग में स्वर्गारोहण के लिये पाण्डवों ने इसी क्षेत्र की यात्रा की थी। महर्षि व्यास ने इसी क्षेत्र में वैदिक संहिताओं का सम्पादन किया और 'महाभारत' की रचना की। आदि शङ्कराचार्य ने इस क्षेत्र में तप करके चार धामों की पवित्र तीर्थ यात्रा को प्रारम्भ कराया था तथा यहां विश्वकर्मा को आदेश देकर ३६५ मन्दिरों का निर्माण कराया था। अतः 'केदारखण्ड' आदि पुराणों ने हिमालय के विभिन्न प्रदेशों की महिमा

को धार्मिक वृत्ति के जनों में निश्चित रूप से प्रतिष्ठित किया था।

६. केदारखण्ड पुराण का रचयिता

'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता का नाम और परिचय जानने की अत्यधिक उत्सुकता होने पर भी उसको यथार्थ में जानना सम्भव नहीं है। किसी समय किसी महान् कवि, भक्त, लेखक ने इस महान् पुराण की रचना करके केदारखण्ड के महान् गौरव का लोक में यश गाया था। परन्तु उसने कहीं भी अपना नाम या अन्य परिचय नहीं दिया। लेखक ने इसको 'स्कन्दपुराण' का ही एक भाग बताया है, जैसा कि इस पुराण के प्रत्येक अध्याय के अन्त में- "इति स्कान्दे केदारखण्डे......" शब्दों के अनन्तर अध्याय का नाम और संख्या दी गई है। इस लेखन से यह प्रतीत हो सकता है कि इस पुराण के लेखक भी महर्षि व्यास होंगे। परन्तु ऐसा नहीं है। यह 'केदारखण्ड पुराण' 'स्कन्दपुराण' के केदारखण्ड से सर्वथा भिन्न है। लोकप्रसिद्ध 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' के अन्तर्गत 'केदारखण्ड' में सती पार्वती की जो कथायें प्रकाशित हैं, वे प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' में लिखित गढवाल के तीर्थों से सर्वथा भिन्न हैं। अन्य भी सभी विवरण अलग अलग ही हैं। प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' को 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' के अन्तर्गत 'केदारखण्ड' से सर्वथा भिन्न मानना चाहिये। अतः महर्षि व्यास को इस पुराण का रचयिता नहीं माना जा सकता। इस पुराण का रचयिता तो कोई महनीय ऋषि, कवि, मनीषी लेखक रहा होगा, जिसने उस युग में अति दुर्गम केदारखण्ड में पैदल भ्रमण कर सब स्थानों को देखा और सारा विवरण लोकहित के लिये पुराण के रूप में निबद्ध कर दिया। उस अज्ञातनामा ऋषि के प्रति हमारे सैंकड़ों बार प्रणाम है।

७. केदारखण्ड पुराण का रचना काल

'केदारखण्ड पुराण' की रचना के समय का निर्धारण बाह्य प्रमाणों के आधार पर करना कठिन है, क्योंकि न तो इस पुराण के अन्तर्गत इसकी रचना के समय में कोई संकेत मिलते हैं और नाहीं किसी अन्य लेखक ने इसकी रचना का समय संकेतित किया है। तथापि आन्तरिक लेखों के आधार पर कुछ अनुमान अवश्य लगाये जा सकते हैं।

'केदारखण्ड पुराण' की रचना १२ वीं शताब्दी ई० के पश्चात् हुई होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इस समय तक काशी में यवन आ गये थे 'केदारखण्ड पुराण' में सौम्यकाशी अर्थात् उत्तरकाशी के माहात्म्य वर्णन में उल्लेख है कि जब धरती पर यवन फैल जायेंगे तो भगवान् शिव तीर्थों सहित हिमवन्त गिरि की काशी

में निवास करेंगे। यहां श्वेतवाहिनी गंगा कुछ उत्तर की ओर को बहती है। यहां असी और वरुणा नदियों का संगम है[1]। इसी प्रकार गोपेश्वर के त्रिशूल पर अशोकचल्ल के १२ वीं शताब्दी ई० के खुदे लेख को भूल कर पुराणकार ने उस त्रिशूल को देवासुर संग्राम वाली शक्ति कहा है[2]।

'केदारखण्ड पुराण' में गुरु गोरखनाथ का उल्लेख हुआ है। अतः इस पुराण की रचना को गुरु गोरखनाथ के बाद का मानना चाहिये। मन्दाकिनी के तट पर गौरी तीर्थ के समीप दक्षिण की ओर गोरक्ष का आश्रम है, जहां सिद्ध गोरक्ष रहा करते थे[3]। अन्य भी तीर्थों के माहात्म्य वर्णन में विद्वानों की विभिन्न धारणायें हैं-

डा० मोहन सिंह के आधार पर परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि गोरखनाथ के जीवन-काल के लिये दसवीं, ग्यारहवीं या अधिक से अधिक बारहवीं शताब्दी ई० का प्रारम्भिक भाग, या विक्रम की ११ वीं शताब्दी का ही कोई भाग निश्चित किया जाना उचित होगा[4]। ज्ञानदेव के लेख के आधार पर गोरखनाथ का समय १२ वीं शताब्दी ई० है। यह कथन उस परम्परा से मिलता है, जिसके अनुसार गोरक्ष और धर्मनाथ, ये दोनों गुरु भाई समकालीन माने गये हैं। धर्मनाथ का समय १२ वीं शताब्दी ई० है।

कुछ विद्वान् गोरखनाथ को ५०० ई० से १००० ई० तक किसी समय का मानते हैं[5]।

---

१ यदा पापस्य बाहुल्यं यवनाक्रान्तभूतलम्।
भविष्यति तदा विप्राः निवासं हिमवद्गिरौ।।
काश्या सह करिष्यामि सर्वतीर्थैः समन्वितः।
अनादिसिद्धं मे स्थानं वर्तते सर्वदैवहि।।
यत्र भागीरथी गङ्गा उत्तरा श्वेतवाहिनी।
असी च वरुणा तत्र सन्निधाने सदैव हि।। केदारखण्ड पुराण ९०.५०-५२।।

२ विक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि सङ्गरे देवता सुरैः।
अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयी शुभा।।
केदारखण्ड पुराण ९०.१४।।

३ तस्माद्दक्षिणतो देवि गोरक्षाश्रममण्डलम्।
यत्र सिद्धो महादेवि गोरक्षो वसते निशम्।। केदारखण्ड पुराण ४०.५२-५३।।

४ डा० मोहन सिंह: गोरखनाथ एण्ड मिडीवल हिन्दू मिस्टीसिज्म पृ० २०-३९
परशुराम चतुर्वेदी: उत्तर भारत की संत परम्परा पृ० ६०

५ गोपीनाथ कविराज: सरस्वती भवन स्टडीज, भाग-६, पृ० २४

'केदारखण्ड पुराण' में सत्यनाथ का उल्लेख है[१]। इससे सिद्ध है कि यह पुराण सत्यनाथ के बाद की रचना है। नव नाथों में सत्यनाथ की गणना अधिक प्राचीन नहीं है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदाय' और कल्याणी मलिक के बंगला ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन एवं साधन प्रणाली' में नव नाथों की विभिन्न सूचनाओं में सत्यनाथ के सम्बन्ध में मतभेद है। किन्तु 'गोरक्ष सिद्धान्त' (पृ० ४०) में सत्यनाथ का उल्लेख है।

कुमायूं और गढवाल के इतिहास से विदित होता है कि १५०० ई० के आसपास गढवाल और चम्पावत में सत्यनाथ और नागनाथ नामक दो गोरखपन्थी जोगियों ने अपने डेरे लगाये। सत्यनाथ का शिष्य नागनाथ था। गढवाल के इतिहास से यह भी विदित होता है कि १५००ई० में गढवाल का पंवार नरेश अजयपाल चांदपुर के सिंहासन पर बैठा। उन्हीं दिनों चम्पावत के राजा कीर्तिचन्द ने गढवाल के बधाण प्रान्त पर आक्रमण किया। युद्ध में हार कर गढवाल का राजा अजयपाल देवलगढ की ओर भागा। सत्यनाथ का आशीर्वाद पाकर गढवाल नरेश ने पुनः कुमायूं के नरेश को पराजित कर अपना राज्य वापिस प्राप्त कर लिया[२]।

कीर्तिचन्द के राज्यकाल (१४८८-१५०३) में सत्यनाथ की काफी प्रसिद्धि थी[३]। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गढवाल में सत्यनाथ का आगमन १५०० ई० के आसपास हुआ होगा।

गोरक्षनाथ और सत्यनाथ के 'केदारखण्ड पुराण' में कुछ उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि इस ग्रन्थ में कुछ अंश पहले थे और कुछ को १५०० ई० के लगभग जोड़ा गया। शिवप्रसाद डबराल के अनुसार क्यूंकालेश्वर, किलकिलेश्वर और ज्वाल्पा जैसे नवीन मन्दिरों का 'केदारखण्ड पुराण' में जो उल्लेख हुआ है, वह दो-तीन सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है[४]।

'केदारखण्ड पुराण' में 'मानसखण्ड' का उल्लेख है। अतः इस पुराण की रचना 'मानसखण्ड' के पश्चात् हुई। बद्रीदत्त पाण्डे के अनुसार कूर्माञ्चल में 'मानसखण्ड' की रचना कूर्माञ्चली पण्डितों ने की थी[५]। स्वामी प्रणवानन्द ने 'मानसखण्ड' की हस्तलिखित

---

१ नवनाथाः समाख्यातास्तत्र श्रीआदिनाथकः।
अनादिनाथ कूर्माख्यौ भवनाथस्तथैव च।।
सत्यसन्तोषनाथौ तु मत्स्येन्द्रो गोपिनाथकः।। केदारखण्ड पुराण ७४.२८-२९।।

२ हरिकृष्ण रतूडीः गढवाल का इतिहास पृ० ३६४-६५

३ बद्रीदत्त पाण्डेः कुमायूं का इतिहास पृ० २५२

४ शिवप्रसाद डबरालः उत्तराखण्ड यात्रादर्शन पृ० १०७

५ बद्रीदत्त पाण्डेः कुमायूं का इतिहास पृ० १७७

प्रति देखने के बाद लिखा है कि यह ग्रन्थ दो-तीन सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है[1]।

'केदारखण्ड पुराण' में 'कुलार्णवतन्त्र' आदि के उद्धरण हैं। ३३ वें अध्याय में 'कुलार्णवतन्त्र' से अनेक पंक्तियां उद्धृत हैं। इस पुराण के ३५ वें अध्याय से यह भी स्पष्ट है कि पुराणकार को महिम्नस्तोत्र का ज्ञान था। ६५ वें अध्याय में श्लेष अलङ्कार, दोहा-कुण्डली-सोरठा छन्द और राग-रागिनियों के नाम हैं। इनमें रामकली, केहरी, गुर्जरी और पट्टमञ्जरी रागिनियों को गिनाया गया है। गुर्जरी रागिनी को दीपक राग की वाराङ्गना कहा गया है। गुर्जरी रागिनी की रचना ग्वालयिर नरेश मानसिंह ने अपनी गुर्जरी रानी मृगनयनी के नाम पर की थी। मानसिंह का समय विक्रम की १६ वीं शताब्दी माना जाता है[2]। इससे स्पष्ट होता है कि 'केदारखण्ड पुराण' की रचना इसके बाद ही हुई होगी।

बालाजीराव के समय से मराठे उत्तर भारत में आने लगे थे और अपने को वे हिन्दू धर्म और मन्दिरों का रक्षक कहते थे। सन् १७४१-४२-४३ में मध्य भारत में अपना प्रभाव जमा कर बालाजीराव (नाना साहब) ने धर्मस्थानों की रक्षा करनी प्रारम्भ कर दी थी[3]। अहिल्याबाई ने भी भारत के अनेक प्रमुख मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था। इस समय भारतवर्ष में तीर्थयात्रा को पुनः प्रोत्साहन मिला। इन कार्यों पर 'केदारखण्ड पुराण' का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

'केदारखण्ड पुराण' में बार बार भृगुपतन की प्रशंसा की गई है। भृगुशिखर से श्रीशिला पर कूद कर टुकड़े टुकड़े होकर परब्रह्म से मिलन का मार्ग अंग्रेजों ने बन्द कर दिया[4]। अतः 'केदारखण्ड पुराण' की रचना निश्चित रूप से अंग्रेजों के अधिकार से पूर्व हो गई होगी।

ऊपर के विवेचन से यह कहा जा सकता है कि 'केदारखण्ड पुराण' की रचना १६ वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भिक भाग में पूरी हो चुकी थी। यह पुराण इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी हस्तलिखित प्रति पंडित लोग अपने घरों में रखने लगे। आज भी अनेक घरों में इस पुराण की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त की जा सकती हैं।

८. केदारखण्ड पुराण का वर्ण्य विषय

'केदारखण्ड पुराण' का मुख्य वर्ण्य विषय हिमालय और उसके केदारखण्ड क्षेत्र की धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महिमा का वर्णन करना है। इसके अतिरिक्त इस पुराण में पुराणों के सामान्य विषयों को भी प्रस्तुत किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति,

१ प्रणवानन्दः एक्सप्लोरेशन इन तिबेट पृ० ११

२ ओझाः राजस्थान का इतिहास, भाग १, पृ० ३६

३ भीमसैन विद्यालंकारः वीर मराठे, पृ० १५०

४ शिवप्रसाद डबरालः उत्तराखण्ड यात्रा वर्णन पृ० १०९

प्रलय, आत्मा, परमात्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म, यज्ञ-तप आदि कर्मकाण्ड, ऋषियों के नाम, तपोवन आदि का वर्णन है। धनुर्वेद और सङ्गीतशास्त्र का परिचय है। परन्तु मुख्य वर्ण्य विषय केदारखण्ड में स्थित तीर्थों की महिमा का गान करना है। 'केदारखण्ड पुराण' में २०६ अध्याय और १०१९२ श्लोक हैं। प्रारम्भ के १०८ अध्यायों तक तीर्थों का वर्णन इतना सुसम्बद्ध नहीं है, जितना कि अध्याय १०९ से लेकर २०६ तक है। इसमें केदारखण्ड की सीमाओं और क्षेत्रफल का भी निर्देश है। केदारखण्ड क्षेत्र ५० योजन (२०० मील) लम्बा और ३० योजन (१२० मील) चौड़ा है। इस प्रकार इसका विस्तार १५०० योजन (२४००० वर्गमील)है। यह उत्तर में श्वेतान्त (हिमाच्छादित कैलास आदि पर्वत शृंखला) पर्वत से लेकर दक्षिण में गंगाद्वार (हरिद्वार) तक और पश्चिम में तमसा (टौंस) नदी से लेकर पूर्व में बौद्धाचल (बधाण) तक विस्तृत है। देवताओं को भी दुर्लभ यह स्थान पृथिवी पर स्वर्ग ही है[1]।

'केदारखण्ड पुराण' में यहां की भूमि के अनेक विभागों को विभिन्न क्षेत्रों में दिखाया गया है। जैसे मायाक्षेत्र, कुब्जाम्रकक्षेत्र, सुदर्शनक्षेत्र, भास्करक्षेत्र, श्रीक्षेत्र आदि। इन क्षेत्रों के पुण्य पर्वत शिखरों, तीर्थस्थलों, नदियों और कुण्डों की महिमा का वर्णन इस पुराण में है।

इस पुराण में अनेक पर्वतों के नाम आये हैं। जैसे- नन्दादेवी, वानराचल (बन्दरपूंछ), गन्धमादन (कामठ), तुङ्गोच्च शिखर, चन्द्रशिला शिखर, गणेशपर्वत, नन्दापर्वत, यक्षकूट, महिषभण्डल, रेणुकाद्रि, श्रीमुख (सुमेरु), नीलपर्वत, बिल्वपर्वत, मलयपर्वत, श्वेत महापर्वत, हेमशृंग, मन्दराचल, पुष्करपर्वत. कैलासपर्वत, नागपर्वत, इन्द्रकीलपर्वत, स्वर्गारोहण पर्वत, भृगुतुङ्गशिखर, शङ्करपर्वत, नन्दनपर्वत आदि का वर्णन है।

अनेक तीर्थस्थलों की महिमा को इस पुराण में कहा गया है। जैसे- कनखल, मायापुर, गंगाद्वार (हरिद्वार), कुब्जाम्रक तीर्थ (ऋषिकेश), लक्ष्मणतीर्थ (लक्ष्मणझूला), इन्द्रप्रयाग (व्यासघाट), देवप्रयाग, सौम्यकाशी (उत्तरकाशी), श्रीक्षेत्र (श्रीनगर), रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, केदारनाथ, गोपेश्वर, विष्णुप्रयाग, बदरिकाश्रम (बदरीनाथ धाम), भिल्लांगण, तुङ्गनाथ, रुद्रालय (रुद्रनाथ), कल्पेश्वर, मेनकाक्षेत्र, लक्ष्मणतीर्थ (हिमकुण्ड), केशवप्रयाग (माणा ग्राम), गौरीतीर्थ, सूर्यकुण्ड, बैखानसतीर्थ, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, कालीक्षेत्र (कालीमठ), पञ्चकेदार, पञ्चबदरी आदि हैं।

---

१. पञ्चाशद् योजनायामं त्रिंशद् योजनविस्तृतम्।
इदं वै स्वर्गगमनं न पृथ्वीं तां महाविभो।
गङ्गाद्वारपर्यन्तं श्वेतान्तं वरवर्णिनि।
तमसातटतः पूर्वभागे बौद्धाचलं शुभम्।।
केदारमण्डलं ख्यातं भूम्यां तद् भिन्नकं स्थलम्।। केदारखण्ड पुराण ४०.२६-२९

प्राय: प्रत्येक तीर्थ में वर्णित नदी, पर्वत आदि पर उसके अधिपति किसी ईश्वर (देवता) और ईश्वरी (देवी) का उल्लेख है। कुछ तीर्थों के भैरव भी बताये गये हैं। अनेक तीर्थों के वर्णनों में एक या अधिक रात्रि तक रहने तथा वहां भूमि और स्वर्ण का दान करने की प्रशंसा की गई है। कई तीर्थों में यज्ञ, तप, उपवास करने और कुछ में शरीर त्याग करने की भूरि भूरि महिमा कही गई है।

अनेक सरिताओं, जलाशयों और जलकुण्डों का वर्णन है, जिनके दर्शन, चिन्तन और स्नान से त्रिविध ताप दूर होकर मोक्ष प्राप्त होता है। भागीरथी, जाह्नवी, अलकनन्दा, सरस्वती, ऋषिगङ्गा, आकाशगङ्गा, पातालगङ्गा, यमुना, तमसा, नबालका (दोनों नयार), विरही, नन्दाकिनी, पिण्डर, मन्दाकिनी, धवलगङ्गा, भिल्लाङ्गणा आदि पवित्र नदियां हैं। अनेक तीर्थों पर अनेक काल्पनिक नाम वाली धारायें और नदियां कही गई हैं, जिनके नाम की संगति बिठाना भी कठिन है।

'केदारखण्ड पुराण' में अनेक सरोवरों, जलाशयों, कुण्डों आदि का वर्णन है। इनमें प्रसिद्ध हैं- विष्णुताल, सत्यपथताल, वासुकिताल, गौनाताल, देवरियाताल, अप्सराताल, यमताल, नचिकेताताल, दुग्धताल, मानसरोवर, सारस्वत सरोवर, मणिभद्र सरोवर, बिन्दु सरोवर, दिव्य सरोवर, नारायणकुण्ड, उर्वशीकुण्ड, सूर्यकुण्ड, चन्द्रकुण्ड, हेमकुण्ड, अमृतकुण्ड, रूपकुण्ड, होमकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, रुद्रकुण्ड, इन्द्रकुण्ड, शिवकुण्ड, गौरीकुण्ड, नन्दीकुण्ड, हंसकुण्ड, रेतसकुण्ड, उदककुण्ड, अमृतकुण्ड, बदरीनाथ और यमुनोत्तरी के तप्तकुण्ड आदि।

'केदारखण्ड पुराण' यद्यपि बहुत प्राचीन नहीं है, तथापि इसमें प्राचीन कथाओं को इस प्रकार बिठाया गया है, जिससे केदारखण्ड प्रदेश का माहात्म्य सिद्ध हो सके। टिहरी और गढवाल के तीर्थों, नदियों, गधेरों, पानी के गढों, कुण्डों, सरोवरों, पर्वत शिखरों और शिलाओं का यह अद्भुत विश्वकोष है।

केदारखण्ड की महत्वपूर्ण महत्ता उसके तीर्थों के साथ ही उसमें निहित प्राकृतिक सौन्दर्य वाले स्थलों में है। उन्हीं में से कुछ स्थल तीर्थों के रूप में विकसित हो गये। परन्तु जहां तक प्राकृतिक दृश्यों का, वनप्रदेशों, बुग्यालों और हिमालय की मनोहारिणी छटा का सम्बन्ध है, यह ग्रन्थ उसकी ओर ध्यान आकृष्ट नहीं करता। लेखक की दृष्टि प्राकृतिक दृश्यावली की ओर न जाकर तीर्थों का माहात्म्य कहने, उनमें सुवर्ण तथा भूमि का दान करने, जप-उपवास-स्नान करने, देवताओं की पूजा-उपासना करने, निवास करने आदि के गुणगान करने में ही लगी रही है।

विषय-सूची

प्राक्कथन पृ० ५-७

भूमिका ८-२४

(१) पुराणों का महत्त्व और उनकी रचना ८
(२) पुराणों का वर्ण्य विषय ८
(३) पुराणों की १८ संख्या और उनका संक्षिप्त परिचय १०
(४) उपपुराण १७
(५) स्थानीय पुराण १७
(६) केदारखण्ड पुराण का रचयिता १९
(७) केदारखण्ड पुराण का रचना-काल १९
(८) केदारखण्ड पुराण का वर्ण्य विषय २२

विषय-सूची २५ - ६०

केदारखण्ड पुराण

(मूल एवं हिन्दी अनुवाद) अध्याय १-२०६

विषयानुक्रमणिका

(प्रथम खण्ड)

१ - ५८२

अध्याय- १-६३

अध्याय-१ ब्रह्म के स्वरूप को जानने की इच्छा करने वाली अरुन्धती के समक्ष वसिष्ठ द्वारा उसका वर्णन करना ३

अध्याय-२	द्रवरूप ब्रह्म का गङ्गा के रूप में भूमि पर अवतरण	११
अध्याय-३	ब्रह्माण्ड का निरूपण	२३
अध्याय-४	आदि सृष्टि का निरूपण	२७
अध्याय-५	तपस्या करने के लिये उद्यत ध्रुव के लिये जरा द्वारा अपने स्वरूप का दर्शन कराना, घोर तपस्या करने से प्रसन्न ब्रह्मा द्वारा उस ध्रुव को सर्वोच्च स्थान प्रदान करना	३१
अध्याय-६	ध्रुव की सुच्छाया नाम की पत्नी से रिपुञ्जय आदि पांच पुत्रों के क्रम से प्रजा की सृष्टि, ऋषियों द्वारा वेन के हाथ को मथ कर पृथु की उत्पत्ति, पृथु द्वारा पृथिवी का दोहन कर सब रसों का उत्पादन	४९
अध्याय-७	पार्वती द्वारा सृष्टि उत्पत्ति के विषय में महादेव से शंका करना, महादेव द्वारा शङ्का का समाधान	५७
अध्याय-८	दक्ष की सृष्टि का वर्णन	५९
अध्याय-९	स्वाम्भुव मनु की सृष्टि का वर्णन करके मन्वन्तरों की स्थिति का वर्णन	६७
अध्याय-१०	कृतयुग, त्रेतायुग आदि के प्रमाण, कला-काष्ठ आदिकाल की संख्या का निरूपण	८९
अध्याय-११	ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से दक्ष और बायें अंगूठे से नारी की उत्पत्ति, उनसे कन्याओं की सृष्टि, कश्यप से अदिति में सूर्य की उत्पत्ति, तदनन्तर वैवस्वत पुत्रों की और इला कन्या की उत्पत्ति, तदनन्तर उनसे उत्पन्न दो वंशों का वर्णन	९३
अध्याय-१२	इला के चरित के वर्णन के प्रसंग में सुद्युम्न के उत्कृष्ट तप का वर्णन और सन्तान्तोत्पत्ति आदि का निरूपण।	१०३
अध्याय-१३	इक्ष्वाकुपुत्र विकुक्षि का वृत्तान्त, कुवलाश्व के समक्ष धौम्य पुत्री राजकुमारी मन्दुरा के स्वयंवर का वर्णन	१०७
अध्याय-१४	मन्दुरा के स्वयंवर में धौम्य द्वारा प्रस्तुत शर्त का पालन करने में असमर्थ राजाओं द्वारा धौम्य को युद्ध के लिये आह्वान करना।	११७
अध्याय-१५	युद्ध में धौम्य का वध, शरणरहित मन्दुरा का वनगमन।	१२३

अध्याय-१६	कुवलाश्व द्वारा मुद्गर उठाकर शर्त पूरा कर मन्दुरा के साथ विवाह करना।	१२९
अध्याय-१७	धुन्धु दैत्य का वध करने के लिये कुवलाश्व का सेना सहित प्रयाण।	१३३
अध्याय-१८	धुन्धु दैत्य के वध का वर्णन	१३९
अध्याय-१९	विश्वामित्र के तप करने के लिये चले जाने पर उसकी पत्नी द्वारा अपने एक पुत्र को गले में बांध कर भरण-पोषण के लिये भ्रमण, तथा इस कारण उसके पुत्र का नाम गालव होना।	१४५
अध्याय-२०	अपनी पत्नी और पुत्र के भरण-पोषण से प्रसन्न विश्वामित्र द्वारा त्रिशंकु के लिये, जिसका दूसरा नाम सत्यव्रत था, नये स्वर्ग की रचना करने का उद्योग करना, तदनन्तर डरे हुये देवताओं द्वारा स्वीकार करने पर यज्ञ का विधान करना और त्रिशंकु का स्वर्ग जाना।	१५३
अध्याय-२१	हरिश्चन्द्र के यज्ञ का वर्णन।	१६१
अध्याय-२२	राजसूय यज्ञ के सम्पन्न हो जाने पर हरिश्चन्द्र द्वारा विश्वामित्र के लिये राज्य का दान, विश्वामित्र द्वारा स्वीकार करके दान की दक्षिण मांगना, पत्नी-पुत्र-स्वयं को बेचकर हरिश्चन्द्र द्वारा मुनि को सन्तुष्ट करना।	१६५
अध्याय-२३	श्मशान में मञ्च बनाकर बारह वर्षों तक हश्चिन्द्र द्वारा चाण्डाल की सेवा करना।	१८५
अध्याय-२४	मृतक रोहिताश्व का दाह संस्कार करने के लिये हरिश्चन्द्र की पत्नी का श्मशान में आना, श्मशान का कर न देने पर हश्चिन्द्र द्वारा उसको रोकना, मृतक को अपना पुत्र जान कर उस बालक के साथ हश्चिन्द्र का रानी सहित चिता पर आरोहण।	१९१
अध्याय-२५	ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओं द्वारा हरिश्चन्द्र और उसकी पत्नी को विमान पर चढा कर अपने लोक में ले जाना, रोहिताश्व का रोहितनगर में राज्याभिषेक।	२०१
अध्याय-२६	अनेक वर्षों तक राज्य करके, पुत्र का राज्याभिषेक कर रोहिताश्व का तपस्या के लिये वन जाना, उसके पुत्र-पौत्रों का क्रमशः वर्णन।	२०७

अध्याय-२७ युद्ध में पराजित होने पर बाहु नाम के राजा का चिता में प्रवेश करना, और्व मुनि के उपदेश से राजा की गर्भवती पत्नी द्वारा पति का अनुगमन न करना, आश्रम में उसके गर्भ से सगर की उत्पत्ति, मुनि द्वारा उसको आग्नेयास्त्र प्रदान करना। २१५

अध्याय-२८ सगर की एक पत्नी में साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति, दूसरी पत्नी में एक पुत्र का उत्पन्न होना। २१९

अध्याय-२९ अश्वमेघ यज्ञ करने वाले सगर के यज्ञीय अश्व का इन्द्र द्वारा अपहरण, सगरपुत्रों द्वारा पाताल लोक में कपिल मुनि के पास यज्ञीय अश्व को देखना, कपिल मुनि को चोर समझ कर सगरपुत्रों द्वारा उनको पीटना, मुनि की क्रोध की अग्नि से साठ हजार सगरपुत्रों का भस्म हो जाना, सगर के पौत्र द्वारा यज्ञीय अश्व को लाना, अश्वमेघ यज्ञ का सम्पूर्ण होना। २२७

अध्याय-३० पितरों का उद्धार करने के लिये, भूमि पर गङ्गा को लाने के लिये भगीरथ द्वारा तपस्या करना । २४७

अध्याय-३१ पितृकल्प का वर्णन २५५

अध्याय-३२ पितरों की संख्या, उनके निवास-स्थान आदि का विस्तृत वर्णन। २६१

अध्याय-३३ ब्रह्मा द्वारा भगीरथ के पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहना। २७७

अध्याय-३४ तपस्या से सन्तुष्ट शिव का भगीरथ को दर्शन देना। २९१

अध्याय-३५ गङ्गा को भूमि पर लाने के लिये शिव द्वारा उसको भगीरथ के लिये देना, उसको लेकर राजा भगीरथ का मर्त्यलोक के लिये प्रस्थान। ३०१

अध्याय-३६ गङ्गा का तीन धाराओं में विभाजन, भगीरथ द्वारा गङ्गा को लाते हुये गन्धर्वो द्वारा उसके अपहरण का प्रयत्न, गन्धर्वों को जीत लेने पर असुरों द्वारा गंगा को रसातल में ले जाना, उनको जीत कर तथा निवातकवच दानवों द्वारा अपहरण की गई प्रतिष्ठानपुर की मनोहरा नाम की राजकुमारी से विवाह करके भगीरथ का भागीरथी को लेकर पृथिवी पर आना। ३०९

अध्याय-३७	जह्नु मुनि के आश्रम में गङ्गा द्वारा उनकी पूजा-सामग्री, कुश आदि का अपने वेग में बहाना, जह्नु द्वारा गंगा को चुल्लू में पी लेना, भगीरथ की प्रार्थना पर जह्नु द्वारा अपनी जांघ के प्रदेश से गङ्गा को बाहर निकालना।	३१९
अध्याय-३८	गङ्गासहस्रनाम स्तोत्र	३२७
अध्याय-३९	श्री गङ्गा भूलोक में रहेंगी, यह सुनकर नागराज द्वारा उनको अपने लोक में जाने की प्रार्थना करना, मैं कलि के द्वितीय चरण में आऊंगी, गङ्गा द्वारा यह उत्तर देना, गङ्गा की दस धाराओं का आख्यान।	३५७
अध्याय-४०	गङ्गा की दस धाराओं का वर्णन।	३६७
अध्याय-४१	व्याध के आख्यान के उपलक्ष्य से केदारक्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन।	३७३
अध्याय-४२	केदारक्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन।	३८३
अध्याय-४३	नारायणाश्रम तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन।	३९५
अध्याय-४४	भिल्लाङ्ण क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन।	४०१
अध्याय-४५	बगला क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने में अनेक देवों और देवियों के मन्दिरों का वर्णन।	४०७
अध्याय-४६	शाकम्भरी क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन।	४११
अध्याय-४७	पञ्च केदारों के वर्णन के प्रसंग में मध्यमेश्वर के माहात्म्य का वर्णन।	४१५
अध्याय-४८	मध्यमेश्वर के माहात्म्य का वर्णन, तुङ्गेश्वर के माहात्म्य का वर्णन।	४२५
अध्याय-४९	तुङ्गेश्वर के माहात्म्य का वर्णन।	४३६
अध्याय-५०	आकाशगङ्गा के वर्णन सहित तुङ्गक्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन।	४४५
अध्याय-५१	रुद्रालय के माहात्म्य का वर्णन।	४४९
अध्याय-५२	कैलास के माहात्म्य के प्रसंग में रुद्रालय के माहात्म्य का वर्णन।	४५७
अध्याय-५३	कैलास के माहात्म्य के प्रसंग में कल्पेश्वर की उत्पत्ति का वर्णन।	४६३

अध्याय-५४ कल्पेश्वर की उत्पत्ति का वर्णन। ४७५

अध्याय-५५ कल्पेश्वर के माहात्म्य का वर्णन। ४८७

अध्याय-५६ केदारनाथ-मध्यमेश्वर-तुङ्गनाथ-कल्पेश्वर,रुद्रनाथ, इन पञ्च केदारों के माहात्म्य का वर्णन। ४९१

अध्याय-५७ बदरीक्षेत्र का उसके स्थूल-सूक्ष्म आदि भेद से परिमाण का वर्णन करते हुये माहात्म्य का वर्णन ४९३

अध्याय-५८ बदरीमाहात्म्य के प्रसंग में नन्दप्रयाग आदि अनेक तीर्थों का वर्णन। ५०१

अध्याय-५९ नारद के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का कथन और नारदकुण्ड में स्नान के माहात्म्य का वर्णन। ५२९

अध्याय-६० दुराचारी शङ्करगुप्त को उत्तम गति प्राप्त होने की कथा का वर्णन करते हुये बदरीनाथ के माहात्म्य का वर्णन। ५३९

अध्याय-६१ जन्मेजय द्वारा किये गये ब्राह्मणवध रूप पाप कर्म के, बदरी क्षेत्र में व्यास ऋषि द्वारा वर्णित महाभारत की कथा का श्रवण करने से क्षय का वर्णन। ५४७

अध्याय-६२ चन्द्रगुप्त वैश्य और धर्मदत्त ब्राहमण की कथा के प्रसंग से बदरीनाथ के माहात्म्य और यात्राविधि का वर्णन। चन्द्रगुप्त की पत्नी के हाथीदान्त निर्मित कङ्कण के बदरी क्षेत्र में गिरने से, उस अस्थि के हाथी का ज्योतिरूप पुरुष के रूप में बैकुण्ठ धाम को प्राप्त करना। ५६३

अध्याय-६३ रुद्रप्रयाग में रागों को जानने के अभिलाषी नारद के समक्ष शिव द्वारा रागों का उत्पादन। ५७९

(द्वितीय-खण्ड)

अध्याय- ६४-१२०

अध्याय-६४ शिवसहस्रनाम स्तोत्र

अध्याय-६५ आहत-अनाहत उभयरूप नाद के आश्रय देह की उत्पत्ति आदि का वर्णन। देह का ज्ञान पहले होकर ही नाद ब्रह्म के ज्ञान का वर्णन।

अध्याय-६६ देहचक्र का वर्णन करके शरीर की शुद्धि से उत्पन्न अनाहत नाद की प्राप्ति का वर्णन।

अध्याय-६७ नाद-ब्रह्म की इच्छा से पहले मन की प्रवृत्ति होकर देह की अग्नि और वायु के प्रयत्न से ध्वनि की उत्पत्ति और उसके द्वारा मन्द्र-मध्य-तार इन त्रिविध नादों की उत्पत्ति और उसके बाद श्रुति आदि का प्रादुर्भाव, सात स्वरों के वर्ण, देश आदि का कथन।

अध्याय-६८ ग्रामों का संक्षेप से वर्णन, उनके देवताओं का, गान के समय का और गान के योग्य स्थान का निरूपण।

अध्याय-६९ मध्यम ग्राम सम्बन्धी, औडवों का वर्णन।

अध्याय-७० षड्ज ग्रामौडवों का व्याख्यान।

अध्याय-७१ षाडव-औडव का निरूपण।

अध्याय-७२ स्थायी आदि अङ्लकारों का वर्णन।

अध्याय-७३ षड्ज आदि, जाति-गीत आदि, अक्षर न्यास, मगण आदि के फल का निरूपण।

अध्याय-७४ स्वरभेद से पद आदि के गान की क्रिया का वर्णन।

अध्याय-७५ राग-रागिनियों, उनके पुत्रों के नाम और गान के समय आदि का कथन

अध्याय-७६ शृङ्गार-गीत आदि की संख्या को प्रदर्शित करके दोहा, सोरठा, कुण्डली आदि छन्दों के स्वरूप का वर्णन

अध्याय-७७ सङ्गीत के दोष, ताल, मृदङ्ग आदि के स्वरूप का वर्णन करके श्री महादेव द्वारा नारद के लिये वीणा प्रदान करना

अध्याय-७८ देवाश्रय के पुत्र गोपाल द्वारा शिवमन्त्र के जाप से देवदुर्लभ स्थान प्राप्त करना और तीन लाख ब्रह्मराक्षसों द्वारा कैलास क्षेत्र को प्राप्त करके उत्तम गति प्राप्त करना

अध्याय-७९ नीलकण्ठ तीर्थ, चक्रक्षेत्र, बिल्वेश्वर, हेरम्बकुण्ड आदि विविध तीर्थों का वर्णन

अध्याय-८० नागों के लिये ब्रह्मशाप, उससे उद्धार पाने के लिये नागों द्वारा शिव की आराधना करना और वर प्राप्त करना। हिमालय के तीर्थों का वर्णन करके पुष्कर पर्वत के माहात्म्य

का वर्णन

अध्याय-८१ गोविन्दतीर्थ, वीरेशानी, नन्दा, भगवती गङ्गा का वर्णन करके कपिलेश्वर, योगीश्वर, कर्णप्रयाग, पाण्डवीय महाक्षेत्र आदि का वर्णन

अध्याय-८२ पितामह ब्रह्मा से वर प्राप्त करके घमण्ड में भर कर युद्ध करने की इच्छा वाले रक्तबीज के पास इन्द्र द्वारा दूत को भेजना

अध्याय-८३ युद्ध में इन्द्र आदि देवताओं पर रक्तबीज की विजय का वर्णन

अध्याय-८४ रक्तबीज का वध करने के लिये देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति, देवताओं के साथ विष्णु का श्री भवानी से प्रार्थना करने के लिये कैलास पर्वत पर जाना

अध्याय-८५ रक्तबीज का वध करने के लिये विष्णु आदि देवताओं द्वारा काली की स्तुति

अध्याय-८६ देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर नारद द्वारा रक्तबीज को काली के साथ युद्ध करने की प्रेरणा देना, सेनाओं को साथ लेकर रक्तदंष्ट्र आदि का युद्ध के लिये जाना और युद्ध क्षेत्र से पलायन करना

अध्याय-८७ युद्ध में देवी द्वारा चण्ड-मुण्ड आदि का वध

अध्याय-८८ युद्ध में रक्तबीज द्वारा देवताओं को पीडित करना, ब्रह्मा के वर के प्रभाव से सायं समय में इसके, रक्त क्षय हुये विना इसका वध सरल नही है, इस प्रकार देवी के कहने पर श्रीकाली द्वारा रक्तबीज के रुधिर का पान करना और उसका वध करना

अध्याय-८९ सरस्वती के तट पर स्थित अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन, कालीश्वर, सिद्धेश्वर, कोटिमाहेश्वरी आदि तीर्थों के माहात्म्य का निरूपण

अध्याय-९० रक्तबीज का वध करने के अनन्तर दानवों का वध करने के लिये देवी द्वारा करोड़ों मायाओं का आश्रय लेने से कोटिमाहेश्वरी नाम प्रसिद्ध होना, उस क्षेत्र में व्रत-दान-तप के अनन्त फल का कथन करना

अध्याय-९१ राकेश्वरी की महिमा, गुरु की पत्नी के साथ व्यभिचार करने के कारण गुरु द्वारा चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग होने का शाप, राकेश्वरी के माहात्म्य का कथन

अध्याय-९२ चन्द्र वंश का वर्णन

अध्याय-९३ वारणावत पर्वत, उत्तरकाशी और गङ्गोत्तरी के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-९४ श्रीपरशुराम द्वारा क्षत्रियों के वध का वर्णन

अध्याय-९५ विश्वेश्वर लिङ्ग और वारणावत के माहात्म्य के वर्णन के प्रसंग में अनेक तीर्थों का वर्णन, राजा चन्द्रवर्मा की कथा और यात्रा के क्रम आदि का वर्णन

अध्याय-९६ ब्रह्मधारा, यमुना, हिरण्यबाहु, तामसी नदी, दक्षतीर्थ, काश्यपतीर्थ, शतद्रु, गङ्गा, विषहरा देवी, सुन्दरप्रयाग आदि अनेक तीर्थों का वर्णन

अध्याय-९७ हिमालय पर्वत पर सागर का प्रादुर्भाव और उसके द्वारा की गई शिव की स्तुति

अध्याय-९८ तामसा नदी की उत्पत्ति, उसके तट पर अवस्थित रुद्रतीर्थ, विष्णुतीर्थ आदि का निरूपण

अध्याय-९९ बालखिल्य नामक तीर्थ में उनके नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग का निरूपण

अध्याय-१०० सोमेश्वर, धर्मकूट, धर्मेश्वरी, सिद्धकूट, अप्सरोगिरि, यक्षकूट और शैलेश्वर इन अनेकों शिवलिङ्गों का वर्णन

अध्याय-१०१ हिमालय की महिमा का वर्णन

अध्याय-१०२ मायाक्षेत्र की सीमाओं का कथन करके वहां के कुशावर्त आदि अनेक तीर्थों का वर्णन

अध्याय-१०३ दक्ष के यज्ञ में अनिमन्त्रित सती का आगमन, पति की निन्दा को सुनने के कारण उसके द्वारा अग्नि में शरीर का त्याग

अध्याय-१०४ सती के शरीर-त्याग के समाचार को सुन कर शिव के क्रोध के साथ ही अनेक गणों की उपस्थिति में वीरभद्र की उत्पत्ति। शिवगणों द्वारा यज्ञस्थल पर जाकर दक्ष के

यज्ञ को ध्वंस करना, वीरभद्र द्वारा दक्ष के सिर को काट देना

अध्याय-१०५ कैलास पर्वत पर जाकर इन्द्र आदि देवताओं द्वारा शिव की स्तुति करना। प्रसन्न हुये शिव द्वारा उस यज्ञ में विरूपित देवताओं को पूर्व के समान कर देना। दक्ष के शरीर पर बकरे का सिर लगा कर उसको पुनः जीवित कर देना। दक्ष के प्रार्थना करनेपर सती के लिये पुनः शरीर-प्राप्ति का वर देना। हरिद्वार का अर्थ के अनुकूल मायाक्षेत्र नाम रखना

अध्याय-१०६ गङ्गाद्वार से उत्तरभाग का स्वर्गभूमि नाम रखना। अश्मचित्त का आख्यान और शिव की स्तुति

अध्याय-१०७ बिल्व पर्वत और शिवधारा के माहात्म्य का वर्णन करने के प्रसंग में राजा विश्वदत्त का ऋचीक मुनि के पास से योग को प्राप्त करना। भ्रमरी देवी का कीर्तन

अध्याय-१०८ त्रिमूर्त्तीश्वर, सुनन्दानदी, शिला, शिवतीर्थ, नन्दीश्वर, वीरभद्रतपःस्थल, मुण्डमालेश्वरी आदि तीर्थों का वर्णन

अध्याय-१०९ शम्बूक शूद्र का आख्यान, हरिद्वार में स्नान का समय, धर्मकेतु राजा का उपाख्यान

अध्याय-११० तीर्थयात्रा की विधि, ब्रह्मा द्वारा दुगदिवी की स्तुति, महामाया का आविर्भाव, समुद्रमन्थन की कथा, वर्धमान वैश्य का आख्यान और गोदान की महिमा

अध्याय-१११ अन्नदान की महिमा का वर्णन करने के प्रसंग में श्वेत नामक राजा का आख्यान

अध्याय-११२ गङ्गा द्वारा अपनी भंवर में तपस्या करने हुये दत्तात्रेय की कुशाओं का अपहरण, अतः मायापुरी प्रदेश में उस स्थल की कुशावर्त नाम से प्रसिद्धि

अध्याय-११३ विष्णुतीर्थ में दुर्वासा मुनि के शाप से सूर्यवंशी राजा धर्मध्वज के सर्परूप को प्राप्त करने का आख्यान

अध्याय-११४ तपस्या करते हुये तटासुर को अशरीरिणी वाणी द्वारा वर देना, तटासुर द्वारा कालखञ्ज की पुत्री से विवाह करने के अनन्तर सूकरास्य और गजास्य दो पुत्रों की उत्पत्ति,

मुनि के तप में विघ्न करने वाले गजास्य का राजा धर्मसेतु द्वारा वध

अध्याय-११५ सप्तसामुद्रिक तीर्थ में समुद्रेश्वर, शिवतीर्थ में बिल्वेश्वर, सरस्वती-गंगा के संगम पर पार्वती तीर्थ, आपदुद्धारक भैरव आदि का वर्णन, गंगाद्वार माहात्म्य का वर्णन समाप्त

अध्याय-११६ कुब्जाम्र रूप से तपस्या करते हुये रैभ्य मुनि पर कृपा करने के लिये विष्णु का अवतरण, "अन्य वर से मुझे क्या लेना है, लोगों का उपकार करने के लिये आप यहीं रहें", रैभ्य के इस प्रकार कहने पर विष्णु द्वारा उस कथन को स्वीकार करना, इस क्षेत्र की कुब्जाम्रक क्षेत्र नाम से प्रसिद्धि, मैं यहां इन्द्रियों (हृषीक) को जीत कर स्थित रहूंगा, अतः इस स्थान की हृषीकेश नाम से प्रसिद्धि

अध्याय-११७ कुब्जाम्रक तीर्थ की सीमाओं का निरूपण, माया को जानने की इच्छा वाले सोमशर्मा के लिये भगवान् विष्णु द्वारा विविध रूप से माया का वर्णन

अध्याय-११८ भगवान् द्वारा रोके जाने पर भी तपस्या के अन्त में सोमशर्मा द्वारा भगवान् से माया के दर्शन की याचना, स्नान के लिये नदी के जल में प्रविष्ट होकर उसके प्राणों का कच्छप द्वारा अपहरण, लिङ्ग शरीर के माध्यम से सोमशर्मा द्वारा विविध नारकीय यातनाओं का और स्वर्ग आदि का दर्शन, पुनः गर्भ में निवास और कन्या रूप में उत्पत्ति, इस प्रकार अनेक मायाओं का दर्शन करने के अनन्तर उस पर भगवान् की कृपा

अध्याय-११९ कौमुद तीर्थ, चन्द्रेश्वर, सार्षपक तीर्थ, सोमेश्वर आदि अनेक पुण्य स्थानों का वर्णन

अध्याय-१२० एकान्त में विद्यमान शिव-पार्वती के मध्य में जाने वाले अग्नि का रुद्र के कोप से दाह, विष्णु आदि देवताओं की प्रार्थना पर कुब्जाम्र तीर्थ में रुद्र के नेत्र से उसकी पुनः उत्पत्ति, अग्नितीर्थ का माहात्म्य

(तृतीय-खण्ड)

अध्याय-१२१-१८०

अध्याय-१२१ वायव्य, वासव आदि तीर्थों का वर्णन, संक्षेप से राम-रावण युद्ध का वर्णन, वसिष्ठ के उपदेश से राम और लक्ष्मण का कुब्जाम्र क्षेत्र में जाकर तपस्या करना

अध्याय-१२२ ब्राह्मणों के महत्त्व का वर्णन

अध्याय-१२३ लक्ष्मण का शेष के रूप में कुब्जाम्र तीर्थ में तपस्या करना, श्रीशिव की कृपा से उसके यक्ष्मा रोग का निवारण, लक्ष्मणेश्वर की स्थापना करना, इन्द्रकुण्ड, वायुकुण्ड, नन्दीशिला, कुण्ड आदि अनेक तीर्थों का वर्णन, ब्रह्मदत्त वैश्य का उपाख्यान

अध्याय-१२४ रामक्षेत्र का परिमाण, कालिका नदी के समीप शिव की आराधना करने से घण्टाकर्ण को गणत्व की प्राप्ति, मार्कण्डेय आदि मुनियों की गुहा रूप अनेक तीर्थों का वर्णन, सीताकुण्ड, भाग्यहीनों को भी ऐश्वर्य प्रदान करने वाला भाग्यतीर्थ

अध्याय-१२५ द्रोणक्षेत्र का परिमाण, वहां के तीर्थों का वर्णन, श्रीशिव की आराधना करके उनसे द्रोण को अंगों सहित धनुर्वेद की प्राप्ति

अध्याय-१२६ अंगों सहित धनुर्वेद की शस्त्रास्त्र विद्या का निरूपण

अध्याय-१२७ देवेश्वर, नवदोला, जाबालीश्वर, सर्वकुष्ठापह आदि अनेक तीर्थों का निरूपण

अध्याय-१२८ तपस्या द्वारा वामतनु वैश्य को वामन नामक दिगगज के पद की प्राप्ति, शिव द्वारा प्रसन्न होकर नाग पर्वत पर नागेश्वर नाम से अपने लिङ्ग की स्थापना करना, चन्द्रवन में चन्द्रेश्वर लिङ्ग रूप से शिव की स्थापना, सुह्वन नद के तट पर अङ्गुष्ठप्रमाण मुनियों का इन्द्र के विरुद्ध तप करना

अध्याय-१२९ दक्ष के यज्ञ के लिये ईंधन लाने के लिये गये हुये इन्द्र का अपने विरुद्ध यज्ञ की वार्ता सुन कर ब्रह्मा से प्रार्थना

करना, ब्रह्मा द्वारा अंगुष्ठप्रमाण मुनियों की प्रार्थना करके इन्द्र के विरुद्ध यज्ञ का निवारण, तदनन्तर गरुड की उत्पत्ति

अध्याय-१३० गणकुञ्जर पर्वत पर चण्डिका, स्वर्णेश्वर, आम्रातक वन, शाकम्भरी आदि तीर्थों का कथन, देवशर्मा द्वारा लाये गये गङ्गाप्रवाह आदि अधिक पुण्यशाली तीर्थों का वर्णन

अध्याय-१३१ कालेश्वरी और कालेश्वर के माहात्म्य का वर्णन, देवजुष्टा नदी आदि तीर्थों के वर्णन में यमुना का विशेष रूप से माहात्म्य का वर्णन,

अध्याय-१३२ योनितीर्थ के माहात्म्य का वर्णन, वहां के यवनेश पीठ, योनिपर्वत, शरभङ्ग, वसिष्ठ, ब्रह्मनद आदि तीर्थों का वर्णन

अध्याय-१३३ हिमालय के दक्षिण प्रदेश में सुरकूट पर्वत पर सुरेश्वरी के माहात्म्य का वर्णन, कालिका देवी का वर्णन

अध्याय-१३४ चन्द्रवंशी राजा रजि का उपाख्यान, दैत्यों से पराजित इन्द्र की प्रार्थना पर रजि द्वारा असुरों को भगा देना और स्वर्गराज्य का उद्धार करना

अध्याय-१३५ राजा रजि के पुत्रों से पराजित होकर देवराज इन्द्र को देवगुरु बृहस्पति द्वारा विष्णु की आराधना करने के लिये उपदेश देना, देवराज की स्तुति से परम सन्तुष्ट विष्णु के कहने से जगदम्बा की आराधना करने के लिये इन्द्र का हिमालय पर जाना

अध्याय-१३६ देवराज इन्द्र की स्तुति से सन्तुष्ट भगवती के प्रभाव से रजिपुत्रों का माया से मोहित होकर विनाश

अध्याय-१३७ ब्रह्मकूट पर्वत पर हैमवती-ब्रह्मपुत्री नदियों के संगम पर सुन्दरी नाम की देवी के पीठ का वर्णन, सुन्दरीशशिव के लिङ्ग का कथन

अध्याय-१३८ शिवकूट पर्वत पर हैमवती नदी के तट पर स्थित भगवदीश्वर नाम के शिवलिङ्ग के स्थान का वर्णन

अध्याय-१३९ गंगा-हैमवती नदियों के सङ्गम पर भूतीश्वर नाम के शिव के समीप शिवतीर्थ का वर्णन

अध्याय-१४० लोह आदि धातुओं को स्वर्ण बना देने वाले शैलोद नाम के जलाशय के समीप कुमारी पीठ का वर्णन, वहीं शैलेश्वर

शिवलिङ्ग का वर्णन, उसके उत्तर में देवलेश्वर के स्थान का वर्णन

अध्याय-१४१ गङ्गा के पूर्व भाग में चन्द्रकूट पर्वत पर भुवनेश्वरी पीठ का वर्णन, उसके उपाख्यान के साथ माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१४२ भोगवती नदी के किनारे दुष्कर तपस्या करने वाले नागों द्वारा स्थापित नागेश्वर नाम के शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१४३ सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त करने के लिये तपस्या करने वाले आङ्गिरस ऋषि को शिव के समान वागीशत्व की प्राप्ति, वहीं पर वागीश नाम के शिवलिङ्ग का कथन, उसके उत्तर में गर्दभासुर पर्वत पर कालिका देवी की स्थिति का कथन

अध्याय-१४४ गंगा के उत्तरी तट पर ब्रह्माश्रम में करोड़ों ब्रह्मराक्षसों के उन्मुक्त होने से कोटीश्वर नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन। वहीं ब्रह्मकुण्ड और शूलकुण्ड तीर्थों का वर्णन

अध्याय-१४५ ब्रह्माश्रम से ईशान दिशा में वृष (बैल) के कहने से भद्रसेन आश्रन में भद्रसेनेश्वर शिव की आराधना करने से कामाल नामक व्याध को सात रात्रियों में शैव पद की प्राप्ति का वर्णन

अध्याय-१४६ भिलङ्गना नदी के तट से पूर्वोत्तर दिशा में सत्येश्वर शिवलिङ्ग के माहात्म्य का कथन

अध्याय-१४७ भिलङ्गना- गङ्गा संगम पर गाणेश्वर नाम के शिवलिङ्ग का वर्णन, माल्यवती की आख्यायिका

अध्याय-१४८ भास्कर क्षेत्र स्थित भास्करेश्वर के माहात्म्य का वर्णन, महातपा नाम के मुनि के तप से सन्तुष्ट गङ्गा के यहां गोमुख से निकलने के कारण गोमुख नाम से प्रसिद्ध हुये उस क्षेत्र के माहात्म्य का कथन

अध्याय-१४९ भास्कर क्षेत्र के पश्चिम भाग में घण्टाकर्ण नाम के भैरव के स्थान का वर्णन, गङ्गाद्वार के पूर्व में अलकनन्दा-गङ्गा के सङ्गम पर देवप्रयाग के माहात्म्य का कथन

अध्याय-१५० देवशर्मा नामक ब्राह्मण की कामना को पूरा करने के लिये श्रीराम द्वारा वहां निवास करने से इस भूभाग का नाम देवप्रयाग प्रसिद्ध होना, उसके माहात्म्य का वर्णन करने के प्रसङ्ग में राजा चण्डवर्मा के चरित्र का वर्णन

अध्याय-१५१ सृष्टि की रचना करने में असमर्थ होकर ब्रह्मा द्वारा विष्णु से वर प्राप्त करना तथा उस स्थान का नाम ब्रह्मकुण्ड प्रसिद्ध होना, जातिमात्र से ब्राह्मण परन्तु महापापी दण्डहस्त के वहां मृत्यु होने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति

अध्याय-१५२ देवप्रयाग में वसिष्ठ तीर्थ का कथन। इसी प्रसङ्ग में वाराणसी में रहने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण घनानन्द का वसिष्ठ तीर्थ में आकर श्रीराम की आराधना करके विपत्तियों से उद्धार पाना

अध्याय-१५३ दशरथाचल से निकलने वाली शान्ता नदी का गङ्गा में सङ्गम और वहां शिवतीर्थ का वर्णन, दशरथ की पुत्री शान्ता को ब्राह्मणत्व प्राप्त कराने के लिये ब्रह्मा के वचनों से शिवतीर्थ में आगमन, वहां स्नान के द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने वाली उस शान्ता का ऋष्यशृङ्ग के साथ विवाह, इस लोक के सुखों को प्राप्त करने के अनन्तर उसके नदीत्व को प्राप्त करने का वर्णन

अध्याय-१५४ दुराचरण में प्रवृत्त ब्राह्मण उद्दालक का वेश्या के उपदेश से देवप्रयाग में आगमन और वहां पांच सौ वेतालों के साथ मिलन, उद्दालक के दर्शन करके उनको पूर्व शरीर की प्राप्ति, अष्टावक्र के शाप से वेतालत्व को प्राप्त करने वाले गन्धर्वों को तीर्थ के प्रभाव से दिव्य गति की प्राप्ति, उनके चरित्र को देखकर उद्दालक का वहीं तपस्या में स्थित होना और विष्णु के वर के प्रभाव से वैकुंठ को प्राप्त करना, उद्दालक तीर्थ के माहात्म्य का कथन

अध्याय-१५५ सूर्यकुण्ड में तपस्या करने वाले मेधातीर्थ को सूर्य देवता के प्रभाव से सूर्यलोक की प्राप्ति, शूद्र कुल में उत्पन्न देवदास का इतिहास, सूर्यकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१५६ सुबन्धु नामक ब्राह्मण का इतिहास, वराह तीर्थ के माहात्म्य

का वर्णन

अध्याय-१५७ अग्नि के वंश में उत्पन्न महानन्द नाम के ब्राह्मण की अपने धर्म को छोड़कर यवनी वेश्या के साथ सङ्गति, उसका अपने दुःख को कहना, भाग्यवश भारद्वाज मुनि के उपदेश से उसका यवनी के साथ सूर्यकुण्ड में स्नान और उसके प्रभाव से उत्तम देह की प्राप्ति का कथन, सूर्यकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१५८ ब्रह्मा के कहने से देवताओं द्वारा विश्वामित्र का तप भङ्ग करने के लिये भेजी गई पुष्पमाला नाम की किन्नरी को विश्वामित्र द्वारा मकरी होने का शाप, राम को निगलने के लिये उद्यत उसकी राम के हाथ से मृत्यु और दिव्य लोक की प्राप्ति, इससे उस तीर्थ का नाम पुष्पमाला प्रसिद्ध होना, पुष्पमाला तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१५९ राज्य से भ्रष्ट राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा बैजपायन ऋषि के वचन से देवप्रयाग में विष्णु की आराधना करना, विष्णु की कृपा से राजा द्वारा अपने पद को प्राप्त करना तथा इस कारण उस तीर्थ का नाम इन्द्रद्युम्न पड़ना, इन्द्रद्युम्न तीर्थ का माहात्म्य

अध्याय-१६० जटायु द्वारा तपस्या करने के कारण पर्वत का नाम गृध्रराज प्रसिद्ध होना, उस पर्वत के समीप तीर्थ के किनारे कापिलाख्य शिवलिङ्ग के ऊपर महान् बिल्ववृक्ष के स्थित होने से इस तीर्थ का नाम बिल्वतीर्थ प्रसिद्ध होना, बिल्वतीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१६१ शीलवती नाम की वेश्या द्वारा तप करने से उस तीर्थ का नाम शीलवतीह्रद प्रसिद्ध होना, वागीश्वर लिङ्ग का निरूपण और लिङ्गभद्राश्रम का वर्णन,

अध्याय-१६२ गङ्गा-अलकनन्दा के सङ्गम पर तुण्डीश्वर नाम के शिवलिङ्ग का वर्णन, श्रीराम द्वारा स्थापित विश्वेश्वर लिङ्ग का इतिहास सहित वर्णन, दक्ष के यज्ञ में महेश के अपमान को न सहने वाली सती के प्राणों के परित्याग से परम कुपित हुये तथा यज्ञ का विध्वंस करने वाले शिव द्वारा सती के मृत शरीर को कन्धे पर रखकर भूमि पर भ्रमण करना, यहां सती के कान से कर्णाभूषण (ताटङ्क)

के गिरने से शिवलिङ्ग का नाम ताटङ्केश्वर प्रसिद्ध होना, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१६३ देवप्रयाग की यात्रा के विधान का विस्तार से निरूपण, तीर्थ-स्नान आदि के मन्त्रों का निरूपण

अध्याय-१६४ बलासुर का वध करने के लिये इन्द्र द्वारा गङ्गा-नबालका (नयार) के सङ्गम पर शिव की आराधना करने से इस क्षेत्र का नाम इन्द्रप्रयाग प्रसिद्ध होना, मछली मारने वाने दीर्घदन्त नामक धीमर द्वारा धर्मतीर्थ में एक मास तक स्नान करने से विष्णुपद की प्राप्ति, इस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१६५ इन्द्रप्रयाग में इन्द्रेश्वर शिवलिङ्ग के दर्शन-पूजन आदि का वर्णन और उसके फल का कथन

अध्याय-१६६ नबालका नदी की उत्पत्ति। धर्मारण्य निवासी धर्मचिन्तक वैश्य की पुत्री सौन्दर्यमञ्जरी की कथा। अपमान से कुपित च्यवन ऋषि के शाप से बचपन में ही बूढी हो जाने वाली उसकी लागंल पर्वत पर तपस्या और शिव की कृपा से पुनः यौवन की प्राप्ति। नबालका नाम होना। च्यवन ऋषि के कहने से उसका नदी रूप में परिणत होना तथा इन्द्रप्रयाग में गङ्गा में मिल जाना। उसके माहात्म्य का कथन

अध्याय-१६७ अमृत को लाने के लिये उद्यत गरुड द्वारा अनजाने में ब्राह्मण को निगल लेना। ब्रह्महत्या के पाप को दूर करने के लिये कश्यप द्वारा महेश्वर की स्तुति और उनकी कृपा से आंखों से अश्रुपात, अश्रुधारा का वैनतेयी नदी नाम होना, गरुडेश्वर आदि का वर्णन

अध्याय-१६८ नबालका नदी के तट पर दीप्तज्वालेरी पीठ, देवराज इन्द्र की पति के रूप में कामना करती हुई पुलोमजा द्वारा सखी के कहने से दीप्तज्वाला भगवती की आराधना। इन्द्रासन के अर्धभाग की प्राप्ति। दीप्तज्वालेश्वरी के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१६९ काण्डवी नदी के तट पर उमादेवी पीठ का वर्णन, केवलेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन, राष्ट्रकूट पर्वत शिखर पर वन्यश्रीकेश्वर नामक शिवलिङ्ग का वर्णन और उसके

माहात्म्य का कथन

अध्याय-१७० रिन्दी नदी के किनारे देवेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन, देवराष्ट्रेश्वरी दुर्गापीठ का वर्णन और उसके माहात्म्य का कथन

अध्याय-१७१ पुण्यकूट पर्वत पर नन्द के पसीने से उत्पन्न नन्दनानदी के तट पर नन्देश्वरी दुर्गापीठ, नन्देश्वर नाम के शिवलिङ्ग का स्थान, उनके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१७२ सुन्दर पर्वत पर सुन्दरा नदी के तट पर सुन्दरेश्वर शिव का वर्णन, भूरिदेव पर्वत पर भूरिदेवा नदी के तट पर भूरिदेव शिव का स्थान, कालिकादि देवियों के स्थानों का वर्णन, इन्द्रप्रयाग से दक्षिण दिशा में वैनायक तीर्थ का वर्णन, इन स्थानों के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१७३ कुब्जाम्र क्षेत्र से ईशान दिशा में गंगा के पश्चिमी तट पर योगेश्वर नाम के शिव का स्थान, उसके समीप सूर्यकुण्ड का वर्णन, इनके माहात्म्य का कथन

अध्याय-१७४ अलकनन्दा नदी के पूर्व दिशा में ताम्राचल पर्वत पर गुह्येश्वरी महादेवी का पीठ, उसके समीप दिव्य भैरव का स्थान, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१७५ मेना नाम की नदी के किनारे नन्दभद्रेश्वरी पीठ, इसके वाम भाग में गुणश्रीपीठ, चण्डमुण्ड पर्वत पर नारायणी नदी के किनारे कालेश्वर नामक भैरव का स्थान, उनके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१७६ अलकनन्दा-गङ्गा के सङ्गम पर श्रीक्षेत्र का वर्णन, यहां अनुष्ठान करने वालों के नाम, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१७७ हैहय के पुत्र राजा धर्मनेत्र का पुत्र के हेतु तप करने के लिये हिमालय प्रदेश में भ्रमण, वहां उत्फालक मुनि के मुख से राजा द्वारा श्रीक्षेत्र के माहात्म्य को सुनना

अध्याय-१७८ सत्ययुग में सत्यकेतु के पुत्र राजा सत्यसन्ध का कोलासुर के साथ बहुत समय तक युद्ध करना, आकाशवाणी को सुन कर सत्यसन्ध द्वारा युद्ध को छोड़ कर गङ्गा के तट पर शिला पर श्रीयन्त्र की रचना करके भगवती की

आराधना करना, भगवती के वर के प्रभाव से कोलासुर का विनाश, असुर के सिर को शरीर से काट कर धड़ को एक ओर तथा सिर को एक ओर फैंकना, दोनों के मध्य का क्षेत्र श्रीक्षेत्र कहलाना, श्रीक्षेत्र के माहात्म्य का कथन

अध्याय-१७९ श्रीक्षेत्र के तीर्थों का वर्णन, मेनका नाम की नदी के पूर्व वृत्तान्त का कथन, कोलासुर की कन्या श्यामला के नदी रूप का वर्णन, गङ्गा के तट पर भानुमती नाम की शिला के इतिहास का निरूपण, श्मशानवासिनी कण्डिका के स्थान का निरूपण, नहुषेश्वर की कथा का वर्णन

अध्याय-१८० सुखाश्रम का वर्णन, जीवनेन्द्र की कथा, लास्य तीर्थ का वर्णन, गङ्गा -गौरी नदियों के सङ्गम पर स्थित तीर्थों का वर्णन, मञ्जुघोष नामक भैरव की पञ्च कन्या रूप नदियों का कथन, भैरव के स्थान का वर्णन

(चतुर्थ-खण्ड)

अध्याय-१८१-२०६ एवं परिशिष्ट

अध्याय-१८१ गङ्गा-खाण्डव नदियों के सङ्गम पर शिवप्रयाग तीर्थ का वर्णन, शिवप्रयाग की कथा के प्रसङ्ग में भिल्लेश्वर और किलकिलेश्वर शिवलिङ्गों के इतिहास का निरूपण, उनके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१८२ खाण्डव नदी के तट पर स्थित कालिका आदि तीर्थों का वर्णन, गंगा के उत्तरी किनारे पर ढुण्ढिप्रयाग तीर्थ का वर्णन, जयैषिणी तीर्थ की कथा, वासवी शिला के पूर्व वृत्तान्त का कथन, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१८३ गङ्गा के उत्तरी किनारे पर मुण्ड दैत्य के सिर के समीप ब्रह्मकुण्ड तीर्थ का वर्णन, यहां रहने वाले ब्राह्मण दम्पती के याचकों को अन्न देने की अत्यधिक कीर्ति को सुन कर ब्रह्मा का चील रूप धर कर उस आश्रम में आना, उनकी मांस को खाने की अभिलाषा को देख कर दम्पती द्वारा अपने मांस को देने के लिये उद्यत होना, "मैं तो तुम्हारे

पुत्र के मांस को खाना चाहता हूं", इस वचन को सुन कर दम्पती द्वारा पुत्र के वध के लिये उद्यत होना, उनके समक्ष ब्रह्मा का अपने स्वरूप में प्रकट होना, ब्रह्मा के वर के प्रभाव से दम्पति को स्वर्ग लोक की प्राप्ति

अध्याय-१८४ गङ्गा के दक्षिणी तट पर शिला पर नारायण का ध्यान करते हुये देवल ब्राह्मण को विडालाक्ष द्वारा गङ्गा में फेंक देना, उसको सुनकर शिव के गण भृङ्गी द्वारा विडालाक्ष का सिर काट देना, शिव के दर्शन से देवल ब्राह्मण को उत्तम गति प्राप्त होना, देवलाश्रम, भृङ्गिशिला और अश्वतीर्थ के माहात्म्य का निरूपण

अध्याय-१८५ भैरवी तीर्थ के समीप भैरवी देवी के तीर्थ का निरूपण, उसकी आराधना से कुबेर को निधि का लाभ, कुबेरकुण्ड और वैश्रवणेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१८६ चामुण्डादेवी के पीठ की कथा, शुम्भ-निशुम्भ राक्षसों से पीड़ित देवताओं द्वारा देवी की स्तुति, हिमालय पर्वत पर स्थित भगवती के सौन्दर्य को देखकर चण्ड-मुण्ड द्वारा शुम्भ से निवेदन, सुग्रीव दूत के मुख से देवी के सन्देश को सुन कर शुम्भ की आज्ञा से चण्ड-मुण्ड का सेना को साथ लेकर देवी का अपहरण करने के लिये हिमालय पर आना

अध्याय-१८७ चण्ड-मुण्ड द्वारा केश खींचने के प्रयत्न का विचार करके कुपित हुई देवी के ललाट से देवीशक्ति का आविर्भाव और उसका चण्ड-मुण्ड से महान् युद्ध करना, चण्ड के सिर को और मृत मुण्ड को लेकर शक्ति द्वारा परम हर्ष से भगवती के समक्ष आना, देवी द्वारा दिये गये चामुण्डा नाम को प्राप्त कर शक्ति का कुषीतक नामक ब्राह्मण के हित के लिये श्रीक्षेत्र में निवास करना, उसकी आराधना के फल का निरूपण, माहेश्वर आदि पीठों के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१८८ श्रीक्षेत्र में माहेश्वर आदि पांच शिव-पीठों का वर्णन, ब्रह्मदेव नामक ब्राह्मणों के कहने से ब्रह्मा-विष्णु-महेश देवताओं का शिलारूप में यहां निवास करना, उनके माहात्म्य का कथन, माहेश्वर आदि पीठों के इतिहास और

माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१८९ वह्नि पर्वत पर वह्नीश्चर शिवलिङ्ग की पूजा के माहात्म्य का वर्णन, वह्नितीर्थ का विस्तार से वर्णन

अध्याय-१९० इन्द्रकील पर्वत पर स्थित अनेक तीर्थों और शिवलिङ्गों का वर्णन

अध्याय-१९१ कंसमार्दिक पीठ का वर्णन, वैश्य की बहिन चपला का श्रीशिला के समीप एक मास तक तपस्या करने से अप्सरा होने की सिद्धि, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१९२ सूक्ष्म श्रीक्षेत्र में अवस्थित तीर्थों का वर्णन, एक लाख गौओं का पालन करने वाले महायशा नाम के वैश्य को, सन्तान के न होने पर, पर्वत को ही सन्तान मान कर कुछ समय तक दूध देने पर वहां स्थित शिव के सन्तुष्ट होने से पुत्र की प्राप्ति, इस कारण पर्वत का गोलक्ष नाम होना, वहां शिव के निवास के माहात्म्य का वर्णन, महेश्वरी पीठ आदि अनेक तीर्थ स्थानों का वर्णन

अध्याय-१९३ स्थूल श्रीक्षेत्र में अवस्थित अनेक तीर्थों, शिवलिङ्गों और देवीपीठों का वर्णन, श्रीक्षेत्र के माहात्म्य का पठन-श्रवण आदि करने के फल का वर्णन

अध्याय-१९४ लसत्तरङ्गिणी (अलस्तर) और मन्दाकिनी के सङ्गम पर सूर्यप्रयाग स्थित अनेक तीर्थ स्थानों का वर्णन

अध्याय-१९५ सूर्यप्रयाग के उत्तरी भाग में छिन्नमस्ता देवी के स्थान के माहात्म्य का वर्णन, कलियुग में केदार जाने के मार्ग का अवरोध हो जाने से जलेश्वर नामक शिवलिङ्ग का ही केदारेश्वर अभिधान होने का वर्णन, उसके माहात्म्य का कथन

अध्याय-१९६ कूर्मरूप को धारण करने वाले भगवान् द्वारा आराधित कूर्मासना देवी के पीठ का वर्णन, कूर्म द्वारा देवी की स्तुति, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१९७ मुनिगङ्गा के तट पर शीलेश्वर स्थान का वर्णन, मन्दाकिनी के पूर्वी तट पर अगस्त्येश्वर के स्थान का वर्णन, मुनीश्वर, लास्येश्वर, शेषेश्वर आदि शिवलिङ्गों के स्थान और उनके माहात्म्य का कथन

अध्याय-१९८ मन्दाकिनी के दूसरे किनारे आग्नेय दिशा में सत्यसार पर्वत पर ऊंचे (तुङ्ग) स्थान को प्राप्त करने के लिये तारों द्वारा शिव की आराधना और उनकी कृपा से आकाश में स्थिति का लाभ, तुङ्गेश्वर लिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१९९ अलकनन्दा नदी के तट पर माहेश्वर लिङ्ग का वर्णन, उनके किनारे ही देवीकुण्ड तीर्थ का वर्णन, नाग नामक पर्वत से निकलने वाली क्षमा आदि चार नदियों के अलकनन्दा में सङ्गम से क्षेमा आदि चार तीर्थों का वर्णन, नाग पर्वत के पश्चिम भाग में माहेश्वरी देवी के पीठ का वर्णन, उनके माहात्म्य का कथन

अध्याय-२०० केदार के दक्षिण भाग में ६ योजन परे गुप्तकाशी क्षेत्र का वर्णन, निषधराज नल द्वारा पूजित राजराजेश्वरी के स्थान का वर्णन, बाणासुर रचित बाणेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन, फेत्कारिणी पर्वत पर महादेवी दुर्गापीठ का वर्णन, उनके माहात्म्य का कथन

अध्याय-२०१ केदार के दक्षिण भाग मे महिषखण्ड पर्वत पर महिषमर्दिनी के स्थान का वर्णन, वहीं पर विष्ण्वीश्वर लिंग का कथन, महिषखण्ड में व्यासगुहा का स्थान, उसके दाहिने प्रदेश में वेदमातृकाओं के स्थान का कथन

अध्याय-२०२ केदार के पश्चिमोत्तर भाग में रेणुका पर्वत पर रेणुका और जमदग्नि द्वारा आराधित महिषमर्दिनी का स्थान, देवी के निकट ही कण्डारभैरव का स्थान, शातातप द्वारा आराधित शातातपेश्वर का स्थान, भिल्लेश्वर आदि अनेक शिवस्थानों का वर्णन, उनके माहात्म्य का कथन

अध्याय-२०३ उत्कल के राजा इन्द्रद्युम्न और रानी सुमन्ता द्वारा पिपीलिका (चींटी) के मुख से अपने दो पूर्वजन्मों के वृत्तान्तों को सुनकर काष्ठाद्रि पर जाकर तप करना और उत्तम लोकों को प्राप्त करना, काष्ठाचल नाम पड़ने के कारण का कथन

अध्याय-२०४ गङ्गा के पश्चिम तट पर महाद्रि पर ६० हजार बालखिल्य मुनियों के निवास वटवृक्ष के नीचे मुनितीर्थ, कपिल पर्वत से निकली हुई कपिला नदी के किनारे कपिल नाम के भैरव का स्थान, शुद्धतरङ्गिणी आदि अनेक तीर्थों का वर्णन,

उनके माहात्म्य का कथन

अध्याय-२०५ केदारक्षेत्र में स्थित सभी नदियों, पर्वतों, वृक्षों आदि के महान् पापों के समूह के विनाश करने में समर्थ होने से उनके माहात्म्य का कथन, राम द्वारा रावणवध के लिये प्रस्थान करने पर वसिष्ठ का सत्यव्रत के आश्रम में आगमन, सत्यव्रत द्वारा हिमदाव मुनि का समर्थन करने के लिये उसके द्वारा की गई उग्र तपस्या का वर्णन, हिमदावेश्वर नाम के शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-२०६ हिमदावेश्वर आश्रम में भीलों के साथ रहते हुये अरुन्धती और वसिष्ठ का उनके समान आचरण हो जाने का कथन, रावण का वध करके लौटे हुये राम के आदेश से वसिष्ठ को लाने के लिये लक्ष्मण का केदारक्षेत्र में प्रवेश, वहां के आचार- व्यवहार को देख कर शंका करने वाले लक्ष्मण के संशय को दूर करने के लिये वसिष्ठ द्वारा क्षेत्र की प्रशस्तता का वर्णन, हिमालय पर्वत के प्रदेश के अन्तर्गत केदारखण्ड की प्रंशसा का वर्णन, केदारखण्ड पुराण के श्रवण-पठन के फल का कथन

परिशिष्ट-१

हिमालय तथा केदारखण्ड का गौरव एवं केदारखण्ड का भौगोलिक परिचय

१. हिमालय तथा केदारखण्ड का गौरव

२. केदारखण्ड का भौगोलिक परिचय

(क) प्राचीन साहित्य के अनुसार केदारखण्ड की सीमायें

(ख) गढवाल की सीमायें तथा क्षेत्रफल

(ग) गढवाल के आकृतिक विभाग

(घ) पर्वतश्रेणियां

(ङ) पर्वतशिखर

(च) हिमानियां

(छ) नदियां

(ज) ताल और कुण्ड

(झ) तप्तकुण्ड

(ञ) प्रयाग

३. केदारखण्ड के प्राचीन क्षेत्र और स्थल

परिशिष्ट-२

तीर्थयात्रा दर्शन

१. तीर्थयात्रा का सामान्य इतिहास

२. तीर्थ शब्द का अभिप्राय

३. तीर्थों के भेद

(क) मानस तीर्थ

(ख) भौमतीर्थ

(१) दैवतीर्थ

(२) आसुरतीर्थ

(३) आर्षतीर्थ

(४) मानुषतीर्थ

४. तीर्थयात्रा के अधिकारी

शूद्रों को तीर्थयात्रा का अधिकार

स्त्रियों को तीर्थयात्रा का अधिकार

५. तीर्थयात्रा के प्रयोजन

(१) धर्म का सम्पादन, स्वर्ग प्राप्ति और मोक्ष

(२) पापों का निवारण

(३) विशेष आवश्यकताओं और कामनाओं की पूर्ति

६. तीर्थयात्रा करने से पूर्व सामान्य कृत्य

(१) निश्चय

(२) व्रतोपवास

(३) देवपूजन

(४) वेश-धारण

(५) मुण्डन

(६) सङ्कल्प

७. तीर्थयात्रा करने की विधि

८. तीर्थों में कर्तव्य कर्म

(१) यात्रा

(२) स्नान

(३) देवदर्शन

(४) पिण्डदान, संकल्प, प्रसादवितरण

९. तीर्थयात्रा के सामाजिक लाभ

परिशिष्ट-३

केदारखण्ड की तीर्थयात्रा का संक्षिप्त इतिहास

१. केदारखण्ड का धार्मिक महत्त्व

२. केदारखण्ड (गढवाल)

३. केदारखण्ड तीर्थयात्रा के हेतु

(१) देश के प्रति प्रेम और ऐक्य की भावना

(२) हिमालय तथा गङ्गा का प्राकृतिक सौन्दर्य और आर्थिक महत्त्व

(३) हिमालय और गङ्गा के प्रति धार्मिक भावना

(४) स्वर्ग का द्वार

४. वैदिक युग में हिमालय और केदारखण्ड की तीर्थयात्रा

५. महाभारत और पुराण

६. धर्मशास्त्र

७. संस्कृत काव्यकार

८. भक्ति सम्प्रदाय

९. शङ्कराचार्य

१०. कत्यूरी शासनकाल

११. शङ्कराचार्य के बाद

१२. १८०० ई० के पश्चात्

१३. गढवाली नरेशों द्वारा तथा नेपाली शासन द्वारा
तीर्थयात्रा को प्रोत्साहन

१४. अंग्रेजी शासन द्वारा तीर्थयात्रा को प्रोत्साहन

१५. पण्डों के प्रयास

१६. चट्टियां

परिशिष्ट-४

केदारखण्ड के चार धाम

१. यमुनोत्तरी

(१) यमुनोत्तरी की स्थिति और मार्ग

(२) यमुनोत्तरी का ऐतिहासिक, पौराणिक और
धार्मिक पक्ष

(३) यमुना नदी

(४) उष्ण जल के स्रोत

(५) यमुनोत्तरी के कपाटों का अनावरण

(६) यमुनोत्तरी का प्रबन्ध और पूजन व्यवस्था

(७) यमुनोत्तरी मन्दिर और अन्य पवित्र स्थान

(१) यमुना की धारा

(२) यमुना-मन्दिर

(३) सूर्यकुण्ड

(४) तप्तकुण्ड

(५) मुखारविन्द

(६) हनुमान मन्दिर

(७) सप्तर्षिकुण्ड

(८) यमुनोत्तरी में निवास की सुविधायें

(९) यात्रा की पद्धति

(१०) उपसंहार

२. गङ्गोत्तरी

(१) गङ्गोत्तरी की स्थिति और मार्ग

(२) पौराणिक और ऐतिहासिक विवेचन

(३) गङ्गामन्दिर

(४) भागीरथी की धारा

(५) गङ्गामन्दिर के पटों का अनावरण

(६) गङ्गामन्दिर की पूजन व्यवस्था

(७) गङ्गोत्तरी तथा उसके समीपस्थ अन्य प्रमुख धार्मिक स्थान

(१) भगीरथ शिला

(२) ब्रह्मकुण्ड

(३) विष्णुकुण्ड

(४) शङ्कराचार्य की समाधि

(५) केदारगङ्गा-भागीरथी सङ्गम

(६) गौरीकुण्ड

(७) पटाङ्गण

(८) जाह्नवी

(९) भैरवमन्दिर

(१०) गोमुख

(११) भगीरथ, शिवलिङ्ग और नीलकण्ठ शिखर

(१२) ब्रह्मलोक या सिद्धमण्डलाश्रम

(८) गङ्गोत्तरी में तीर्थयात्रियों के निवास की सुविधा

३. केदारनाथ

(१) केदारनाथ की स्थिति और मार्ग

(२) केदारनाथ का ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व

(३) पञ्चकेदार

(४) केदारनाथ मन्दिर

(५) केदारनाथ की पूजन व्यवस्था और पण्डे

(६) केदारनाथ मन्दिर के पटों का अनावरण
(७) केदारनाथ क्षेत्र के अन्य मुख्य तीर्थ तथा
दर्शनीय स्थान
(१) पञ्चगङ्गा
(२) ईशानेश्वर मन्दिर
(३) सत्यनारायण
(४) नवदुर्गामन्दिर
(५) भैरवशिला (भैरव झांप)
(६) भीमगुहा और शिला
(७) शङ्कराचार्य की समाधि
(८) उदकजल (अमृतकुण्ड)
(९) रेतोदक (रेतसकुण्ड)
(१०) हंसकुण्ड
(११) ईशानकुण्ड
(१२) स्वर्गारोहिणी, भृगुपन्थ और महापन्थ
(१३) वासुकि ताल
(१४) गान्धीसरोवर
(१५) ब्रह्मगुहा
(८) केदारनाथ की यात्रा में कुछ प्रसिद्ध स्थान
(१) गौरीकुण्ड
(२) त्रियुगीनारायण
(९) केदारनाथ में निवास तथा अन्य सुविधायें
(१०) उपसंहार
४. बदरीनाथ
(१) बदरीनाथ की स्थिति और मार्ग
(२) बदरीनाथ का ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व
(३) पञ्चबदरी
(१) बदरीविशाल

(२) योगबदरी

(३) भविष्यबदरी

(४) वृद्धबदरी

(५) आदिबदरी

(४) बदरीनाथ मन्दिर

(५) बदरीनाथ की मूर्ति

(६) बदरी पञ्चायतन

(८) बदरीनाथ की पूजन व्यवस्था

(८) बदरीनाथ के क्षेत्ररक्षक देवता

(९) बदरीनाथ के पण्डे

(१०) गूंठ और आमदनी

(११) रावल और मन्दिर की प्रबन्ध व्यवस्था

(१२) बदरीनाथ मन्दिर के पटों का अनावरण

(१३) बदरीनाथ मन्दिर के समीपस्थ अन्य तीर्थ तथा दर्शनीय स्थान

(१) देवदर्शनी

(२) पञ्चतीर्थ

(क) ऋषिगङ्गा (ख) कूर्मधारा

(ग) प्रह्लादधारा (घ) तप्तकुण्ड

(ङ) नारदकुण्ड

(३) पञ्चकुण्ड

(४) पञ्चशिलायें

(क) नारदशिला (ख) वराहशिला

(ग) नरसिंहशिला (घ) मार्कण्डेयशिला

(ङ) गरुडशिला और रामानुज कोट

(५) ब्रह्मकपाल

(६) सूर्यकुण्ड

(७) गान्धीघाट

(८) शेषनेत्र
(९) मातापूर्ति
(१०) नीलकण्ठ
(११) चौखम्बा
(१२) चरणपादुका
(१३) उर्वशीमन्दिर
(१४) माणाग्राम, व्यासगुहा और अन्य गुहायें
(१५) केशवप्रयाग
(१६) भीमशिला
(१७) मणिभद्र का मन्दिर
(१८) वसुधारा
(१९) अलकापुरी
(२०) सत्यपथ (सतोपन्थ)
१४. निवास तथा अन्य सुविधायें
१५. उपसंहार

परिशिष्ट-५

केदारखण्ड पुराण का दर्शन

१. दर्शन पद और उसका अभिप्राय
२. ब्रह्म का स्वरूप
निर्गुण ब्रह्म
सगुण ब्रह्म
३. नाद ब्रह्म की सिद्धि तथा जलात्मा ब्रह्म की सिद्धि में नाद की प्रधानता
४. नाद की उत्पत्ति
५. सृष्टि की अनित्यता में जलरूप ब्रह्म की नित्यता
६. ब्रह्म की नित्यता में युक्ति
७. माया का स्वरूप

८. माया संसार का मूल कारण
९. ब्रह्म का माया का आश्रयी होना
१०. माया के द्वारा ब्रह्म का प्रादुर्भाव
११. ब्रह्म के साक्षात्कार में माया की बाधकता
१२. माया को समझने में असाधारणत्व
१३. माया के द्वारा ब्रह्म की विविध रूपों में प्रतीति एवं परमेश्वर की कृपा से ही परमेश्वर का साक्षात्कार
१४. जीव
१५. निष्कर्ष
१६. सृष्टि का प्रतिपादन
१७. सृष्टि की पुनः पुनः स्थापना
१८. सृष्टि रचने में ब्रह्मा की प्रक्रिया
१९. सृष्टि-प्रक्रिया में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव
२०. ब्रह्मा-विष्णु-शिव का देहादि भेद
२१. ब्रह्मा-विष्णु-शिव का पुनः पुनः प्रादुर्भूत होना
२२. विष्णु और शिव में अभेद
२३. ब्रह्मा-विष्णु-शिव तथा परब्रह्म में अभेद
२४. सृष्टिकाल का निरूपण
२५. सृष्टिकाल में मनुओं की संख्या
२६. सृष्टिकाल में सर्ग निरूपण
२७. कर्म का सिद्धान्त
२८. पुनर्जन्म का सिद्धान्त
२९. पुनर्जन्म की पुष्टि में राजा भगीरथ का इतिहास
३०. लय का प्रतिपादन
३१. परम पद (मोक्ष) का स्वरूप
३२. मोक्षमार्ग
३३. निष्कर्ष

परिशिष्ट-६

केदारखण्ड पुराण में शक्ति, शाक्तपीठ, लक्ष्मी और सरस्वती

१. शक्ति
  (क) केदारखण्ड में शक्ति का निवास
  (ख) शाक्त सिद्धपीठों की उत्पत्ति
  (ग) नवदुर्गा
  (घ) दश महाविद्या
  (ङ) शाक्त सिद्धपीठ
  (च) शक्ति की पूजोपासना
२. लक्ष्मी
३. सरस्वती

परिशिष्ट-७

केदारखण्ड पुराण के महादेवता

१. शिव-
  (क) केदारखण्ड में शिव का निवास
  (ख) शिव का स्वरूप
  (ग) शिव का परिवार
  (घ) केदारखण्ड में पञ्चकेदार
  (ङ) केदारखण्ड के प्रसिद्ध शिवमन्दिर
  (च) केदारखण्ड में शिव की पूजोपासना विधि
२. विष्णु
  (क) विष्णु का स्वरूप
  (ख) विष्णु का सगुण स्वरूप
  (ग) विष्णु का परिवार
  (घ) विष्णु के २४ अवतार
  (ङ) केदारखण्ड में प्रतिष्ठित विष्णु के अवतार
  (च) केदारखण्ड में विष्णु का निवास

(छ) केदारखण्ड में पञ्चबदरी

(ज) केदारखण्ड में विष्णु के प्रसिद्ध मन्दिर

३. ब्रह्मा

(क) ब्रह्मा द्वारा सृष्टि-सृजन की प्रक्रिया

(ख) केदारखण्ड में ब्रह्मा की पूजाविधि

(ग) केदारखण्ड में ब्रह्मा के प्रसिद्ध स्थान

परिशिष्ट-८

केदारखण्ड पुराण के देवता

(१) इन्द्र

(क) केदारखण्ड में इन्द्र का प्रवेश

(ख) केदारखण्ड में इन्द्र के प्रमुख स्थान

(२) सूर्य (आदित्य)

(३) चन्द्रमा (सोम)

(४) भैरव

(५) नागराज

(६) घंटाकर्ण

(७) गणेश

(८) कार्तिकेय (स्कन्द)

(९) हनुमान्

(१०) लक्ष्मण

(११) भरत

(१२) शत्रुघ्न

(१३) कुबेर

(१४) वसु

(१५) मातृका

(१६) अग्नि

(१७) वरुण

(१८) वायु

(१९) बृहस्पति

(२०) अश्विनी

(२१) मरुत्

(२२) नवग्रह

(२३) पितर

परिशिष्ट-९

केदारखण्डपुराण के अर्धदेवता और देवाङ्गनायें

(१) नन्दी

(२) भृङ्गी

(३) सिद्ध

(४) गुह्यक

(५) प्रमथ

(६) चण्ड

(७) यक्ष

(८) किन्नर

(९) वेताल

(१०) विद्याधर

(११) चारण

(१२) पन्नग (नाग)

(१३) गन्धर्व- चित्ररथ, तुम्बरु, हाहाहुहु

(१४) देवाङ्गनायें- उर्वशी, मञ्जुघोषा, मेनका, रम्भा

(१५) धनदा यक्षिणी

(१६) नागकन्यायें

परिशिष्ट-१०

केदारखण्ड पुराण के तिर्यक् देवता, पर्वत देवता, नदी देवता और वृक्षपूजन

१. तिर्यक् देवता

(क) गरुड (ख) सिंह (ग) मयूर (घ) गौ

२. पर्वत देवता

(क) कैलास पर्वत (ख) स्वर्गारोहण (ग) हस्तिपर्वत (गन्धमादन)

(घ) चन्द्रशिला (ङ) काष्ठाद्रि (च) रेणुका पर्वत (भिल्लांगण पर्वत)

(छ) नील पर्वत (ज) अन्य पर्वत

३. नदी देवता

(क) गङ्गा (ख) यमुना (ग) सरस्वती (घ) अन्य नदियां

४. वृक्षपूजन

परिशिष्ट-११

केदारखण्ड में तान्त्रिक उपासना

(१) भूत-प्रेत आदि

(२) आछरी-अपड़ी

(३) घात पैकार

(४) निरंकार

(५) गरदेवी

(६) क्षेत्रपाल

(७) भैरव

परिशिष्ट-१२

केदारखण्ड पुराण के जलस्रोत

(१) नदियां (२) नदियों के सङ्गम

(३) जलाशय और सरोवर (४) कुण्ड

(५) तप्तकुण्ड

परिशिष्ट-१३

केदारखण्ड पुराण की कथायें

परिशिष्ट-१४

केदारखण्ड पुराण का सांस्कृतिक जीवन

१. जातियां

२. वर्णव्यवस्था

(क) ब्राह्मण (ख) क्षत्रिय (ग) वैश्य (घ) शूद्र

३. आश्रमव्यवस्था

४. संस्कार

(क) जातकर्म संस्कार (ख) षष्ठी संस्कार

(ग) नामकरण संस्कार (घ) अन्नप्राशन संस्कार

(ङ) चूडाकर्म संस्कार (च) कर्णविध संस्कार

(छ) अक्षरारम्भ संस्कार (ज) उपनयन संस्कार

(झ) विवाह संस्कार (ञ) अन्त्येष्टि संस्कार

५. शिक्षा व्यवस्था

६. त्यौहार, उत्सव और मनोरञ्जन के साधन

(क) पाण्डवनृत्य

(ख) नन्दादेवी का मेला

(ग) अष्टबलि का मेला

(घ) रिन्दी का मेला

(ङ). वर्त का मेला

(च) लॉग का मेला

(छ) विषुवत् संक्रान्ति का मेला

(ज) घाड़ नृत्य-गीत

(झ) कांडा का मेला

(ञ) बैकुण्ठ चतुर्दशी का मेला

७. भोजन

मानचित्र - केदार खण्ड (गढ़वाल)
संख्या
विवरण
चिन्ह
1 गढ़वाल कमिश्नरी
2 जिले की सीमा
3 नदियाँ
4 मोटर मार्ग
5 पैदल मार्ग
6 रेल मार्ग
हिमाचल प्रदेश
उत्तर काशी
यमुनोत्री
गंगोत्री
गोमुख
केदारनाथ
बदरीनाथ
माणा
हनुमानचट्टी
पाण्डुकेश्वर
नन्दादेवी
जोशीमठ
तपोवन
धवलगंगा
चमोली
नन्दप्रयाग
नन्दाकिनी
कर्णप्रयाग
पिंडर
बैजनाथ
गरुड़
कपकोट
बागेश्वर
अलमोड़ा
रानीखेत
द्वाराहाट
भुवाली
नैनीताल
काठगोदाम
हल्द्वानी
रामनगर
रामगंगा
कोटद्वार
लैंसडाउन
दुगड्डा
सतपुली
पूर्वी नयार
पश्चिमी नयार
पौड़ी
श्रीनगर
देवप्रयाग
रुद्रप्रयाग
गुप्तकाशी
अगस्त्यमुनि
गौरीकुंड
टिहरी
चम्बा
नरेन्द्रनगर
ऋषिकेश
मुनि की रेती
देहरादून
मसूरी
सहसपुर
विकासनगर
चकराता
कालसी
लाखामण्डल
पुरोला
बड़कोट
धरासू
भगीरथी
यमुना
टौंस
मनसा
मायाक्षेत्र हरिद्वार (गंगाद्वार)
रुड़की
लक्सर
नजीबाबाद
बिजनौर
सहारनपुर

जिस प्रकार सूर्य की किरणें गवाक्षों में परमाणुओं को कंपाती हैं, इसी प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों को उस लिंग में देख कर मुझे परम आश्चर्य हुआ ।। २६ ।।

उस समय क्षणभर में मैं उन ब्रह्माण्डों में से एक ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हो गया। हे महादेव ! वहाँ मैंने हजारों अपार समुद्र देखे ।। २७ ।।

अनेक जनपदों से युक्त अनेक द्वीप, विविध नदियाँ, तालाब तथा अनेक आकार के मनुष्य देखे ।। २८ ।।

हे महादेव ! चार मुख, चार भुजा, दण्ड और पुस्तक धारण किये हुये मुझ को एक स्त्री ने कहीं देखा ।। २९ ।।

उस स्त्री ने विस्मित होकर एक हाथ से मुझे पकड़ लिया। मुझे देखकर वह कहने लगी कि यह कैसा कीट है। इस प्रकार के कीट कहाँ होते हैं ।। ३० ।।

अन्य स्त्रियाँ भी वहाँ आकर विस्मित होकर उसी के समान कहने लगीं। एक स्त्री दूसरे के हाथ में रख-रख कर प्रसन्न हो मेरा लाड़ करने लगीं ।। ३१ ।।

हे देव ! उसके बाद कुछ दिनों में उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मदहीन हुये हस्ती के समान मुझे परम खेद हुआ ।। ३२ ।।

मैं वहाँ अत्यन्त खेद से पीड़ित हो मन से आपकी स्तुति करने लगा। पुनः क्षणभर में वहीं निद्रित सा हो बैठ गया ।। ३३ ।।

और मैं उसी स्थान पर आ गया जहाँ मैं पहले मोह को प्राप्त हुआ था। हे महेश्वर ! आपकी माया के द्वारा किये गये इस महान् आश्चर्य को देखकर...।। ३४ ।।

मुझे बड़ा दुःख हुआ। हे देव ! आपकी महिमा का विस्तार कहाँ मिल सकता है ? हे परमेश्वर ! मैं आपकी महिमा का आदि अन्त तथा मध्य नहीं जान सकता। इसलिए आपको हे सुरेश्वर ! सैकड़ों बार नमस्कार है ।। ३५ ।।

हे महादेव महेश्वर ! आपने पहले त्रिपुरासुर और अन्धकासुर के भय से हमारी रक्षा की थी ।। ३६ ।।

हे देवेश ! इस समय भी आप दुर्वासा ऋषि के भय से हमारी रक्षा करो। अपने भाग के न मिलने से हमारी चेतना का नाश हो रहा है ।। ३७ ।।

इन्द्रोऽपि राज्यतो भ्रष्टो लक्ष्म्या त्यक्तोऽतिदुःखितः ।
उद्धरस्व महादेव विपदब्धौ निमज्जितान् ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच—

तत इन्द्रोऽपि तरसा परिक्रम्य प्रणम्य च ।
भक्त्या परमया युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ३९ ॥

इन्द्र उवाच—

नमः सहस्रशिरसे सहस्राक्षाय वैं नमः ।
नमः सहस्रपादाय सहस्रबाहवे नमः ॥ ४० ॥

शाश्वताय त्रिनेत्राय तत्पुरुषाय वैं नमः ।
सप्तास्यसप्तहस्ताय सप्तभिर्वर्जिताय च ॥ ४१ ॥

सप्तजिह्वाय सप्ताय सप्तपंचरताय च ।
पंचवक्त्राय क्रौंचस्य नाशकाय नमो नमः ॥ ४२ ॥

पंचेषुदमनायाशु पंचवेदपराय च ।
नमो वेदान्तवेद्याय नमः सर्वहराय च ॥ ४३ ॥

नमः पर्वतवासाय भूतपरिदृढाय च ।
नमः कोटरलीनाय महानादाय वै नमः ॥ ४४ ॥

फणीन्द्रशतशोभाय भालचन्द्राय वेधसे ।
वह्न्यर्कशशिनेत्राय गंगाशेखरधारिणे ॥ ४५ ॥

तमोगुणप्रधानाय निर्लज्जाय कपालिनें ।
नमः परशुहस्ताय नमो नृमुण्डमालिने ॥ ४६ ॥

स्थूललोम्ने नमस्तुभ्यं नीलकण्ठाय ते नमः ।
व्याघ्रचर्मधारयित्रे करिचर्मधृते नमः ॥ ४७ ॥

नमो वृषभवाहाय शिवाय परमात्मने ।
जलंधरनिहंत्रे ते त्रिपुरान्तकराय च ।
नमोंऽधवधकर्त्रे ते कैलासस्थाय वैं नमः ॥ ४८ ॥

इन्द्र भी राज्य से भ्रष्ट हो गया है। लक्ष्मी ने उसे छोड़ दिया है। हे महादेव ! विपत्ति के समुद्र में डूबने वाले हमारा उद्धार करो ॥ ३८ ॥

ईश्वर ने कहा—

उसके बाद इन्द्र भी यथाशीघ्र परिक्रमा और प्रणाम करके परम भक्ति से सम्पन्न हो स्तुति करने के लिए उपक्रम करने लगे ॥ ३६ ॥

हजारों सिर वाले, हजारों आँखों वाले, हजारों पैर वाले, हजारों हाथों वाले आपको नमस्कार है ॥ ४० ॥

आप शाश्वत (अविनाशी) हैं, आपके तीन नेत्र हैं, आप तत्पुरुष हैं, आपके सात मुख और सात हाथ हैं। परन्तु आप सातों से वर्जित हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥

आपकी सात जिह्वा हैं, सात स्वरूप आपके ही हैं, आप सात और पांच संख्याओ में रत रहने वाले हैं, आपके पांच मुख हैं। आप क्रौंच दैत्य का नाश करने वाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥

आप काम के नाशक, पांच वेदों को जानने वाले, वेदान्त वेद्य तथा समस्त पापों का हरण करने वाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥

आप पर्वतवासी हैं, भूतों से परिवृत हैं, कोटर में रहने वाले हैं, बड़े-बड़े शब्दों से आपका स्थान गुंजित रहता है। आपको नमस्कार है ॥ ४४ ॥

सैंकड़ों सर्पों से आप सुशोभित हैं, सिर पर चन्द्रमा विराजमान है, अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा आपके तीन नेत्र हैं, आप सिर पर गंगा को धारण करने वाले हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥

आप तमोगुण प्रधान हैं, लज्जा नाम की वस्तु आप में विद्यमान नहीं है, कंपाल को आपने धारण किया है, आपने परशु हाथ में लिया हुआ है, मनुष्य की मुण्डमाला धारण करते हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४६ ॥

आपके लोम स्थूल और कण्ठ आपका नीला है। आपके लिए नमस्कार है। आपने व्याघ्रचर्म तथा हस्तिचर्म धारण किया हुआ है। आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥

आपका वाहन बैल है, आप कल्याण करने वाले परमात्मा हैं, आप जलन्धर को मारने वाले और त्रिपुर का अन्त करने वाले हैं। आप अन्धक को मारने वाले तथा कैलास में वास करने वाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥

ईश्वर उवाच—

इति स्तुतोऽहमिन्द्रेण देवैः सर्वैश्व चण्डिके ।
विष्णुना शतशश्चैव स्तुतोऽहं प्रभविष्णुना ।। ४६ ।।

ततस्तुष्टो वरं प्रादां मनोऽभिलषितं शिवे ।
भो भो वासव वृत्रघ्न त्वदर्थं वै समागताः ।। ५० ।।

देवाः सर्वे महात्मानो विभूत्यर्थं तथात्मनः ।
इदं मन्नेत्रसलिलं गृहाण सुरनायक ।। ५१ ।।

निक्षिप्य सागरे तूर्णं मंथयध्वं सुरोत्तमाः ।
सर्वेषामुपकाराय स्थितये जगतां तथा ।। ५२ ।।

मंदरं च तथा कृत्वा मंथानं नेत्रवासुकिम् ।
पृष्ठे धारयिता विष्णुः प्रभविष्णुः परात्परः ।। ५३ ।।

नोचेत्पातालनिलये गमिष्यति स भूधरः ।
लक्ष्मीश्च कल्पवृक्षश्च जनयिष्येत्तदा खलु ।। ५४ ।।

तेन वै कल्पवृक्षेण नित्यं तृप्ता भविष्यथ ।
यद्यदिच्छत तत्सर्वं शीघ्रं सम्पश्यते किल ।। ५५ ।।

लक्ष्मीश्चापि समग्रा वै विष्णोश्च परमात्मनः ।
आगमिष्यति त्रैलोक्यं मत्प्रसादान्न संशयः ।। ५६ ।।

अन्यानि चापि रत्नानि भविष्यन्ति ततः परम् ।
गच्छध्वं सागरस्यान्ते मथनाय सुरोत्तमाः ।। ५७ ।।

इत्युक्त्वा तत्र देवेशि सोऽन्तर्द्धानं गतो ह्ययम् ।
तेऽपि देवास्तत्र गत्वा ममंथुर्वरुणालयम् ।। ५८ ।।

प्राप्तवन्तश्च रत्नानि कल्पादीनि महेश्वरि ।
कल्पेश्वरत्वं तत्रापि गतोऽहं वरवर्णिनि ।। ५६ ।।

उत्पत्तिः कल्पनाथस्य लक्ष्म्याश्चापि महेश्वरि ।
ब्रह्मणा च यथाहं वै वासवेन यथा स्तुतः ।
एतत्सर्वं समासेन कथितं ते महेश्वरि ।। ६० ।।

ईश्वर ने कहा—

हे चण्डिके ! इस प्रकार मेरी इन्द्र ने, समस्त देवताओं ने तथा सामर्थ्यशाली विष्णु भगवान् ने सैकड़ों बार स्तुति की ॥ ४९ ॥

हे शिवे ! तब मैंने प्रसन्न होकर उन्हें मनोभिलषित वर प्रदान किया । हे वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र ॥ ५० ॥

ये सब देवता और महातमा आपके कल्याण एवं ऐश्वर्य की कामना से यहाँ आये हैं । हे सुरेन्द्र ! इस मेरे नेत्र जल को ग्रहण करो ॥ ५१ ॥

हे देवताओ ! शीघ्र इसे समुद्र में डालकर उसका मंथन करो । सबके उपकार के लिए तथा संसार की स्थिति के लिए ॥ ५२ ॥

मन्दराचल को रई एवं वासुकि नाग को डोरी बनाओ । परम से भी परम सामर्थ्यशाली विष्णु उस पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करेंगे ॥ ५३ ॥

अन्यथा वह पहाड़ पाताल में चला जायेगा । इस प्रकार के उद्यम से निश्चय ही यह लक्ष्मी और कल्पवृक्ष को उत्पन्न करेगा ॥ ५४ ॥

उस कल्पवृक्ष के द्वारा भविष्य में आप तृप्त होते रहोगे । जो-जो आपकी इच्छा होगी वह आपको मिलता रहेगा ॥ ५५ ॥

परमात्मा विष्णु भगवान् की कृपा से तथा मेरे प्रसाद से लक्ष्मी तीनों लोकों में आ जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥

फिर इसके बाद अन्य रत्नों का भी प्रादुर्भाव होगा । हे देवताओ ! आप समुद्र-मन्थन के लिए समुद्र के तट पर चले जाओ ॥ ५७ ॥

हे देवेशि ! यह कह कर मैं अन्तर्धान हो गया । वे देवता भी वहाँ समुद्र-मन्थन के लिए चले गये ॥ ५८ ॥

हे महेश्वरि ! उन्हें उस स्थान में कल्पवृक्ष आदि रत्नों का लाभ हुआ । हे वरवर्णिनि ! वहाँ मैंने कल्पेश्वरत्व को प्राप्त किया ॥ ५९ ॥

हे महेश्वरि ! कल्पनाथ की उत्पत्ति, लक्ष्मी की प्राप्ति, ब्रह्मा और इन्द्र कृत स्तुति का वृत्तान्त मैंने, हे देवि ! आपसे संक्षेप में कह दिया है ॥ ६० ॥

श्रुत्वेमां तु कथां दिव्यां पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

प्रातः प्रातः समुत्थाय पठते यः समाहितः ।
इह लोके परान् भोगान् प्राप्य चान्ते शिवो भवेत् ॥ ६२ ॥

रोगार्त्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
अतः परं महादेवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासमाहात्म्ये कल्पेश्वरोत्पत्तिर्नाम चतुःपंचाशोऽध्यायः

पंचपंचाशोऽध्यायः

कल्पेश्वरमाहात्म्यसङ्कीर्तनम्

पार्वत्युवाच—

पुरा एते[1] महेशान यानि तीर्थानि तत्र वै ।
तानि मे वद भक्तायै लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि वरारोहे तीर्थानि प्रवराणि वै ।
समासेन प्रवक्ष्यामि शिवलोकप्रदानि च ॥ २ ॥

मल्लिगदक्षिणे पार्श्वे कापिलं लिंगमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण मम लोके महीयते ॥ ३ ॥

तदधो गिरिकन्ये वै नदी हैरण्मती मता ।
तस्या वै दक्षिणे तीरे भृंगीश्वर इतीरितः ॥ ४ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण कल्पं शिवपुरे वसेत् ।
इदं क्षेत्रं महेशानि क्रोशद्वयसमाहितम् ॥ ५ ॥

---

१. पुराएते ।

पाप नाश करने वाली, सब कामों को देने वाली, इस दिव्य कथा को सुनने से पुत्र चाहने वाले को पुत्र और धन चाहने वाले को धन प्राप्त होता है ।। ६१ ।।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर चित्त एकाग्र करके इस वृत्तान्त को पढ़ता है, वह इस लोक में अनेक भोगों को भोग कर अन्त में शिव रूप हो जाता है ।। ६२ ।।

रोग पीड़ित व्यक्ति रोग से मुक्ति प्राप्त करता है तथा बन्धन में पड़ा व्यक्ति बन्धन से मुक्त हो जाता है। अब हे देवि ! आपकी और क्या सुनने की इच्छा है ।। ६३ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास माहात्म्य के कल्पेश्वर की उत्पत्ति नाम का चौवनबां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ५५

कल्पेश्वर माहात्म्य का वर्णन

पार्वती ने कहा—

हे महेश ! वहाँ और भी जितने प्राचीन तीर्थ हैं, उन सबका वर्णन आप मुझ भक्त के लिए लोकों की हित कामना से कीजिए ।। १ ।।

ईश्वर ने कहा—

सुन्दर जघनों वाली हे देबि ! जितने भी सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं और जो शिवलोक को प्रदान करने वाले हैं, उनका वर्णन मैं संक्षेप में करूंगा। तुम सुनो ।। २ ।।

मेरे लिंग के दक्षिण भाग में एक कपिल नाम का उत्तम लिंग है। इसके दर्शन करने मात्र से मेरे लोक की प्राप्ति होती है ।। ३ ।।

हे गिरिपुत्रि ! उसके नीचे के भाग में हैरण्मती नाम की नदी है। उसके दक्षिण तट पर एक भृङ्गीश्वर नाम का शिवलिंग है ।। ४ ।।

जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य एक कल्प तक शिवपुर में निवास करता है। हे महेशानि ! इस क्षेत्र का विस्तार दो कोस है ।। ५ ।।

अग्नितीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यत्र तत्र स्थले देवि शिवलिंगान्यनेकशः ।। ६ ।।

तस्माद्वै पश्चिमे भागे नाम्ना गोस्थलकं स्मृतम् ।
तत्राहं सर्वदा देवि निवसामि त्वया सह ।। ७ ।।

नाम्ना पश्वीश्वरः ख्यातो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ।
त्रिशूलं मामकं तत्र चिह्नमाश्चर्य्यरूपकम् ।। ८ ।।

ओजसा चेच्चाल्यते तन्नहि कम्पति कर्हिचित् ।
कनिष्ठया तु यत्स्पृष्टं भक्त्या तत्कंपते मुहुः ।। ६ ।।

अन्यच्च सम्प्रवक्ष्यामि चिह्नं तत्र सुरेश्वरि ।
एकस्तत्र पुष्पवृक्षोऽकालेऽपि पुष्पितः सदा ।। १० ।।

अत्र वै पंचरात्रं यो जपं कुर्यात्समाहितः ।
स सिद्धिं महतीं याति देवैरपि दुरासदाम् ।। ११ ।।

प्राणानत्र त्यजेद्यस्तु स लोके मामके वसेत् ।
ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा गुरुतल्परतोऽपि वा ।। १२ ।।

सोऽपि गच्छति देवेशि मामन्यस्य तु का कथा ।
तस्मात्पूर्वप्रदेशे वै वसामि झषकेतुहा ।। १३ ।।

मया तत्र पुरा दग्धो झषकेतुर्महेश्वरि ।
झषकेतुहरो नाम्ना सर्वतीर्थफलप्रदः ।। १४ ।।

पुना रत्या तोषितोऽहं पुनर्जन्मनिरूपकम् ।
प्रादां तत्परमेशानि तद्भक्त्या तत्र संस्थितः ।। १५ ।।

रतीश्वर इति ख्यातो मम संगमदायकः ।
रतिकुण्डं च तत्रास्ति[1] स्नानारन्मल्लोकदायकम् ।। १६ ।।

१.नाम्ना ।

अग्नि तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्ति पाता है। इस स्थान में स्थान-स्थान पर अनेक शिवलिंग विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

उसके पश्चिम भाग में गोस्थल नाम का स्थान है। हे देवि ! हमेशा वहाँ मैं आपके साथ निवास करता हूँ ॥ ७ ॥

मैं वहाँ पश्वीश्वर नाम से प्रसिद्ध हूँ और भक्तों की प्रीति बढ़ाने वाला हूँ। वहाँ मेरा चिह्न स्वरूप परम आश्चर्य को देने वाला एक त्रिशूल है ॥ ८ ॥

यदि बलपूर्वक भी उसे हिलाने का प्रयत्न किया जाय, तब भी वह चलायमान नहीं होता। यदि भक्तिपूर्वक कनिष्ठ अंगुली से भी उसे स्पर्श किया जाय तब वह बारम्बार कम्पित होता रहता है ॥ ९ ॥

और हे सुरेश्वरि ! वहाँ अन्य चिह्नों को भी मैं कहूँगा। एक वहाँ पुष्प का वृक्ष है, जो असमय में भी पुष्पित रहता है ॥ १० ॥

यहाँ जो मानव चित्त को एकाग्र कर पांच रात्रि तक जप करता है, उसे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो देवताओं को भी मिलनी दुर्लभ हैं ॥ ११ ॥

जो इस स्थान में अपने प्राणों का त्याग करता है, वह मेरे लोक में निवास करता है। चाहे कोई ब्रह्महत्या का पाप करने वाला हो, चाहे मदिरा पीने वाला हो और चाहे गुरु की शय्या में सोने वाला हो ॥ १२ ॥

वे भी मेरे लोक को जाते हैं, अन्य की तो बात ही क्या है ? उसके पूर्व भाग में कामदेव का विनाशक मैं निवास करता हूँ ॥ १३ ॥

हे महेश्वरि ! मैंने पहले वस कामदेव को भस्म कर दिया था। वहाँ झषकेतु-हर नाम से मेरी प्रसिद्धि है, जिसके दर्शन करने से सम्पूर्ण तीर्थों के फल का लाभ होता है ॥ १४ ॥

हे परमेशानि ! कामदेव की पत्नी ने पुनः वहाँ मेरी आराधना की थी ! मैंने उसे कामदेव के पुनर्जन्म होने का वर दिया और उसकी भक्ति से वहाँ ही स्थित रहा ॥ १५ ॥

तब मेरा वहाँ रतीश्वर नाम विख्यात हुआ, जो कि बिछुड़ों को मिलाने वाला है। वहाँ एक रतिकुण्ड है, जिसमें स्नान करने से मेरे लोक की प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

इति ते कथितं देवि कल्पक्षेत्रस्य वैभवम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कल्पेश्वरमाहात्म्यं नाम
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशोऽध्यायः

केदार-मध्यम-तुङ्ग-कल्प-रुद्रालयेति पञ्चकेदारमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

पंच स्थानानि देवेशि कथितानि तवानघे ।
केदारं मध्यमं तुंगं कल्पेश्वरमहालयम् ॥ १ ॥

पंच तीर्थानि यो देवि गच्छते[1] भक्तिसंयुतः ।
प्रसंगाद्वा वलात्काराज्ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ॥ २ ॥

न वै तत्सदृशो देवि पुण्यात्मा नात्र संशयः ।
तस्य दर्शनमात्रेण पूताः स्युः पापयोनयः ॥ ३ ॥

ब्रह्माद्या लोकपालाश्च ते नमन्ति महेश्वरि ।
इह चापि वरान् भोगान् मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

पंचकेदारमाहात्म्यं शृणुयाद्यः समाहितः ।
सर्वतीर्थेषु स स्नातः पूजिताः सकलाः सुराः ॥ ५ ॥

यद्यदिच्छति तत्सर्वं प्राप्नोति गिरिनन्दिनि ।
प्रातः स्मरति यो नित्यं तीर्थानां पंचकं शुभम् ॥ ६ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छति[1] परां गतिम् ।
इति ते कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलाशमाहात्म्ये पंचकेदार-
माहात्म्यं नाम षट्पंचाशोऽध्यायः ।

---

१. गच्छति ।

इस प्रकार हे देवि ! कल्पक्षेत्र के वैभव का वर्णन किया गया है । इसके सुनने से मनुष्य सब पापों से दूर हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कल्पेश्वर
माहात्म्य नाम का पचपनवां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ५६

केदारनाथ-मध्यमेश्वर-तुंगनाथ-कल्पेश्वर-रुद्रनाथ इन पञ्च केदारों के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे निष्पाप देवि ! मैंने केदार, मध्यम, तुंग, कल्पेश्वर और महालय इन पांच क्षेत्रों का वर्णन किया है ॥ १ ॥

हे देवि ! जो मानव भक्ति से युक्त होकर अथवा किसी प्रसंग से, जबरदस्ती ज्ञान या अज्ञान से भी इन तीर्थों की यात्रा करता है ॥ २ ॥

उसके सदृश हे देवि ! कोई पुण्यात्मा नहीं हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके दर्शन मात्र से पाप योनियाँ पवित्र हो जाती हैं ॥ ३ ॥

हे महेश्वरि ! ब्रह्मा आदि देवता और लोकपाल भी वहाँ आकर नमस्कार करते हैं । जो मानब इस तीर्थ का दर्शन करता है, वह इस लोक में अनेक सुखों को भोग कर मरने के वाद मोक्ष का लाभ प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

जो एकाग्र चित्त हो पांच केदार क्षेत्रों का माहात्म्य सुनता है, उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया है, तथा सब देवताओं की पूजा करली है ॥ ५ ॥

हे पर्वतबालिके ! वह जो चाहता उसे प्राप्त कर लेता है । जो मानव प्रातः-काल नित्य शुभ को देने वाले इन पांच तीर्थों का स्मरण करता है ॥ ६ ॥

वह सब पापों से मुक्ति पाकर परम गति को प्राप्त करता है । हे देवि ! इस प्रकार पांच केदार का वर्णन मैंने आपसे किया, अब आप बताइये कि आपकी और क्या सुनने की इच्छा है ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-माहात्म्य
पांच केदार माहात्म्य नाम का छप्पनवां-अध्याय पूरा हुआ ।

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

बदरीक्षेत्रस्य स्थूलसूक्ष्मादिभेदमाननिर्देशपुरस्सरं माहात्म्यवर्णनम्

अरुन्धत्युवाच—

धन्यास्मि कृतपुण्यास्मि यस्या मे पतिरीदृशः ।
मत्समा नास्ति त्रैलोक्ये देवी मानुषी हि वा ।। १ ।।

पिबन्त्यास्त्वन्मुखाम्भोजान्तृप्तिर्नास्ति कथामृतम् ।
न मां क्षुधा न मां तृष्णा बाधते भगवन्मुने ।। २ ।।

बदरीवनमाहात्म्यं वद भर्त्तः कृपान्वितः ।
यथा प्राह महादेवो महेशानीं तपोनिधे ।। ३ ।।

कियन्मानं तु तत्क्षेत्रं किं फलं तत्र जायते ।
केन केन तपस्तप्तं वदर्य्याश्रममण्डले ।। ४ ।।

एतत्सर्वं समासेन कथयस्व प्रसादतः ।
यत्र गंगा ब्रह्मरूपा संस्थिताऽघौघनाशिनी ।। ५ ।।

सूत उवाच—

इति पृष्टो ह्यरुन्धत्या भगवान् द्रुहिणात्मजः ।
क्षणं ध्यात्वा नमस्कृत्य महेशं प्राह सुन्दरीम् ।। ६ ।।

वसिष्ठ उवाच—

शृण्वरुन्धति वक्ष्यामि यथाह भगवाञ्छिवः ।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि सावधानावधारय ।। ७ ।।

श्रुत्वा तत्पंचमाहात्म्यं पुनः पप्रच्छ पार्वती ।
महादेवं महात्मानं भक्तितत्परमानसा ।। ८ ।।

अध्याय ५७

बदरी क्षेत्र का उसके स्थूल-सूक्ष्म आदि भेद से परिमाण का वर्णन करते हुये माहात्म्य का वर्णन

अरुन्धती ने कहा—

आप मुझे ऐसे पति मिले हैं, जिससे मैं धन्य हूँ और कृतपुण्य हूँ । तीनों लोकों में न कोई देवी और न कोई मानुषी ही मेरे समान है ।। १ ।।

आपके कमल रूपी मुख से निर्गत अमृत रूपी कथाओं को पीने से मेरी तृप्ति नहीं होती। हे भगवन् ! मुने ! मुझे न भूख और न प्यास ही बाधित करती है। ।। २ ।।

हे पति ! अब आप बदरीवन का माहात्म्य कृपा करके कहिये । जिस प्रकार शिव ने पार्वती के प्रति वर्णन किया था । हे तपोनिधे ! वह सब आप मुझ से कहिये ।। ३ ।।

उस क्षेत्र का कितना विस्तार है और वहाँ की यात्रा से किस फल की प्राप्ति होती है और किस-किस ने बदरिकाश्रम क्षेत्र में तपस्या की है ।। ४ ।।

यह सब आप संक्षेप से उस स्थान के माहात्म्य को कहने की कृपा करो, जहाँ समस्त पापप्रक्षालिनी ब्रह्मरूपा गंगा स्थित है ।। ५ ।।

सूत जी बोले—

इस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र भगवान् वसिष्ठ ने अरुन्धती के पूछने पर क्षणभर तक महादेव का ध्यान करके उन्हें नमस्कार किया और तब अपनी पत्नी अरुन्धती से कहा ।। ६ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

हे अरुन्धति ! जिस प्रकार भगवान् शिव ने कहा था, उसी प्रकार से मैं आपसे वर्णन करूँगा, अतः आप इस समय सावधान होकर सुनें ।। ७ ।।

पंच केदार के माहात्म्य को सुनने के बाद फिर पार्वती ने भक्ति में तत्पर होकर अपने पति महात्मा महादेव से पूछा ।। ८ ।।

बदरीवनमाहात्म्यं कथयामास पार्वतीम् ।
तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ॥ ९ ॥

कण्वाश्रमं समारभ्य यावन्नन्दगिरिर्भवेत् ।
तावत्क्षेत्रं परं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १० ॥

कण्वो नाम महातेजा महर्षिर्लोकविश्रुत: ।
तस्याश्रमपदे नत्वा भगवन्तं रमापतिम् ॥ ११ ॥

दुरात्मानोऽपि गच्छन्ति पदं दुःखविवर्जितम् ।
नन्दप्रयागके स्नात्वा सम्पूज्य च रमापतिम् ॥ १२ ॥

किं किं न जायते तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
धन्या कलियुगे घोरे ये नरा बदरीं गता: ॥ १३ ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवा हरिभक्तिरता: प्रिये ।
निवसन्ति स्थले रम्ये नानातीर्थविराजिते ॥ १४ ॥

धन्य: स एव लोकेषु यो गच्छेद् वदरीं नर: ।
न तस्य पुण्यमहिमा वर्णनाय च शक्यते ॥ १५ ॥

मनसापि च ये लोका वदरीवनमाश्रिता: ।
ते वै वासफलं देवि प्राप्नुवन्ति न संशय: ॥ १६ ॥

ये तत्र वासिनो लोका वदर्य्याश्रममण्डले ।
विष्णुरूपधरा: सर्वे भवन्ति वरवर्णिनि ॥ १७ ॥

चतुर्धेदं[1] समाख्यातं क्षेत्रं परमपावनम् ।
स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं चेति प्रकीर्तितम् ॥ १८ ॥

योजनत्रयविस्तीर्णं दीर्घं द्वादशयोजनम् ।
अगम्यं पापिनां तद्वै महदैश्वर्यदायकम् ॥ १९ ॥

मनसापि स्मरेद्यो वै विशाले बदरीति च ।
तद्वासी सोऽपि विज्ञेयो मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥

---

१. इदं चतुर्थं।

तब शंकर ने बदरीवन के माहात्म्य का पार्वती से वर्णन किया। उसी पाप-नाशक और पुण्यशाली माहात्म्य का मैं आपसे वर्णन करता हूँ ॥ ९ ॥

कण्व ऋषि के आश्रम से लेकर नन्द पर्वत तक जितना क्षेत्र है, वह परम पुण्यदायक तथा भुक्ति-मुक्ति को देने वाला है ॥ १० ॥

महातेजस्वी महर्षि कण्व लोक में विख्यात हैं। उनके आश्रम में लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान् को प्रणाम करके ॥ ११ ॥

दुरात्मायें भी दुःखों से मुक्ति पाकर परम पद को पाते हैं। नन्दप्रयाग में स्नान करके और विष्णु की पूजा करके ॥ १२ ॥

क्या प्राप्त नहीं हो सकता ? मुक्ति तो ऐसे व्यक्ति के कर में स्थित हो जाती है। वे लोग धन्य हैं, जो घोर कलियुग में भी बदरीवन की यात्रा करते हैं ॥ १३ ॥

हे प्रिये ! यहाँ ब्रह्मा आदि देवता हरिभक्ति में रत रहते हैं। वे अनेक तीर्थों से विराजित रम्य स्थल में निवास करते हैं ॥ १४ ॥

इस सुरम्य बदरी तीर्थ में जो मनुष्य जाते हैं, वे ही मनुष्य लोकों में धन्य हैं। उस तीर्थ की पुण्य महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १५ ॥

जो लोग मन से भी बदरीवन का आश्रय लेते हैं, हे देवि ! वे भी बदरीवन में निवास करने का फल प्राप्त करते हैं, इसमें लेश भी सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥

हे सुन्दरि ! जो मनुष्य उस बदरीवन में निवास करते हैं, वे सब विष्णु रूप को धारण करते हैं ॥ १७ ॥

यह परमपावन क्षेत्र चार प्रकार का कहा गया है। वह स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और शुद्ध रूप में वर्णित किया गया है ॥ १८ ॥

तीन योजन विस्तृत एवं बारह योजन लम्बा यह क्षेत्र पापियों के लिए अगम्य है और अन्य लोगों के लिए महान् ऐश्वर्य को देने वाला है ॥ १९ ॥

मन से भी जो मानव बदरीनाथ जी के विशालत्व का स्मरण करता है, उसे बदरीवन का ही निवासी समझना चाहिए, मरण के बाद उसे मुक्ति का लाभ प्राप्त होता है ॥ २० ॥

गंधमादनबदरीनरनारायणाश्रमः ।
कुबेरादिशिलारम्यो नानातीर्थविराजितः ॥ २१ ॥

सर्वैर्देवगणैर्युक्तो नानामुनिगणान्वितः ।
चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥ २२ ॥

तप्तोदकमयी धारा वह्नितीर्थसमुद्भवा ।
वर्त्तते तत्र सुभगे देवानामपि दुर्लभा ॥ २३ ॥

बदरीनाथनैवेद्यं यो मोहात्तु परित्यजेत् ।
चांडालादधभो ज्ञेयः सर्वधर्म बहिष्कृत ॥ २४ ॥

लक्ष्मीः पचति नैवेद्यं भुंक्ते नारायणः स्वयम् ।
चाण्डालेनापि संस्पृष्टं न दोषाय भवेत्कचित् ॥ २५ ॥

येन भुंक्तं तु नैवेद्यं श्रीविष्णोः परमात्मनः ।
सैव लोके परब्रह्मस्वरूपो नात्र संशयः ॥ २६ ॥

बदरीनाथमूर्त्तिं वै मनसापि स्मरेत्तु यः ।
तेन तप्तं तपस्तीव्र दत्ता तेन धराखिला ॥ २७ ॥

माषमात्रं तु यो दद्यात्सुवर्णं रजतं हि वा ।
जन्मान्तरसहस्रेषुं दारिद्र्यं नोपजायते ॥ २८ ॥

कणमात्रमपि जलं पितॄनुदिश्य येन वै ।
दत्तं तेन कृतं सर्वं पितॄणां मुक्तिकारणम् ॥ २९ ॥

लोभमोहसमाविष्टे कलौ धर्मविवर्जिते ।
नरास्त एव धन्याः स्युर्बदरीं ये गताः प्रिये ॥ ३० ॥

गमिष्यामि विशालां वै यो वै कथयतेऽनिशम् ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति बदरीनाथदर्शनात् ॥ ३१ ॥

बदरीवासिनो लोका विष्णुतुल्या न संशयः ।
येषां दर्शनमात्रेण पापराशिः प्रणश्यति ॥ ३२ ॥

हे प्रिये ! उसने बहुत हजार वर्षों तक तपस्या की तथा उस दिव्य पुरुष को पति के रूप में प्राप्त किया ॥ २ ॥

हे देवि ! वह पुरुष ही स्वायम्भुव मनु के नाम से प्रसिद्ध हुआ । शतरूपा ने दो वीर पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

उस कमनीय पति से उसने प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये ! हे देवि ! काम्या नाम की महान् यशस्विनी कर्दम की पुत्री थी ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! प्रियव्रत को पति के रूप में प्राप्त करके उस काम्या ने पुत्रों को उत्पन्न किया । उनमें पहला सम्राट और दूसरा कुक्षि नाम का था ॥ ५ ॥

तीसरे का नाम विराट् और चौथे का नाम प्रभु था । धर्म की कन्या सूनृता ने उत्तानपाद को पति के रूप में ॥ ६ ॥

पाकर उसने अत्यधिक तेजस्वी चार पुत्रों—ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान् और वसु को ॥ ७ ॥

उत्पन्न किया । हे देवि ! सूनृता के ये पुत्र तप और बल से युक्त थे । ध्रुव को बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह राज्य आदि को छोड़कर ॥ ८ ॥

निराहार रह कर बहुत हजार वर्षों तक तपस्या करता रहा । तब सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने अमित तेजस्वी ध्रुव के लिये वर दिया ॥ ९ ॥

उसको तब सप्तर्षियों के स्थान से भी ऊपर सर्वोत्तम स्थान दिया, हे महाभागे ! जिसके सम्बन्ध में आज भी भृगु के द्वारा कहा गया श्लोक है ॥ १० ॥

अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोत्सवम् ।
यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ ११ ॥

श्री पार्वत्युवाच—

अहो ध्रुवस्य चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ।
यथा वैराग्यमापन्नो यथाप्राप्तः परां गतिम् ॥ १२ ॥

एतच्छंस महादेव परं[1] कौतूहलं हि मे ।
ध्रुव उत्तानपादिस्तु[2] ऋषीणामुपरि स्थितः ॥ १३ ॥

शिव उवाच—

कथयामि[3] महादेवि ध्रुवस्य चरितं तव ।
यच्छ्रुत्वापि[4] नरो भक्त्या प्राप्नोति भगवद्गतिम् ॥ १४ ॥

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं विभजन् पृथिवीं द्विधा ।
अर्द्धामुत्तानपादाय अर्द्धां प्रियव्रताय च ॥ १५ ॥

ययौ कैलासनिलये तपस्तप्तुं मम प्रिये ।
प्रियव्रतोत्तानपादा[5] वसृजेतां[6] प्रजास्तदा ॥ १६ ॥

साम्राजायां तु पुत्रांस्तु प्रजासर्गे नियुज्य हि ।
स्वयं ययौ महातीर्थे शालग्रामे तपः[7] करोत् ॥ १७ ॥

ध्रुवाद्यांस्तांस्तु राज्यार्द्धे नियुज्य तपसे ययौ ।
सर्वेषां पूर्वजो भ्राता ध्रुव औत्तानपादिकः ॥ १८ ॥

सृष्टिभव्यं च तत्रापि चकार सुमनोहरम् ।
ध्रुवस्तु काले कस्मिश्चिद्गतोऽरण्ये मृगाय च ॥ १९ ॥

---

१. ध्रुवस्य चरितं शुभम् । २. "ध्रुव······स्थितः" पाठ इसमें नहीं है । ३. "कथयामि····· तव" पाठ इसमें नहीं है । ४. तच्छ्रुत्वा । ५. पादौ । ६. विसृज्य । ७. ततोकरोत् ।

इसकी तपस्या आश्चर्यजनक है, पराक्रम आश्चर्यजनक है, और विद्या रूपी महोत्सव आश्चर्यजनक है। आज भी जिस ध्रुव को आगे करके सप्तर्षि स्थित है ॥ ११ ॥

श्री पार्वती बोली—

अहो, जिस प्रकार ध्रुव को वैराग्य प्राप्त हुआ था, जिस प्रकार उसने परमगति प्राप्त की थी, मैं ध्रुव के उस चरित्र को ठीक प्रकार से सुनना चाहती हूँ ॥ १२ ॥

हे महादेव ! यह मुझे कहिये, मुझे इस विषय में बहुत अधिक कुतुहल है कि उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव ऋषियों के ऊपर कैसे स्थित हो गया ॥ १३ ॥

शिव ने कहा—

हे महादेवि। मैं तुमसे ध्रुव के चरित्र को कहता हूँ, भक्ति से जिसको सुनकर भी मनुष्य भगवान् की गति को प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

पहले समय में स्वायम्भुव मनु ने पृथ्वी को दो भागों में विभक्त किया। उसने आधी उत्तानपाद को और आधी प्रियव्रत को दे दी ॥ १५ ॥

हे प्रिय ! तब वह मेरे स्थान कैलाश पर्वत पर तपस्या करने चला गया। तब प्रियव्रत और उत्तानपाद ने सन्तानों को उत्पन्न किया ॥ १६ ॥

तदनन्तर प्रियव्रत सम्राट आदि पुत्रों को प्रजा की सृष्टि में नियुक्त करके स्वयं महान् तीर्थ शालग्राम में तपस्या करने लगा ॥ १७ ॥

उत्तानपाद भी उन ध्रुव आदि पुत्रों को राज्य के आधे भाग का पालन करने के लिये नियुक्त करके तपस्या करने के लिये चला गया। इन सब भाइयों में सबसे बड़ा भाई उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव था ॥ १८ ॥

और वहाँ उसने सुन्दर मनोहर भव्य सृष्टि को बनाया। किसी समय मृग को प्राप्त करने के लिये ध्रुव वन में गया ॥ १९ ॥

अध्वरं कर्तुमारब्धो मृगमेधं महेश्वरि ।
वने संगच्छतस्तस्य ददर्श सर उत्तमम् ॥ २० ॥

हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
पद्मकह्लारकुमुदैः शोभमानं समंततः ॥ २१ ॥

रम्ये सरोवरे तस्मिन्नाना शाड्वलसंवृते ।
उपस्पृश्य जलं तत्र स्थितः श्रान्ताश्ववाहनः ॥ २२ ॥

ददर्श वनशोभां स नाना वृक्षैः समन्विताम् ।
पश्यतस्तस्य राजर्षेर्ध्रुवस्याग्रे समापयौ ॥ २३ ॥

जराजर्जरदेहां हि वलिसंवृतविग्रहाम् ।
जीर्णवस्त्रशतैश्छन्नां कांचिन्नारीं ददर्श सः ॥ २४ ॥

साप्याययौ समीपं तु ध्रुवस्य वृद्धनायिका ।
रूपयौवनसंपन्नं दृष्ट्वोवाच महेश्वरि ॥ २५ ॥

वृद्धोवाच—

कोऽसि त्वमतिसौन्दर्य्य किमर्थमागतो वनम् ।
तव रूपमहं[1] दृष्ट्वा काममोहवशं गता ॥ २६ ॥

त्वत्समो यदि मे भर्ता भविता नरसत्तम ।
तदैव कृतकृत्यास्मि इत्यासीन्मतिरेव मे ॥ २७ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल दृष्टोऽसि साम्प्रतं मया ।
याचंतीं नितरां देव वरयस्व स्मरातुराम् ॥ २८ ॥

ईश्वर उवाच —

इति तस्या वचः श्रुत्वा विस्मयाविष्टमानसः ।
चिन्तयामास मनसि ध्रुव औत्तानपादिकः ॥ २९ ॥

---

१ रूपमहो ।

हे महेश्वरि पार्वति ! मृगमेध यज्ञ को प्रारम्भ करने के लिए वन में घूमते हुए उसने उत्तम जलाशय देखा ।। २० ।।

वह जलाशय हंसों और कारण्डवों से भरा था तथा चकवों से सुशोभित था । वह चारों ओर से कमलों, कह्लारों तथा कुमुदों से सुशोभित था ।। २१ ।।

चारों ओर से अनेक प्रकार की हरी भरी घास से घिरे हुए उस सुन्दर सरोवर में जल का आचमन करके वह घोड़े के थक जाने के करण वहीं बैठ गया ।। २२ ।।

उसने अनेक वृक्षों से युक्त वन की शोभा को देखा । उस राजर्षि ध्रुव के इस प्रकार देखते ही सामने एक वृद्धा स्त्री आयी ।। २३ ।।

उस स्त्री का शरीर बुढापे से जर्जर था और झुरियों से भरा था । उसने सैकड़ों फटे पुराने वस्त्र पहन रखे थे । इस प्रकार की किसी स्त्री को उस ध्रुव ने देखा ।। २४ ।।

वह बूढ़ी नायिका भी ध्रुव के समीप आयी । हे महेश्वरि पार्वति ! सौन्दर्य और यौवन से सम्पन्न उस ध्रुव को देखकर वह बोली ।। २५ ।।

वृद्धा ने कहा—

हे सौन्दर्यशाली पुरुष ! तुम कौन हो ? वन में किस लिये आये हो ? तुम्हारे सौन्दर्य को देखकर मैं काम और मोह के वशीभूत हो गयी हूँ । ।। २६ ।।

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! यदि मेरा तुम्हारे समान पति हो जाय, मैं तभी कृत-कृत्य होऊँगी, इस प्रकार मेरा विचार है ।। २७ ।।

हे पुरुषों में शेर के समान पराक्रमी मैंने अब तुम्हें देख लिया है । बहुत अधिक याचना करती हुई और काम से पीडित मुझको, हे देव ! तुम वरण कर लो ।। २८ ।।

ईश्वर (शिव) ने कहा—

उस वृद्धा के इस प्रकार के वचन सुनकर आश्चर्य से भरे मन वाले उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने मन में विचार किया ।। २९ ।।

विहस्य बदनं दृष्ट्वा वल्याक्रांत[1] गतद्युति।
उवाच मधुर[2] वृद्धा[3] विस्मयाकुलचेतनः॥ ३०॥

ध्रुव उवाच—

दृष्टा का योग्यता भद्रे मम च स्वस्य च त्वया।
क्व च मे वयसो भावः क्व च ते रूपमीदृशम्॥ ३१॥

जराजर्ज्जरदेहा त्वं क्व च मे यौवनं वयः।
क्व च मे सौरभं देहं मलदिग्धकलेवरम्॥ ३२॥

अहो हो परमाश्चर्यं लोकेऽस्मिन्दृश्यते ननु।
मतीनां चित्रता चैव गुणागुणविवेकिता॥ ३३॥

नागुणी गुणिनं वेत्ति विरूपो रूपशालिनम्।
पापो वै धर्मकर्माणं स्वमेव हि प्रशंसति॥ ३४॥

वृद्धोवाच—

मत्तस्तव महाबाहो कथमाधिक्यमस्ति ते।
यत्त्वं वदसि वयसो भावश्च मामकं वपुः॥ ३५॥

युष्मदस्मदो रूपं हि तस्यार्थः कोविदश्च कः।
कोऽहं कस्त्वमिति प्रज्ञा वर्त्तते सा मृषार्थिका॥ ३६॥

पंचभूतात्मिकेनासौ देहेन परिवेष्टितः।
नायं वेत्ति परं भावं सप्तभिः संयुतो यदा॥ ३७॥

तव यत्सुंदरं रूपं मामकं न च विद्यते।
मामकं वार्द्धकं रूपं तवैव विद्यते कुतः॥ ३८॥

आत्मा सर्वगतो राजन् रूपादिगुणवर्जितः।
न[4] वैकवार्षिको देव न वा द्वादशवार्षिकः॥ ३९॥

---

१. क्रान्तं। २. मधुरं। ३. वृद्धां। ४. "न······वार्षिक" पाठ इसमें नहीं है।

झुर्रियों से भरे हुए तथा कान्ति से रहित उसके मुख को देखकर आश्चर्य से व्याकुल चित्त वाले ध्रुव ने हँसकर वृद्धा से मधुर स्वर में कहा ॥ ३० ॥

ध्रुव बोला—

हे भद्रे ! तुमने मेरी और अपनी कौन सी योग्यता देखी है ? कहाँ तो मेरी इस प्रकार यौवन की आयु की भावना है और कहाँ तुम्हारा इस प्रकार का रूप है ॥ ३१ ॥

कहाँ तो तुम बुढ़ापे से जर्जर शरीर वाली हो और कहाँ मेरी युवावस्था है। कहाँ तो मेरा सुगन्धित शरीर है और कहाँ तुम्हारा मलिनताओं से लिप्त शरीर है ॥ ३२ ॥

अहो ! इससे अधिक परम आश्चर्य की वात संसार में दिखायी नहीं देती। गुणों और अवगुणों का विवेक करने में भी बुद्धियों की विचित्रता आश्चर्यजनक है ॥ ३३ ॥

गुण से रहित व्यक्ति गुणी व्यक्ति को नहीं जानता। कुरूप व्यक्ति सुन्दर व्यक्तियों को नहीं जानता। पापी व्यक्ति धार्मिक व्यक्ति को नहीं जानता। वह अपनी ही निश्चय से प्रशंसा करता है ॥ ३४ ॥

वृद्धा ने कहा—

हे बड़ी भुजाओं वाले ध्रुव ! तुम्हारे अन्दर मेरी अपेक्षा कौन सी अधिकता है, जो तुम अपनी यौवन की भावनाओं के और मेरे शरीर के विषय में कहते हो ॥ ३५ ॥

तुम्हारा और हमारा जो रूप है, उसके अर्थ को जानने वाला कौन है ? मैं कौन हूँ और तुम कौन हो। इस प्रकार की बुद्धि मिथ्या अर्थ को ही कहती है ॥ ३६ ॥

वह आत्मतत्त्व पञ्च भूतों से बने हुए शरीर से वेष्टित है। जब वह सात धातुओं (रस, रक्त, मांस मेदा, आस्थि, मज्जा और शुक्र) से युक्त होता है, तब इस परम भाव को नहीं जानता ॥ ३७ ॥

तुम्हारा जो यह सुन्दर रूप है और वह मेरा नहीं है। मेरा यह वृद्धावस्था का रूप तुम्हारा ही क्यों नहीं है ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! रूप आदि गुणों से रहित यह आत्मा सर्वव्यापक होता है। हे देव ! न तो यह कभी एक वर्ष का होता है और नाही कभी बारह वर्ष का होता है ॥ ३९ ॥

न[1] बालो न युवा वृद्धो न रूपादिविगर्हितः ।
अरूपिणो[2] भगवतो रूपादीनां च कल्पना ।। ४० ।।

तथा वयो विहीनस्य कुतो वृद्धादिकं वयः ।
निर्लेपस्य परमुदः कुतो दुःखादिकल्पना ।। ४१ ।।

इदं दुःखादिकं यत्तु राजन् तद्देहदोषजम् ।
एको जीर्णगृहे देही ह्येको नव्यगृहे यथा ।। ४२ ।।

किं वै जीर्णगृहस्थस्य मानः किं परिहीयते ।
इदं देहादिकं सर्वं नवादिव्यवहारवत् ।। ४३ ।।

तव चेत्सुंदरं रूपं स्थिरं स्यात्तथा भवेत् ।
मामके चेन्महाभाग विरूपित्वं तदा भवेत् ।। ४४ ।।

मदीयस्य शरीरस्य तावकस्य तथैव च ।
का वा विशेषता राजन् दृश्यते स्मर्यतेऽथवा ।। ४५ ।।

तृष्णादिकं तु यत्सर्वं तन्ममापि नवापि हि ।
तस्माद्राजन्न कर्तव्यमहंमानादिकं खलु ।। ४६ ।।

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा निगदितं वचो वै परमार्थवत् ।
आश्चर्यं परमं मत्वा जगाद मधुराक्षरम् ।। ४७ ।।

ध्रुव उवाच—

सत्यं ब्रूहि मयेदानीं का वा त्वं परमार्थकम् ।
कथयामास यत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ।। ४८ ।।

वार्द्धकं रूपमास्थाय आगता त्वं ममांतिके ।
त्वया त्वनुग्रहीतोऽस्मि यया मे कथितं शुभम् ।। ४९ ।।

---

१. "न .... विगर्हितः" पाठ इसमें नहीं है । २. अरूपिणो .... कल्पना" श्लोक इसमें है ।

रूप आदि गुणों से निन्दा को प्राप्त यह आत्म तत्त्व न कभी बालक होता है, न कभी युवा होता है और न कभी वृद्ध होता है। रूप से रहित भगवान् के यह रूप आदि की ही कल्पना है ॥ ४० ॥

इस प्रकार आयु से रहित उस आत्म तत्त्व में वृद्धावस्था आदि भी कैसे हो सकती है। निर्लेप और परम आनन्दमय प्रभु में दुःख आदि की कल्पना कैसे हो सकती है ॥ ४१ ॥

हे राजन ! ये जो दुःख आदि हैं, वे सब शरीर के दोष से उत्पन्न होते हैं। यह एक आत्मा जिस प्रकार पुराने घर (शरीर) में रहता है, उसी प्रकार नये घर (शरीर) में रहता है ॥ ४२ ॥

क्या पुराने घर में स्थित आत्मतत्त्व का वह मान कभी कम होता है ? इस शरीर आदि में रहता हुआ वह सब नये शरीर आदि के समान व्यवहार करता है ॥ ४३ ॥

हे महाभाग्यशाली ध्रुव ! तुम्हारा यह सुन्दर रूप क्या इस प्रकार सदा स्थिर रहेगा ? यदि यह मेरी विरूपता है, तो तुम्हारी भी ऐसी ही होगी ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! मेरे शरीर की और उसी प्रकार तुम्हारे शरीर की क्या कोई विशेषता (भिन्नता) दिखाई देती है; अथवा स्मरण आती है ? ॥ ४५ ॥

हे राजन् ! जिस प्रकार तुम्हारे अन्दर तृष्णा आदि भावना होती है, उसी प्रकार मेरे अन्दर भी होती है। अतः तुमको अहंकार, घमण्ड आदि नहीं करना चाहिये ॥ ४६ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

इस प्रकार परमार्थ से युक्त, वृद्धा के कहे गये उस वचन को सुनकर उसको परम आश्चर्य मानकर ध्रुव ने मधुर अक्षरों में कहा ॥ ४७ ॥

ध्रुव ने कहा—

तुम मुझसे अब सत्य कहो कि तुम वास्तव में कौन हो ? तुमने जो कुछ कहा है, उसके प्रति मुझको बहुत अधिक कुतुहल है ॥ ४८ ॥

तुम मेरे पास वृद्धा का रूप धर कर आयी हो। तुमने मुझसे जो कुछ शुभ बात कही है उससे मैं बहुत अधिक अनुग्रहीत हूँ ॥ ४९ ॥

वृद्धोवाच—

मयोक्तं यत्तु किंचिद्वै ज्ञातं च परमार्थकम् ।
संतुष्टास्मि ततस्तुभ्यं वदामि स्वविचेष्टितम् ॥ ५० ॥

अहं राजन् जरा नाम्नी देव्यस्मि नरपुंगव ।
आगता तव सामीप्यं द्रष्टुं तव विचेष्टितम् ॥ ५१ ॥

सृष्टाः प्रजास्त्वया राजन्भुक्तं राज्यसुखं शुभम् ।
किमिच्छसे त्वं यज्ञेन मृगयासक्तमानसः ॥ ५२ ॥

बाल्यं पूर्वं यौवनं तु वार्द्धक्यं तु ततः स्मृतम् ।
तवाक्रमणकर्त्री च जराहं नृपसत्तम ॥ ५३ ॥

कस्यापि नो महाराज[1] रूपं मे दर्शनम् गतम् ।
भविष्यकार्यं जनये ध्रुव[2] औत्तानपादिक ॥ ५४ ॥

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्या जरायाः प्रियवादिनि ।
वस्त्रादिकं तु यत्सर्वं दत्त्वा च तपसे ययौ ॥ ५५ ॥

हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे नानामुनिगणान्विते ।
पिंडारके[3] महातीर्थे तपश्चक्रे ध्रुवस्ततः ॥ ५६ ॥

पर्णाहारस्तु चक्रेऽसौ तपश्चर्यां सहस्रकम् ।
ततो वर्षसहस्रेण निराहारो जितेन्द्रियः ॥ ५७ ॥

ततो वर्षसहस्रेण पादेनैकेन तस्थिवान् ।
ध्रुवस्य तपसा व्याप्तं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ ५८ ॥

विव्यथुः सर्वभूतानां मनांसि सुरपूजिते ।
देवाः सर्वे महाभागे विमानैः शतकोटिभिः ॥ ५९ ॥

---

१. महारूपमेतद्दर्शनसंगतम् । २. जनय । ३. पीडाकरे ।

वृद्धा बोली—

मैंने जो कुछ तुमसे कहा है, उसको तुमने निश्चय से ठीक-ठीक समझ लिया है। मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ इसलिए तुमसे अपनी चेष्टायें कहती हूँ ॥ ५० ॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ राजन्! मैं जरा नाम की देवी हूँ। तुम्हारे पास तुम्हारी चेष्टाओं को देखने के लिए आयी हूँ ॥ ५१ ॥

हे राजन्। तुमने सन्तानों को उत्पन्न कर लिया है और शुभ राज्य का भोग कर लिया है। शिकार करने में आसक्त मन वाले भी तुम यज्ञ के द्वारा क्या चाहते हो ॥ ५२ ॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ राजन्! पहले बाल्यावस्था होती है, तदनन्तर यौवन आता है और उसके पश्चात् वृद्धावस्था आती है। मैं तुम पर आक्रमण करने वाली जरा हूँ ॥ ५३ ॥

हे महाराज! मेरे देख लेने पर किसका रूप नहीं चला जाता। हे उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव! मैं भविष्य के कार्य को उत्पन्न करती हूँ ॥ ५४ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

हे प्रिय बोलने वाली पार्वति! इस प्रकार उस जरा के वचन को सुनकर उसके लिए सभी वस्त्र आदि प्रदान करके ध्रुव तपस्या करने के लिये चले गये ॥ ५५ ॥

तदनन्तर हिमालयों के वृक्षों के पार्श्व में अनेक मुनियों से युक्त पिंडारक नामक महातीर्थ में ध्रुव ने तपस्या की ॥ ५६ ॥

वह एक हजार वर्ष तक केवल पत्तों का भोजन करके तपस्या करते रहे। तदनन्तर इन्द्रियों को जीतकर भोजन छोड़कर एक हजार वर्ष तक तपस्या करते रहे ॥ ५७ ॥

तदनन्तर एक हजार वर्ष तक एक पैर से खड़े रहे। ध्रुव की तपस्या से चर और अचर तीनों लोक व्याप्त हो गये ॥ ५८ ॥

हे देवताओं से पूजित पार्वति! उस समय सभी प्राणियों के मन पीड़ित होने लगे। हे महाभागे! सभी देवता सौ करोड़ विमानों में बैठकर ॥ ५९ ॥

आगताः शतशो द्रष्टुं ध्रुवं वै तपसि स्थितम् ।
तं दृष्ट्वा सहसा सर्वे देवा दैत्याः सवासवाः ॥ ६० ॥

स्थातुं न शक्नुवंतस्ते तेजसा परितापिताः ।
किं वा साविच्छते राजा तपसा तेन निश्चयम् ॥ ६१ ॥

ब्रह्मापि प्रययौ तत्र ध्रुवं द्रष्टुं महामतिम् ।
उवाच मधुरं वाक्यं संतुष्टस्तपसा ततः ॥ ६२ ॥

ब्रह्मोवाच—

वरं वरय भद्रं ते यत्कृते तत्कृतं तपः ।
न ह्यस्ति दुर्लभं किंचित्तपसस्ते किल ध्रुव ॥ ६३ ॥

आधिपत्यं त्रिलोकस्य प्राप्स्यसे त्वं नृपोत्तम ।
ईदृशं तु तपो राजन्न कृतं केनचित्पुरा ॥ ६४ ॥

ईश्वर उवाच—

निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
शनैरुन्मील्य नयने ददर्श परमेष्ठिनम् ॥ ६५ ॥

उवाच वचनं शीघ्रं प्रांजलिः पुरतः स्थितम् ।
भक्त्या परमया युक्तो जयेति च पुनः पुनः ॥ ६६ ॥

ध्रुव उवाच—

जय जय करुणानिधे भगवन् सर्वलोककर्त्तः परमेष्ठिन् ।
जय[1] कमलाजने सुरेश सुरासुरपूजितपादपद्म ॥ ६७ ॥

जय[2] सुरनरकारणकारण जय सरस्वती वर नायक प्रभो ।
[3]जय सकल जनेश सुरेश जय मकरंद जय सर्वजनस्य परमानंद ॥ ६८ ॥

जय तपोनिधि कंदर्प सुंदराशुभनाशक नायक[4] जय सुरेश ।
जय ऋक्षपते विपतेजय नंदन पादप पुष्प मकरन्द ॥ ६९ ॥

---

१. "जय......पद्म" पाठ इसमें नहीं है । २. "जय......प्रभो" पाठ इसमें नहीं है ।
३. "जय ... परमानन्द" पाठ श्लोक ६५ से है । ४. "नायक" पाठ इसमें नहीं है ।

तपस्या में स्थित ध्रुव को देखने के लिये सैकड़ों बार आये। इन्द्र सहित सभी देवताओं और दैत्यों ने सहसा उसको देखा ॥ ६० ॥

ध्रुव के तेज से संतप्त होकर वे वहाँ ठहर नहीं सके। वे निश्चय नहीं कर सके कि वह राजा तपस्या के द्वारा क्या चाहता है ॥ ६१ ॥

महाबुद्धिशाली ध्रुव को देखने के लिये ब्रह्मा भी वहाँ आये। तदनन्तर उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर उन्होंने मधुर वाक्य कहा ॥ ६२ ॥

ब्रह्मा बोले—

हे ध्रुव ! तुमने जिस प्रयोजन के लिए तपस्या की है, उस कल्याणकारी वर को भोग लो। तुम्हारे लिये तपस्या के द्वारा दुर्लभ कोई वस्तु नहीं है ॥ ६३ ॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ तुम तीनों लोकों के आधिपत्य को प्राप्त करोगे। हे राजन् ! इस प्रकार का तप पहले किसी ने नहीं किया है ॥ ६४ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

उन परमात्मा ब्रह्मा के उस वचन को सुनकर ध्रुव ने धीरे से आँखों को खोलकर परमेष्ठी ब्रह्मा को देखा ॥ ६५ ॥

हाथों को जोड़कर सामने खड़े हुए ब्रह्मा के समक्ष परम भक्ति से युक्त होकर बार-बार जय हो, इस प्रकार वचन को शीघ्रता से कहा ॥ ६६ ॥

ध्रुव ने कहा—

करुणानिधे ! सभी लोकों की रचना करने वाले परमेष्ठी भगवन् ! आपकी जय हो। कमल से उत्पन्न होने वाले, देवताओं के स्वामी, देवताओं और दानवों से पूजित चरण कमलों वाले आप की जय हो ॥ ६७ ॥

देवताओं और मनुष्यों को उत्पन्न करने वाले आपकी जय हो। सरस्वती को वरण करने वाले नायक ! हे प्रभो आपकी जय हो। सभी मनुष्यों के स्वामी आपकी जय हो। कामदेव को जीतने वाले और सभी मनुष्यों को परम आनन्द देने वाले कुलश्रेष्ठ आपकी जय हो ॥ ६८ ॥

हे तपस्या के निधि, कामदेव के समान सुन्दर, अशुभ का नाश करने वाले सुरेश नायक आपकी जय हो जय हो। हे नक्षत्रों के स्वामी, विष्णु के पुत्र तथा वृक्षों के पुष्पों के रस-रूप आपकी जय हो ॥ ६९ ॥

प्रभो ब्रह्मन् किमर्थं मां पुनः संसारबंधने।
नियोजयसि दुखानां सागरे पारदुर्गमे ॥ ७० ॥

वरार्होऽहं यदि विभो सन्तुष्टोऽसि यदि प्रभो।
दीयतां दुर्लभं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ७१ ॥

कस्यापि प्राणिनो यत्र पीड़ा न स्यान्मया खलु।
धन्योऽस्मि कृतकत्योऽस्मि दर्शनाद्देवनायक ॥ ७२ ॥

ब्रह्मोवाच—

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि स्वेन वै तपसा किल।
सप्तर्षिस्थानतश्चोर्ध्वं महास्थानं ददामि ते ॥ ७३ ॥

देवाः सुराः सगन्धर्वाः सनक्षत्रास्सराशयः।
प्रदक्षिणं करिष्यंति त्वां चैव मुनिनायक ॥ ७४ ॥

आगच्छ गच्छ भगवन् त्रैलोक्यस्थानदुर्ल्लभम्।
कल्पांतेऽपि च्युतिर्यस्माज्जायते न विशांपते ॥ ७५ ॥

ईश्वर उवाच—

इत्येवं तं समारोप्य विमाने हंससंयुते।
सम्यक् स्थाप्य ध्रुवं तत्र ययौ ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ ७६ ॥

अहो भाग्यमहो भाग्यमहोधीतमहो श्रुतम्।
अहो तपः परं चैव यस्येयं गतिरीदृशी ॥ ७७ ॥

ज्योतिश्चक्रं महाभागे सनक्षत्रग्रहादिकम्।
करोत्यहर्निशं चैव प्रादक्षिण्यक्रमं प्रिये ॥ ६८ ॥

इति ते कथितं देवि ध्रुवस्य चरितं शुभम्।
यस्य वै श्रवणान् मर्त्योऽखिलपापैः प्रमुच्यते ॥ ७९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे ईश्वर-पार्वती-संवादे
ध्रुवचरित्रं नाम पंचमोऽध्यायः।

हे प्रभो ! हे ब्रह्मा ! दु:खों के सागर रूप पार करने में दुर्गम संसार के बंधन में मुझे पुन: क्यों लगाते हो ।। ७० ।।

हे विभो ! यदि मैं वर के योग्य हूँ, हे प्रभो ! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं, तो मुझको वह दुर्लभ स्थान दीजिये, जहाँ से पुन: लौटना नहीं होता ।। ७१ ।।

जहाँ मेरे द्वारा निश्चय से किसी भी प्राणी को पीड़ा न हो। हे देवताओं के नायक ! मैं आपके दर्शन से ही कृत-कृत्य हो गया हूँ ।। ७२ ।।

ब्रह्मा ने कहा—

हे ध्रुव ! तुम निश्चय से आपनी तपस्या से धन्य हो और कृत-कृत्य हो। मैं तुम्हें सप्तर्षियों के स्थान से भी ऊपर महान् स्थान को प्रदान करता हूँ ।। ७३ ।।

हे मुनियों के नायक ! देव, सुर, गन्धर्व, नक्षत्र और राशियां तुम्हारी प्रदक्षिणा करेंगे ।। ७४ ।।

हे प्रजाओं के स्वामी भगवन् ! आओ आओ। तीनों लोकों में भी दुर्लभ स्थान में आओ। जहाँ से तुम कल्प (सृष्टि) के अन्त में भी च्युक्त नहीं होओगे ।। ७५ ।।

ईश्वर (शिव) ने कहा—

इस प्रकार उस ध्रुव को हंस से युक्त विमान पर चढ़ाकर और वहाँ अच्छी प्रकार स्थापित करके चार मुख वाले ब्रह्मा चले गये ।। ७६ ।।

ध्रुव का भाग्य आश्चर्यजनक है, आश्चर्यजनक । उसका अध्ययन आश्चर्य-जनक है। उसकी तपस्या आश्चर्यजनक है। जिसको कि इस प्रकार की परम गति प्राप्त हुई ।। ७७ ।।

हे महाभागे ! प्रिये ! संपूर्ण ज्योतिश्चक्र और नक्षत्र ग्रह आदि दिन-रात उस ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हैं ।। ७८ ।।

हे देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें ध्रुव के शुभ चरित्र को कहा है, जिसके सुनने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ।। ७९ ।।

इस प्रकार भी स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड के ईश्वर-पार्वती संवाद में ध्रुव-चरित्र नाम का पाँचवां अध्याय पूरा हुआ।

षष्ठोऽध्यायः

ध्रुवस्य सुच्छायायां पत्न्यां रिपुञ्जयादिक्रमेण प्रजासर्गाभिधानम्, ऋषिभिर्वेनकरमथनेन पृथुराज्ञ उत्पत्तिस्तेन च पृथ्वीदोहनेन सर्वरसानामुत्पादनम्

पार्वत्युवाच—

ध्रुवस्य संतति देव कथयस्व ममाग्रतः।
सृष्टेर्भव्यस्यचोत्पत्तिंकृपया परया युतः॥ १॥

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि वरारोहे यत्पृष्टोऽहं त्वया शिवे।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २॥

सृष्टिर्वै पंच पुत्रान्वै सुच्छायायां महायशाः।
रिपू रिपुंजयश्चैव क्षिप्रो वृकल एव च॥ ३॥

वृकतेजास्तथाख्याताः सृष्टिपुत्राः समीरिताः।
बृहती चाक्षुषं[1] पुत्रं रिपोः सर्वोत्तमं मनुम्॥ ४॥

जनयामास सुश्रेणि सुश्रोणी प्रियवादिनी।
अजीजनत्पुष्करिण्यामनरण्यं तु चाक्षुषः॥ ५॥

अनरण्यो महाभागे नड्वलायां प्रजापतिः।
दश पुत्रान्महाभागानङ्गाद्यान्विभुतेजसः॥ ६॥

अङ्गस्तु वेनमेकं तु सुनीथाजनयत्सुतम्।
अपचारेण वेनस्य मुनीनां कोपतो भृशम्॥ ७॥

अनौरसी प्रजासृष्टिर्जाता वेनस्य राजते।
प्रजार्थमृषयः सर्वे करं वै दक्षिणं तदा॥ ८॥

---

१. चक्षुषं। २. चक्षुषः।

अध्याय–६

ध्रुव को सुच्छाया नाम की पत्नी में रिपुञ्जय आदि पुत्रों के क्रम से प्रजा की सृष्टि, ऋषियों द्वारा वेन का हाथ मथ कर पृथु की उत्पत्ति, पृथु द्वारा पृथिवी का दोहन कर सब रसों का उत्पादन

पार्वती ने कहा—

हे देव ! मेरे समक्ष आप परम कृपा से युक्त होकर ध्रुव की संतान के विषय में बताइये और उसके द्वारा भव्य सृष्टि की (सन्तानों की) उत्पत्ति की बात कहिये ।। १ ।।

शिव ने कहा—

हे सुन्दर जांघों वाली देवि शिवे ! तुमने जो मुझसे पूछा है, उसको सुनो, जिसके सुनने मात्र से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ।। २ ।।

महायशस्वी ध्रुव के सुच्छाया नाम की पत्नी में पाँच पुत्रों की सृष्टि हुयी— (१) रिपु, (२) रिपुञ्जय, (३) क्षिप्र (४) वृकल ।। ३ ।।

और व्रकतेजा नाम का पाँचवा पुत्र हुआ । ये सभी सृष्टि-पुत्र कहलाये । तदनन्तर रिपु का बृहती से सर्वश्रेष्ठ मनु चाक्षुष नाम का पुत्र हुआ ।। ४ ।।

हे सुन्दर जांघों वाली पार्वति ! प्रिय बोलने वाली तथा सुन्दर जाघों वाली उस बृहती ने उसको उत्पन्न किया । तदन्तर चाक्षुष ने पुस्करिणी नाम की पत्नी में अनरण्य नाम के पुत्र को उत्पन्न किया ।। ५ ।।

तदन्तर हे महाभागे पार्वति । अनरण्य नामक प्रजापति ने नड्वला नाम की पत्नी में महाभाग्यशाली बहुत अधिक तेजस्वी अंग आदि पुत्रों को उत्पन्न किया ।। ६ ।।

तदन्तर अङ्ग ने सुनीथा नाम की पत्नी में वेन नाम के एक पुत्र को उत्पन्न किया । वेन के दुर्व्यवहारों से मुनि बहुत क्रुद्ध हुए ।। ७ ।।

मुनियों के कोप से वेन के राज्य में अनौरसी (अमैथुनी) प्रजाओं की सृष्टि हुयी । सभी ऋषियों ने तब उसके दाहिने हाथ को मला ।। ८ ।।

ममंर्थुमिलिताः शास्त्रतत्त्वरूपा महेश्वरि ।
मथिते तु करे तस्य संवभूव महाकृतिः ॥ ९ ॥

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे मुदिता ब्रह्मवादिनः ।
एक एव महाबाहुः प्रजा सर्गं करिष्यति ॥ १० ॥

प्राप्स्यते च यशः श्रेष्ठं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
इत्युक्तवंतो मुनयः प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ११ ॥

स धन्वी कवची जातस्तेजसा द्योतयन्दिशः ।
पृथुः[1] पृथुयशस्त्वात्तु बभूव नरसत्तमः[2] ॥ १२ ॥

राजसूयाभिषिक्तानां राज्ञामाद्यो जनेश्वरः ।
तेनेयं पृथुना देवि दुग्धा गौर्वृत्तये नृणाम् ॥ १३ ॥

सस्याय सर्वजन्तूनां पालनाय महाद्युतिः ।
ततो देवैर्मुनिगणैः पितृभिर्यक्षदानवैः ॥ १४ ॥

गंधर्वैः साप्सरोभिश्च सर्वैः पुण्यजनैस्तथा ।
वीरुद्भिः पर्वतैश्चैव दोहिता सा वसुन्धरा ॥ १५ ॥

ददौ क्षीरं महादेवी तेन प्राणानधारयत् ।
धर्मज्ञौ तु पृथोः पुत्रौ जज्ञाते पुरुषर्षभौ ॥ १६ ॥

शिखण्डी च हरिर्धामा प्रजापालौ महाद्युती ।
षडाग्नेयी हविर्धानात्प्राचीनबर्हिरादिकान् ॥ १७ ॥

षट् पुत्राणां महाभागे तेषां श्रेष्ठतरो विभुः ।
प्राचीनबर्हिरभवत् प्रजापतिरकल्मषः ॥ १८ ॥

---

१. पृथुं । २. नृप ।

हे महेश्वरि ! शास्त्रों के तत्त्वों को जानने वाले ऋषियों ने मिलकर वेन के दाहिने हाथ का मन्थन किया । उसके हाथ का मन्थन करने पर महान् आकृति वाला पुरुष उत्पन्न हुआ ।। ९ ।।

उसको देखकर सभी ब्रह्मवादी ऋषि प्रसन्न हुए । यह महान् भुजाओं वाला महाकृति अकेला ही प्रजा की सृष्टि करेगा ।। १० ।।

यह तीनों लोकों में प्रसिद्ध होकर श्रेष्ठ यश को प्राप्त करेगा । इस प्रकार कहते हुए प्रंशसा से युक्त मुनि उसकी प्रशंसा करने लगे ।। ११ ।।

धनुष और कवच को धारण करते हुए वह पुरुष अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उत्पन्न हुआ । बहुत यश के विस्तृत होने के कारण राजाओं में श्रेष्ठ वह पुरुष पृथु नाम से प्रसिद्ध हुआ ।। १२ ।।

राजसूय यज्ञ में अभिषिक्त राजाओं में वह पहला राजा हुआ था । हे देवी पार्वति ! मनुष्यों के जीवन-व्यवहार के लिये उसने इस पृथ्वी रूपी गौ का दोहन किया ।। १३ ।।

महान् तेजस्वी उस राजा ने अन्नों को उत्पन्न करने के लिये और सभी जन्तुओं का पालन करने के लिए इस पृथ्वी का पालन किया था । तदनन्तर देवताओं, मुनियों, पितरों यक्षों और दानवों ने ।। १४ ।।

गंधर्वों और अप्सराओं तथा सभी पुण्य जनों ने उस वसुन्धरा पृथ्वी का वनस्पतियों के द्वारा और पर्वतों के द्वारा दोहन किया ।। १५ ।।

तदनन्तर महादेवी गौ रूपी पृथ्वी ने उसको दूध प्रदान किया । उससे अपने प्राणों को धारण किया । पृथु के धर्म को जानने वाले और पुरुषों में श्रेष्ठ दो पुत्र उत्पन्न हुए ।। १६ ।।

उनमें एक का नाम शिखण्डी तथा दूसरे का हविर्धान था । वे दोनों महा-तेजस्वी तथा प्रजा का पालन करने वाले थे । हविर्धान से उसकी पत्नी षडाग्नेयी ने प्राचीनबर्हिः आदि पुत्रों को उत्पन्न किया ।। १७ ।।

हे महाभागे पार्वति ! उन छः पुत्रों में से प्राचीनबर्हिः सबसे श्रेष्ठ, समर्थ और निष्पाप प्रजापति हुआ ।। १८ ।।

समुद्रद्वीपसहितां पालयामास सर्वतः।
कृतदारो महातेजा यशोव्याप्तदिगंतरः ॥ १९ ॥

प्राचीनर्बाहिषो देवि सवर्णा तस्य चांगना।
दश प्रचेतसो नाम जनयामास पुत्रकान् ॥ २० ॥

सर्वे शास्त्रार्थतत्वज्ञा धनुर्वेदविशारदाः।
त एकधर्माचरणास्तपस्तेपुर्महत्तरम् ॥ २१ ॥

दश वर्षसहस्राणि समुद्रस्य जले स्थिताः।
तत्र तेषु प्रचेतस्सु वभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ २२ ॥

वर्द्धंत एव वृक्षास्तु अकुर्वंत प्रजाक्षयम्।
नाशकन्वायवो वातुं नभस्तैः संवृतं तथा ॥ २३ ॥

वर्षाणामयुतं देवि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः।
इति श्रुत्वा महात्मानस्तपसा दग्धकिल्विषाः ॥ २४ ॥

मुखेभ्यः ससृजुर्वायुं वह्निं चंद्रं महेश्वरि।
उन्मूलनं वायुरग्रे कृत्वा वृक्षांस्तु सर्वतः ॥ २५ ॥

ततोग्निर्दाहयामास चटिच्चटिति सर्वतः।
द्रुमक्षये ततो जाते शेषा वै शाखिनोऽब्रुवन् ॥ २६ ॥

चंद्रं चैव स्वराजानं[1] रक्षरक्षेति चासकृत्।
उपगम्य शनैः सोम उवाच च प्रजापतीन् ॥ २७ ॥

श्रृणुध्वं वचनं चेदं सर्वे प्राचीनर्बाहिषः।
कोपं त्यजत वृक्षेभ्यः शेषेभ्यः पुरुषर्षभाः ॥ २८ ॥

---

१. स्वराजंतं।

वह सब प्रकार से समुद्रों-द्वीपों सहित पृथ्वी का पालन करता रहा। उसने विवाह किया। महान् तेजस्वी उसका यश दिगन्तरों में व्याप्त हो गया ॥ १६ ॥

हे देवी पार्वति ! उस प्राचीनर्बर्हिः की पत्नी सवर्णा हुयी। उसने प्रचेतस् नाम के दस पुत्रों को जन्म दिया ॥ २० ॥

वे सभी शास्त्रों के अर्थों के तत्त्व को जानने वाले, धनुर्वेद में निपुण और एकमात्र धर्म का आचरण करने वाले थे। उन्होने महान् तप किया ॥ २१ ॥

वे दस हजार वर्ष तक समुद्र के जल में स्थित रहे। इस प्रकार जब वे प्रचेतस् तप कर रहे थे तो प्रजाओं का विनाश होने लगा ॥ २२ ॥

वृक्ष बढ़ते ही चले गये और प्रजाओं का विनाश करने लगे। आकाश उनसे इस प्रकार भर गया कि वायु भी नहीं बह सकी ॥ २३ ॥

हे देवि ! दस लाख वर्षों तक प्रजायें कोई चेष्टा नहीं कर सकीं। जिनके पाप तपस्या से जल गये थे ऐसे उन महात्मा प्रचेतसों ने इस बात को सुनकर ॥ २४ ॥

हे महेश्वरि ! अपने मुखों से वायु, अग्नि और चन्द्र को उत्पन्न किया। वायु को आगे करके सभी ओर से वृक्षों को उखाड़ दिया ॥ २५ ॥

तदन्तर सभी ओर से अग्नि ने उन वृक्षों को चट-चट इस प्रकार शब्द करके जला दिया। तदन्तर वृक्षों का विनाश हो जाने पर बचे हुए वृक्ष निश्चय से यह कहने लगे ॥ २६ ॥

वे अपने राजा चन्द्र से पुनः-पुनः कहने लगे—"रक्षा करो, रक्षा करो"। तदनन्तर सोम ने समीप जाकर प्रजापति प्रचेतसों से धीरे से यह बात कही ॥ २७ ॥

हे प्राचीनर्बर्हिः के पुत्रो ! तुम सब इस बात को सुनो। हे पुरुषों में श्रेष्ठो ! बचे हुए वृक्षों के प्रति क्रोध को छोड़ दो ॥ २८ ॥

कन्यामेते प्रयच्छंति शाम्येतामग्निमारुतौ ।
कन्यारत्नमिदं तात वृक्षाणां परमाद्‌भुतम् ।। २९ ।।

भविष्यं जानता गर्भे वृत्तान्तत्वं प्रचेतसः ।
मारिषेति समाख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।। ३० ।।

सर्वेषां भो महाभागा भार्यास्तु वरवर्णिनी ।
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन[1] ममचार्द्धेन मानदाः ।। ३१ ।।

अस्यामेवोत्पत्स्यते वै दक्षो नाम प्रजापतिः ।
अग्नितेजाः स एवायं प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ।। ३२ ।।

सोमस्य च वचः श्रुत्वा जगृहुस्ते ततः सुताम् ।
मारिषां नामतो देवि सर्ववंशविर्वाद्धिनीम् ।। ३३ ।।

कोपं संगृह्य वृक्षेभ्यो वायुं वर्ह्नि निवार्य्य च ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो गर्भं प्राप च मारिषा ।। ३४ ।।

ततस्तु दशमे मासि दक्षं प्रासूत वै सुतम् ।
दक्षोऽपि स महातेजाः सोमस्यांशेन पार्वति ।। ३५ ।।

पुत्रानुत्पादयामास सर्ववंशविवर्द्धनान् ।
स्थावरांश्च चरांश्चैव द्विपदांश्च चतुष्पदः ।। ३६ ।।

पूर्वे वै मानसान्पूर्वं पश्चादस्रजत स्त्रियः ।
ततो ददौ तु धर्माय दश कन्याः सुदर्शनाः । ३७ ।।

कश्यपाय तथा कन्यास्त्रयोदश महाप्रभुः ।
सोमाय च ददौ कन्याः सप्तविंशतिरेव च ।। ३८ ।।

---

१. सा ।

ये तुमको अपनी कन्या दे रहे हैं। हे अग्नि और मरुतो ! तुम शान्त हो जाओ। हे तात ! वृक्षों की यह कन्या परम अद्भुत रत्न है ॥ २९ ॥

हे प्रचेतसो ! तुम लोग भविष्य के गर्भ में स्थित वृतान्तों को जानते हो। इस कन्या का नाम मारिषा है तथा यह इस पृथ्वी पर सौन्दर्य में अप्रतिम है ॥ ३० ॥

हे महाभाग्यवानो ! यह तुम सबकी, श्रेष्ठ वरों का वरण करने वाली भार्या होगी। शत्रुओं के अभिमान को तोड़ने वाले हे प्रचेतसो ! तुम्हारे आधे तेज से और मेरे आधे तेज से ॥ ३१ ॥

इस मारिषा कन्या में दक्ष नाम के प्रजापति उत्पन्न होंगे। अग्नि के समान वे तेजस्वी होंगे। ये ही प्रजाओं का संवर्द्धन करेंगे ॥ ३२ ॥

हे देवि ! सोम के इस वचन को सुनकर, तदनन्तर उन प्रचेतसों ने संपूर्ण वंश की वृद्धि करने वाली मारिषा नाम की उस पुत्री को ग्रहण किया ॥ ३३ ॥

क्रोध को नियन्त्रित करके और वृक्षों के प्रति वायु तथा अग्नि के आक्रमण को नियन्त्रित करके उन्होंने उसे ग्रहण किया। उन दस प्रचेतसों से मारिषा ने गर्भ को प्राप्त किया ॥ ३४ ॥

तदनन्तर मारिषा ने दसवें महीने दक्ष नाम के पुत्र को उत्पन्न किया। हे पार्वति ! वह दक्ष भी सोम के अंश से महान् तेजस्वी हुआ ॥ ३५ ॥

उसने सम्पूर्ण वंश को बढ़ाने वाले पुत्रों को उत्पन्न किया। उसने स्थावर और चर जगत् को उत्पन्न किया तथा दो पैरों वाले और चार पैरों वाले प्राणियों को उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥

पहले उसने मानस-पुत्रों को उत्पन्न किया और उसके पश्चात् स्त्रियों की सृष्टि की। उसने उसके बाद धर्म के लिये दस सुन्दर कन्यायें भी दीं ॥ ३७ ॥

उस महाप्रभु ने कश्यप के लिये तेरह कन्यायें दीं और सोम के लिये सत्ताईस कन्यायें दीं ॥ ३८ ॥

अश्विन्याद्या महाभागे ताभ्यो जातास्ततः प्रजाः ।
देवा नागास्तथा गावो दैत्यदानवकिन्नराः ॥ ३९ ॥

गंधर्वाप्सरसश्चैव जातास्ताभ्यो महेश्वरि ।
तत एव समाजाताः प्रजा मैथुनसंभवाः ॥ ४० ॥

पूर्वं वै मानसादेव स्मरणाद्दर्शनादपि ।
इति ते कथितो देवि प्रजासर्गो मया प्रिये ॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते स्मरणादपि ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे प्रजासर्गो नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः

पार्वत्या सृष्ट्युत्पत्तिविषये महादेवं प्रति शङ्का,
महादेवेन शङ्कायाः समाधानम्

श्रीपार्वत्युवाच—

त्वत्त एव महादेव देवोत्पत्तिर्मया श्रुता ।
ब्रह्मणो दक्षिणांगुष्ठाद्वामांगुष्ठात्स्त्रियस्तथा ॥ १ ॥

यदुक्ता मारिषा नाम वार्क्षी सोमस्य तेजसा ।
तस्यां दक्षो महातेजाश्चंद्रश्च सुरतां गतः ॥ २ ॥

एतन्मे संशयं छिंधि यदि भक्तेषु ते दया ।
त्वमेव सर्वलोकानां सर्वज्ञोऽसि महेश्वर ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रुणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वया शिवे ।
वह्वयश्च सृष्टयो नष्टा ब्रह्मणश्च तथैव च ॥ ४ ॥

हे महाभागे पार्वति ! उन कन्याओं से उसके पश्चात् अश्विनी आदि उत्पन्न हुए और देव, नाग, गौवें, दैत्य, दानव और किन्नर प्रजायें उत्पन्न हुयीं ॥ ३९ ॥

और हे महेश्वरि ! उनसे गन्धर्व और अप्सरायें उत्पन्न हुए। उसके बाद ही मैथुनी प्रजाओं की उत्पत्ति संभव हुयी ॥ ४० ॥

इससे पहले तो स्मरण करने से और दर्शन करने से मन से ही प्रजाओं की सृष्टि होती थी। हे देवी प्रिये ! इस प्रकार मैंने तुमको प्रजाओं की सृष्टि का वृतान्त कह दिया है, जिसको सुनकर और स्मरण करने से भी मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में प्रजासर्ग नाम का
छठा अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ७

सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में पार्वती द्वारा महादेव के प्रति शङ्का, महादेव द्वारा शङ्का का समाधान

पार्वती ने कहा—

हे महादेव ! मैंने सुना था कि देवताओं की उत्पत्ति तुमसे ही हुयी थी और ब्रह्मा के दायें अंगूठे से और बायें अंगूठे से स्त्रियों की उत्पत्ति हुयी थी ॥ १ ॥

तुमने यह जो बात कही है कि वृक्षों की पुत्री मारिषा नाम की थी, उसमें सोम के तेज से महातेजस्वी दक्ष उत्पन्न हुए और चन्द्रमा देवत्व को प्राप्त हुए ॥ २ ॥

यदि तुम्हारी भक्तों पर दया है तो तुम मेरे इस सन्देह को काट दो। हे महेश्वर ! सभी लोकों में तुम ही सर्वज्ञ हो ॥ ३ ॥

ईश्वर (शिव) बोले—

हे देवी शिवे ! सुनो। तुमने मुझसे जो पूछा है, उसको कहता हूँ। ब्रह्मा की अनेक सृष्टियाँ उत्पन्न हुयीं और नष्ट हो गयीं ॥ ४ ॥

उत्पत्तिः प्रलयश्चैव नियतं दिनरात्रिवत् ।
दक्षादयो नृपा जाताः काले काले सदा प्रिये ॥ ५ ॥

कदाचिद् ब्रह्मणोंगुष्ठान्मारिषायास्तथैव च ।
मत्तश्चैव कदाचित्तु मनसो ब्रह्मणस्तथा ॥ ६ ॥

ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यकं देवि मनुष्याणां महेश्वरि ।
ये मायामोहसंच्छन्ना न जानंति परात्परम् ॥ ७ ॥

आत्मा एकः सर्वव्यापी नित्यो व्यक्तो निरंजनः ।
यदा प्रकृतिसंयुक्तो भूतानि स्रष्टुमिच्छति ॥ ८ ॥

येन केनाप्युपायेन सृजते सचराचरम् ।
तप एव महाभागे सर्वेभ्यो बलवत्तरम् ॥ ९ ॥

इति श्री स्कांदे केदारखण्डे शङ्कासमाधानं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

दक्षसृष्टिवर्णनम्

श्रीपार्वत्युवाच—

देवानां दानवानां च दैत्यानां यक्षरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

दक्षो नाम प्रजानाथश्चिकीर्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अजीजनत् सहस्रं वै पुत्राणां सृष्टिकर्मणि[1] ॥ २ ॥

तानागत्य महातेजा नारदो भगवानृषिः ।
उवाच वचनं चेदं विहस्य च पुनः पुनः ॥ ३ ॥

---

१. कर्मणे ।

सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय नियमित रूप से दिन और रात्रि के समान होते हैं। हे प्रिये ! दक्ष आदि राजा समय-समय पर उत्पन्न होते रहे ॥ ५ ॥

कभी वे ब्रह्मा के अंगूठे से ओर कभी मारिषा से उत्पन्न होते हैं। कभी वे मुझसे उत्पन्न होते हैं और कभी ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥

हे महेश्वरी देवि ! जो मनुष्य माया-मोह से ढके होते हैं, वे मनुष्यों की इस ज्येष्ठता-कनिष्ठता की बात को और उस परब्रह्म को नहीं जानते ॥ ७ ॥

सर्वव्यापक, नित्य, अव्यक्त और निर्मल आत्मा एक ही है। वह जब प्रकृति से संयुक्त होकर प्राणियों की सृष्टि करना चाहता है ॥ ८ ॥

वह जिस किसी उपाय से चर और अचर सृष्टि को उत्पन्न करता है। हे महाभागे ! तपस्या ही सबसे अधिक बलवान् है ॥ ९ ॥

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में शङ्का समाधान नाम का
सातवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ८

दक्ष की सृष्टि का वर्णन

पार्वती बोली—

हे प्रभो ! देवों की, दानवों की, दैत्यों की, यक्षों की और राक्षसों की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से मुझे बताइये ॥ १ ॥

ईश्वर (शिव) बोले—

पहले प्रजाओं के स्वामी दक्ष नाम के हुए थे। विविध प्रजाओं की रचना करने की इच्छा करते हुए उन्होंने सृष्टि की रचना के क्रम में एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ २ ॥

महान् तेजस्वी भगवान् ऋषि नारद उनके पास आकर और हँसकर पुनः-पुनः यह बात कहने लगे ॥ ३ ॥

नारद उवाच—

श्रृणुध्वं वचनं सर्वे दाक्षेयाः सृष्टिकर्मणि ।
यूयं नियुक्ता दक्षेण कथं कुरुत बालिशाः ॥ ४ ॥

आनीध्वं पृथिव्या अंतं कुरुध्वं सृष्टिकर्म च ।
विना ज्ञानं प्रमाणस्य प्रजासर्गो न जायते ॥ ५ ॥

ईश्वर उवाच—

इत्याज्ञप्तं नारदेन श्रुत्वा ते दश[1] पुत्रकाः ।
गता द्रष्टुं प्रमाण वै पृथिव्या जगदीश्वरि ॥ ६ ॥

अद्यापि न निवर्त्तंते समुद्रेभ्य इवापगाः ।
अथ पुत्रेषु नष्टेषु दक्षः प्राचेतसो मुनिः ॥ ७ ॥

पुनर्दशशतं चैव पुत्रांश्चैवासृजत्प्रभुः ।
पुनर्वै नारदेनोक्ता गता वै सर्वतो दिशम् ॥ ८ ॥

पुनस्तेष्वपि नष्टेषु दक्षः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।
नारदं पुत्रहंतारं गर्भवासं व्रजेति च ॥ ९ ॥

पुनर्दक्षो महातेजाः कन्या वै षष्टि संख्यकाः ।
ताः कन्याः कतिचिद्देवि कश्यपो नाम वै मुनिः ॥ १० ।

धर्माय दत्ता[2] सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
चतस्रो भृगुपुत्राय द्वे वै चांगिरसे तथा ॥ ११ ॥

द्वे कृशाश्वाय मुनये नामानि[3] च तथा श्रृणु ।
दितिश्च[4] अदितिश्चैव कद्रुश्च विनता तथा ॥ १२ ॥

सुरभिः सुरसारिष्टा दनुः क्रोधवशा इरा ।
मुनिर्वंशा विश्वनाम तास्वपत्यानि मे श्रुणु ॥ १३ ॥

---

१. दक्ष । २. चैव । ३. ममामि । ४. "दितिश्च…में श्रृणु" पाठ इसमें नहीं है ।

नारद बोले—

हे दक्ष के पुत्रो ! तुम सब मेरे वचन को सुनो। दक्ष ने तुमको सृष्टि की रचना करने में नियुक्त किया है। हे मूर्खों ! तुम इस कार्य को कैसे करोगे ? ।। ४ ।।

तुम पृथ्वी के अंत (नाप) को जानो और तब सृष्टि की रचना के कार्य को करो। पृथ्वी के नाप (प्रमाण) के विना जाने प्रजा की सृष्टि नहीं होती ।। ५ ।।

ईश्वर (शिव) कहने लगे—

हे जगत की ईश्वरी पार्वति ! इस प्रकार नारद के आदेश को सुनकर वे दक्ष के पुत्र पृथ्वी के माप को देखने के लिये चले गये ।। ६ ।।

वे आज तक भी उसी प्रकार नहीं लौटे हैं, जिस प्रकार समुद्र में जाकर नदियाँ नहीं लौटतीं। इसके पश्चात् पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्रचेतस् के पुत्र दक्ष मुनि ने ।। ७ ।।

उस प्रभु ने पुनः एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। नारद के कहने पर वे पुनः सब ओर दिशाओं को चले गये ।। ८ ।।

पुनः उनके भी नष्ट हो जाने पर पुत्रों की हत्या करने वाले नारद से क्रोधित दक्ष ने कहा कि तुम गर्भ में निवास करो ।। ९ ।।

उसके पश्चात् महातेजस्वी दक्ष ने साठ कन्याओं को उत्पन्न किया। दक्ष ने उनमें से कुछ कन्याओं को कश्यप मुनि के लिये दिया ।। १० ।।

धर्म को और सोम को दिया। चार कन्यायें अरिष्टनेमि को दीं। चार कन्यायें भृगु के पुत्र को दीं और दो कन्यायें अंगिरा को दीं ।। ११ ।।

दो कन्यायें कृशाश्व मुनि को दीं। और उनके नामों को सुनो—दिति, आदिति, कद्रु और विनता ।। १२ ।।

सुरभि, सुरसा, अरिष्टा, दनु, क्रोधवशा, इरा, मुनि, वशा और विश्वा। उनकी सन्तानों के नाम सुनो ।। १३ ।।

दितिर्वै जनयामास पुत्रानमिततेजसः ।
शक्रो विष्णुश्च जज्ञाते शृण्वादित्यास्तथैव च ।। १४ ।।

धातर्यमो च त्वष्टा च पूषा वै बरुणस्तथा ।
विवस्वान् सविता मित्रो भगोंशश्च[1] महाबलः ।। १५ ।।

रविश्च द्वादशादित्याः कथिताश्चाक्षुषोंतरे ।
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च पार्वति ।। १६ ।।

सिंहिका चाभवत् कन्या ददौ तां विप्रचित्तये ।
तस्याः पुत्रास्तदा जाता सैंहिकेया महाबलाः ।। १७ ।।

संख्यया दश साहस्रं विप्रचित्तेर्महाबलात् ।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारोऽमितविक्रमाः ।। १८ ।।

अनुह्लादश्च प्रह्लादो ह्लादः संह्लाद एव च ।
अनुह्लादस्य पुत्रास्तु महानासो भयानकाः[2] ।। १९ ।।

कौलश्चैव महाशब्दो बभूवुरमितौजसः ।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्विरोचनसुतो बलिः ।। २० ।।

वाणाद्यं वै पुत्रशतं बलेरासीन् महात्मनः ।
हिरण्याक्षसुताः पंच महात्मानो महाबलाः ।। २१ ।।

झर्झरः शकुनिश्चैव शंकुशीर्षो महानदः ।
विक्रांतः कालनाभश्च धनुर्वेदविशारदाः ।। २२ ।।

कद्रोः पुत्रान् महाभागे निबोध मम सांप्रतम् ।
अनंतो वासुकिश्चैव एलापुत्रो धनंजयः ।। २३ ।।

---

१. भगेश । २. कः ।

दिति ने अमित तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया। और अदिति से इन्द्र, विष्णु और आदित्य उत्पन्न हुए ।। १४ ।।

धाता, यम, त्वष्टा, पूषा, वरुण, विवस्वान्, सविता, मित्र, भग, अंश, महाबल ।। १५ ।।

और रवि नाम के बारह आदित्य कुछ-कुछ अन्तर से उत्पन्न हुए। हे पार्वति ! हमने सुना है कि दिति ने हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम के दो पुत्रों को उत्पन्न किया ।। १६ ।।

उसकी सिंहिका नाम की कन्या उत्पन्न हुयी। उसने उसको विप्रचित्ति के लिये दे दिया। तदनन्तर उस सिंहिका के महाबलशाली सैंहिकेय नाम के पुत्र हुए ।। १७ ।।

महाबलशाली विप्रचित्ति के उन पुत्रों की संख्या दस हजार थी। हिरण्यकशिपु के चार पुत्र अमित पराक्रमशाली थे ।। १८ ।।

इनके नाम थे—अनुह्लाद, प्रह्लाद, ह्लाद और संह्लाद। अनुह्लाद के पुत्र भयानक बड़ी नाक वाले हुए ।। १९ ।।

वे अमित तेजस्वी पुत्र सुअर के समान महान् भयानक शब्द करने लगे। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन और विरोचन का पुत्र बलि हुआ ।। २० ।।

महात्मा बलि के बाण आदि सौ पुत्र हुए। हिरण्याक्ष के पाँच पुत्र महात्मा महाबलशाली हुए ।। २१ ।।

इनके नाम थे—झर्झर, शकुनि, शंकुशीर्ष महानद, और पराक्रमी कालनाभ। ये सभी धनुर्वेद में पारंगत थे ।। २२ ।।

हे महाभागे पार्वति ! अब तुम कद्रु के पुत्रों के नाम जानो। उनके नाम हैं—अनंत, वासुकि, एलापुत्र, धनंजय ।। २३ ।।

काद्रवेया महात्मान इत्याद्याः कद्रुपुत्रकाः ।
विनता गरुडं चैव ह्यरुणं च महाबलम् ॥ २४ ॥

द्वौ पुत्रौ जनयामास तयोर्वै पुत्रसंततिः ।
सुरैरेकादश प्रोक्ता रुद्रा जातास्तु कश्यपात् ॥ २५ ॥

हरश्च बहुरूपश्च कपर्द्दी त्र्यंबकस्तथा ।
वृषाकपिश्च शंभुश्च मृगव्याधो पराजितः ॥ २६ ॥

कलापी रैवतः सर्पो रुद्रा एकादश स्मृताः ।
सुरसायास्तु सर्पास्तु जातास्तेर्हि विषोल्वणाः[1] ॥ २७ ॥

दनोस्तु दानवाः प्रोक्ताः शृणु श्रेष्ठान् महाबलान् ।
विप्रचित्तिर्द्विमूर्द्धा च शंकुकर्णो गवेथिकः ॥ २८ ॥

अयोमुखः शंबरश्च कपिलो वामनस्तथा ।
स्वर्भानुर्वज्रनाभश्च[2] शरभः शैलभादिकाः ॥ २९ ॥

दानवास्तु समाख्याता महाबलपराक्रमाः ।
तेषां वै पुत्रपौत्राणां संख्यां कर्तुं न विद्यते ॥ ३० ॥

स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शचीमता ।
पौलोमाः[3] कालकेयाश्च हिरण्यकशिपोः[4] पुरे ॥ ३१ ॥

संख्यया दश साहस्रं सहस्रं च प्रकीर्तितम् ।
मुनेस्तु मुनयः ख्याता अरिष्टातश्चराचराः ॥ ३२ ॥

एतासामेव सर्व हि जगदेतच्चराचरम् ।
किन्नरा यक्षरक्षांसि ताभ्यो जाता महाबलाः ॥ ३३ ॥

---

१. बाल्वणाः । २. वारभः । ३. लोपोमा । ४. कशिपोः पुरः ।

और काद्रवेय । इस प्रकार ये कद्रु के पुत्र महान् बलशाली हुए । विनता ने गरुड और अरुण नाम के बलशाली……॥ २४ ॥

दो पुत्रों को उत्पन्न किया और निश्चय से ही उन दोनों के सन्तानें हुयीं । देवताओं का कथन है कि कश्यप से एकादश रुद्र उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥

उनके नाम हैं—हर, बहुरूप, कपर्द्दी, त्रयम्बक, वृषाकपि, शंभु, मृगव्याध, पराजित ॥ २६ ॥

कलापी, रैवत और सर्प । इस प्रकार ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं । सुरसा के सर्प पुत्र उत्पन्न हुए । वे निश्चय से बहुत विषैले थे ॥ २७ ॥

दनु के पुत्र दानव कहलाये । महाबलशाली और श्रेष्ठ इनके विषय में सुनो— विप्रचित्ति, द्विमूर्धा शंकुकर्ण, गवेथिक ॥ २८ ॥

अयोमुख, शंबर, कपिल, वामन, स्वर्भानु, वज्रनाभ, शरभ, शैलभ आदि उनके नाम थे ॥ २९ ॥

ये दानव कहलाये, जो महाबलशाली और पराक्रमी प्रसिद्ध थे । उनके पुत्रों और पौत्रों की गिनती नहीं की जा सकती ॥ ३० ॥

स्वर्भानु (राहु) की कन्या प्रभा हुयी और पुलोमा की शची हुयी । हिरण्यकशिपु के नगर में पौलोम (पुलोमा के पुत्र) और कालकेय (कालक के पुत्र) हुये ॥ ३१ ॥

इनकी संख्या दसों हजार कही गयी है । मुनि के पुत्र मुनि कहलाये तथा अरिष्टा से चर और अचर सन्तति हुयी ॥ ३२ ॥

यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् निश्चय से इनकी ही सन्तानें हैं । इनसे ही महाबलशाली किन्नर, यक्ष तथा राक्षस उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥

वृक्षांश्च[1] पर्वताश्चैव पक्षिणश्च चतुष्पदाः।
इति ते कथितं देविं दैत्यदानवरक्षसाम्॥
पठतां शृण्वतां चैव स्वर्गस्य फलदायकम्॥ ३४॥

इति श्री स्कांदे केदारखण्डे दक्षसृष्टिवर्णनं
नाम अष्टमोऽध्यायः।

नवमोऽध्यायः

स्वायम्भुवमनुसृष्टिवर्णनपूर्वकं मन्वन्तरस्थितिवर्णनम्

पार्वत्युवाच—

देव देव महादेव सर्वशास्त्रार्थपारग।
मन्वंतराणि सर्वाणि कथय त्वं मम प्रभो॥ १॥

देवाश्च मुनिवर्याश्च देवेंद्राश्च तथैव च।
स्वायंभुवमनोर्देव सर्वं कथय सुव्रत॥ २॥

ईश्वर उवाच—

कथयामि महेशानि मनूनां गणनां प्रिये।
स्वायंभुवमनुः पूर्वं स्वारोचिषमनुस्तथा॥ ३॥

औत्तमिस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा।
वैवस्वतमनुर्देवि सांप्रतं सप्तमो ह्ययम्॥ ४॥

सावर्णिर्दक्षसावर्णिः सूर्यसावर्णिरेव च।
मेरुसावर्णिश्च तथा भौत्यो गैव्यस्तथैव च॥ ५॥

रौच्यश्च हि महाभागे कथिता मनवो मया।
आदिमन्वन्तरे देवि सप्तर्षीन् शृणु मे प्रिये॥ ६॥

---

१ वृक्षाश्च।

वृक्ष, पर्वत, पक्षी और चौपाये इनसे ही उत्पन्न हुए। हे देवि। इस प्रकार तुमसे मैंने दैत्यों, दानवों और राक्षसों की वात कही है। इस कथा को पढ़ने और सुनने वालों को स्वर्ग का फल प्राप्त होता है।। ३४ ।।

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में दक्ष-सृष्टि-वर्णन
नाम का आठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ९

स्वायम्भुव मनु की सृष्टि का वर्णन करके मन्वन्तरों की स्थिति का वर्णन

पार्वती ने कहा—

सभी शास्त्रार्थों में पारंगत देवताओं के भी देवता महादेव प्रभो! मुझसे आप सभी मन्वन्तरों का वृतान्त कहिये ।। १ ।।

उत्तम व्रत को धारण करने वाले हे देव। स्वायम्भुव मनु, देवों, श्रेष्ठ मुनियों और देवताओं का सारा वृतान्त कहिये ।। २ ।।

ईश्वर (शिव) बोले—

हे महेशानी पार्वति प्रिये! मैं तुमसे मनुओं की गणना कहता हूँ। सबसे पहले स्वायंभुव मनु हुए और उसके बाद स्वारोचिष मनु हुए ।। ३ ।।

तदनन्तर औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु हुए। हे देवि! अब ये सातवें वैवस्वत मनु हैं ।। ४ ।।

अब सावर्णि, दक्षसावर्णि, सूर्यसावर्णि, मेरुसावर्णि, भौत्य, गैव्य ।। ५ ।।

और रौच्य नाम के सात मन्वन्तरों को कह दिया है। हे देवि! हे प्रिये! अब तुम आदि मन्वन्तर के सप्तर्षियों के विषय में सुनो ।। ६ ।।

मरीचिरत्रिरंगिराः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महातेजा एते सप्तर्षयस्तथा ॥ ७ ॥

ते वै सप्तर्षयो नित्यमुत्तरस्यां दिशि स्थिताः ।
याम्या देवास्तथा नाम्ना ख्याताः स्वायंभुवोतरे ॥ ८ ॥

अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वसुमेधातिथिस्तथा ।
मेधा हव्यश्च ज्योतिष्मान् द्युतिमान् सवनस्तथा ॥ ९ ॥

पुत्रश्चैव तथा ख्यातो दशपुत्रा महाबलाः ।
मनोः स्वायंभुवस्यैते कथितास्तव शैलजे ॥ १० ॥

तेषामेव हि वंशेन त्रैलोक्यं पूरितं तथा ।
इति ते प्रथमं देवि मन्वंतरमुदाहृतम् ॥ ११ ॥

स्वारोचिषं द्वितीयं तु श्रृणु सांप्रतमुच्यते ।
और्वो वसिष्ठपुत्रश्च काश्यपः सांब एव च ॥ १२ ॥

दत्तो बृहस्पतिश्चैव प्राणो निश्च्यवनस्तथा ।
एते सप्तर्षयः प्रोक्ता मया स्वारोचिषेंतरे ॥ १३ ॥

देवाख्यातास्तथा देवि तुषिता नाम सुव्रताः ।
हविध्रः सुकृतिर्भूतिर्नमस्यः प्रथितो नभः ॥ १४ ॥

आपोमूर्त्तिरपः सूर्यः स्वारोचिषसुता स्मृताः ।
तैरेव प्रथिता भूमिः सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ १५ ॥

मन्वंतरं तृतीयं तु वक्ष्यामि तन्निबोध च ।
वसिष्ठस्य सुताः सप्त वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥ १६ ॥

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वशिष्ठ ये सप्तर्षि हुए ।। ७ ।।

ये सप्तर्षि नित्य उत्तर दिशा में स्थित रहते हैं । इस स्वायंभुव मन्वन्तर में याम्य नामक देवता हुये ।। ८ ।।

अग्नीध्र, अग्निबाहु, वसु, मेधातिथि, मेधा, हव्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सवन ।। ९ ।।

और पुत्र नाम से प्रसिद्ध महाबली दस पुत्र हुए । हे पार्वति ! इस प्रकार मैंने तुम्हें स्वायम्भुव इन सन्तानों की बात कही है ।। १० ।।

उनके ही वंश से ये तीनों लोक भर गये हैं । इस प्रकार हे देवि ! मैंने तुमको प्रथम मन्वन्तर कह दिया है ।। ११ ।।

अब दूसरे स्वारोचिष नामक मन्वन्तर की बात कही जा रही है । इसमें वसिष्ठ का पुत्र और्व, काश्यप और सांब ।। १२ ।।

दत्त, वृहस्पति, प्राण और निश्च्यवन ये सप्तर्षि स्वारोचिष मन्वन्तर मैंने कहे हैं ।। १३ ।।

हे देवि ! इसमें उत्तम व्रत को धारण करने वाले तुषिता नाम के देवता प्रसिद्ध हुए । हविध्र, सुकृति, भूति, नमस्य, प्रचित, नभ ।। १४ ।।

आप, मूर्ति, अप और सूर्य ये स्वारोचिष मनु के पुत्र हुए । उनसे यह पर्वतों सहित सात द्वीपों वाली पृथिवी भर गई ।। १५ ।।

मैं तुमको तीसरे मन्वन्तर की बात कहूँगा और उसको समझ लो । वसिष्ठ के सात पुत्र वासिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए ।। १६ ।।

ऊर्ज्जा नाम सुरा ख्याता हिरण्यगर्भसूनवः ।
ईषऊर्जस्तनूजश्च माधवो मधुरेव च ।। १७ ।।

सहः शुक्रः शुचिश्चैव नमस्यो नभ एव च ।
एते पुत्रास्तव ख्याता दश चैव महाबलाः ।। १८ ।।

तृतीयमिति ते प्रोक्तं चतुर्थं शृणु साम्प्रतम् ।
अग्निः काव्यः पृथुश्चैव जह्नुर्धाता च पार्वति ।। १९ ।।

कापीवानकपीवांश्च एते सप्तर्षयः स्मृताः ।
सत्या देवगणाः ख्याता मया ते तामसांतरे ।। २० ।।

तामसस्य मनोः पुत्रान् शृणु देवि यथातथम् ।
द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलः परंतपः ।। २१ ।।

तपोधनस्तपःप्रीतिरकल्माषस्तथा स्मृतः ।
तन्वी धन्वी तथा ख्यातौ तामसस्य सुता दश ।। २२ ।।

चतुर्थं कथितं देवि मन्वंतरं च तामसम् ।
पंचमं रैभ्यकं नाम शृणु सांप्रतमुच्यते ।। २३ ।।

वेदबाहुः सुबाहुश्च वेदशीर्षो मुनिस्तथा ।
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः ।। २४ ।।

सप्तर्षयो हि रैभ्यस्य मनोरंतर एव च ।
प्रकृतयो भूतरसा देवाः ख्याता महौजसः ।। २५ ।।

पुत्रान्निवोध रैभ्यस्य विस्तराद्गदतो मम ।
धृतिर्निरुत्सुको नव्यस्तत्त्वदर्शी महाबलः ।। २६ ।।

हिरण्यगर्भ के पुत्र ऊर्ज्जा नाम के देवता प्रसिद्ध हुए। ईष, ऊर्ज, तनूज, माधव, मधु ॥ १७ ॥

सह, शुक्र, शुचि, नभस्य और नभ ये तुम्हारे दस महाबलशाली पुत्र प्रसिद्ध हुए ॥ १८ ॥

हे पार्वति ! मैंने तुमको तीसरे मन्वन्तर की बात कह दी अब चतुर्थ मन्वन्तर को सुनो। अग्नि, काव्य, पृथु, जह्नु और धाता ॥ १९ ॥

कापीवान् और अकपीवान् ये सप्तर्षि हुए थे। इस तामस नाम के चतुर्थ मन्वन्तर में मेरे द्वारा सत्य नाम के देवगण प्रसिद्ध हुए ॥ २० ॥

हे देवि ! तामस नामक मनु के पुत्रों के विषय में ठीक प्रकार से सुनो। द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, परंतप ॥ २१ ॥

तपोधन, तपःप्रीति, अकल्माष, तन्वी, और धन्वी ये तामस मनु के दश पुत्र प्रसिद्ध हुए ॥ २२ ॥

हे देवि ! मैंने तुमको तामस नाम के चतुर्थ मन्वन्तर के विषय में कहा है। अब रैभ्यक नाम के पाँचवें मन्वन्तर के विषय में कहा जा रहा है। उसको सुनो ॥ २३ ॥

वेद बाहु, सुबाहु, वेदशीर्ष नामक मुनि, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु और सोमज ॥ २४ ॥

रैभ्य नामक मन्वन्तर में ये सात ऋषि हुए थे। इनमें महाओजस्वी पञ्चमहाभूत से युक्त प्रकृति नाम से देवता प्रसिद्ध हुए ॥ २५ ॥

मेरे द्वारा वर्णन किये जाते हुए रैभ्य के पुत्रों के विषय में विस्तार से सुनो। धृति, निरुत्सुक, नव्य; तत्त्वदर्शी महाबल ॥ २६ ॥

अरण्यश्च प्रकारश्च नेमिकः सत्यवाग्धृतिः ।
इत्येते कथिताः पुत्राः रैवतस्य महात्मनः ॥ २७ ॥

पंचमं कथितं ते वै षष्ठं च शृणु कथ्यते ।
भृगुर्नगो विवस्वांश्च विरजा अतिनामकः ॥ २८ ॥

सुधामा च सहिष्णुश्च ऋषयो वै तव स्मृताः ।
आद्याः प्रसूता ऋभवः पृथग्भावा महौजसः ॥ २९ ॥

लेखा वै देवताः ख्याताश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः ।
शाड्वलेयास्तथा ख्याता अंगिराः पुत्रकास्तथा ॥ ३० ॥

ऊरुप्रभृतयो देवि मनुपुत्रास्तथा स्मृताः ।
इति षष्ठं समाख्यातं चाक्षुषांतरमीरितम् ॥ ३१ ॥

विद्यमानं सप्तमं च शृणु वैवस्वतेऽन्तरे ।
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् गौतमः कश्यपस्तथा ॥ ३२ ॥

विश्वामित्रो भरद्वाजो यमदग्निस्तथैव च ।
सप्तर्षयः प्रकथिता मया वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ३३ ॥

साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवस्तथा ।
आदित्याश्चाश्विनौ देवा ख्याता वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ३४ ॥

इक्ष्वाक्वाद्या मनोः पुत्राः सर्वधर्मभृतां वराः ।
तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च सप्तद्वीपास्ततः प्रिये ॥ ३५ ॥

पार्वत्युवाच—

देव देव समुत्पत्तिं वैवस्वतमनोः प्रभो ।
यस्येयं सांप्रतं भूमिर्व्याप्ता पुत्रशतैस्तथा ॥ ३६ ॥

अरण्य, प्रकार, नेमिक, सत्यवाक् और धृति । इस प्रकार मैंने तुमको महात्मा रैवत के दस पुत्रों के विषय में कह दिया है ॥ २७ ॥

पाचवें मन्वन्तर को बता दिया है । अब छठे मन्वन्तर को कहा जा रहा है । उसको सुनो । भृगु, नग; विवस्वान्; विरजस, अतिनामक ॥ २८ ॥

सुधामा और सहिष्णु ये इस मन्वन्तर में सात ऋषि हुए थे । ये ऋषि सबसे प्रथम उत्पन्न हुए, जो कि ऋभु भावनाओं से पृथक् और महाओजस्वी थे ॥ २९ ॥

इस चाक्षुष नामक मन्वन्तर में लेख नाम के देवता प्रसिद्ध हुए । इस मन्वन्तर में शाड्वलेय, अंगिरा और पुलक ॥ ३० ॥

तथा ऊरु आदि हे देवि ! चाक्षुष मनु में पुत्र हुए थे । इस प्रकार मैंने तुमसे छठे चाक्षुषमन्वन्तर का वर्णन कर दिया है ॥ ३१ ॥

इस समय सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है । इस मन्वन्तर में अत्रि, भगवान् वसिष्ठ, गौतम, कश्यप ॥ ३२ ॥

विश्वामित्र, भरद्वाज और यमदग्नि ये सात ऋषि हुए । मैंने वैवस्वत मन्वन्तर में बताये हैं ॥ ३३ ॥

इस वैवस्वत मन्वन्तर में साध्य, विश्वे रुद्र, मरुत् वसु, आदित्य और अश्विनौ नामक देवता प्रसिद्ध हुए ॥ ३४ ॥

मनु के पुत्र इक्ष्वाकु आदि हुए थे । वे सभी धार्मिकों में श्रेष्ठ थे । हे प्रिये ! उनके पुत्रों और पौत्रों से पृथिवी में सातों द्वीप भर गये थे ॥ ३५ ॥

पार्वती ने कहा—

हे देवताओं में भी देवता प्रभो ! आप मुझे वैवस्वत मनु की उत्पत्ति के विषय में कहें, जिसके सैकड़ों पुत्रों से वर्तमान समय में यह भूमि व्याप्त है ॥ ३६ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि वरारोहे वैवस्वतमनुं प्रिये।
कश्यपात्तु महेशानि विवस्वान् समजायत ॥ ३७ ॥

दाक्षायण्यामदित्यां तु प्रभाव्याप्तदिगंतरः।
त्वष्टुः प्रजापतेः कन्या संज्ञानाम्नी महायशाः ॥ ३८ ॥

उपयेमे विवस्वांस्तां वेदोक्तविधिना प्रिये।
सा च त्वाष्ट्री महादेवि तेजस्तस्य विवस्वतः ॥
असहंतो नित्यमेव स्थिता तस्य गृहे प्रियें ॥ ३९ ॥

द्वौ पुत्रौ जनयामास पूर्वं वैवस्वतं मनुम्।
ततो यमं च यमुनां यमौ तादृक् विवस्वतः ॥ ४० ॥

तस्य सूर्यस्य नितरां तेजसा तापिताभवत्।
असहंती तु तत्तेजश्छायां स्त्रीं सा जगाद ह ॥
अश्रुसंरुद्धवदनां स्वरूपसदृशां प्रिये ॥ ४१ ॥

संज्ञोवाच—

श्रृणु च्छाये महाभागे त्वत्तो नान्या मम प्रिया।
दुःखहंत्री स्वभर्तुश्च असहंती वलं शुभे ॥ ४२ ॥

तस्य वै तेजसा दग्धा स्थातुं शक्नोमि न प्रिये।
किं करोमि क्व गच्छामि इति मे दुःखवैभवम् ॥ ४३ ॥

तस्मात्त्वं तिष्ठ भर्त्तुर्मे सविधं नित्यमेव हि।
मम चेष्टाबलं रूपं कृत्वा तु मम वल्लभे ॥ ४४ ॥

अहं यास्यामि भवनं पितुर्वै विश्वकर्मणः।
तत्र स्थेयं मया नित्यं रहस्यं परमं त्विदम् ॥ ४५ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन यथा जानातु नो पतिः।
अपत्येषु मम च्छाये भवितव्यं प्रियं सखि ॥ ४६ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

सुन्दर जाँघों वाली हे प्रिये देवि ! वैवस्वत मनु की उत्पत्ति की कथा सुनो हे महेशानि ! कश्यप प्रजापति से विवस्वान् उत्पन्न हुए थे ।। ३७ ।।

दाक्षायणी नामक अदिति उनकी माता थी। उन्होंने अपनी प्रभाव से दिगन्तरों को व्याप्त कर दिया था। त्वष्टा नामक प्रजापति की महायशस्विनी संज्ञा नाम की कन्या हुयी थी ।। ३८ ।।

हे प्रिये ! विवस्वान् ने उस संज्ञा से वेदोक्त विधि से विवाह किया। हे महादेवि ! प्रिये। विवस्वान् के तेज को न सहती हुयी भी वह त्वष्टा की पुत्री नित्य उसके घर में रहती थी ।। ३९ ।।

संज्ञा ने दो पुत्रों को जन्म दिया, पहले वैवस्वत मनु को और उसके बाद यम को। उस विवस्वान् से यमुना नाम की कन्या हुयी। यम और यमुना यमज भाई-बहिन थे ।। ४० ।।

हे प्रिये ! वह संज्ञा सूर्य के तेज से बहुत अधिक संतप्त होती रहती थी। हे प्रिये ! उस तेज को न सहन करती हुयी उसने एक बार आँसुओं से भरे मुख वाली तथा अपने स्वरूप के समान स्वरूप वाली छाया नाम की स्त्री से कहा ।। ४१ ।।

संज्ञा बोली—

हे महाभागे छाये ! सुनो। तुमसे अधिक मेरी प्रिय अन्य कोई नहीं है। हे शुभे। अपने पति के दुःख को नष्ट करने वाली मैं उसके बल को सहन नहीं कर पा रही ।। ४१ ।।

हे प्रिये ! उसके तेज से जलती हुयी मैं ठहर नहीं सक रही हूँ। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इस प्रकार मुझे बहुत दुःख है ।। ४३ ।।

हे प्रिये ! इसलिये मेरी चेष्टाओं, बल और रूप को धारण करके तुम सदा मेरे पति के पास ठहरो ।। ४४ ।।

मैं अपने पिता विश्वकर्मा के घर को जाऊँगी। मैं सदा वहीं रहूँगी। मेरा यह परम रहस्य है ।। ४५ ।।

इस रहस्य की तुम प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना, जिससे कि मेरा पति इस बात को न जाने। हे छाये ! सखि ! तुम मेरे बच्चों के प्रति प्रिय व्यवहार करना ।। ४६ ।।

छायोवाच—

आशापं हि मया नैव आकचग्रहणादपि[1]।
न वक्तव्यं मया देवि गच्छ त्वं हि यथासुखम् ॥ ४७ ॥

ईश्वर उवाच—

सवर्णां तु समाधाय गता सा भवनं पितुः।
ववंदे चरणौ त्वष्टुः पितुर्वै विश्वकर्मणः॥ ४८ ॥

दृष्ट्वा तां तु सुतां स्वीयां संशयाविष्टमानसः।
उवाच वचनं चेदं संज्ञानाम्नीं महाप्रभाम् ॥ ४९ ॥

विश्वकर्मोवाच—

किमर्थमागता संज्ञे किं कार्यं ते मया सुते।
दत्ता त्रैलोक्यदीपाय सूर्यायामिततेजसे ॥ ५० ॥

भर्त्तारं त्यज्य या नारी गच्छेद्वै परमंदिरे।
तस्या मुखं हि नालोक्यं सुधिया मम पुत्रिके ॥ ५१ ॥

गच्छ शीघ्रं हि तत्रैव यतस्त्वमागता मम।
सेवनीयौ प्रयत्नेन भर्तुर्वै चरणौ सुते ॥ ५२ ॥

संज्ञोवाच—

तेजसा तस्य देवस्य तापिताहं प्रजापते।
न शक्ता तस्य सामीप्ये क्षणं स्थातुं पितः प्रभोः ॥ ५३ ॥

यद्यत्र तात न स्थेयं मया तव समीपकम्।
तपस्तप्तुं गमिष्यामि संततिर्वर्त्तते मम ॥ ५४ ॥

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा सा तु सहसा निपत्य चरणौ पितुः।
गतोत्तरकुरूंश्चैव सुरम्यान्मनसेप्सितान् ॥ ५५ ॥

तत्र गत्वा तु सा त्वाष्ट्री वडवारूपमास्थिता।
तपस्तेपे शंकमाना स्वरूपात् पर्वतात्मजे ॥ ५६ ॥

---

१. आकेश।

छाया ने कहा—

हे देवि ! जब तक कि कोई मुझे शाप नहीं देगा और मेरे केश नहीं पकड़ेगा, तब तक मैं इस रहस्य को नहीं कहूँगी । तुम सुखपूर्वक चली जाओ ॥ ४७ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

अपने समान रूप वाली छाया को वहाँ स्थित करके वह संज्ञा अपने पिता के घर चली गयी । उसने वहाँ जाकर अपने पिता विश्वकर्मा त्वष्टा के चरणों में वन्दना की ॥ ४८ ॥

अपनी उस पुत्री को देखकर सन्देह से भरे मन वाले त्वष्टा ने महातेजस्विनी संज्ञा से यह बात कही ॥ ४९ ॥

विश्वकर्मा ने कहा—

हे संज्ञे ! तुम यहाँ क्यों आयी हो ? हे पुत्रि ! तुम्हें मुझसे क्या कार्य है । मैंने तुमको तीनों लोकों के दीपक अप्रतिम तेजस्वी सूर्य के लिये दिया है ॥ ५० ॥

हे पुत्रि ! जो स्त्री पति को छोड़कर दूसरे के घर जाती है बुद्धिमान् को उसको मुख नहीं देखना चाहिये ॥ ५१ ॥

हे पुत्रि ! जहाँ से तुम मेरे पास आयी हो वहाँ तुम शीघ्र चली जाओ और निश्चय से प्रयत्नपूर्वक पति के चरणों की सेवा करो ॥ ५२ ॥

संज्ञा ने कहा—

हे प्रजापति पिता ! मैं उस सूर्य देव के तेज से संतप्त रहती हूँ । स्वामी के समीप क्षण भर भी ठहर नहीं सकती ॥ ५३ ॥

हे पिता ! मुझको यदि यहाँ तुम्हारे समीप नहीं ठहरना चाहिये, तो मैं तपस्या करने के लिये जाऊँगी । मेरी सन्तान विद्यमान है ॥ ५४ ॥

ईश्वर (शिव) बोले—

इस प्रकार कहकर और सहसा पिता के चरणों में गिरकर वह संज्ञा मन को अच्छे लगने वाले सुरम्य उत्तर-पूर्व देश को चली गयी ॥ ५५ ॥

हे पर्वतपुत्री पार्वति ! त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने वहाँ जाकर घोड़ी के रूप को धारण कर लिया और वहाँ अपने रूप से ही शंकित होती हुयी तपस्या करने लगी ॥ ५६ ॥

सापि छाया महाभागे ह्यभेदेन समीपकम् ।
भर्तुर्विवस्वतो नित्यं सुखं संतुष्टमानसा ।। ५७ ।।

सूर्योऽपि जनयामास छायायां भगवान् प्रभुः ।
सावर्णि मातृसदृशं भविष्यमष्टमं मनुम् ।। ५८ ।।

शनैश्चरं ततः पुत्रं श्यामलांगं महाद्युतिम् ।
चकार सा तदा छाया स्नेहाधिक्यं स्वपुत्रयोः ।। ५९ ।।

स्नेहाधिक्याद्यमः क्रुद्धो निजघानांघ्रिणा च ताम् ।
मातृस्नेहाद्बालभावादाधिक्याद्दुःखवैभवात् ।। ६० ।।

क्रुद्धा छायापि तं सौरिं शशाप भृशदुःखिता ।
यस्मात्त्वया जनन्यास्तु गात्रे न्यस्तः पदः स्वयम् ।।
भूमौ निपततादुदुष्ट चरणस्ते यथाधमः ।। ६१ ।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सहसा पितुरंतिके ।
सर्वं निवेदयामास तस्याः शापादिकं तथा ।। ६२ ।।

यथाऽहं हि तथा सर्वे किमर्थं स्नेह वैभवम् ।
तया शापोऽपि दत्तो मे शृण्विदानीमनागसः[1] ।। ६३ ।।

किं न कुर्वंति मातुर्वै वात्सल्यात्पुत्रकाः प्रभो ।
न नूनं जननी चैवमस्माकं भगवन् विभो ।।
अन्येयं काचिदागत्य स्थिता वै तव वेश्मनि ।। ६४ ।।

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्या भास्करो रुष्टमानसः ।
दध्यौ क्षणं महादेवि ज्ञातवान् सपदि प्रभुः ।। ६५ ।।

आगत्य सहसा तत्र यत्र छाया समास्थिता ।
उवाच परमक्रुद्धश्चक्षुषा निर्दहन्निव ।। ६६ ।।

---

१. ऋणवि ।

हे महाभागे पार्वति ! इस प्रकार वह छाया भी संज्ञा से अभिन्न रूप होकर अपने पति सूर्य के समीप सन्तुष्ट मन से नित्य सुख-पूर्वक रहने लगी ।। ५७ ।।

भगवान् प्रभु सूर्य ने उस छाया में अपने ही माता के समान वर्ण वाले भविष्य के अष्टम मनु को उत्पन्न किया ।। ५८ ।।

तदनन्तर श्यामल अङ्गों वाले और अत्यधिक तेजस्वी शनैश्चर नामक पुत्र को उत्पन्न किया । तदनन्तर वह छाया अपने पुत्रों के प्रति अधिक स्नेह करने लगी ।। ५९ ।।

इस स्नेह की अधिकता के कारण क्रुद्ध होकर यम ने उस पैर से प्रहार किया । मातृ-स्नेह के कारण, आयु कम होने के कारण और अत्यधिक दुःख होने के कारण ।। ६० ।।

क्रुद्ध छाया ने भी बहुत दुःखी होकर उस सूर्य के पुत्र यम को शाप दिया कि हे दुष्ट ! क्योंकि तूने स्वयं एक माता के शरीर पर पैर मारा है अतः तुम्हारा यह नीच पैर भूमि पर गिर जाये ।। ६१ ।।

इस प्रकार उसके वचन को सुनकर वह यम तुरन्त पिता के पास गया और उसके शाप आदि के विषय में सब कुछ बताया ।। ६२ ।।

सुनिये, जैसे मैं हूँ वैसे ही अन्य सब हैं । किसी के प्रति अधिक स्नेह का वैभव क्यों हो । उसने अब मुझ निरपराध को शाप दे दिया है ।। ६३ ।।

वात्सल्य के कारण पुत्र माता के प्रति कौन सा व्यवहार नहीं करते । हे प्रभो ! निश्चय से यह हमारी माता नहीं है । हे भगवान् ! हे विभो ! यह कोई दूसरी है आपके घर में आकर स्थित हो गयी है ।। ६४ ।।

ईश्वर (शिव) बोले—

इस प्रकार उस पुत्र यम के वचन को सुनकर रुष्ट मन वाले सूर्य ने क्षण भर के लिये ध्यान किया । हे महादेवि ! और उस प्रभु ने शीघ्र सारी बात जान ली ।। ६५ ।।

जहाँ छाया बैठी हुयी थी, वहाँ सहसा आकर अत्यधिक क्रुद्ध नेत्र से मानो जलाते हुए वह बोला ।। ६६ ।।

विवस्वानुवाच—

वद शीघ्रं स्वकं रूपं का वा त्वं चंडिकाऽत्र वै।
किमर्थं शापितः पुत्रो यमः प्राणाधिको मम।। ६७।।

भस्मीकरोमि सहसा नोचेत्त्वं कथयाशु वै।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य वेपंती सहसा विभुम्।।६८।।

उवाच परमत्रस्ता छाया तस्य महात्मनः।
सवर्णाऽहं तु संज्ञायाः सा गता पितुरंतिके।। ६९।।

इति वै गदितं श्रुत्वा छायाया निश्चितं वचः।
उवाच स्वसुतं देवो यमं शापयुतं तदा।। ७०।।

न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातृवचः सुत।
मांसमादाय कीटास्ते पादाद्यास्यंति भूतलम्।। ७१।।

इति तं शांतयित्वा तु गतस्त्वष्टुर्गृहे तथा।
गत्वा तत्राप्रियं वाक्यं बभाषे[1] श्वशुरं प्रिये।। ७२।।

विवस्वानुवाच—

विश्वकर्मन्किमर्थं वै त्वया वै मम वल्लभा।
आनीता कुत्र सा नीता वद शीघ्रं मम प्रियाम्।। ७३।।

नोचेद् भस्मी[2] करिष्यामि त्वां च तां च क्षणादहम्।
निवेदयस्व शीघ्रं हि मया किं कथितं च ताम्।। ७४।।

विश्वकर्मोवाच—

भगवन्संहर क्रोधं सर्वं संपादयाम्यहम्।
संज्ञा ते तेजसा देवी तापिता सुतरामथ।। ७५।।

तस्मात्ते तेजसो ह्रासं करिष्यामि प्रभो स्वयम्।
तदा ह्यन्वेषयिष्यामि सुतां स्वीयां प्रियां तव।। ७६।।

---

१ श्वसुरन्तिकम्। २. भस्म।

सूर्य ने कहा—

अपने रूप के विषय में शीघ्र कहो। तू कौन सी चण्डिका यहाँ है। यम मुझको प्राणों से अधिक प्रिय है। तूने मेरे पुत्र यम को किसलिये शाप दिया है ॥ ६७ ॥

मैं तुझको एकदम भस्म करता हूँ। नहीं तो तू शीघ्र कह। इस प्रकार उसके वचन को सुनकर काँपती हुयी छाया ने तुरन्त भगवान् सूर्य को कहा ॥ ६८ ॥

अत्यधिक डरी हुयी छाया ने उस महात्मा सूर्य से कहा कि मैं संज्ञा के समान रूप रंग वाली हूँ। वह अपने पिता के पास गयी है ॥ ६९ ॥

इस प्रकार छाया के निश्चित कहे गये वचन को सुनकर देव सूर्य ने तब शापित अपने पुत्र यम से कहा ॥ ७० ॥

हे पुत्र ! माता के वचन को अन्यथा करना सम्भव नहीं है। तुम्हारे पैर से माँस को लेकर कीड़े पृथ्वी पर चलेंगे ॥ ७१ ॥

इस प्रकार उसको शान्त कर तदनन्तर सूर्य त्वष्टा के घर गया। हे प्रिये ! वहाँ जाकर सूर्य ने अपने श्वसुर से कटु वचन कहे ॥ ७२ ॥

सूर्य ने कहा—

हे विश्वकर्मन् ! तुम मेरी प्रिया को क्यों ले आये हो। लाकर तुम मेरी प्रिया को कहाँ ले गये हो। इस बात को शीघ्र कहो ॥ ७३ ॥

नहीं तो मैं तुमको और उस प्रिया को शीघ्र भस्म कर दूँगा। इसके विषय में तुम शीघ्र बताओ, मैंने उससे क्या कहा है ॥ ७४ ॥

विश्वकर्मा ने कहा—

हे भगवन् ! क्रोध को रोक लो। मैं सब कुछ ठीक करूँगा। तुम्हारे तेज से देवी संज्ञा बहुत अधिक संतप्त हो रही थी ॥ ७५ ॥

इसलिये हे प्रभो ! मैं स्वयं तुम्हारे तेज का ह्रास करूँगा। तदनन्तर मैं अपनी पुत्री और तुम्हारी प्रिया की खोज करूँगा ॥ ७६ ॥

इत्युक्त्वा वचनं तं वै भ्रमिमारोप्य पार्वति ।
तेजः संशातयामास तेजोह्रासं चकार ह ।। ७७ ।।

तेन वै तेजसा त्वष्टा चकार विष्णुचक्रकम् ।
ऐन्द्रं बज्रं कुमारस्य शक्तिं क्रौंचवधाय च ।। ७८ ।।

एकस्यादित्यवपुषश्चक्रे द्वादशसूर्यकान् ।
सर्वेषां देववर्य्याणां शस्त्रान्यस्त्राणि पार्वति ।। ७९ ।।

अथोवाच रविं त्वष्टा प्रहस्य सह्यतेजसम् ।
चिरं ध्यात्वा तु तां बुद्ध्वा त्रैलोक्यतिमिरापहम् ।। ८० ।।

वडवारूपमास्थाय कुरुषु वर्त्तते हि सा ।
तत्र गच्छ महाबाहो समानय स्ववल्लभाम् ।। ८१ ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा गतस्तत्र महाप्रभुः ।
ध्यायन्तीं तां परं ज्योतिर्वडवारूपमास्थिताम् ।। ८२ ।।

ददर्श भगवान् सूर्यस्तदवस्थागतां प्रियाम् ।
स्वयं च भगवान् सूर्यो हयरूपधरस्तदा ।। ८३ ।।

तं दृष्ट्वा सहसा संज्ञा परपुंसो विशंकया ।
मुखं संभावयामास तत्र वीर्य्यमवासृजत् ।। ८४ ।।

सा तन्निखमच्छुक्रं नासारंध्रेण वै रवेः ।
अश्विनौ[1] भिषजौ देवौ जातौ तस्य महात्मनः ।। ८५ ।।

नासत्यश्चैव दस्रश्च रूपेणाप्रतिमौ च तौ ।
सा तु दृष्ट्वा स्वभर्तारं तुतोष वरवर्णिनी ।। ८६ ।।

---
१. आश्विनौ ।

हे पार्वति ! इस प्रकार के वचन को कहकर उस त्वष्टा ने सूर्य को खराद पर चढ़ाकर उसके तेज को काट दिया और उसके तेज को कम कर दिया ॥ ७७ ॥

त्वष्टा ने उस तेज से विष्णु के लिये चक्र बनाया, इन्द्र के लिये वज्र बनाया तथा क्रौच का वध करने हेतु कुमार कार्तिकेय के लिये शक्ति बनायी ॥ ७८ ॥

हे पार्वति ! त्वष्टा ने एक ही सूर्य के शरीर से १२ सूर्यों की रचना की। उसने सभी श्रेष्ठ देवताओं के लिये अस्त्रों एवं शस्त्रों को बनाया ॥ ७९ ॥

उसके पश्चात् अधिक समय तक ध्यान करके उस संज्ञा के विषय में जानकर तीनों लोकों के अन्धकार को नष्ट करने वाले तथा सहन करने योग्य तेज वाले सूर्य से त्वष्टा ने कहा ॥ ८० ॥

हे महाबाहो ! वह संज्ञा घोड़ी का रूप धारण करके कुरु प्रदेश में विचरण कर रही है। वहाँ जाओ और अपनी प्रिया को सम्मानित करके ले आओ ॥ ८१ ॥

इस प्रकार उस त्वष्टा के वचन सुनकर वे महा प्रभु सूर्य उस कुरु जनपद में गये। वहाँ उन्होंने घोड़ी के रूप में स्थित ध्यान करती हुयी परम ज्योति उसको देखा ॥ ८२ ॥

वहाँ भगवान् सूर्य ने उस अवस्था को प्राप्त हुयी प्रिया को देखा। तब भगवान् सूर्य ने स्वयं घोड़े का रूप धारण कर लिया ॥ ८३ ॥

उस घोड़े को देखकर संज्ञा को सहसा दूसरे पुरुष की शंका हुयी और उसने मुख को खोला। सूर्य ने वहीं अपने वीर्य को छोड़ दिया ॥ ८४ ॥

उस संज्ञा ने सूर्य के वीर्य को नासिका में छेद से निकाल दिया। उस महात्मा के अश्विनी नाम के पुत्र हुये, जो देवताओं के वैद्य बने ॥ ८५ ॥

उनमें एक का नाम नासत्य और दूसरे का नाम दस्र था। वे सौन्दर्य में अप्रतिम थे। वह संज्ञा नाम की सुन्दरी अपने पति को देखकर संतुष्ट हुयी ॥ ८६ ॥

तामानयित्वा भगवान् संज्ञां चैव महौजसा ।
रेमे तया सुखं सूर्यस्तथा सा सुखिताऽभवत् ।। ८७ ।।

यमश्च कर्मणा तेन पापिनां शासने रतः ।
धर्मेण रंजयामास धर्मराडिति विश्रुतः ।। ८८ ।।

संतुष्टो भास्करः प्रादात्पितृणां स्वामितां[1] च वै ।
यमुना[2] च महाभागे त्रैलोक्यहितकांक्षया ।। ८९ ।।

नदी जाता महाभागा यमुनोत्तरवासिनी ।
यस्या वै दर्शनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ९० ।।

पूर्वं जातो महातेजाः सुतो वैवस्वतो मनुः ।
सांप्रतं यो महाभागे वर्त्तते मनुसत्तमः ।। ९१ ।।

छायाया अपि पुत्रौ द्वौ शनिः सावर्णिकस्तथा ।
शनिस्तु ग्रहतां प्राप्तः सर्वजंतुविमर्दनः ।। ९२ ।।

सावर्णिको महातेजाः पूर्वेण तपसा मनुः ।
महामाया प्रभावेण भविष्यत्यष्टमो मनुः ।। ९३ ।।

श्रृणु सप्तर्षयो ये वै भविष्यन्ति महेश्वरि ।
अश्वत्थामा कृपाचार्यो रामो व्यासस्तथा स्मृतः ।। ९४ ।।

कौशिको गालवश्चैव रुरुर्वै सप्तमो मुनिः ।
एते सप्तर्षयो देवि भविष्यत्यंतरे मनोः ।। ९५ ।।

देवाः प्रत्यक्षधर्माणो बलिरिन्द्रो भविष्यति ।
तेषामेवान्वया देवि गोत्रप्रावर्तकाः पुनः ।। ९६ ।।

---

१. स्वात्मतोमिताम् । २. यमुनां ।

महान् तेजस्वी भगवान् सूर्य संज्ञा को अपने घर लाकर सुखपूर्वक उसके साथ रमण करने लगे। वह संज्ञा भी सुखी हुयी ॥ ८७ ॥

यम अपने कर्म से पापियों का शासन करने लगा तथा धर्म से सबको आनन्दित करने लगा। वह धर्मराज नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ८८ ॥

संतुष्ट होकर सूर्य ने उसको पितरों का स्वामी बनाया। हे महाभागे ! तीनों लोकों के हित की इच्छा से यमुना भी ॥ ८९ ॥

यमुनोत्तरी से निकलने वाली महाभाग्यशालिनी नदी हो गयी, जिसके दर्शन करने से मनुष्य तत्काल सभी पापों से छूट जाता है ॥ ९० ॥

हे महाभागे पार्वति ! पहले विवस्वान् का पुत्र महातेजस्वी मनु उत्पन्न हुआ था, जो अब मनुसत्तम कहलाता है ॥ ९१ ॥

छाया के भी दो पुत्र शनि और सावर्णिक हुए थे। शनि तो सभी प्राणियों का विनाश करने वाला ग्रह बन गया ॥ ९२ ॥

महातेजस्वी सावर्णिक अपनी पहली तपस्या से मनु हुआ। वह महामाया के प्रभाव से अष्टम मनु हुआ ॥ ९३ ॥

हे महेश्वरि ! इस अष्टममन्वंतर में जो सात ऋषि होंगे उनके विषय में सुनो —अश्वत्थामा, कृपाचार्य, परशुराम और व्यास ॥ ९४ ॥

विश्वामित्र, गालव, और सातवें रुरु। हे देवि ! इस मन्वन्तर में ये सात ऋषि होंगे ॥ ९५ ॥

हे देवि ! इस मन्वन्तर में देवता प्रत्यक्षधर्मा होंगे और बलि इन्द्र होगा। उनके ही कुल के लोग गोत्रों का प्रवर्त्तन करने वाले होंगे ॥ ९६ ॥

सप्तर्षयस्तु येये वै प्रोक्ता मन्वंतरं प्रति ।
भूयस्त एव मनुषु भविष्यंति सुताः स्वयम् ।। ९७ ।।

देवाश्चापि तपस्यंतो मनुष्याः पूर्वके मनौ ।
भविष्यंति महेशानि मया दृष्टाः पुनः पुनः ।। ९८ ।।

जलयंत्रघटा यद्वद्गच्छंत्यायांति पार्वति ।
तद्वत्संसारजालं तु वर्त्तते वरवर्णिनि ।। ९९ ।।

सर्वमेवास्थिरं प्रोक्तं ब्रह्मादिस्तंबसंयुतम् ।
कश्चित्प्राणी[1] युगे नष्टः कश्चिद्युगसहस्रके[2] ।। १०० ।।

परिणामे च सर्वेषां क्षयो भवति पार्वति ।
अक्षयं तु परं ब्रह्म विश्वरूपं बहिः स्थितम् ।। १०१ ।।

तदेव परमं ब्रह्म गंगाख्यं भुवि पार्वति ।
सर्वं मन्ये त्वदध्रुवं हि ध्रुवमेकं परात्परम् ।। १०२ ।।

कृतत्रेतादिकः कालस्तथा मन्वंतरादिकः ।
तत्सर्वं हि महाभागे गंगारूपी महाप्रभुः ।। १०३ ।।

इति ते कथिता देवि मनूनां संस्थितिर्मया ।
सर्वपापहरा नित्या पठतां शृण्वतां तथा ।। १०४ ।।

इति स्कान्दे केदारखण्डे मन्वंतरास्थितिवर्णनं
नाम नवमोऽध्यायः ।

---

१. पाणि । २ पाद ।

प्रत्येक मन्वन्तर में मैंने जिन-जिन सप्तर्षियों को कहा है पुनः अगले मन्वन्तर में वे ही पुत्रों के रूप में उत्पन्न होंगे ।। ९७ ।।

हे महेशानि ! पहले मन्वन्तरों में जो मनुष्य और देवता तपस्या करेंगे अगले मन्वन्तरों में वे उसी रूप में उत्पन्न होंगे । इस बात को मैंने पुनः पुनः देखा है ।। ९८ ।।

हे पार्वति ! जिस प्रकार रहट के बर्तन आते रहते हैं और जाते रहते हैं, हे सुन्दरि ! उसी प्रकार संसार का जल प्रवर्तित रहता है ।। ९९ ।।

ब्रह्मा आदि के समूह से लेकर यह सम्पूर्ण जगत् अस्थिर कहा गया है । कोई प्राणी तो एक युग में नष्ट हो जाता है और कोई एक हजार युग में नष्ट होता है ।। १०० ।।

हे पार्वति ! अन्त में सभी का विनाश होता है । वह परब्रह्म ही अविनाशी है और विश्व के रूप में सबके बाहर स्थित है ।। १०१ ।।

हे पार्वति ! इस पृथ्वी पर वह परम ब्रह्म ही गंगा के नाम से प्रसिद्ध है । मैं सबको अस्थिर मानता हूँ । वह परम ब्रह्म ही स्थिर है ।। १०२ ।।

हे महाभागे ! यह सत्ययुग, त्रेतायुग आदि काल तथा मन्वन्तर आदि गंगा रूपी उस महाप्रभु में सब स्थित हैं ।। १०३ ।।

हे देवि ! मैंने तुमको सभी मनुओं की स्थिति कह दी है । इसको नित्य पढ़ने और सुनने वालों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।। १०४ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मन्वन्तरस्थिति
वर्णन नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

दशमोऽध्यायः

कृतयुगत्रेतायुगादिप्रमाणप्रदर्शनं कलाकाष्ठादिकालसंख्यानिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

कृतत्रेतादिकानां च मनूनां ब्रह्मणस्तथा।
वर्षाणि कथयिष्यामि शृणु वै गदतो मम ॥ १ ॥

निमेषैः पंचदशभिः काष्ठोक्ता ब्रह्मवादिभिः।
त्रिंशत् काष्ठा भवेद्देवि कला तत्त्रिंशतिस्तथा ॥ २ ॥

मुहूर्त्त इति मानेन अहोरात्रं तु त्रिंशता।
त्रिंशद्भिश्च अहोरात्रैः पक्षद्वयं सितासितम् ॥ ३ ॥

स एव मासो विज्ञेयो गणनज्ञैः समीरितः।
द्वाभ्यामाभ्यामृतुः प्रोक्तोऽयनं[1] च ऋतुभिस्त्रिभिः ॥ ४ ॥

उत्तरं चैव पूर्वोक्तं दक्षिणं च तथैव च।
अयनाभ्यां च द्वाभ्यां च वर्षं स्यान्मानुषः[2] प्रिये ॥ ५ ॥

मानुषेण तु मानेन मासो यः समुदाहृतः।
पितॄणां तदहोरात्रं क्रमाच्चैव सितासितम् ॥ ६ ॥

देवानां च तथा रात्रिर्दक्षिणायनमुच्यते।
उत्तरायणं च तदहो वर्त्तते मम वल्लभे ॥ ७ ॥

शतत्रयं च षष्टिश्चाहोरात्राणां महेश्वरि।
दैवः संवत्सरः प्रोक्तः पुराणैर्ऋषिभिः पुरा ॥ ८ ॥

---

१ प्रोक्तापनं। २ मुख्यतः।

अध्याय १०

कृतयुग, त्रेतायुग आदि के प्रमाण, कला-काष्ठ आदि काल की संख्या का निरूपण

ईश्वर (शिव) बोले—

सत्ययुग, त्रेतायुग आदि के मनुओं के और ब्रह्मा के वर्षों के विषय में कहूँगा। जो कुछ मैं कह रहा हूँ, उसको तुम निश्चय से सुनो ॥ १ ॥

हे देवि ! ब्रह्मवादियों ने पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा बतायी है। तीस काष्ठाओं की एक कला होती है और तीस कलाओं का ॥ २ ॥

एक मुहूर्त्त होता है। तीस मूहर्त्त के नाप का एक दिन-रात होता है। तीस दिन-रातों से दो पक्ष होते हैं। इनमें एक शुक्ल पक्ष और एक कृष्ण पक्ष है ॥ ३ ॥

गणना जानने वाले का कथन है कि इन दो पक्षों को ही एक मास जानना चाहिये। दो मासों से एक ऋतु छोटी है। तीन ऋतुओं से एक अयन कहा गया है ॥ ४ ॥

इनमें पहला उत्तरायण और दूसरा दक्षिणायन होता है। हे प्रिय इन दो अयनों से मनुष्यों का एक वर्ष होता है ॥ ५ ॥

मनुष्यों के परिमाण के अनुसार जिस महीने को बताया गया है, वह पितरों का एक अहोरात्र है। वह क्रमशः शुक्ल और कृष्ण होता ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि कहा जाता है और उत्तरायण उनका दिन है ॥ ७ ॥

हे महेश्वरि ! ऋषियों ने पहले कभी कहा था कि तीन सौ साठ दिन-रातों का एक दैव संवत्सर होता है ॥ ८ ॥

दिव्यमब्दं दशगुणमहोरात्रं मनोः स्मृतम् ।
दशपंच[1] अहोरात्रं मानवः पक्ष उच्यते ॥ ९ ॥

पक्षो दशगुणो मासस्तैश्च द्वादशभिर्मया ।
ऋतुश्चैव तथा ख्यातो मानवो वरवर्णिनि ॥ १० ॥

दिव्येन त्विह मानेन वर्षाणां च सहस्रकैः ।
चतुर्भिर्हि कृतयुगं संध्या च तावती सती ॥ ११ ॥

संध्यांशश्च तथा ख्यातः सर्वधर्मविशारदैः ।
त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु दिव्यैस्त्रेतायुगं स्मृतम् ॥ १२ ॥

संध्या संध्यांशकौ प्रोक्तौ षट्शतैर्मुनिपुंगवैः ।
द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां द्वापरं युगमुच्यते ॥ १३ ॥

तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशश्च तथा स्मृतः ।
कलिश्चैक[2] सहस्रं तु संध्याचैकशती मता ॥ १४ ॥

तथा संध्यांशकः प्रोक्तो मानेन मम बल्लभे ।
वर्षद्वादशसाहस्री युगसंख्या[3] प्रकीर्तिता ॥
दिव्या[4] वै युगसंख्या हि श्रृणु पार्वति कथ्यते ॥ १५ ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव महेश्वरि ।
चतुर्णां च युगानां च युगं वै दिव्यकं स्मृतम् ॥ १६ ॥

तावती च भवेद्रात्रिः कल्पश्चैव[5] मया स्मृतः ।
यदेतत्परमं ब्रह्म गंगाख्यं दिव्यरूपकम् ॥ १७ ॥

तस्मिन्नेव महातोये निमज्जति जगत्त्रयम् ।
तत्र शेते महादेवि ब्रह्माख्यो विष्णुरूपकः ॥ १८ ॥

---

१ पक्ष्य । २. चैव । ३. पि कथ्यंते ।
४. "दिव्या ···· कथ्यते" पाठ इसमें नहीं है । ५. च स ।

मनु का वर्ष दिव्य है और उसमें दस गुने दिन-रात होते हैं । पन्द्रह दिन-रात का मानव पक्ष कहा जाता है ॥ ९ ॥

दिव्य पक्ष में मास इसका दस गुना होता है । १२ मासों से एक वर्ष होता है । हे सुन्दरि ! मनुष्यों की ऋतु भी उसी हिसाब से कही गयी है ॥ १० ॥

दिव्य वर्ष का मान हजार वर्ष का है और चार हजार वर्षों का एक सत्य युग है । उतने ही परिमाण की सन्ध्या भी होती है ॥ ११ ॥

धर्म को सभी प्रकार जानने वाले ऋषियों ने उसको सन्ध्यांश कहा है । तीन हजार दिव्य वर्षों का एक त्रेता युग होता है ॥ १२ ॥

मुनिश्रेष्ठों का कथन है कि छह सौ वर्षों में इसमें सन्ध्या तथा सन्ध्यांश होते हैं । दो हजार वर्षों का द्वापरयुग कहा गया है ॥ १३ ॥

इसमें दो सौ वर्षों के सन्ध्या और सन्ध्यांश होते हैं । एक सहस्त्र वर्षों का कलियुग होता है और सन्ध्या एक सौ वर्षों की होती है ॥ १४ ॥

हे प्रिये ! उतने ही परिमाण का सन्ध्यांश होता है । युगों की संख्या १२ हजार वर्ष की कही गयी है । हे पार्वति ! मैं युगों की दिव्य संख्या को कह रहा हूँ इसे सुनो ॥ १५ ॥

सत्ययुग, त्रेता युग और द्वापर युग ये चार युग होते हैं । हे महेश्वरि ! इन चार युगों को मिलाकर एक दिव्य युग होता है ॥ १६ ॥

इतने ही परिमाण की रात्रि होती है । इन सबको मिलाकर एक कल्प होता है । इसी को दिव्य रूप वाला गंगा नाम का परम ब्रह्म कहा गया है ॥ १७ ॥

उस ब्रह्म रूप महान् जल में ही तीनों जगत डूबे रहते हैं । उस जल में, हे महादेवि ! ब्रह्म नाम के विष्णु शयन करते हैं ॥ १८ ॥

पुनर्युगसहस्रे तु समतीते महेश्वरि ।
पुनस्तथैव कुरुते ब्रह्मा सर्गादिकीं क्रियाम् ॥ १९ ॥

एतत्कल्पशतैश्चैव त्रिभिः षड्भिश्च पार्वति ।
ब्राह्मो वर्षस्तथा ख्यातस्तैश्च वर्षशतं तथा ॥ २० ॥

आयुर्वै कथितं ब्राह्मं द्विपरार्द्धं तथा स्मृतम् ।
पुनर्द्वितीयकल्पे तु हनूमांश्च भविष्यति ॥ २१ ॥

जाता अनंतो ब्रह्माणो भविष्यंति महेश्वरि ।
युगांतकाले भगवान्रुद्ररूपी जनार्दनः ॥ २२ ॥

क्षयं नयति सर्वं हि ब्रह्मांडांतरगोचरम् ।
स्थावरं च चरं चैव सर्व्वंन्नयति भस्मसात् ॥ २३ ॥

कथितं ते मया देवि कालस्य परिमाणकम् ।
गंगाख्यं परम ब्रह्म शृण्वतां पठतां शुभम् ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालसंख्यानाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

ब्रह्मदक्षिणाङ्गुष्ठजदक्षाद् ब्रह्मवामाङ्गुष्ठजनारीद्वारा कन्यासृष्टिस्तास्वदित्यां कश्यपात् सूर्योत्पत्तिस्ततश्च वैवस्वतादिसुतानामिलाकन्यायाश्चोत्पत्तिस्ततश्च तद्वंशद्वयवर्णनम्

पार्वत्युवाच—

इक्ष्वाकुप्रमुखा ये वै वैवस्वतमनोः सुताः ।
तेषां विस्तरतो ब्रह्मन् वंशं ब्रूहि मम प्रभो ॥ १ ॥

हे महेश्वरि ! एक हजार युगों के व्यतीत हो जाने पर पुनः उसी प्रकार से ब्रह्मा सृष्टि की रचना आदि क्रियाओं को करते हैं। यही कल्प है ॥ १९ ॥

हे पार्वति ! इन एक सौ नौ कल्पों का एक ब्राह्म वर्ष (ब्रह्मा का वर्ष) कहा गया है। इन ९०० ब्राह्म वर्षों की ॥ २० ॥

ब्रह्मा की आयु बतायी गयी है। इसका पूरा परिमाण दो परार्द्ध वर्ष का है। पुनः दूसरे कल्प में हनूमान् उत्पन्न होंगे ॥ २१ ॥

हे महेश्वरि ! अनन्त ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं और होंगे। युगों के अन्त समय में (प्रलय काल में) रुद्र रूपी भगवान् विष्णु ॥ २२ ॥

ब्रह्माण्डों के अन्दर विद्यमान पदार्थों को नष्ट करते हैं। वे स्थावर और जङ्गम सभी पदार्थों को जला देते हैं ॥ २३ ॥

हे देवि ! मैंने गंगा नाम के परम ब्रह्म रूप काल के परिमाण को तुमसे कहा है। इसको सुनने तथा पढ़ने वालों का कल्याण होगा ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कालसंख्या नाम का
दशम अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ११

ब्रह्मा के दायें अंगूठे से दक्ष और बायें अंगूठे से नारी की उत्पत्ति, उनसे कन्याओं की सृष्टि, कश्यप से अदिति में सूर्य की उत्पत्ति, तदनन्तर वैवस्वत पुत्रों की इला कन्या की उत्पत्ति, तदनन्तर इनसे उत्पन्न दो वंशों का वर्णन

पार्वती ने कहा—

ब्रह्म रूप हे प्रभो ! वैवस्वत मनु के जो इक्ष्वाकु आदि प्रमुख पुत्र हुए थे, उनके वंश के विषय में मुझे विस्तार से बताइये ॥ १ ॥

चन्द्रवंशे कथ जाताः के वै श्रेष्ठतरा नृपाः ।
तेषां च चरितं सर्वं कथय त्वं मम प्रिय ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि ये जातास्मिन्कुलार्णवे ।
महानुभावचरितवृत्तान्तं प्राणवल्लभे ॥ ३ ॥

येषां वै कीर्त्तनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तं श्रृणुष्व महावंशं सूर्यसोमात्मकं प्रिये ॥ ४ ॥

अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये महानृपाः ।
तान् वक्ष्यामि तवाग्रे तु भक्तिस्ते परमा यतः ॥ ५ ॥

परात्मा निर्गुणः शांतश्चक्षुरादिविवर्जितः ।
प्रकृत्यात्मा समायुक्तस्तस्माज्जातः प्रजापतिः ॥ ६ ॥

ब्रह्मणो दक्षिणांगुष्ठाद्दक्षो नाम वभूव ह ।
वामांगुष्ठात्तथा नारी दक्षस्याभूत्परिग्रहः ॥ ७ ॥

दक्षकन्याश्च पूर्वोक्तास्तासां या अदितिस्तु सा ।
सूर्यं वै तेजसो राशिं पुत्रं प्रासूत कश्यपात् ॥ ८ ॥

आदित्यश्च महातेजाः संज्ञायां वैवस्वतं मनुम् ।
जनयामास धर्मज्ञो नृपाद्यं जगदीश्वरि ॥ ९ ॥

वैवस्वतमनुश्चैव इक्ष्वाकुप्रमुखान् सुतान् ।
कन्यामेकामिलां चैव चंद्रवशविवर्द्धिनीम् ॥ १० ॥

प्रत्येकशः श्रृणु प्राज्ञे मनुपुत्रान् महौजसः ।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो नरिष्यान् प्रांशुरेव च ॥ ११ ॥

हे प्रिये ! चन्द्रवंश में कौन-कौन से श्रेष्ठ राजा उत्पन्न हुए थे । उनके चरित के विषय में मुझे सब कुछ बताइये ।। २ ।।

ईश्वर (शिव) ने कहा—

हे प्राणों से प्रिय देवि ! इस कुल रूपी समुद्र में जो उत्पन्न हुए थे उन महानुभावों के चरित्र के वृतान्त को मैं कहूँगा ।। ३ ।।

हे प्रिये ! जिनका कीर्तन करने से मनुष्य तत्काल सभी पापों से छूट जाता है, उन सूर्य और चन्द्र नामक महान् वंशों के विषय में सुनो ।। ४ ।।

जो महान् राजा भूतकाल में हो चुके हैं, वर्तमान समय में विद्यमान हैं और भविष्य में होंगे, उनके विषय में तुम्हारे समक्ष कहूँगा, क्योंकि तुम्हारे अन्दर परम भक्ति है ।। ५ ।।

परमातमा गुणों से रहित, शान्त चक्षु, आदि से रहित, प्रकृति रूप आत्मा, सत्व, रजस, तमस् के सम भाव से युक्त हैं। उनसे प्रजापति उत्पन्न हुए थे ।। ६ ।।

ब्रह्म के दाहिने अंगूठे से दक्ष उत्पन्न हुए और बायें अंगूठे से नारी उत्पन्न हुयी । दक्ष का उस नारी से विवाह हुआ ।। ७ ।।

दक्ष की कन्याओं के सम्बन्ध में पहले ही कहा गया है । उनमें अदिति का कश्यप से विवाह हुआ । उसने तेज की राशि रूप सूर्य पुत्र को उत्पन्न किया ।। ८ ।।

हे जगत् की स्वामिनि ! महातेजस्वी सूर्य ने संज्ञा नाम की पत्नी में वैवस्वत मनु को उत्पन्न किया । धर्म को जानने वाला वह पहला राजा हुआ ।। ९ ।।

वैवस्वत मनु को इक्ष्वाकु आदि अनेक पुत्र हुए । उसकी इला नाम की एक कन्या हुयी, जिसने चन्द्रवंश की वृद्धि की ।। १० ।।

हे बुद्धिमती पार्वति ! महातेजस्वी मनु के पुत्रों में प्रत्येक का नाम सुनो । इक्ष्वाकु, नाभाग, नरिष्यान्, प्रांशु ।। ११ ।।

धृष्टः शर्यातिनाभौ च करूषश्च तथैव च।
पृषध्रश्च नवैते वै मनुपुत्रा महाबलाः ॥ १२ ॥

इलायाः शृणु देवेशि कथ्यमानं महेश्वरि।
इष्टिं चक्रे पुत्रकामी वैवस्वतमनुः प्रिये ॥ १३ ॥

पूर्वमेव यदा देवि समायातो वसुस्तदा।
तस्यामिष्ट्यां प्रवर्त्तत्यां मित्रावरुणयोस्तदा ॥ १४ ॥

अंशेन हूयमानायामाहुत्यां सर्वदानवाः।
ऊचुः परस्परं सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः ॥ १५ ॥

अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहोश्रुतमहोऽद्भुतम्।
यत्र दिव्यांबरधरा कन्या परमसुन्दरी ॥ १६ ॥

इः काम इति संप्रोक्तस्तं लातीति यतस्त्विला।
इत्यूचुः सर्वमुनयो विस्मयाविष्टमानसाः ॥ १७ ॥

आगच्छेले ! मया सार्धमित्युवाच मनुस्तदा।
तमिला प्रत्युवाचेदं मनुं दंडधरं नृप ॥ १८ ॥

इलोवाच—

जातास्मि मित्रावरुणयोरंशेन मनुसत्तम।
तत्रैवाहं गमिष्यामि नोचेद्धर्मक्षतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा तु मनुं सा तु सत्यधर्मपरायणा।
ययौ समीपं हि तयोर्मित्रावरुणयोस्तदा ॥ २० ॥

तत्र गत्वा महेशानि ववंदे चरणौ तयौः।
उवाच भक्तिसंपन्ना विनयाविष्टमानसा ॥ २१ ॥

धृष्ट, शर्याति, नाभ, करुष और पृषध्र ये मनु के महाबलशाली नौ पुत्र हुए ॥ १२ ॥

हे देवताओं की स्वामिनी महेश्वरि ! मैं इला के विषय में कहता हूँ उसे सुनो । हे प्रिये ! वैवस्वत मनु ने पुत्र की कामना से यज्ञ किया ॥ १३ ॥

हे देवि ! उस यज्ञ के प्रारम्भ होने पर तब वसु नामक देवता सबसे पहले आये । उस समय मित्र और वरुण के ॥ १४ ॥

अंश से आहुति दिये जाने पर विस्मय से भरे मन वाले सब दानव आपस में कहने लगे ॥ १५ ॥

इस मनु की तपस्या, पराक्रम और विद्या आश्चर्यजनक हैं, अद्भुत हैं, जहाँ कि दिव्य वस्त्रों को धारण करने वाली यह परम सुन्दरी कन्या प्राप्त हुई है ॥ १६ ॥

सभी मुनि भी विस्मय से आविष्ट मन वाले होकर इस प्रकार कहने लगे कि 'इ' काम को कहते हैं । क्योंकि यह कन्या उस काम को लाने वाली है, अतः इसका नाम इला है ॥ १७ ॥

तब मनु ने कहा—हे इले ! तुम मेरे साथ आओ । दण्ड को धारण करने वाले उस राजा मनु को इला ने यह प्रत्युत्तर दिया ॥ १८ ॥

इला ने कहा—

हे श्रेष्ठ मनु ! मैं मित्र और वरुण के अंश से उत्पन्न हुयी हूँ । मैं वहीं जाऊँगी । अन्यथा धर्म की हानि होगी ॥ १९ ॥

ईश्वर (शिव) बोले—

सत्य और धर्म का पालन करने वाली वह इला उस समय इस प्रकार मनु को कहकर उन मित्र और वरुण देवताओं के पास चली गयी ॥ २० ॥

हे महेशानि ! वहाँ जाकर उसने उन दोनों के चरणों में वन्दना की । वह विस्मय से आविष्ट मन वाली तथा भक्ति से भरी हुयी कहने लगी ॥ २१ ॥

इलोवाच—

जातास्मि भवतामंशादिलानाम्नी सुविश्रुता।
मनोरिष्ट्यां समुत्पन्ना त्वत्समीपमुपागता ॥ २२ ॥

उवाचात्मसुतां मां हि अनुगच्छस्व त्वं मनुः।
मयोक्तं मित्रावरुणौ गच्छामि पितरौ मम[1] ॥
युवामाज्ञापयेतां[2] मां किं करोमि हि सांप्रतम् ॥ २३ ॥

मित्रवरुणावूचतुः—

धन्यासि त्वं महाभागे यस्यास्तु भक्तिरीदृशी।
तुष्टौ स्वस्ते महाभागे प्रश्रयेण दमेन च ॥ २४ ॥

आवयोस्त्वं महाभागे कन्या ख्यातिं गमिष्यसि।
इदानीं गच्छ तत्रैवोभयवंशविवर्द्धिनी ॥ २५ ॥

मनोर्वंशकरस्त्वं हि सुद्युम्न इति विश्रुतः।
यशसा तपसा युक्तो रूपेणाप्रतिमो भुवि ॥ २६ ॥

ईश्वर उवाच—

तयोरिति वचः श्रुत्वा हर्षसंपूर्णमानसा।
समाययौ बुधस्याथ आश्रमे मुनिपूजित[3] ॥ २७ ॥

त्रैलोक्यसुन्दरीं तां तु दृष्ट्वा चांद्रिः प्रतापवान्।
कामस्य शरभिन्नांगो मदविह्वललोचनः ॥ २८ ।

उवाच वचनं तां तु गच्छ मानामिलां बुधः।
क्व गच्छसि महाभागे हृत्वा में मानसीं स्थितिम् ॥ २९ ॥

का वा त्वं शुभसर्वांगी देवी वा मानुषी हि वा।
न वै त्वत्सदृशी लोके दृष्टा नास्ति त्रिलोकके ॥ ३० ॥

शाधि मां सोमपुत्रं हि बुधेति परिकीर्त्तितम्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा तमिला प्रत्यभाषत ॥ ३१ ॥

---

१. हि च साम्प्रतम्। २. "युवा·· साम्प्रतम्" पाठ इसके नहीं है। ३. ते।

इला बोली—

मैं इला नाम से प्रसिद्ध आपके अंश से उत्पन्न हुयी हूँ। मनु के यज्ञ में उत्पन्न होकर तुम्हारे समीप आयी हूँ ॥ २२ ॥

अपनी पुत्री मुझसे मनु ने कहा था कि तुम मेरे पीछे आओ। मैंने कहा कि मित्र और वरुण मेरे पिता हैं, मैं वहाँ जाती हूँ। तुम दोनों आदेश दो कि मैं अब क्या करूँ ॥ २३ ॥

मित्र और वरुण बोले—

हे महाभागे ! तुम धन्य हो, जिसकी कि इस प्रकार की भक्ति है। हे महाभागे तुम्हारे विनय और दम से हम सन्तुष्ट हैं ॥ २४ ॥

हे महाभागे ! तुम हम दोनों की कन्या के रूप में प्रसिद्ध होगी। अब वहीं चली जाओ और दोनों वंशों की वृद्धि करो ॥ २५ ॥

तुम मनु के वंश को बढ़ाने वाले सुद्युम्न के रूप में परिणत होकर प्रसिद्ध होगी। वह सुद्युम्न यशस्वी और तपस्वी तथा संसार में अप्रतिम सौन्दर्य वाला होगा ॥ २६ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

उन मित्र और वरुण के इस प्रकार के वचन को सुनकर हर्ष से भरे मन वाली वह इला इसके पश्चात् मुनियों से पूजित बुध के आश्रम में आयी ॥ २७ ॥

तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उसको देखकर वह प्रतापी चन्द्र-पुत्र बुध कामदेव के बाणों से बिंधे अंग वाला तथा मद से विह्वल नेत्रों वाला हो गया ॥ २८ ॥

जाती हुयी उस इला से बुध ने यह वचन कहा, "हे महाभागे—तुम मेरे मन को हरण करके कहाँ जाती हो" ? ॥ २९ ॥

हे सभी शुभ अंगों वाली ! तुम कौन हो ? देवी हो अथवा मानुषी हो ? इस लोक में और तीनों लोकों में तुम्हारे सदृश और कोई नहीं है ॥ ३० ॥

मुझको तुम चन्द्रमा का पुत्र समझो, जो बुध कहा जाता है। उसके इस वचन को सुनकर इला ने उसे यह प्रत्युत्तर दिया ॥ ३१ ॥

इलोवाच—

अहं मनुसुता ब्रह्मन् मित्रावरुणयोस्तथा ।
जातास्म्यंशेन भगवन्निला नाम्नीति विश्रुता ।। ३२ ।।

ईश्वर उवाच—

बुध इत्युक्तवतीं तां संगृह्य बाहुना तदा ।
आश्लिष्य सहसा देवि मैथुनायोपचक्रमे ।। ३३ ।।

तस्यां च जनयामास पुत्रं परमसुन्दरम् ।
नाम्ना पुरूरवा जज्ञे इलापुत्रो महायशाः ।। ३४ ।।

जनयित्वा तु तं पुत्रमिला सुद्युम्नतां गता ।
सुद्युम्नोऽपि महादेवि सूर्यवंशविवर्द्धनः ।। ३५ ।।

सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा बभूवुरमितौजसः ।
उत्कलश्च गयश्चैव विनीताश्वश्च पार्वति ।। ३६ ।।

दिक्पूर्वा उत्कलस्याभूत् गयस्य तु गयापुरी ।
दक्षिणा सुमहाभागे विनीताश्वस्य पार्वति ।। ३७ ।।

मनुश्चापि महातेजाः प्रविष्टो हि दिवाकरम् ।
दिवाकरं प्रविष्टे तु दशधा भाजिता धरा ।। ३८ ।।

इति ते कथिता देवि इलोत्पत्तिर्मया शुभे ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ।। ३९ ।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे चंद्रवंशानुकीर्त्तने
इलोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ।

इला बोली—

हे ब्रह्मन् ! मैं मनु की पुत्री हूँ और मित्रवरुण के अंश से उत्पन्न हुयी हूँ। मेरा नाम इला प्रसिद्ध है ।। ३२ ।।

ईश्वर (शिव) बोले—

हे देवि ! इस प्रकार कहती हुयी उस इला को तब बुध ने भुजा से पकड़ लिया। एकाएक उसका आलिंगन करके संभोग करने लगा ।। ३३ ।।

बुध ने उस इला में परम सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया। वह इला का पुत्र महायशस्वी था और पुरुरवा नाम से प्रसिद्ध हुआ ।। ३४ ।।

उस पुत्र को उत्पन्न करके इला सुद्युम्न के रूप में परिणत हो गयी। हे महादेवि ! सुद्युम्न भी सूर्य वंश की वृद्धि करने वाला हुआ ।। ३५ ।।

हे पार्वति ! सुद्युम्न के भी अत्यधिक तेजस्वी तीन पुत्र हुये—उत्कल, गय और विनीताश्व ।। ३६ ।।

हे महाभागे पार्वति ! पूर्व दिशा का स्वामी उत्कल हुआ, गयापुरी गय की हुयी और दक्षिण दिशा का स्वामी विनीताश्व हुआ ।। ३७ ।।

महातेजस्वी मनु ने सूर्य में प्रवेश किया। मनु के सूर्य में प्रवेश करने पर यह पृथ्वी दस भागों में विभक्त हो गयी ।। ३८ ।।

हे देवी शुभे ! मैंने तुमको इला की उत्पत्ति की कथा कही है। यह धन्य है, आयु को देने वाली है और यश को देने वाली है। इसको सुनकर मनुष्य पापों से छूट जाता है ।। ३९ ।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में चन्द्रवंश का कथन करने में इलोत्पत्ति नाम का ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ।

द्वादशोऽध्यायः

इलाचरितवर्णनप्रसङ्गे सुद्युम्नस्योत्कृष्टतपोवर्णनं तत्सन्तानोत्पत्त्यादिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

तत्क्षेत्रं दशधा कृत्वा पुत्रा इक्ष्वाकुज्येष्ठकाः ।
यूपांकितां हि सकलां चक्रुर्भूमिं सपर्वताम् ॥ १ ॥

इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठपुत्रस्तु मध्यदेशमवाप्तवान् ।
कन्याभावात्तु सुद्युम्नो समभागो[1] न चाप्तवान् ॥ २ ॥

वसिष्ठवचनेनासौ सुद्युम्नः पुरसत्तमम् ।
प्रतिष्ठानं चकारासौ नानापणविराजितम् ॥ ३ ॥

तं पुरूरवसे प्रादाच्चकार नृपसत्क्रियाम् ।
भुक्त्वा राज्यसुखं राजा स्वयं च तपसे ययौ ॥ ४ ॥

यत्र गंगा महाभागे हिमवद्दक्षिणे स्थले ।
गंगोत्तरमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ५ ॥

तस्माच्च दक्षिणे भागे नाना मुनिगणान्विते ।
गुरोस्तव महादेवि दक्षिणे पार्श्ववे[2] गिरेः ॥ ६ ॥

अलकनंदोत्तरे तीरे क्षेत्रे श्रीसंज्ञके नृपः ।
तपश्चकार परमं तोषयन् मनसा हि माम् ॥ ७ ॥

---

१. भागं । २. के ।

अध्याय–१२

इला के चरित के वर्णन के प्रसङ्ग में सुद्युम्न के उत्कृष्ट तप का वर्णन और सन्तानोत्पत्ति आदि का निरूपण

ईश्वर (शिव) बोले—

इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न पुत्रों ने उस भूमि के भाग को दस क्षेत्रों में विभक्त करके पर्वतों सहित सारी पृथ्वी को यूपों (यज्ञ स्तम्भों) से अंकित कर दिया ।। १ ।।

ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु ने मध्य देश को प्राप्त किया । कन्या होने के कारण सुद्युम्न को राज्य का समान भाग प्राप्त नहीं हुआ ।। २ ।।

उस सुद्युम्न ने वसिष्ठ के कहने से विविध बाजारों से सुशोभित श्रेष्ठ नगर प्रतिष्ठान की रचना की ।। ३ ।।

सुद्युम्न ने राजा के रूप में राज्य का सुख भोग कर उस नगर को पुरुरवा के लिये दे दिया और स्वयं तपस्या के लिये चला गया ।। ४ ।।

हे महाभागे ! वहाँ (तपःस्थली) हिमालय के दक्षिण स्थल में गंगा बहती है । इसको तीनों लोकों में प्रसिद्ध गंगोत्तर भी कहते हैं ।। ५ ।।

हे महादेवि ! अनेक मुनियों के समूह से युक्त उस तपःस्थली के दक्षिण भाग में तुम्हारे पिता हिमालय पर्वत के दक्षिण पार्श्व में ।। ६ ।।

अलकनन्दा के उत्तरी तट पर श्री नाम के क्षेत्र में उस राजा सुद्युम्न ने मुझ को मन से संतुष्ट करते हुए परम तप किया ।। ७ ।।

दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः ।
अहं च परमं तुष्टो गतस्तत्र यदृच्छया ।। ८ ।।

दृष्ट्वा तं तप्यमानं हि सुद्युम्नं मनुपुत्रकम् ।
उक्तवांस्तं तु संबोध्य सुद्युम्नेति पुनः पुनः ।। ९ ।।

मयोक्तं वचनं श्रुत्वा सुद्युम्नस्तपतां वरः ।
प्रांजलिः प्रयतो भूत्वा उत्थायोवाच मां शिवे ।। १० ।।

सुद्युम्न उवाच—

नमो नमस्ते शतशो नमस्ते परात्परंधाम महानुभाव ।
शिवाधिप प्राणविभो महेश प्रशाधि मां कामसुखप्रसक्तम् ।। ११ ।।

आदौ त्वमाजौ सुपरेशगम्य गम्याधिनाथेश चराचरेश ।
मध्ये त्वमेवासि सुरासुराणामन्ते त्वमन्तोखिलदेहिनां च ।। १२ ।।

न वेद कश्चिद्भवतः पुरारे मुरारिरूपेण समास्थितोऽसि ।
जले त्वमेवासि स्थले त्वमेव सर्वं हि विश्वं परमाश्रितोऽसि ।। १३ ।।

रूपं न ते देववरेश विद्मः पराक्रमं चैव यशश्च भूयः ।
क्व ते प्रभो पादतलं शिरश्व क्व ते कराग्राणि महानुभाव ।। १४ ।।

ब्रह्मादयो देवगणा मुनींद्रा विदुर्न ते रूपपरं क्व चाहम् ।
सर्वं स्थितं भावनया विधत्से महेश्वर त्र्यंबक विश्वभाविन् ।। १५ ।।

शैलात्मजानायक भूतनाथ सर्वेश्वर प्राणभृतां हि जीव ।
उमापते विश्वपते हरेश महेश गंगाधर हे नतोऽस्मि ।। १६ ।।

महादेव उवाच –

सुद्युम्नस्य कृतं स्तोत्रं मामकं सर्वसिद्धिदम् ।
पठेद्वा श्रृणुयाद्वापि सर्वयज्ञफलं लभेत् ।। १७ ।।

उसने निराहार और जितेन्द्रिय रहकर दस हजार वर्षों तक तप किया। मैं परम संतुष्ट होकर अपनी इच्छा से वहाँ गया ॥ ८ ॥

मनु के पुत्र उस सुद्युम्न को तपस्या करते हुए देखकर उसको "सुद्युम्न" इस प्रकार पुनः-पुनः सम्बोधित करके कहा ॥ ९ ॥

हे शिवे ! मेरे द्वारा कहे गये वचन को सुनकर तपस्वियों में श्रेष्ठ सुद्युम्न हाथ जोड़कर विनम्र होकर और उठकर मुझसे कहने लगा ॥ १० ॥

सुद्युम्न ने कहा—

परम से परम धाम में रहने वाले, महानुभाव, शिव, सबके स्वामी, प्राणों के स्वामी हे महेश ! आपको नमस्ते है, नमस्ते और सैकड़ों बार नमस्ते है। काम के सुख मे फँसे हुए मुझ पर आप शासन करें ॥ ११ ॥

श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा जानने योग्य, ज्ञानगम्य पदार्थों के स्वामिन्, चर-अचर जगत् के प्रभु इस भव-क्षेत्र के तुम आदि हो। देव-असुरों के तुम ही मध्य में और अन्त में हो। तुम सब प्राणियों का अन्त करने वाले हो ॥ १२ ॥

हे मुरारे ! आपको कोई जानता नहीं। आप मुरारि (विष्णु) के रूप में भी स्थित हैं। जल में भी आप हैं और थल में भी आप हैं, संपूर्ण विश्व आप में ही आश्रित है ॥ १३ ॥

हे देवताओं के स्वामी ! महानुभाव ! हम तुम्हारे पराक्रम को यश को और रूप को नहीं जानते। हे प्रभो ! तुम्हारे तलवे कहाँ हैं, सिर कहाँ है और हाथों के अग्र भाग कहाँ हैं, यह नहीं जानते ॥ १४ ॥

तीन आँखों वाले, विश्व को व्याप्त करने वाले हे महेश्वर ! ब्रह्मा आदि देवगण और श्रेष्ठ मुनि भी तुम्हारे परम रूप को नहीं जानते। मेरा तो कहना ही क्या है। अपनी भावना के द्वारा तुम सबको स्थित करते हो ॥ १५ ॥

पार्वति के पति, भूतों के स्वामी, सवके ईश्वर, प्राणियों के जीवन हे उमापते ! विश्वपते ! हरेश, महेश ओर गंगाधर ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥

महादेव बोले—

जो व्यक्ति सुद्युम्न के बनाये गये, और सभी सिद्धियों को देने वाले मुझसे संबन्धित स्तोत्र को पढ़ेगा या सुनेगा वह सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करेगा ॥ १७ ॥

स्तोत्रेणानेन यः कश्चिन्मां च स्तौति नरोत्तमः ।
अनेकजन्मदुःखं हि नश्यते प्राणवल्लभे ।। १८ ।।

प्रादामहं स्वकं लोकं सुद्युम्नाय यशस्विनि ।
नित्यं वसामि तत्रैव भूतवेतालसेवितः ।। १९ ।।

अद्यापि तस्य देवेशि श्लोको वै गीयते बुधैः ।
श्रृणु चित्तं समाधाय ममापि परिगीयते ।। २० ।।

धन्यो बभूव राजेंद्रो वंशद्वयविवर्द्धनः ।
यस्य वै तपसा लोकास्त्रस्ता दृष्ट्वा परादभुतम् ।। २१ ।।

इदं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं धनधान्यदम् ।
सुद्युम्नस्य ह्युपाख्यानं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ।। २२ ।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने
सुद्युम्नचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः

इक्ष्वाकुपुत्रविकुक्षिवृत्तान्तः, कुवलाश्वसमक्षं धौम्यपुत्री राजकुमारी मन्दुरा स्वयंवरवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् ।
यत्र पुण्या महीपाला विक्रांतयशसः शुभाः ।। १ ।।

इक्ष्वाकोश्चाभवन्पुत्राः शतं चैव महेश्वरि ।
विकुक्षिप्रमुखाः सर्वे महाबलपराक्रमाः ।। २ ।।

हे प्राणप्रिये ! जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य इस स्तोत्र के द्वारा मेरी स्तुति करता है, उसके अनेक जन्मों के दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥

यशस्विनी पार्वति ! मैंने सुद्युम्न को अपना लोक प्रदान किया है । भूतों और वेतालों से सेवित मैं वहीं रहता हूँ ॥ १९ ॥

हे देवताओं की स्वामिनि ! आज भी उस सुद्युम्न के यश को देवता गाते हैं । मन लगाकर सुनो । मेरा भी गान होता है ॥ २० ॥

वह दोनों वंशों की वृद्धि करने वाला श्रेष्ठ राजा सुद्युम्न धन्य हो गया था, जिसके परम अद्‌भुत तप को देखकर सभी लोग डर गये थे ॥ २१ ॥

सुद्युम्न का यह उपाख्यान यश को देने वाला है, आयु को देने वाला, पुत्र को देने वाला और धन-धान्य को देने वाला है । इसको सुनकर मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ॥ २२ ॥

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंश का अनुकीर्त्तन करने में सुद्युम्नचरित नाम का बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय—१३

इक्ष्वाकुपुत्र विकुक्षि का वृत्तान्त कुवलाश्व के समक्ष राजा धौम्य की पुत्री राजकुमारी मन्दुरा के स्वयम्वर का वर्णन

ईश्वर (शिव) बोले —

हे देवि ! मैं उत्तम इक्ष्वाकु वंश का वर्णन करूँगा, जहाँ पुण्यशाली, पराक्रमी, यशस्वी और शुभ राजा हुये थे । इसको सुनो ॥ १ ॥

हे महेश्वरि ! इक्ष्वाकु के विकुक्षि आदि १०० पुत्र हुए थे । वे सब महाबली और पराक्रमी थे ॥ २ ॥

सुरासुरैरयोध्येयमयोध्या त्वभवत्पुरी ।
शकुनिः सत्यकेतुश्च शुभकेतुर्विहंगमः ॥ ३ ॥

इत्यादयो महात्मनः पंचाशदभवन्सुताः ।
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च दक्षिणस्यास्तु पालकाः ॥ ४ ॥

शुभकेतुः सत्यकेतुरुत्तरस्यां दिशि स्थितौ ।
विकुक्षिस्तु महातेजा अष्टकायां परंतपः ॥ ५ ॥

मृगान् हंतुं गतोऽरण्ये पितुराज्ञां पुरस्कृतः ।
श्राद्धार्थं तेन देवेशि हताश्च बहवो मृगाः ॥ ६ ॥

अरण्ये निर्जने देशे क्षुत्पीडापरिपीडितः ।
शशमेकं भक्षितवानकृते श्राद्धकर्मणि ॥ ७ ॥

शेषान् मृगान् समानीय श्राद्धार्थे वरवर्णिनि ।
वसिष्ठो ज्ञानवान् सर्वं यत्कृतं तद्विकुक्षिणा ॥ ८ ॥

यस्मात्त्वया विकुक्षे हि भक्षितः शशकोऽत्र वै ।
शशादस्तु भवान्जातो दुरात्मा दुष्टचेष्टितः ॥ ९ ॥

इक्ष्वाकुनापि वचनाद्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
परित्यक्तो विकुक्षिस्तु तताप परमं तपः ॥ १० ॥

इक्ष्वाकौ स्वर्गगते[1] राजा विकुक्षिस्तु बभूव ह ।
शशादसंज्ञां संप्राप्त अयोध्यायां महायशाः ॥ ११ ॥

तस्य राज्ञः शशादस्य ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ।
पूर्वं[2] देवासुरे युद्धे इन्द्रेण प्रार्थितो नृपः ॥ १२ ॥

---

१. स्वर्गते । २. "पूर्वं ···वीर्य्यवान्" पाठ इसमें नहीं है ।

उसकी राजधानी अयोध्या नाम की नगरी थी, जिस पर देवता और दानव भी आक्रमण नहीं कर सकते थे। उसके शकुनि, सत्यकेतु, शुभकेतु, विहंगम ॥ ३ ॥

आदि पचास महात्मा पुत्र हुए तथा दक्षिण दिशा का पालन करने वाले अड़तालीस पुत्र हुये ॥ ४ ॥

शुभकेतु और सत्यकेतु उत्तर दिशा में स्थित रहे। एक बार शत्रुओं को पीड़ित करने वाला महातेजस्वी विकुक्षि अष्टका तिथि (सप्तमी-अष्टमी-नवमीं तिथि समूह) में··· ॥ ५ ॥

पिता की आज्ञा पाकर मृगों का शिकार करने के लिये वन में गया। हे देवेशि ! वहाँ उसने श्राद्ध के लिये वहुत से मृगों का वध किया ॥ ६ ॥

निर्जन वन के स्थान में उसने भूख के दुःख से पीड़ित होकर श्राद्ध को बिना किये एक खरगोश को खा लिया ॥ ७ ॥

हे सुन्दरि ! वह श्राद्ध के लिये शेष मृगों को ले आया। विकुक्षि ने जो कुछ किया था उस सबको वसिष्ठ ने जान लिया ॥ ८ ॥

हे विकुक्षे ! क्योंकि तुमने यहाँ बिना श्राद्ध किये खरगोश (शशक) को खाया है अतः दुष्ट आत्मा और दुष्ट चेष्टा वाले आप शशाद नाम से प्रसिद्ध होंगे ॥ ९ ॥

महात्मा वसिष्ठ के कहने से इक्ष्वाकु ने विकुक्षि का परित्याग कर दिया। तब विकुक्षि परम तप करने लगा ॥ १० ॥

इक्ष्वाकु के स्वर्ग चले जाने पर विकुक्षि राजा हुआ। महायशस्वी उसने अयोध्या में शशाद नाम को प्राप्त किया ॥ ११ ॥

उस राजा शशाद का ककुत्स्थ नाम का पराक्रमी पुत्र हुआ। उस राजा से इन्द्र ने पहले देवासुर युद्ध में सहायता की प्रार्थना की ॥ १२ ॥

दैत्यान्हन्तुं महातेजा गतः स्वर्गपुरे प्रिये ।
तत्र गत्वा तु राजर्षिरिन्द्ररूपस्य वीर्यवान् ॥
महतो[1] वृषभस्यासौ संस्थितः ककुदि प्रभुः ॥ १३ ॥

जितवान् सबलान् दैत्यान् महाबलपराक्रमान् ।
ककुत्स्थस्तेन संख्यातो महात्मा जगदीश्वरि ॥ १४ ॥

तस्य पुत्रो महानासीद्विष्टराश्व इति स्मृतः ।
आर्द्रस्तु विष्टराश्वस्य युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥ १५ ॥

तस्य श्रावस्ततो जातः श्रावतीर्थमजायत ।
श्रावस्य बृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्तु तत्सुतः ॥ १६ ॥

कुवलाश्वस्य चरितं शृणु देवि यथातथम् ।
कुवलाश्वो महातेजा बाल्य एव महाद्युतिः ॥ १७ ॥

गतोऽरण्यं महेशानि मृगव्यालशताकुलम् ।
तत्र गत्वा सरस्तीरे नानाकमलवासिते ॥ १८ ॥

उपस्पृश्य जलं तत्र परिश्रांतो महायशाः ।
तस्मिन्नेव क्षणे देवि पूर्वस्यां[2] दिशि संस्थिता ॥ १९ ॥

समाहर्तुं जलं तस्मात्कुमारी परसुन्दरी ।
समाययौ हि सामीप्यं मत्तमातंगगामिनी ॥ २० ॥

तां दृष्ट्वा सहसाऽसौ तु रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
मूर्च्छितः संपपाताहो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २१ ॥

पुनस्तु सहसा संज्ञां प्राप्य वै जगदीश्वरि ।
तामुवाच कुमारीं हि रतिरूपां मनोहराम् ॥ २२ ॥

---

१. "महतो ..... प्रभुः" श्लोक १२ में है । २. पूर्वस्मिन ।

हे प्रिये ! वह महातेजस्वी राजा स्वर्गपुरी में दैत्यों को मारने के लिये गया। वहाँ जाकर वह पराक्रमी राजा राजर्षि इन्द्र के रूप को धारण करने वाले महान् वृषभ के ककुद पर स्थित हुआ ॥ १३ ॥

उसने महाबली, पराक्रमी ससैन्य दैत्यों को जीत लिया। हे जगत् की स्वामिनी पार्वति। इस कारण वह महात्मा ककुत्स्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १४ ॥

उसका पुत्र महान् विष्टराश्व नाम का हुआ था। विष्टराश्व का पुत्र आर्द्र हुआ और आर्द्र का पुत्र युवनाश्व हुआ ॥ १५ ॥

युवनाश्व का पुत्र श्राव हुआ। उसके नाम से श्रावतीर्थ प्रसिद्ध हुआ। श्राव का पुत्र वृहदश्व हुआ और बृहदश्व का पुत्र कुवलाश्व हुआ ॥ १६ ॥

हे देवि ! आप कुवलाश्व के चरित को ठीक प्रकार से सुनें। कुवलाश्व बचपन में ही महातेजस्वी महाद्युतिशाली था ॥ १७ ॥

हे महेशानि ! एक बार वह कुवलाश्व सैकड़ों मृगों और हाथियों से भरे हुए वन में गया। अनेक कमलों से सुगन्धित जलाशय के तट पर वहाँ जाकर ·· ॥ १८ ॥

उस महायशस्वी थके हुए कुवलाश्व ने जल का आचमन किया। हे देवि ! उसी क्षण पूर्व दिशा में स्थित हुयी··· ॥ १९ ॥

परम सुन्दरी, मत्त हाथी के समान गति वाली एक कुमारी जल लेने के लिये उसके समीप आयी ॥ २० ॥

इस पृथ्वी पर सौन्दर्य में अप्रतिम उस कुमारी को सहसा देखकर आश्चर्य से खिली आँखों वाला राजा मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया ॥ २१ ॥

हे जगदीश्वरि ! पुनः सहसा चेतना को प्राप्त करके वह रति के समान रूपवती, मन का हरण करने वाली उस कुमारी से बोला ॥ २२ ॥

का वा त्वं शुभसर्वांगी कस्यासि त्वं सुकन्यका ।। २३ ।।

कुमार्युवाच—

अहं भवामि दासी हि मन्दुराया नृपात्मज ।
तत्रावयोः परं स्थानं निर्जनं शुभमन्दिरम् ।। २४ ।

कुवलाश्व उवाच—

कस्य कन्या किमर्थं हि निर्जनं त्वद्गृहं गतम् ।
तन्मे वद महाभागे परं कौतुहलं हि मे ।। २५ ।।

कुमार्युवाच —

श्रणु वै त्वं पुरावृत्तं मंदुरायाः परंतप ।
धौम्यो नाम पुरा ह्यासीन्महात्मा सत्यसंगरः ।। २६ ।।

यशस्वी किल धर्मात्मा राजा तु दृढ़विक्रमः ।
तस्येदं नगरं रम्यं बभूव नृपनंदन ।। २७ ।।

तस्य कन्या मंदुरा सा वर्त्तते सुरशोभना ।
धौम्य नाम महाराजा कन्यां दृष्टवा पुरः स्थिताम् ।। २८ ।।

चिंतयामास बहुशः कस्मै देया मया सुता ।
वरयोग्या त्वियं कन्या यौवनोन्मादशालिनी ।। २९ ।।

कः पृथिव्यां महाराजो वरोऽस्याः सदृशस्त्विति ।
इति चिंतयतस्तस्य मतिरासीन्महौजसः ।। ३० ।।

स्वयंवरं प्रकर्त्तव्यं सर्वे वै पृथिवीभुजः ।
समानेयास्तु दूतैश्च महाबलपराक्रमाः ।। ३१ ।।

सभा च तत्र कर्त्तव्या शतभारं तु मुद्गरम् ।
आयसं तु पणं कार्यं सभायां यो महीपतिः ।। ३२ ।।

संपूर्ण शुभ अंगों वाली हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो ? ।। २३ ।।

कुमारी ने कहा—

हे राजपुत्र ! मैं मंदुरा नाम की राजकुमारी की दासी हूँ । इस निर्जन शुभ-मन्दिर में हमारा उत्तम स्थान है ।। २४ ।।

कुवलाश्व ने कहा—

वह किसकी कन्या है और किस कारण से इस निर्जन स्थान को घर बनाया है, हे महाभागे ! इस बात को मुझे बताओ । मुझे इस विषय में बहुत अधिक कौतूहल है ।। २५ ।।

कुमारी ने कहा—

हे शत्रुओं को पीड़ित करने वाले राजकुमार ! तुम मंदुरा के पुराने वृत्तान्त को सुनो । पहले धौम्य नाम के एक सत्यप्रतिज्ञ महात्मा राजा थे ।। २६ ।।

वे धौम्य राजा यशस्वी, धर्मात्मा और दृढ़ पराक्रमी थे । हे राजकुमार ! उनका यह सुन्दर नगर था ।। २७ ।।

कन्याओं के समान सुन्दर उनकी मंदुरा नाम की कन्या है । एक बार महाराजा धौम्य अपने सामने खड़ी हुयी कन्या को देखकर···।। २८ ।।

बहुत प्रकार से विचार करने लगे कि मैं इस कन्या को किसे दूं । यौवन के उन्माद से भरी हुयी यह कन्या वर के योग्य है ।। २९ ।।

पृथ्वी पर कौन सा महाराजा इसके योग्य वर होगा । इस प्रकार से विचार करते हुए ही महातेजस्वी उस राजा का विचार हुआ ।। ३० ।।

इसका स्वयंवर करना चाहिये । महान् बलशाली पराक्रमी सब राजाओं को दूतों द्वारा बुलाना चाहिये···।। ३१ ।।

और वहाँ स्वयंवर सभा करनी चाहिये । शर्त के रूप में सौ भार का लोहे का मुद्गर बनवाना चाहिये । जो राजा···।। ३२ ।।

महीभुजामग्रतस्तु भूम्यामुत्थापयिष्यति ।
तस्मै देया मया कन्या मंदुरा नाम नामतः ।। ३३ ।।

इति वै संमतिं कृत्वा न्यस्तस्तत्र च मुद्गरः ।
आमंत्रिता महीपाला नानायुद्धविशारदाः ।। ३४ ।।

पृथिवीं कंपयंतस्ते बलेन परिवारिताः ।
रथानां नियुतैः षड्भिर्दंतिनां लक्षकोटिभिः ।। ३५ ।।

असंख्यातैर्हयैश्चैव तथाऽसंख्यैः पदातिभिः ।
पृथिवीं छादयंतो वै आययुः पृथिवीभुजः ।। ३६ ।।

चकार परमातिथ्यमागतानां महीभुजाम् ।
पयोघृतवहा नद्यस्तत्र पायसकर्दमाः ।। ३७ ।।

गृहाणि च विचित्राणि महार्हशयनानि च ।
ददौ तेभ्यो महातेजा धौम्यो नाम स भूमिपः ।। ३८ ।।

चिंतयामास बहुशः कस्य देया सुता मया ।
वरयोग्या त्वियं कन्या इति वै स महीपतिः ।। ३९ ।।

पटैः शुभतरैः रक्तैः पीतैः कर्बुरकैस्तथा ।
आच्छादितं पुरं चक्रे पताकाभिरलंकृतम् ।। ४० ।।

रथ्यागोपुरहट्टेषु कन्याश्च समलंकृताः ।
मृदंगपणवानां च भेरीणां निनदस्तथा ।। ४१ ।।

बभूव सर्वतो देवि शंखानां च रवस्तदा ।
तस्मिन् महोत्सवे रम्ये वंदिनः पाठका जगुः ।। ४२ ।।

राजाओं में अग्रणी होकर भूमि पर इसको उठा लेगा, उसको मैं इस मंदुरा नाम की कन्या को दूँगा ।। ३३ ।।

इस प्रकार सम्मति करके उसने वहाँ पर मुद्गर रखा और युद्धों में निपुण अनेक राजाओं को आमंत्रित किया ।। ३४ ।।

पृथ्वी को कँपाते हुए; सेनाओं से घिरे हुए, छः करोड़ रथों से तथा लाखों करोड़ों हाथियों से युक्त वे राजा···।। ३५ ।।

असंख्य घोड़ों और असंख्य पैदल सैनिकों से पृथ्वी को ढकते हुए वे राजा आ गये ।। ३६ ।।

धौम्य ने अभ्यागत राजाओं का बहुत अधिक आतिथ्य किया। वहाँ घी-दूध की नदियाँ बहने लगीं और खीर की कीचड़ हो गयी ।। ३७ ।।

महातेजस्वी उस राजा धौम्य ने उनको सुन्दर घर तथा बहुमूल्य शयन दिये ।। ३८ ।।

वह राजा बहुत विचार करने लगा कि मैं अपनी पुत्री किसे दूं ? यह कन्या वर के योग्य हो गयी है ।। ३९ ।।

वह नगर बहुत शुभ, लाल, पीले और चितकबरे वस्त्रों से तथा पताकाओं से अलंकृत हो गया ।। ४० ।।

राजमार्गों, गोपुरों और बाजारों में अलंकारों से सुशोभित कन्यायें घूमने लगीं। मृदंगों, भेरियों और पणवों की ध्वनियां गूँजने लगीं ।। ४१ ।।

हे देवि ! तब सब ओर शंखों की ध्वनि होने लगी। उस रम्य महोत्सव में स्तुति गाने वाले वन्दी और पाठक गीत गाने लगे ।। ४२ ।।

अलंकृता वरा नार्यो नानानृत्यविशारदाः ।
ननृतुः सर्वतस्तत्र समाजेषु महीभुजाम् ॥ ४३ ॥

योजनत्रयविस्तीर्णा सभा तत्र कृता शुभा ।
नानागृहैर्विचित्रैश्च गवाक्षाट्टालकैर्युताः ॥ ४४ ॥

गवाक्षेषु विचित्रेषु नानारत्नेषु च स्त्रियः ।
स्थिताः कौतूहलार्थं वै संव्यक्तगृहकर्मकाः ॥ ४५ ॥

राजस्त्रियोऽपि सर्वा वै कौतुकागारसंस्थिताः ।
महार्हरत्नवसनाः[1] विद्युल्लेखास्ततस्ततः ॥ ४६ ॥

रेजुः परमसौन्दर्य्या दिवीव सुरकन्यकाः ।
कौतूहलसमाविष्टा मंदुरागतमानसाः ॥ ४७ ॥

रत्नसिंहासनस्थास्ता मेरुस्था इव देवकाः ।
विरेजुस्तत्र राजानो बंदिभिर्विदितान्वयाः ॥ ४८ ॥

इति श्री स्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने
मंदुरास्वयंवरे त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः

**मन्दुरास्वयंवरे धौम्यप्रस्तुतसमयपालनासमर्थानां
नरपतीनां धौम्येन सह युद्धाह्वानम्**

ईश्वर उवाच—

अथागत्य महातेजा धौम्यो नाम महीपतिः ।
उवाच प्रांजलिस्तांस्तु सर्वान्वै पृथिवीभुजः ॥ १ ॥

---

१. कौतुकं द्रष्टुमास्थिताः ।

वहाँ राजाओं के उस समाज में अनेक नृत्यों में विशारद अलंकृत सुन्दर नारियाँ सब ओर नाच रही थीं ।। ४३ ।।

वहाँ अनेक सुन्दर घरों, गवाक्षों तथा अटारियों से युक्त तीन योजन विस्तार की शुभ स्वयंवर सभा बनवायी गयी थी ।। ४४ ।]

अनेक रत्नों से सुसज्जित स्त्रियाँ घर के कार्यों को छोड़कर कुतुहलवश सुन्दर गवाक्षों में खड़ी हो गयीं ।। ४५ ।।

बहुमूल्य रत्नों और वस्त्रों से सुसज्जित तथा बिजलियों की पंक्तियों के समान चमकती हुयी राजघराने की सभी स्त्रियाँ कौतुकागार में स्थित हो गयीं ।। ४६ ।।

परमसौन्दर्य से सम्पन्न वे स्वर्ग में देवकन्याओं के समान शोभायमान थीं। कुतुहल से भरी हुयी उनका मन मन्दुरा के प्रति लगा था ।। ४७ ।।

स्तुति पाठक जिनके कुल का वर्णन कर रहे थे, ऐसे राजा वहाँ रत्नजटित सिंहासनों पर उसी प्रकार स्थित थे जैसे कि मेरु पर्वत पर देवता स्थित होते हैं ।। ४८ ।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड के वंशानुकीर्त्तन प्रकरण
में मंदुरा स्वयंवर प्रसंग में तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय–१४

मन्दुरा के स्वयम्वर में धौम्य द्वारा प्रस्तुत शर्त का पालन करने में असमर्थ राजाओं द्वारा धौम्य के साथ युद्ध के लिये आह्वान करना

ईश्वर (शिव) बोले—

इसके बाद महातेजस्वी धौम्य नाम के राजा ने आकर हाथ जोड़कर उन सब राजाओं से कहा···।। १ ।।

धौम्य उवाच—

श्रृण्वंतु सर्वे राजानो विज्ञप्तिं मम भूधराः ।
पणमेत्कृतं चैव मयाऽयं मुद्गरः शुभः ॥ २ ॥

युष्माकं यो हि भूम्यास्तु मुद्गरं संधरिष्यति ।
तस्मै देया मया कन्या देवकन्योपमा शुभा ॥ ३ ॥

एवंविधो भूमिनाथो वर्त्तते यो महीभृताम् ।
उत्थापयतु वै शीघ्रं तस्मै दास्यामि कन्यकाम् ॥ ४ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा धौम्यस्य नृपसत्तमाः ।
परस्परं समीक्षंतो विस्मयाविष्टमानसाः ॥ ५ ॥

प्रत्येकशः समुत्थाय सर्वे नृपतिपुंगवाः ।
मुद्गरं तोलितुं राजन् सन्नद्धा नरपुंगवाः ॥ ६ ॥

न शेकुस्ते तोलयितुं मुद्गरं युद्धदुर्मदाः ।
मूर्च्छिताः सहसा जग्मुः पृथिवीं नृवरात्मजाः ॥ ७ ॥

ईर्ष्यायुक्ता महीपाला एकत्र समवस्थिताः ।
संविदं नृवराश्चक्रुर्नानाशस्त्रविशारदाः ॥ ८ ॥

एनं धौम्यं दुरात्मानं हनिष्यामो महीपतिम् ।
येनास्माकं मानहानिर्मुद्गरे पणके कृते ॥ ९ ॥

एनां च संहरिष्यामो हत्वेनं सपरिच्छदम् ।
नोचेत्कथं स्वदाराणां वांछेयुः सहसंगतिम् ॥ १० ॥

इति वै संविदं कृत्वा सर्व एव महीभुजः ।
ऊचुस्तं धौम्यमुर्वीशमीर्ष्याक्रोधसमाश्रिताः ॥ ११ ॥

धौम्य ने कहा—

हे सब राजाओ ! मेरी यह विज्ञप्ति सुनो। मैंने यह शर्त लगायी है। मेरा यह शुभ मुद्गर है ॥ २ ॥

तुम में से जो राजा इस मुद्गर को भूमि से उठाकर धारण करेगा, उसको मैं देवकन्या के सदृश शुभ अपनी कन्या को दूंगा ॥ ३ ॥

इस प्रकार का जो राजा आप राजाओं में है, वह इसको शीघ्र उठा दे। मैं उसको कन्या दूंगा ॥ ४ ॥

धौम्य के उस वचन को सुनकर वे श्रेष्ठ राजा विस्मय से भरे मन वाले होकर एक दूसरे को देखने लगे ॥ ५ ॥

हे राजन् ! वे सभी श्रेष्ठ राजा एक-एक कर उठने लगे और वे श्रेष्ठ मनुष्य मुद्गर उठाने के लिये सन्नद्ध हो गये ॥ ६ ॥

युद्ध में पराक्रमी भी वे राजा उस मुद्गर को उठाने में समर्थ नहीं हुए। पराक्रमी राजाओं के वे पुत्र पृथ्वी पर गिरकर एकाएक करके मूर्च्छित होने लगे ॥ ७ ॥

मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा अनेक शस्त्रों को जानने वाले वे राजा ईर्ष्या से युक्त होकर एक स्थान पर एकत्र हुए और प्रतिज्ञा करने लगे ॥ ८ ॥

इस दुष्ट धौम्य राजा का हम वध करेंगे, जिसने मुद्गर को उठाने की शर्त लगाकर हमारी मानहानि की है ॥ ९ ॥

हम इसके परिवार का वध करके इसका संहार करेंगे। नहीं तो अपनी पत्नियों के साथ संगति कैसे वांछित होगी ॥ १० ॥

इस प्रकार ईर्ष्या और क्रोध से भरकर वे सब राजा प्रतिज्ञा करके राजा धौम्य से बोले ॥ ११ ॥

नृपतय ऊचुः—

युद्धायागच्छ दुर्बुद्धे वयं युद्धविशारदाः ।
भवतो भूमिपालो यः शिरश्च्छेदं करिष्यति ।। १२ ।।

ग्रहीष्यति स ते कन्यां रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
मुद्गरे तोलिते भूप न हीनो जायते नृपः ।। १३ ।।

इति तेषां मुखाच्छ्रुत्वा वचनं हि महीभृताम् ।
उवाच परमक्रुद्धो मदसंरक्तलोचनः ।। १४ ।।

धौम्य उवाच—

अहं च क्षत्रियो राजा यूयं च हि तथाविधाः ।
युद्धं कुरुत सर्वेऽपि यदि युद्धेषु दुर्म्मदाः ।। १५ ।।

कुमार्युवाच—

इति धौम्यस्य वचनं श्रुत्वा दूतस्त्वरान्वितः ।
आचचक्षे[1] च यावत्तु तेषां सर्वमहीभुजाम् ।। १६ ।।

दूतोक्तं तद्वचः श्रुत्वा सर्व एव नराधिपाः ।
स्वं स्वं सैन्यं समाविश्याज्ञापयामासुरंजसा ।। १७ ।।

सन्नद्धकवचाश्चैव निस्त्रिंशवरपाणयः[2] ।
गदिनश्चर्मिणः शूराः कटिविन्यस्तखड्गकाः ।। १८ ।।

तोमरांश्च तथा शूलान्परिघान्पट्टिशांस्तथा ।
ऋष्टींश्च मुद्गरांश्चैव कार्मुकान्च्छरतूणकान् ।। १९ ।।

संगृह्य सहसा शुराः शतशोऽथ सहस्रशः ।
हयान् गजान् रथांश्चैव समारुह्य महीभृतः ।। २० ।।

सर्वतः समलंचक्रुः पताकाशतपंक्तिभिः ।
संदष्टौष्ठपुटा दंतैः किटिकिट्टितवादिनः ।। २१ ।।

---

१. आययौ सहसा सोऽपि ।   २. न्यस्तनिषङ्गकाः ।

राजा बोले—

हे दुष्ट बुद्धि वाले धौम्य ! हम युद्ध विशारदों के साथ युद्ध करने के लिये आ जाओ । जो राजा आपके सिर को काटेगा ॥ १२ ॥

वह ही इस पृथ्वी पर अप्रतिम सौन्दर्य वाली तुम्हारी कन्या को ग्रहण करेगा । हे राजन् ! मुद्गर को उठाने से कोई राजा हीन नहीं हो जाता ॥ १३ ॥

इस प्रकार उन राजाओं के मुख से वचन सुनकर बहुत अधिक क्रोधित एवं मद से लाल नेत्रों वाले धौम्य ने कहा ॥ १४ ॥

धौम्य बोला—

मैं क्षत्रिय राजा हूँ । और तुम सब उसी प्रकार क्षत्रिय राजा हो । तुम सब धमंडी लोग मुझ से यदि युद्ध क्षेत्र में युद्ध करते हो तो करो ॥ १५ ॥

कुमारी ने कहा—

इस प्रकार धौम्य के वचन को सुनकर शीघ्रता करते हुए दूत ने जब उन सब राजाओं से कहा ॥ १६ ॥

तो दूत के कहे गये उस वचन को सुनकर उन सभी राजाओं ने अपनी-अपनी सेना में प्रवेश करके शीघ्रता से आदेश दिये ॥ १७ ॥

वे शूरवीर राजा कवचों से सन्नद्ध हो गये । उत्तम खड्ग हाथ में ले लिये तथा कमर में कृपाण बाँध लिये ॥ १८ ॥

तोमर, शूल, परिघ, पट्टिश, ऋष्टि, मुद्गर धनुष और बाणों से भरे तरकस बाँध लिये ॥ १९ ॥

सैकड़ों और हजारों शूर राजा आयुधों को लेकर घोड़ों, हाथियों और रथों पर सवार हो गये ॥ २० ॥

सभी ओर सैकड़ों पताकाओं की पंक्तियों से सुशोभित होने लगे । दांतों से ओठों को काटते हुए वे किट-किट करने लगे ॥ २१ ॥

एकत्र सर्वभूपाला जातास्तत्र महौजसः ।
भेरीशब्दं ततश्चक्रुस्तथा शंखादिशब्दकान् ॥ २२ ॥

श्रुत्वा तु निनदं तेषां युद्धेप्सूनां परंतपः ।
धौम्योऽपि सहसा राजा युद्धाय कृतमानसः[1] ॥ २३ ॥

निश्चक्राम गृहात्तूर्णमभ्रजालादिवांशुमान् ।
स्वसैन्य सोऽपि संदिश्य समारुह्य रथं ततः ॥ २४ ॥

सोऽपि भेरीप्रहारेण कृतवान् शब्दमुत्तमम् ॥
द्वात्रिंशत्कोटयो देवि तस्य सैन्यस्य चाभवन् ॥ २५ ॥

तस्य[2] सैन्यस्य संख्यानं विद्यते न नृपात्मज ।
स्वं स्वं स्थानं समास्थाय सन्नद्धा युद्ध दुर्मदा ॥ २६ ॥

आह्वयामासुरन्योन्यं परस्परजयैषिणः ।
नानाशस्त्राऽस्त्रकुशला रसं वीरमुपाश्रिताः ॥ २७ ॥

इति श्री स्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने मंदुरास्वयंवरे
एकत्रसमवस्थानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः

युद्धे धौम्यवधोऽशरणायाश्च मन्दुरायाः वनगमनम्

ईश्वर उवाच—

ततः प्रववृते युद्धे सर्वेषां हि महीक्षिताम् ।
लोमोद्गारकरं चैव शरैरस्त्रैस्तथा शुभम् ॥ १ ॥

भिंदिपालैः शरैः खड्गैस्तोमरैः शक्तिसायकैः ।
युयुधुः परमं वीराः संदष्टौष्ठपुटा अथ ॥ २ ॥

---

१. समुपस्थितः । २. येषां ।

महापराक्रमी वे सभी राजा वहाँ एकत्रित हो गये। उसके बाद भेरियों और शंख आदि के शब्दों को करने लगे ।। २२ ।।

युद्ध के लिये इच्छुक उन राजाओं के शब्द को सुनकर शत्रुओं को पीड़ित करने वाले उस राजा धौम्य ने भी सहसा युद्ध के लिये मन बना लिया ।। २३ ।।

जिस प्रकार सूर्य मेघों के समूह से निकलता है उसी प्रकार वह शीघ्र घर से निकला। अपनी सेनाओं को आदेश देकर वह भी तदनन्तर रथ पर चढ़ गया ।। २४ ।।

नगाड़ों पर प्रहार कराकर उसने ऊँचा शब्द किया। हे देवि ! उनकी सेना में बत्तीस करोड़ सैनिक थे ।। २५ ।।

हे राजन् ! उसके सैनिकों की गिनती नहीं की जा सकती। युद्ध के लिये मद से भरे हुए वे अपने-अपने स्थान पर स्थित होकर तैयार हो गये ।। २६ ।।

अनेक प्रकार के शस्त्रों और अस्त्रों में कुशल तथा वीर रस से भरे हुए परस्पर विजय की इच्छा वाले वे एक दूसरे को पुकारने लगे ।। २७ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्त्तन प्रकरण
में मंदुरा स्वयंवर में एकत्रसमवस्थान नाम का
चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय १५

युद्ध में धौम्य का वध, अशरण मन्दुरा का वनगमन

ईश्वर (शिव) ने कहा—

तदनन्तर सब राजाओं को रोमांचित कर देने वाला शुभ युद्ध बाणों और अस्त्रों से प्रारम्भ हो गया ।। १ ।।

इसके पश्चात् दान्तों से होठों को पीसते हुये वे वीर आपस में भिन्दिपालों (गुलेल), बाणों, खड्गों, तोमरों और फैंकी जाने वाली शक्तियों से युद्ध करने लगे ।। २ ।।

भिंदि भिंदि छिंदि छिंदि तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ।
हेषितैर्घोटकानां च गजानां चैव गर्जितै ।। ३ ।।

चीत्कारैरथ चक्रैश्च भटानां प्रेषणैस्तथा ।
ज्ञायते तत्र स्वबलं स्वप्रियाहूयनादथ ।। ४ ।।

सममेव महाभाग[1] शस्त्रास्त्रनियुतायुतैः ।
भिंदिपालैः शतघ्नीभिर्गदाभिः शक्तितोमरैः ।।
ववर्षुस्तत्र भूपाला धाराभिरिव तोयदाः ।। ५ ।।

बभूव तुमुलं युद्धमद्भुत लोमहर्षणम् ।
जाता सहस्त्रशो नद्यो मांसकर्द्दमकालिताः ।। ६ ।।

छिन्नानां शिरसां तासु कच्छपा इव सुन्दराः ।
रेजुर्मीना इव करा विच्छिन्नांगुलयस्तथा ।। ७ ।।

उष्णीषाणां समूहाश्च हतानां रुधिरांबुनि ।
फेनजालं यथा रेजुरस्थिदृषदसंकुलाः ।। ८ ।।

हतानां हस्तिनां वृन्दै रथानां च सहस्त्रशः ।
बभूव पर्वताकारः सुन्दरो ह्यद्भुतोपमः ।। ९ ।।

आगता शतशस्तत्र गृध्राद्याः पिशिताशिनः ।
शिवाश्च शतशो नेदुर्हर्षपूरितमानसाः ।। १० ।।

काकाः श्येनास्तथा कंकवृकलाश्च सहस्त्रशः ।
उत्कृत्योत्कृत्य मांसानि कीकसस्थान्युक्रमात् ।। ११ ।।

पृष्ठासना महाचिल्ला[2] जक्षुः काकाश्व सर्वतः ।
इति तस्मिन् महाघोरे संग्रामेऽतिभयानके ।। १२ ।।

---

१. भागे । २. भीमा ।

वहां बार-बार फोड़दो-फोड़दो, काटदो-काटदो, ठहरो-ठहरो शब्द होने लगे। घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों की गर्जना होने लगी ॥ ३ ॥

रथ के पहियों के चीत्कार होने लगे। अपने पक्ष की सेनाओं का परिज्ञान सैनिकों को भेजने एवं अपने प्रियजनों को पुकारने से होता था ॥ ४ ॥

हे महाभाग ! जिस प्रकार मेघ जल की धाराओं को बरसाते हैं, उसी प्रकार वहाँ राजा हजारों-लाखों शस्त्रास्त्रों-भिन्दिपालों, शतघ्नियों, गदाओं, शक्तियों और तोमरों को बरसाने लगे ॥ ५॥

रोमाञ्चित कर देने वाला आश्चर्यजनक तुमुल युद्ध हुआ। वहां मांस और रुधिर के कीचड़ से भरी हजारों नदियाँ उत्पन्न हो गईं ॥ ६ ॥

उन नदियों में सुन्दर कटे हुये सिर और विच्छिन्न अंगुलियों वाले हाथ उसी प्रकार शोभित हो रहे थे, जैसे नदियों में कछुये ॥ ७ ॥

उस रक्त के समुद्र में मारे गये योद्धाओं की पगड़ियां उसी प्रकार से शोभित हो रहीं थीं, जैसे अस्थिरूपी पाषाणों से भरे हुये फेन हों ॥ ८ ॥

वहां मारे गये हजारों हाथियों से और टूटे रथों से मानों अद्‌भुत सुन्दर पर्वत खड़ा हो गया ॥ ९ ॥

कच्चे मांस को खाने वाले गिद्ध आदि सैंकड़ों पक्षी वहाँ आ गये। प्रसन्नता से भरे मन वाली सैंकड़ों गीदड़ियां भी वहां शोर करने लगीं ॥ १० ॥

हजारों कौये, बाज, कंक और भेड़िये वहां आकर हड्डियों पर लगे मांस को नोच-नोच कर खाने लगे ॥ ११ ।

उस महाघोर, अतिभयानक युद्ध में मजबूत पृष्ठ-दंड वाले महान् चील और कौये मांस खाने लगे ॥ १२ ॥

रणाजिरे महावीरा ननृतुश्छिन्नमस्तकाः ।
एतस्मिन्नंतरे धौम्यो वाणवर्षं चकार ह ॥ १३ ॥

तेषां राज्ञां शरीरेषु शैलेषु वृत्रहा यथा ।
तस्य तद्वाणवर्षं वै खंडशश्चक्रुराहवे ॥ १४ ॥

खंडिते वाणवर्षे ते स्वयं चक्रुर्महीभृतः ।
वर्षणं तत्र वाणानां हयपृष्ठस्थितास्ततः ॥ १५ ॥

बाणानां शतसाहस्रं चिच्छेद स्वशरैर्नृपः ।
पुनर्वाणसहस्रं वै मुमोच परया मुदा ॥ १६ ॥

ते वै सर्वे महीपाला धौम्यस्य शरपीडिताः ।
जग्मुर्दश दिशो भूपास्तदस्त्रपरिपीडिताः ॥ १७ ॥

पुनः समेत्य राजानः स्मृतक्षात्रपराक्रमाः ।
ववर्षुः शरजालानि तोयानि जलदा यथा ॥ १८ ॥

केचिद्भल्लांश्च शक्तींश्च गदा केचिद्रणाजिरे ।
मुसलानि च खड्गांश्च तोमरान्परशूंस्तथा ॥ १९ ॥

विव्यथुः सर्वगात्रेषु राज्ञो धौम्यस्य तद्बलम् ।
युगपत्पतितं वर्षं शस्त्राणामाशुगामिनाम् ॥ २० ॥

शक्तो नाभूत्तदा देव निवारयितुमंजसा ।
छिन्नधन्वा च विरथो बभूव सहसा नृपः ॥ २१ ॥

समुत्थाय ततस्तूर्णं गृहीत्वा खड्गचर्मणी ।
अच्छिनद्बहुशोऽरीणां शिरांसि वदतां वर ॥ २२ ॥

उस रणक्षेत्र में कटे हुये सिर वाले महावीर नृत्य कर रहे थे। इसी मध्य में राजा धौम्य ने बाणों की वर्षा की ॥ १३ ॥

वह बाण वर्षा उन राजाओं के शरीरों पर इस प्रकार गिरी, जैसे कि इन्द्र का वज्र पर्वतों पर गिरता है। परन्तु युद्ध में उन राजाओं ने उस बाणवर्षा को टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥ १४ ॥

उस धौम्य की बाण-वर्षा के खण्डित हो जाने पर, घोड़ों की पीठों पर स्थित उन राजाओं ने स्वयं बाणों की वर्षा की ॥ १५ ॥

राजा धौम्य ने उन सैकड़ों-हजारों बाणों को काट दिया। तदनन्तर उसने परम उत्साह से हजारों बाण छोड़े ॥ १६ ॥

राजा धौम्य के बाणों से वे सब राजा पीड़ित हो गये। उसके अस्त्रों से उत्पीड़ित वे राजा दसों दिशाओं में भाग गये ॥ १७ ॥

क्षत्रियों के पराक्रम का स्मरण करके वे सब राजा पुनः एकत्रित हो गये और उन्होंने बाणों की उसी प्रकार वर्षा की, जैसे मेघ जलों को बरसाते हैं ॥ १८ ॥

कुछ तो भालों को, कुछ शक्तियों को, कुछ गदाओं को, कुछ मूसलों को, कुछ खड्गों को, कुछ तोमरों को और कुछ परशुओं को रणांगण में बरसाने लगे ॥ १९ ॥

शीघ्रगामी शस्त्रों की एक साथ वर्षा होने लगी और राजा धौम्य की वह सेना सब अंगों में पीड़ित होने लगी ॥ २० ॥

हे देव ! वह राजा धौम्य उस शस्त्र-वर्षा को शीघ्र निवारित करने में समर्थ नहीं हो सका। उस राजा का धनुष कट गया और वह रथ से रहित हो गया ॥ २१॥

हे उत्तम वक्ता ! तदनन्तर उठकर और शीघ्रता से तलवार और ढाल लेकर उसने बहुत से शत्रुओं के सिरों को काट डाला ॥ २२ ॥

अथ ते पृथिवीपाला युगपद्बहुशस्त्रकान् ।
ववर्षुस्तस्य गात्रेषु भृशमुद्विग्नमानसाः ।। २३ ।।

सोऽपि धौम्यो महाबाहुर्निपपात तदा भुवि ।
ते तस्य पतमानस्य खण्डशश्चक्रुराहवे ।। २४ ।।

नगरं चापि तस्याशु ध्वंसयांमासुरोजसा ।
अहं च मन्दुरा चैवावशिष्टे वै गते वने ।। २५ ।।

गुहायां हि तदारभ्य तिष्ठावात्रैव निर्भये ।
पणं च तत्पितुस्तत्र वर्त्ततेऽद्यापि[1] पश्य तत् ।। २६ ।।

यद्दृष्ट्वा पृथिवीपाला निपेतुर्भुवि मूर्च्छिताः ।
तस्या महामते वीर तदेव पणमस्ति हि ।। २७ ।।

य एनं मुद्गरं राजा संधरिष्यति बाहुना ।
भविता हि स मे भर्त्ता नोचेदित्येव संस्थिता ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टाऽहं त्वया शुभ ।। २८ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने मन्दुरास्वयंवरे
धौम्यवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः

कुवलाश्वेन मुद्गरमुत्तोल्य पणेन मन्दुरायाः परिणयः

ईश्वर उवाच—

इति तद्भाषितं श्रुत्वा विस्मयाविष्टमानसः ।
श्रुत्वा तत्परमाश्चर्यं यदर्थं त्यक्तजीविताः ।। १ ।।

---

१. परमाद्भुतम् ।

इसके बाद उद्विग्न मन वाले उन राजाओं ने एक साथ उसके अंगों पर बहुत से शस्त्रों की वर्षा की ।। २३ ।।

तब वह महाबाहु धौम्य पृथिवी पर गिर गया । उन राजाओं ने युद्ध में गिरे हुये उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।। २४ ।।

उन्होंने उसके नगर को भी अपने पराक्रम से नष्ट कर दिया । तब मैं और मन्दुरा ही अवशिष्ट रह गये तथा वन को चले गये ।। २५ ।।

तब से हम निर्भय होकर यहाँ गुफा में ही रहते हैं । देखो, उसके पिता की वह शर्त आज भी विद्यमान है ।। २६ ।।

हे महामते, वीर ! जिस धौम्य को देखकर राजा मूर्छित होकर भूमि पर गिर जाते थे, उसकी वह शर्त इस समय भी है ही ।। २७ ।।

जो राजा इस मुद्गर को भुजाओं में धारण करेगा, वह ही मेरा पति होगा, अन्यथा मैं ऐसे ही रहूँगी । हे शुभ पुरुष ! जो कुछ तुमने मुझसे पूछा था, वह सब कह दिया है ।। २८ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्द पुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन प्रसंग में मन्दुरास्वयंवर वर्णन में धौम्य वध नाम का १५वाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय–१६

कुवलाश्व द्वारा मुद्गर उठाकर शर्त पूरा कर मन्दुरा के साथ विवाह करना

ईश्वर (शिव) बोले—

इस प्रकार उसके वचन को सुनकर उसका मन विस्मय से भर गया । उस परम आश्चर्यकारी बात को सुनकर, कि जिसके लिये उन वीरों ने प्राणों को छोड़ दिया था ।। १ ।।

युद्धं चक्रुर्यदर्थं वै दासी चेयं यदीयका ।
कीदृशी सेति बहुधा भविष्यदिति चिंतितम् ॥ २ ॥

जगाम च तया दास्या यत्र सा मंदुरा स्थिता ।
तत्र गत्वा महेशानि दर्शितं च तया पणम् ॥ ३ ॥

तद्दृष्ट्वा मुद्गरं देवि हस्तेनैकेन सत्वरम् ।
तोलयामास पश्यंत्याः मुनीनामूर्द्धरेतसाम् ॥ ४ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं साधु साध्विति वादिनः ।
ऊचुः परस्परं सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ ५ ॥

अहो पराक्रमस्त्वस्य सर्वेषां पृथिवीभृताम् ।
मंदुरा सापि तं देवि ह्यवृणोत्परया मुदा ॥ ६ ॥

वेदोक्तविधिना तां तु परिगृह्य महातपाः[1] ।
समाययौ गृहे स्वीये बलसूदनविक्रमः ॥ ७ ॥

सुखं रेमे तया सार्द्धं पौलोम्येव शचीपतिः ।
तस्यां च कुवलाश्वो वै त्रीन्सुतांस्तु ह्यजीजनत् ॥ ८ ॥

दृढ़ाश्वं कपिलाश्वं च चन्द्राश्वं चन्द्ररूपिणम् ।
स एव धुन्धुमारत्वमगात्पश्चान्महायशाः ॥ ९ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे वंशानुकीर्तने
मंदुरास्वयंवरो नाम षोडशोऽध्यायः ।

---

१. महामना ।

जिसके लिये उन्होंने युद्ध किया था, और जिसकी यह दासी इस प्रकार की है, वह सुन्दरी किस प्रकार की होगी, इस प्रकार अनेक प्रकार से वह विचार करने लगा ।। २ ।।

वह उस दासी के साथ, जहाँ मन्दुरा स्थित थी, वहाँ गया । वहाँ जाकर, हे पार्वति ! उसने उस शर्त रूप मुद्गर को देखा ।। ३ ।।

हे देवि ! उस मुद्गर को देखकर वह सभी ऊर्ध्वरेतस् मुनियों के और उस मन्दुरा के देखते-देखते ही शीघ्र एक हाथ से उठाकर तोलने लगा ।। ४ ।।

उस महान् आश्चर्य की बात को देखकर सभी ब्रह्मवादी मुनि साधु-साधु इस प्रकार बोलते हुए आपस में कहने लगे ।। ५ ।।

सभी राजाओं में इसका पराक्रम आश्चर्यजनक है । हे देवि ! मन्दुरा ने भी उसका परम प्रसन्नता से वरण किया ।। ६ ।।

इन्द्र के समान पराक्रमी, महातपस्वी वह कुवलाश्व उस मन्दुरा के साथ वेदोक्त विधि के साथ विवाह करके उसको अपने घर ले आया ।। ७ ।।

वहाँ वह उसके साथ उसी प्रकार सुख से रमण करने लगा जैसे कि इन्द्र इन्द्राणी के साथ करता है । कुवलाश्व ने उस मन्दुरा में तीन पुत्र उत्पन्न किये ।। ८ ।।

उनके नाम थे–दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और चन्द्रमा के समान रूपवान् चन्द्राश्व । पीछे वह महायशस्वी कुवलाश्व ही धुन्धुमार के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।। ९ ।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन प्रकरण में मन्दुरा-स्वयंवर नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

सप्तदशोऽध्याय:

धुन्धुदैत्यस्य वधाय कुवलाश्वस्य ससैन्यं प्रयाणम्

पार्वत्युवाच—

कथं वै धुन्धुमारत्वमगात्पश्चान्महायशाः ।
एतत् सर्वं महाभाग कथयस्व महेश्वर ।। १ ।।

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि महाराजा धुन्धुमारत्वमागतः ।
तत्सर्वं हि समासेन कथयामि तवांतिके ।। २ ।।

बृहदश्वो महातेजाः कुवलाश्वपितैकदा ।
स्थितो गृहे मंत्रिवर्गैः सहितो हि महायशाः ।। ३ ।।

एतस्मिन्नंतरे देवि ह्युत्तंको नाम नामतः ।
उवाच द्वाःस्थं राज्ञे मां निवेदय समागतम् ।। ४ ।।

तच्छ्रुत्वा सहसा द्वाःस्थो गतो यत्र महीपतिः ।
उत्तंको वै महातेजा आगतश्चेत्युवाच ह ।। ५ ।।

तमागतं तदा श्रुत्वा बृहदश्वो महामनाः ।
उवाचानय शीघ्रं वै उत्तंकमिति पार्वति ।। ६ ।।

आज्ञां राज्ञस्ततः श्रुत्वा हस्तं संगृह्य दक्षिणम् ।
आनयामास नृपतेः सामीप्यं हि तपोनिधिम् ।। ७ ।।

तं दृष्ट्वा सहसा राजा बृहदश्वो महीपतिः ।
कृतांजलिपुटो देवि ह्युत्थाय परमासनात् ।। ८ ।।

अध्याय-१७

धुन्धु दैत्य का वध करने के लिये कुवलाश्व का सेना सहित प्रयाण

पार्वती बोली—

हे ईश्वर ! वह महान् यशस्वी कुवलाश्व किस प्रकार से पीछे धुन्धुमार नाम से प्रसिद्ध हुआ ? इस सम्पूर्ण बात की मुझसे कहो ।। १ ।।

ईश्वर (शिव) बोले—

हे देवि ! जिस प्रकार वह महाराजा कुवलाश्व धुन्धुमार रूप में प्रसिद्ध हुआ, उस बात को मैं संक्षेप से तुम्हारे समीप कहता हूँ ।। २ ।।

एक समय कुवलाश्व के पिता महातेजस्वी और महायशस्वी बृहदश्व अपने मन्त्रियों के साथ घर में स्थित थे ।। ३ ।।

इसी बीच में, हे देवि ! वहाँ उत्तंक नाम के ऋषि आये । उन्होंने द्वारपाल से कहा कि मेरा आगमन राजा से कहो ।। ४ ।।

उसको सुनकर द्वारपाल तत्काल राजा के पास गया और कहा कि उत्तंक नाम के महान् तेजस्वी ऋषि आये हैं ।। ५ ।।

हे पार्वति ! महामनस्वी बृहदश्व ने उन उत्तंक के आगमन को सुनकर कहा कि उनको शीघ्र ले आओ ।। ६ ।।

तदनन्तर वह द्वारपाल राजा की आज्ञा को सुनकर, उस तपस्वी के दाहिने हाथ को पकड़कर, उसे राजा के पास ले आया ।। ७ ।।

हे देवि ! राजा बृहद्श्व उन उत्तंक मुनि को देखकर सहसा हाथ जोड़कर अपने उच्च आसन से उठ खड़ा हुआ ।। ८ ।।

पाद्यमाचमनीयं च चकार सहसा नृपः ।
स्थापयित्वासने[1] रम्ये उवाच परहर्षितः ।। ९ ।।

बृहदश्व[2] उवाच —
किमागमनकृत्यं ते करवाणि महामते ।
कृतार्थोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवदागमनेन हि ।। १० ।।

उत्तंक उवाच —
भवता रक्षणं कार्य्यं सर्वेषां पृथिवीपते ।
प्रजा पालयता राज्ञा धर्मेण श्रुतिवर्त्तिना ।। ११ ।।

यतो[3] राज्यं च विपुलं परत्र च परागतिः ।
जायते सततं देव तस्मात् कार्यं हि रक्षणम् ।। १२ ।।

त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
धुंधुर्नाम महाबाहो मधुपुत्रः प्रतापवान् ।। १३ ।।

समुद्रवालुकापूर्ण उज्जालक इति स्मृतः ।
तत्रायं वसते राजन्निर्भयो नरदेवहा ।। १४ ।।

तपस्तपति दुष्टात्मा वालुकांतर्हितो नृप ।
देवतानामवध्यश्च श्वासं मुंचति वत्सरे ।। १५ ।।

तस्य निश्वासवातेन कंपते वै वसुंधरा ।
रज उत्थाप्यते तेन कालधूम इवापरः ।। १६ ।।

तद्रजः सहसादित्यपथमाच्छाद्य भूपते ।
भूमिर्वै कंपते वीर स्फुलिंगं[4] च हि वर्षति ।। १७ ।।

अश्मवर्षं तदा राजन् सांगारं वर्षते तदा ।
तेनोत्पातेन नृपते न स्थातुं शक्यते मया ।। १८ ।।

---

१. कृतार्थोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवदागमनेन हि । २. बृहदश्व उवाच से भवदागमनेन हि तक पाठ इसमें नहीं है । ३. यथा । ४. विस्फुलिंगं ।

राजा ने तत्काल उस ऋषि का पाद्य और आचमन से सत्कार किया। सुन्दर आसन पर बैठाकर बहुत प्रसन्न होकर वह बोला— ॥ ९ ॥

बृहदश्व ने कहा—

हे महाबुद्धिशालिन् ! तुम्हारे आगमन पर मैं कौन सा कार्य करूँ। मैं आपके आगमन से निश्चय ही कृतार्थ हूँ और अनुगृहीत हूँ ॥ १० ॥

उत्तंक ने कहा—

हे राजन् ! आपको सबकी रक्षा करनी चाहिये। राजा को वेदों के अनुकूल धर्म से प्रजाओं का पालन करना चाहिये ॥ ११ ॥

क्योंकि इससे इस लोक में विशाल राज्य प्राप्त होता है और परलोक में सदा परमगति प्राप्त होती है। हे देव ! इसलिये रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है ॥ १२ ॥

तुम्हारे समान धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ दूसरा राजा तीनों लोकों में नहीं है। हे महाभाग ! मधु दैत्य का पुत्र धुन्धु नाम का प्रतापी दैत्य है ॥ १३ ॥

हे राजन् ! उज्जालक नाम का समुद्र की बालूका से पूर्ण वह स्थान है। वहाँ मनुष्यों और देवताओं का हनन करने वाला यह दैत्य निडर होकर रहता है ॥ १४ ॥

हे राजन् ! वह दुष्ट आत्मा वाला रेती के अन्दर छिपकर तप करता है और देवताओं के लिये अवध्य है। वह वर्ष के व्यतीत होने पर श्वास छोड़ता है ॥ १५ ॥

उसके निःश्वास की वायु से पृथिवी कांपने लगती है और उससे मानो दूसरा कालधूम हो, ऐसी धूलि उठती है ॥ १६ ॥

हे राजन् ! वह धूलि सहसा सूर्य के मार्ग को ढक लेती है और भूमि काँपने लगती है। हे वीर ! फिर चिंगारियाँ बरसती हैं ॥ १७ ॥

हे राजन् ! उसके बाद पत्थरों की वर्षा होती है और तदनन्तर अंगारे बरसते हैं। हे राजन् ! उस उत्पात के कारण मैं वहाँ ठहर नहीं सकता ॥ १८ ॥

यस्तस्य मारणे बुद्धिं धुंधोस्तस्य दुरात्मनः ।
लोकाः स्वस्था भविष्यंति ऋषयश्च तपोधनाः ॥ १९ ॥

वधे तस्य महाबाहो न शक्तः कश्चिदस्ति हि ।
विष्णुनापि वरो दत्तो मम पूर्वं महीपते ॥ २० ॥

धुंधुं मधुसुतं यस्तु मारयिष्यति वै नृपः ।
तस्य त्वं वरदस्तेन[1] तेजोवृद्धिं करिष्यसि ॥ २१ ॥

नहि मधुसुतो भूप वध्योऽल्पेनैव तेजसा ।
अजेयोऽस्ति महातेजा देवैरपि सवासवैः ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच—

इति तद्भाषितं श्रुत्वा ब्रह्मर्षेर्भावितात्मनः ।
उवाच भक्तिसंपन्नो विनयाविष्टमानसः ॥ २३ ॥

बृहदश्व उवाच—

नायं मे समयो विप्र धुंधोर्निग्रहकर्मणि ।
ददामि ते स्वकं पुत्रं कुवलाश्वं महाद्युतिम् ॥ २४ ॥

अयमेव महातेजा धुंधुमारो भविष्यति ।
अनेन कुवलाश्वेन गच्छ तत्र यथासुखम् ॥ २५ ॥

कृपया ते महाभाग धुंधुहंता भविष्यति ।
अहं तु न्यस्तशस्त्रोऽस्मि तपसे कृतमानसः ॥ २६ ॥

ईश्वर उवाच —

इत्युक्त्वोत्तंककं[2] विप्र बृहदश्वो महामनाः ।
समादिदेश पुत्रं च तत्सर्वं मुनिभाषितम् ॥ २७ ॥

न्यस्तशस्त्रो महातेजाश्चीरांवरपरिच्छदः ।
मुनिभिः सह धर्मात्मा ययौ कैलासपर्वते ॥ २८ ॥

---

१. वरदानेन । २. उत्तंकमिति सम्बोध्य ।

उस दुष्ट धुन्धु नाम के दैत्य को मारने का विचार करो। इससे प्रजायें, ऋषि और तपस्वी स्वस्थ होंगे ॥ १६ ॥

हे महाभाग ! उस धुन्धु को मारने में कोई समर्थ नहीं है। हे राजन् ! मुझको पहले विष्णु ने भी वर दिया था ॥ २० ॥

जो राजा मधु के पुत्र धुन्धु का वध करेगा, उसको तुम वर देने वाले बनोगे तथा उसके तेज की वृद्धि करोगे ॥ २१ ॥

हे राजन् ! यह मधु का पुत्र धुन्धु स्वल्प तेजस्वी पुरुष से मारा नहीं जा सकता। इन्द्र सहित सभी देवताओं के लिये यह अजेय है ॥ २२ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

इस प्रकार भावितात्मा ब्रह्मर्षि के उस कथन को सुनकर भक्ति से सम्पन्न एवं विनीत मन वाले बृहदश्व ने कहा ॥ २३ ॥

बृहदश्व ने कहा—

हे ब्राह्मण ! मेरे पास धुन्धु को निग्रह करने के लिये समय नहीं है। मैं तुम्हें महातेजस्वी कुवलाश्व नाम के अपने पुत्र को देता हूँ ॥ २४ ॥

यह महातेजस्वी ही धुन्धु को मारने वाला होगा। आप इस कुश्लाश्व के साथ सुखपूर्वक वहाँ चले जायें ॥ २५ ॥

हे महाभाग ! तुम्हारी कृपा से यह धुन्धु को मारने वाला होगा। तपस्या के लिये मन बनाकर मैंने शस्त्र रख दिये है ॥ २६ ॥

ईश्वर (शिव) बोले—

महामनस्वी बृहदश्व ने इस प्रकार उत्तंक नाम के ब्राह्मण से कहकर मुनि से जो कुछ कहा था उस सबके लिये पुत्र को आदेश दिया ॥ २७ ॥

वह बृहदश्व नाम का महातेजस्वी धर्मात्मा राजा शस्त्रों को रखकर चीवर वस्त्रों को पहनकर मुनियों के साथ कैलाश पर्वत पर चला गया ॥ २८ ॥

केदारेश्वरतो याम्ये मंदाकिन्याश्च ह्युन्तरे।
पर्वते मुनिसेव्ये हि चचार परमं तपः ॥ २९ ॥

ययौ पश्चान्महातेजा योगिनां गतिमुत्तमाम्।
यत्र गत्वा महेशानि जन्मनाशादिवर्जितः ॥ ३० ॥

कुवलाश्वोऽपि पुत्राणां शतेन परिवारितः।
ययौ तेन महातेजा धुंधोर्निग्रहकर्मणि ॥ ३१ ॥

भेरीमृदंगपणवान् संताड्य सहसा चमूः।
संछाद्य पृथिवीं देवि कुर्वति नृपसुश्रियम् ॥ ३२ ॥

रथैरश्वैर्गजैश्चैव सुवर्णकृतभूषणैः।
सैनिकानां सहस्रैस्तु स तेन परिवारितः ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे वंशानुचरिते
कुवलाश्वनिर्गगमनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।

अष्टादशोऽध्याय

धुन्धुदैत्यवधवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

कुवलाश्वो महाबाहुः शतपुत्रस्तु संवृतः।
जगाम सेनया सार्द्धं समुद्रतटके ततः ॥ १ ॥

तमाविशद्वैष्णवं हि तेचः सर्वोत्तमोत्तमम्।
प्रविष्टे तु तदा राजा शुशुभे नितरां मुने ॥ २ ॥

धुंधुः श्रुत्वा महाशब्दं नदतां सर्वतो दिशि।
वालुकायाः समुत्थाय निश्वासं मुमुचे तदा ॥ ३ ॥

केदारेश्वर से दक्षिण दिशा में और मंदागिनी से उत्तर दिशा में मुनियों द्वारा सेव्य पर्वत पर परम तप करने लगा ।। २६ ।।

हे पार्वति ! तप करने के बाद उस महान् तेजस्वी ने योगियों की उस उत्तम गति को प्राप्त किया, जहाँ कि जन्म-मृत्यु आदि नहीं होते ।। ३० ।।

महातेजस्वी कुवलाश्व भी अपने सौ पुत्रों से घिरा हुआ उस मुनि के साथ धुन्धु का निग्रह करने के लिये चला गया ।। ३१ ।।

हे देवि ! भेरी, मृदंग और पण (नगाड़ों) को बजा-बजाकर उसकी सेनाओं ने सहसा पृथिवी को ढक लिया और राजा की शोभा का विस्तार करने लगे ।। ३२ ।।

सुवर्ण के आभूषणों को पहने हुये, रथों से, घोड़ों से, हाथियों से और हजारों सैनिकों से उसने उस धुन्धु को घेर लिया ।। ३३ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुचरित
प्रकरण में कुवलाश्व निर्गमन नाम का सत्रहवाँ अध्याय
पूर्ण हुआ ।

अध्याय-१८

धुन्धु दैत्य के वध का वर्णन

ईश्वर (शिव) ने कहा—

सौ पुत्रों से घिरा हुआ, बड़ी भुजाओं वाला कुवलाश्व तदनन्तर सेना के साथ समुद्र के तट पर गया ।। १ ।।

हे मुने ! उस समय सर्वोत्तमों भी उत्तम विष्णु के तेज ने उस राजा में प्रवेश किया । तब उस तेज के प्रविष्ट होने पर वह राजा बहुत अधिक शोभायमान होने लगा ।। २ ।।

सभी दिशाओं में बजते हुये महान् शब्द को सुनकर धुन्धु ने तब रेती से उठकर निःश्वास को छोड़ा ।। ३ ।।

तस्य निश्वासवातेन सैन्यं तस्य महीभुजः ।
विदुद्राव सर्वतो हि वातेनाभ्रगणो यथा ।। ४ ।।

प्रणष्टे तु ततः सैन्ये कुवलाश्वो महायशाः ।
रथमारुह्य वेगेन गतो मधुसुतो यतः ।। ५ ।।

आगतं तं तु विज्ञाय वालुकान्तर्हितोऽभवत् ।
अन्तर्हितेऽथ तस्मिंस्तु कुवलाश्वो महापतिः ।। ६ ।।

चिंतयामास बहुशः किं कर्त्तव्यमतः परम् ।
कथं धुन्धोर्वधो हंत जायेतेति पुनः पुनः ।। ७ ।।

एतस्मिन्नंतरे वीराः शतपुत्रा महात्मनः ।
समुद्रं खातयामासुर्दृढाश्वप्रमुखाः प्रिये ।। ८ ।।

ततो दुंदुभयो नेदुराकाशे देवताडिताः ।
दिव्यं कुसुमवर्षं च पपात सहसा नृपे ।। ९ ।।

खनत्सु तेषु देवेशि चतुर्दिक्षु ततस्ततः ।
पश्चिमां दिशमास्थाय ददृशे वै स राक्षसः ।। १० ।।

सोऽपि धुन्धुर्महातेजा दृष्ट्वा तान्सहसागतान् ।
ददाह मुखजातेन वह्निना तीव्रवेगिना ।। ११ ।।

शतं त्रिनूनं देवेशि तत्पुत्रांस्ततपराक्रमान् ।
अथ श्रुत्वा स राजा तु निर्दग्धांस्तान् स्वपुत्रकान् ।। १२ ।।

पुनरुत्थाय सहसा क्रोधसंरक्तलोचनः ।
जगाम तत्र देशे तु निर्दग्धा यत्र पुत्रकाः ।। १३ ।।

उस कुवलाश्व राजा की सेना उस धुन्धु के निश्वास की वायु से सब ओर इस प्रकार भागने लगी, जैसे कि वायु से मेघों का समूह भाग जाता है ॥ ४ ॥

तदनन्तर उस सेना के भाग जाने पर वह महायशस्वी कुवलाश्व रथ पर चढ़कर, जहाँ मधु का पुत्र धुन्धु था, वेग से गया ॥ ५ ॥

उस कुवलाश्व को आया हुआ जानकर वह धुन्धु रेती में छिप गया। उसके रेती में छिप जाने पर कुवलाश्व राजा··· ॥ ६ ॥

बहुत अधिक सोचने लगा, कि इसके पश्चात् क्या करना चाहिये। खेद है कि इस धुन्धु का वध कैसे हो ? इस प्रकार पुनः पुनः विचार करने लगा ॥ ७ ॥

फिर प्रिये ! इस मध्य में दृढ़ाश्व आदि महात्मा तथा वीर सौ पुत्रों ने समुद्र को खोद डाला ॥ ८ ॥

तब आकाश में देवताओं द्वारा बजायी जाती हुई दुंदुभि बजने लगी और सहसा राजा पर दिव्य पुष्पों की वर्षा होने लगी ॥ ९ ॥

तब हे देवि ! जबकि वे दृढ़ाश्व आदि सौ पुत्र चारों दिशाओं में खोद रहे थे, वह राक्षस पश्चिम दिशा में दिखाई दिया ॥ १० ॥

महातेजस्वी वह धुन्धु भी सहसा उनको आया हुआ देखकर तीव्र वेग वाले मुख से उत्पन्न अग्नि से जलाने लगा ॥ ११ ॥

हे देवि ! उसने उस कुवलाश्व के तीन कम सौ (९७) पराक्रमी पुत्रों को जला दिया। उसके बाद अपने उन पुत्रों को जलाया गया सुनकर वह राजा ॥ १२ ॥

पुनः उठकर सहसा क्रोध से आँखें लाल करके उस स्थान पर गया, जहाँ उसके पुत्र जला दिये गये थे ॥ १३ ॥

ददर्श वह्नि मुखजं ज्वालामालाविलक्षणम् ।
योगी योगेन सहसा शमयामास वारिणा ॥ १४ ॥

गदया ताडयामास तं धुंधुं स महाबलम् ।
स तया गदया भग्नो जगाम यमसादनम् ॥ १५ ॥

मृतं तं दर्शयामास उत्तंकाय महात्मने ।
दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म धुंधोर्देवि निबर्हणम् ॥ १६ ॥

प्रसन्नचेता भगवानुत्तंको नाम वै मुनिः ।
उवाच मधुरं वाक्यं कुवलाश्वं महीपतिम् ॥ १७ ॥

उत्तंक उवाच—

प्रसन्नोऽस्मि महाराज कर्मणानेन सुव्रत ।
वरं ददामि तेऽहं हि तच्छृणुष्व महामते ॥ १८ ॥

तव वंशे महाराज विख्यातबलविक्रमाः ।
महीपालाः भविष्यंति विज्ञेयास्ते सुरासुरैः ॥ १९ ॥

अतः परं महीपाल तव नाम भविष्यति ।
धुंधुमार इति ख्यातो भविष्यसि त्रिलोकके ॥ २० ॥

ईश्वर उवाच—

इति तस्य वरे दत्ते शशंसुः सर्वदेवताः ।
पुष्पवर्षं ततश्चक्रुर्भेरीशंखरवांस्तथा ॥ २१ ॥

साधु साधु महाराज धुंधुमारेति वै पुनः ।
ऊचुः सर्वे नरश्रेष्ठाः किरंतः कुसुमेन हि ॥ २२ ॥

उत्तंकोऽपि तपश्चक्रे निरुद्विग्नमनास्ततः ।
सुराः सर्वेऽपि देवेशि गता अथ यथागतम् ॥ २३ ॥

वहाँ उसने ज्वालाओं के समूह से विलक्षण मुख से उत्पन्न अग्नि को देखा। तत्र उस योगी ने सहसा योग से उत्पन्न जल से अग्नि को शान्त कर दिया ॥ १४ ॥

उस राजा ने महाबलशाली धुन्धु पर गदा से प्रहार किया। वह धुन्धु भी उस गदा से तोड़ा जाकर यम के घर पहुँच गया ॥ १५ ॥

राजा ने मृत उस धुन्धु को महात्मा उत्तंक को दिखाया। हे देवि ! धुन्धु के विनाश करने वाले उस अद्भुत कर्म को देखकर··· ॥ १६ ॥

प्रसन्न मन वाले भगवान् उत्तंक मुनि ने कुवलाश्व राजा से मधुर वाक्य को कहा ॥ १७ ॥

उत्तंक ने कहा—

हे उत्तम व्रत धारण करने वाले महाराज ! तुम्हारे इस कर्म से मैं प्रसन्न हूँ। मैं तुमको वर देता हूँ। हे महाबुद्धिशालिन् उसको सुनो ॥ १८ ॥

हे महाभाग ! तुम्हारे वंश में बल और विक्रम में प्रसिद्ध राजा होंगे। वे देवों और दानवों में प्रसिद्ध होंगे ॥ १९ ॥

हे राजन् ! इसके पश्चात् तुम्हारा नाम धुन्धुमार होगा, जो तीनों लोकों में इसी प्रकार प्रसिद्ध होगा ॥ २० ॥

ईश्वर (शिव) बोले—

इस प्रकार उसको वर दिये जाने पर सब देवता प्रशंसा करने लगे। वे फूलों की वर्षा करने लगे तथा भेरियों और शंखों की ध्वनि करने लगे ॥ २१ ॥

हे महाराज धुन्धुमार ! साधु-साधु, इस प्रकार वे सभी श्रेष्ठ मनुष्य फूलों की वर्षा करते हुये बार-बार कहने लगे ॥ २२ ॥

तदनन्तर उद्वेग से रहित मन वाला वह उत्तंक भी तपस्या करने लगा। हे देवि। इसके बाद देवता भी जैसे आये थे, चले गये ॥ २३ ॥

सोऽपि राजा धुंधुमारो जगाम भवनं स्वकम् ।
अवशिष्टैस्त्रिभिः पुत्रैर्महाबलः पराक्रमैः ।। २४ ।।

इति ते कथितं देवि पापघ्नं सर्वकामदम् ।
कुवलाश्वस्य चरितं तथा धुंधुनिबर्हणम् ।। २५ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने
धुंधुवधो नाम अष्टादशोऽध्यायः ।।

एकोनविंशोऽध्याय

विश्वामित्रे तपस्तप्तुं निर्गते तत्पत्न्याः सुतमेकं गले बद्ध्वा भरण-पोषणार्थं भ्रमणं, तद्धेतुकं च सुतस्य गालवनामकरणम्

ईश्वर उवाच —

तस्य पुत्रास्त्रयः ख्याताः प्रख्यातबलविक्रमाः ।
तेषां ज्येष्ठो दृढ़ाश्वस्तु धौंधुमारिर्महायशाः ।। १ ।।

तस्य पुत्रो बभूवाथ हर्यश्वो नाम नामतः ।
हर्यश्वस्य निकुंभोऽभूत्क्षात्रधर्मविदां वरः ।। २ ।।

संहताश्वो निकुंभस्य कृशाश्वस्तस्य चात्मजः ।
द्वितीयोऽभून्महेशानि ह्यकृशाश्वस्तथैव च ।। ३ ।।

दृषद्वती कुशाश्वस्य भार्या परमसुन्दरी ।
तस्यां स जनयामास कन्यामेकां च पुत्रकम् ।। ४ ।।

कन्या हैमवती नाम पुत्रश्चापि प्रसेनजित् ।
गौर्य्यां प्रसेनजित्पुत्रं युवनाश्वं तथाऽजनत्[1] ।। ५ ।।

मांधाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी नृपः ।
श्लोकोऽद्यापि पुरा गीते गीयते यस्य पार्वति ।। ६ ।।

---

१ ह्यजीजनत् ।

इसके बाद वह राजा धुन्धुमार अपने बचे हुये महान् बल और पराक्रमशाली तीन पुत्रों के साथ अपने भवन को चला गया ॥ २४ ॥

हे देवि ! इस प्रकार मैंने सभी पापों के विनाश करने वाले और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले धुन्धु-वध रूपी कुवलाश्व के चरित को कह दिया है ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन प्रकरण में धुन्धु-वध नाम का १८वां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय १९

विश्वामित्र के तप करने के लिये चले जाने पर उसकी पत्नी द्वारा अपने एक पुत्र को गले में बाँधकर भरण-पोषण के लिये भ्रमण तथा इसके कारण उसके पुत्र का नाम गालव होना।

ईश्वर बोले—

उस कुवलाश्व के तीन पुत्र बल और विक्रम में प्रसिद्ध थे। उसका बड़ा पुत्र महायशस्वी दृढ़ाश्व था, जिसको धौंधुमारि भी कहते थे ॥ १ ॥

उसका पुत्र हर्यश्व नाम वाला हुआ। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो क्षत्रिय धर्म का पालन करने वालों में श्रेष्ठ था ॥ २ ॥

निकुम्भ का पुत्र संहताश्व हुआ और उसका पुत्र, हे पार्वति ! एक तो कृशाश्व हुआ और दूसरा अकृशाश्व हुआ ॥ ३ ॥

कृशाश्व की दृषद्वती नाम की परम सुन्दरी पत्नी थी। उसमें उसने एक कन्या और एक पुत्र को उत्पन्न किया ॥ ४ ।

कन्या का नाम हेमवती और पुत्र का नाम प्रसेनजित् था। प्रसेनजित् ने अपनी गौरी नाम की पत्नी में युवनाश्व नाम के पुत्र को उत्पन्न किया ॥ ५ ॥

युवनाश्व का पुत्र मान्धाता तीनों लोकों को जीतने वाला राजा हुआ। हे पार्वति ! इसके यश के गीत आज भी गाये जाते हैं ॥ ६ ॥

विक्रमे सुकृते यस्य मांधातुरमितद्युतिः ।
न याति त्रिषु लोकेषु देवो वा मानुषोऽपि वा ।। ७ ।।

शशबिंदोः सुता तस्य भार्या चैत्ररथी मता ।
तस्यामुत्पादयामास द्वौ पुत्रौ दृढ़विक्रमौ ।। ८ ।।

पुरुकुत्सं तथा ज्येष्ठं मुचुकुंदं तथैव च ।
पुरुकुत्ससुतः श्रीमांस्त्रसदस्युर्महामतिः ।। ९ ।।

त्रसदस्योर्नर्मदायां संभूतश्चाभवत्सुतः ।
संभूतस्य सुधन्वाऽभूत्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः ।। १० ।।

त्रिधन्वनो महाराज्ञो नाम्ना त्रैय्यारुणोऽभवत् ।
तस्य सत्यव्रतो नाम पुत्रः परमधार्मिकः ।। ११ ।।

एकदा स महादेवि मृगयायै गतो वने ।
हतास्तेन मृगास्तत्र बहवो जगदीश्वरि ।। १२ ।।

अथ कश्चिन्महातेजास्तपस्वी वाग्विदांवरः ।
मृगरूपेण विहरन्ददृशे विपिने ततः ।। १३ ।।

सत्यव्रतस्तु सन्दृष्ट्वा मुनिं वै मृगरूपिणम् ।
भार्यया सहसा मृग्या गच्छमानं तपोनिधिम् ।। १४ ।।

ततो बाणं जघानाशु मृगौ मत्वा महेश्वरि ।
मृगमाणौ मृगौ तन्तु-कंठप्राणौ विहारिणौ ।। १५ ।।

ऊचतुस्तं स्वहंतारं पित्रा त्यक्तो भविष्यसि ।
नष्टा भविष्यति दुष्टात्मन् धर्मबुद्धिरतः परम् ।। १६ ।।

उस मान्धाता के विक्रम और पुण्य की बराबरी में तीनों लोकों में कोई भी अमित कान्ति वाला देवता या मनुष्य भी नहीं पहुँच पाता है ।। ७ ।।

उसकी पत्नी चैत्ररथी नाम की थी और वह शशबिन्दु की पुत्री थी। उसने उसमें दृढ़ पराक्रम वाले दो पुत्र उत्पन्न किये ।। ८ ।।

उनमें बड़ा पुरुकुत्स था और दूसरा मुचुकुंद था। पुरुकुत्स का पुत्र श्रीमान् त्रसदस्यु महाबुद्धिशाली हुआ ।। ९ ।।

त्रसदस्यु की नर्मदा नाम की पत्नी में सम्भूत नाम का पुत्र हुआ। सम्भूत का पुत्र सुधन्वा हुआ और उसका पुत्र त्रिधन्वा हुआ ।। १० ।।

महाराज त्रिधन्वा का पुत्र त्रैय्यारुण नाम का हुआ। उसका सत्यव्रत नाम का पुत्र परम धार्मिक था ।। ११ ।।

हे महादेवि ! एक दिन वह सत्यव्रत शिकार के लिये वन में गया। हे जगत् की ईश्वरि ! वहाँ उसने बहुत से मृग मार डाले ।। १२ ।।

वहाँ कोई महातेजस्वी तपस्वी वाग्विदों में श्रेष्ठ था, जो मृग के रूप में विहार कर रहा था। सत्यव्रत ने उसको वन में देखा ।। १३ ।।

मृगरूप धारण किये हुये और अपनी पत्नी मृगी के द्वारा अनुसृत होते हुये तपस्वी मुनि को सत्यव्रत ने देखा ।। १४ ।।

तदनन्तर हे महेश्वरि ! उसने उनको मृग समझकर शीघ्रता से बाण का प्रहार किया। विहार करते हुये, किन्तु शिकार बने हुये उन मृगों के तन्तु रूप प्राण कण्ठ में आ गये ।। १५ ।।

अपनी हत्या करने वाले से वे बोले—तुम्हारे पिता तुम्हारा त्याग करेंगे। हे दुष्टात्मन् ! इसके बाद तुम्हारी धर्म की बुद्धि नष्ट हो जायेगी ।। १६ ।।

तया धर्मस्य बुद्ध्या त्वं सर्वकर्मविगर्हितः ।
नराधमः श्वपाकेषु वसिष्यसि दुरासद ।। १७ ।।

इति श्रुत्वा तु तच्छापं विह्वलो नष्टचेतनः ।
गतौ तावपि देवेशि त्रिदिवे मृगरूपिणौ ।। १८ ।।

सोऽपि सत्यव्रतो नाम शापात्संह्रतचेतनः ।
समागत्य गृहे स्वीये ह्ययधर्मनिरतोऽभवत् ।। १९ ।।

एकदा तस्य नगरे कश्चिन्नागरिको जनः ।
कृतोद्वाहो महादेवि आययौ परया मुदा ।। २० ।।

ऋषेः शापाच्च बाल्याच्च जहार तत्प्रियां कुधीः ।
हाहाकारो वभूवाथ नगरे परितो भृशम् ।। २१ ।।

मिलित्वा नागराः सर्वे त्रैय्यारुणमुपागमन् ।
ऊचुः प्रांजलयस्तस्य चेष्टितं हि दुरात्मनः ।। २२ ।।

तच्छ्रुत्वा सहसा राजा क्रोधसंरक्तलोचनः ।
उवाच तं सुतं स्वीयं दुष्टदुष्टेति चासकृत् ।। २३ ।।

गच्छाधर्मव्रतोऽसि त्वं मुखं वीक्षे न ते ह्यतः ।
प्रियं पुत्रं हि दुष्टं हि संत्यजंति नराधिपाः ।। २४ ।।

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा क्व गच्छामि जगाद ह ।
पुनरेनमुवाचाहो श्वपाकेषु व्रज त्वरन् ।। २५ ।।

इति तद्गदितं श्रुत्वा निश्चक्राम पुराद्बहिः ।
दुश्चेष्टितं महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ।। २६ ।।

धर्म की उस बुद्धि के नष्ट होने से तुम सब निन्दनीय कर्म करोगे। हे दुष्ट! तुम नराधम होकर चाण्डालों के बीच निवास करोगे ॥ १७ ॥

इस प्रकार उस शाप को सुनकर वह राजा विह्वल हो गया और उसकी चेतना नष्ट हो गई। हे देवेश्वरि! मृग रूपधारी वे दोनों भी स्वर्ग में चले गये ॥ १८ ॥

शाप के कारण नष्ट चेतना वाला वह राजा सत्यव्रत भी अपने घर आकर अधर्म के कार्यों में संलग्न हो गया ॥ १९ ॥

हे महादेवि! एक बार उसके नगर में कोई नागरिक प्रजाजन विवाह करके बहुत प्रसन्न होकर आया ॥ २० ॥

दुष्ट बुद्धि वाले सत्यव्रत ने मूर्खतावश और ऋषि के शाप के कारण उसकी प्रिया का अपहरण कर लिया। इसके बाद नगर में चारों ओर बहुत अधिक हाहाकार होने लगा ॥ २१ ॥

सभी नागरिक मिलकर त्रैय्यारुण के पास गये। हाथों को जोड़कर उन्होंने उस दुष्ट की चेष्टा की शिकायत की ॥ २२ ॥

उसको सुनकर सहसा क्रोध से लाल आँखों वाले राजा ने अपने उस पुत्र से बार-बार दुष्ट-दुष्ट कहा ॥ २३ ॥

उसने कहा क्योंकि तू अधर्मी है, इसलिये मैं तुम्हारा मुख नहीं देखूँगा। राजा लोग प्रिय होते हुये भी दुष्ट पुत्र का परित्याग कर देते हैं ॥ २४ ॥

पिता के उस वचन को सुनकर सत्यव्रत ने पूछा कि मैं कहाँ जाऊँ। पिता ने पुनः उससे कहा कि तुम शीघ्र चाण्डालों के मध्य चले जाओ ॥ २५ ॥

इस प्रकार उसके कथन को सुनकर वह नगर से बाहर निकल गया। ज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठ ने भी दुष्ट चेष्टाओं वाले··· ॥ २६ ॥

वारयामास न प्राज्ञो गच्छंतं तं महावनम्[1] ।
श्वपाकग्रामनिकटे ह्यवसन्मम वल्लभे ।। २७ ।।

पिताऽप्यस्मिन् वनं याते ययौ हैमवतीस्थले ।
शस्त्राण्यस्त्राणि संत्यज्य तपसे धृतमानसः ।। २८ ।।

सोऽपि सत्यव्रतो नाम पित्रा त्यक्तो महामतिः ।
नष्टधर्मो बभूवाथ सर्वत्यक्तो महेश्वरि ।। २९ ।।

एतस्मिन्नन्तरे तस्य विषये पाकशासनः ।
नावर्षद् द्वादश समास्तस्याधर्मेण वै तदा ।। ३० ।।

अथ तत्र महादेवि विश्वामित्रो महातपाः ।
आययौ तस्य विषये दारैः पुत्रैस्तथा सह ।। ३१ ।।

तस्मिन्नेव महारण्ये स्वदारान् न्यस्य चात्मजान् ।
गतः स तपसे तूर्णमेकाकी मुनिसत्तमः ।। ३२ ।।

कदाचित्तस्य पत्नी तु क्षुधाविष्टमनाः प्रिये ।
स्वपुत्रं मध्यमं देवि गले बध्वा मम प्रिये ।। ३३ ।।

शेषाणां भरणार्थं वै विक्रीणातुं महेश्वरि ।
समाययौ तद्विषये क्षुत्पीडापरिपीडिता ।। ३४ ।।

गले बद्धं तथा दृष्ट्वा विक्रीणंतं तथाविधम् ।
मोचयामास सहसा मुनिपुत्रं महामतिम् ।। ३५ ।।

मोचयित्वा तु तं देवि पालयामास बुद्धिमान् ।
विश्वामित्रानुकम्पार्थं भरणं चाकरोत्सुधीः ।। ३६ ।।

---

१. महावने ।

उसको महान् वन में जाते हुये को नहीं टोका। हे मेरी प्रिये ! वह चाण्डालों के ग्राम के निकट रहने लगा ॥ २७ ॥

उसके वन में चले जाने पर तपस्या करने के लिये मन में धारणा कर इसका पिता भी शस्त्रों-अस्त्रों का त्याग करके हैमवती (हिमालय) के स्थल पर गया ॥ २८ ॥

हे महेश्वरि ! पिता के द्वारा त्याग किये गये, महाबुद्धिशाली, किन्तु धर्म को नष्ट करने वाले उस सत्यव्रत का सबने त्याग कर दिया ॥ २६ ॥

इसी मध्य उसके पाप के कारण, उसके देश में इन्द्र ने बारह वर्ष तक वर्षा नहीं की ॥ ३० ॥

हे महादेवि ! इसके बाद वहाँ महातपस्वी विश्वामित्र उसके देश में अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ आये ॥ ३१ ॥

वे मुनिश्रेष्ठ ! उस महान् वन में अपनी पत्नी और पुत्रों को रखकर तपस्या करने के लिये शीघ्र ही अकेले चले गये ॥ ३२ ॥

हे मेरी प्रिये देवि ! कभी भूख से व्याकुल मन वाली उन विश्वामित्र की पत्नी ने अपने मध्यम पुत्र को गले में बाँधकर··· ॥ ३३ ॥

हे महेश्वरि ! अन्य सब सन्तानों का पालन-पोषण हो सके, अतः उसे बेचने के लिये भूख से पीड़ित वह उसके देश में आयी ॥ ३४ ॥

उस मुनि के मध्यम पुत्र महामतिशाली को उस प्रकार से गले में बँधा हुआ और बेचा जाता हुआ देखकर सत्यव्रत ने एकाएक उसे मुक्त करा दिया ॥ ३५ ॥

हे देवि ! वह बुद्धिमान् सत्यव्रत उसको मुक्त कराकर उसका पालन करने लगा और वह बुद्धिमान् विश्वामित्र की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिये उसका भरण-पोषण करने लगा ॥ ३६ ॥

तत्कुटुम्बस्य सर्वस्य त्र्य्यारुणसुतस्तदा ।
मलबंधाद्गालवोऽसौ विश्वामित्रसुतस्ततः ।। ३७ ।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने
त्रिशंकुचरिते एकोनविंशोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः

स्वदारसुतभरणप्रीतेन विश्वामित्रेण सत्यव्रतापरनामाभिधानाय त्रिशङ्कवे नवस्वर्गलोकरचनोद्योगकरणं भीतसुरस्वीकृतिपूर्वकं यज्ञविधानं, त्रिशङ्कोश्च स्वर्गगमनम्

ईश्वर उवाच—

ततः सत्यव्रतो नाम कृपया परया युतः ।
हत्वा वने मृगांश्चैव वराहांश्च तथैव च ।। १ ।।

उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य न्यवसद्विजने वने ।। २ ।।

विश्वामित्रस्य देवेशि आश्रमस्य समीपतः ।
मांसं वृक्षे वने तस्मिन् बबध गिरिकन्यके ।। ३ ।।

तस्मिन् राज्ये वसिष्ठस्तु पालयामास सर्वतः ।
वसिष्ठेऽप्यधिकं मन्युं चकार स तदादितः ।। ४ ।।

वने वसिष्ठमुनिना गच्छमानो महेश्वरि ।
निवारितो न हि इति ततः क्रोधः समाविशत् ।। ५ ।।

पाणिग्रहस्तु देवेशि सप्तपद्या ह्यनंतरम् ।
सत्यव्रतेन पूर्वं हि धृता सा कन्यका प्रिये ।। ६ ।।

तद्व्रतं तु पितुः क्रोधादुपांशु नावबुध्यते ।
तेनापचारक्रियया नावर्षत्पाकशासनः ।। ७ ।।

तदनन्तर त्रय्यारुण का वह पुत्र सत्यव्रत उस सम्पूर्ण कुटुम्ब का पालन-पोषण करता रहा। तदनन्तर गले में बाँधे जाने के कारण विश्वामित्र का वह पुत्र गालव कहलाया ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन रूप त्रिशंकु के चरित प्रसंग का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २०

अपनी पत्नी और पुत्र के भरण-पोषण से प्रसन्न विश्वामित्र द्वारा त्रिशंकु के लिये, जिसका दूसरा नाम सत्यव्रत था, नये स्वर्ग की रचना करने का उद्योग करना, तदनन्तर डरे हुये देवताओं द्वारा स्वीकार करने पर यज्ञ का विधान करना और त्रिशंकु का स्वर्ग जाना।

ईश्वर बोले—

तदनन्तर बहुत अधिक दीनता से युक्त होकर सत्यव्रत वन में मृगों और वराहों का शिकार करके··· ॥ १ ॥

उपांशु (मन्त्र जपने की एक विधि, जिसमें जप को कोई सुन न सके) व्रत को धारण करके बारह वर्ष की दीक्षा लेकर, पिता की आज्ञा को स्वीकार करके निर्जन वन में निवास करता रहा ॥ २ ॥

हे पर्वत पुत्री देवेशि! उसने उस वन में विश्वामित्र के आश्रम के समीप ही मांस को वृक्ष पर बाँधकर रखा ॥ ३ ॥

उस राज्य में सब प्रकार से वसिष्ठ जी प्रजा का पालन कर रहे थे। तब से लेकर वह वसिष्ठ के प्रति अधिक क्रोध करने लगा ॥ ४ ॥

हे महेश्वरि! वन में जाते हुये मुझको वसिष्ठ मुनि ने नहीं रोका था, इसलिए उनके प्रति वह क्रोध से भर गया ॥ ५ ॥

हे प्रिये देवेश्वरि! उस सत्यव्रत ने पहले जिस कन्या को पकड़ लिया था, बाद में उसके साथ सप्तपदी की विधि से विवाह कर लिया ॥ ६ ॥

पिता के क्रोध के कारण वह उपांशु व्रत के रहस्य को नहीं समझता था। इस अपचार क्रिया के कारण इन्द्र ने वर्षा नहीं की ॥ ७ ॥

इदानीं वहता तेन दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
कुलस्य निष्कृतिर्देवि कृता चेतसा भवेदिति ।। ८ ।।

वसिष्ठश्च न तं देवि पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
एतस्यैव सुतमहमभिषेक्ष्यामि राज्यके ।। ९ ।।

इति तस्य मतिं मत्वा दीक्षां तामुद्वहद् बली ।
अप्राप्ते तु वसिष्ठे हि तद्धेनुं संददर्श ह ।। १० ।।

क्रोधान्मोहाद्दस्युधर्मात्तां जघान महेश्वरि ।
तन्मांसं न स्वयं चैतान्विश्वामित्रस्य चात्मजान् ।। ११ ।।

इति श्रुत्वा तस्य कर्म वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ।
चुक्रोध तं तु राजानमुवाचेति महेश्वरि ।। १२ ।।

वसिष्ठ उवाच—

पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ।
अप्रोषितोपयोगाच्च त्रिशंकुरिति विश्रुतः ।। १३ ।।

दुष्टात्मा दुष्टकर्मा तु भविष्यति न संशयः ।
इत्युक्तवान् वसिष्ठस्तु तदा त्रिशंकुतां गतः ।। १४ ।।

विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा समागत्य गृहे स्वके ।
भरणं च कुटुम्बस्य दृष्ट्वा राज्ञो महेश्वरि ।। १५ ।।

त्रिशंकुं च तथा दृष्ट्वा वसिष्ठपरिपंथिनम् ।
उवाच वचनं चेदं प्रसन्नो भगवानृषिः ।। १६ ।।

विश्वामित्र उवाच—

वरं ब्रूहि महाभाग कुटुम्बपरिपालक ।
इति वै छंद्यमानो वै वरं वव्रे महीपतिः ।। १७ ।।

अब उसने क्योंकि बारह वर्ष की दीक्षा ले ली थी, अत: हे देवि ! उसके कुल का कल्याण हो सकता था ।। ८ ।।

हे देवि ! पिता के द्वारा त्यागे जाने पर वसिष्ठ ने उसको इसलिये नहीं रोका था कि इसके ही पुत्र का मैं राजा के पद पर अभिषेक करूँगा ।। ९ ।।

वसिष्ठ के इस विचार को जानकर उस बलवान् सत्यव्रत ने दीक्षा ली थी । वसिष्ठ को न पाने पर उसने उसकी गाय को देखा ।। १० ।।

हे महेश्वरि ! क्रोध और मोह के वशीभूत होकर डाकुओं के धर्म से उसने उसको मार डाला । परन्तु उसके मांस को न तो स्वयं खाया और न ही विश्वामित्र के पुत्रों को खिलाया ।। ११ ।।

उसके इस कर्म के विषय में जानकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि कुपित हुये । हे महेश्वरि ! उन्होंने इस राजा से कहा-- ।। १२ ।।

वसिष्ठ बोले—

पिता के असन्तोष के कारण, गुरु की गाय का वध करने के कारण और अप्रोषित स्त्री का उपयोग करने के कारण तुम त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध होओगे ।। १३ ।।

तुम दुष्टातमा और दुष्टकर्मी होओगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है । ऐसा वसिष्ठ ने कहा । तब वह त्रिशंकु हो गया ।। १४ ।।

हे महेश्वरि ! धर्मातमा विश्वामित्र ने अपने घर आकर राजा त्रिशंकु द्वारा अपने परिवार के पालन-पोषण को और उस राजा को देखा ।। १५।।

वसिष्ठ के शत्रु त्रिशंकु को उस प्रकार की अवस्था में देखकर प्रसन्न होकर भगवान् ऋषि विश्वामित्र ने यह वचन कहा ।। १६ ।।

विश्वामित्र ने कहा—

कुटुम्ब का पालन करने वाले हे महाभाग ! वर माँग लो । इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने यह वर माँगा ।। १७ ।।

त्रिशंकुरुवाच—

तथा यतस्व भगवन् यथाहं स्वर्गलोकभाक् ।
अनेनैव शरीरेण भवेयं मुनिवंदित ।। १८ ।।

ओमित्युक्त्वा तदा तेन विग्रहस्य भये गते ।
पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याशु त्रिशंकुं गाधिपुत्रकः ।। १९ ।।

मिषतां सर्वदेवानां वसिष्ठस्य महामतिः ।
ततः सोऽपि महेशानि कैकय्यां देवि पुत्रकम् ।। २० ।।

हरिश्चन्द्र इति ख्यातं राजसूयकरं नृपम् ।
विश्वामित्रोऽपि हे देवि याजयामास तं नृपम् ।। २१ ।।

वेदोक्तविधिना देवि कारयामास वै मुनिः ।
सर्वे देवाः ब्राह्मणाश्च नाययुर्हि तदध्वरम् ।। २२ ।।

क्रुद्धश्चोवाच गाधेयो विश्वामित्रो महायशाः ।
देवानन्यान् करिष्यामि स्वर्गमन्यं तथा जनान् ।। २३ ।।

अन्यांश्च स्थावरांश्चैव पशुपक्षिचतुष्पदान् ।
इत्युक्त्वा मुनिराट् देवि चिकीर्षुः सृष्टिमन्यकाम् ।। २४ ।।

वृक्षेभ्यो मानुषोत्पत्तिं करिष्यामीति सोऽवदत् ।
विष्णुमन्यं च ब्रह्माणं रुद्रं च जगदीश्वरम् ।। २५ ।।

इन्द्रमग्निं च वायुं च तथान्यान् देवदानवान् ।
भिन्नानेव करिष्यामि त्रिशंकोर्वसतिस्थले ।। २६ ।।

कुलत्थांश्च मसूरांश्च राजमाषांस्तथैव च ।
गोधूमांश्च तथा चक्रे अन्यांश्च भगवान् मुनिः ।। २७ ।।

त्रिशंकु बोले—

हे भगवन् ! मुनियों में वन्दनीय ! आप ऐसा प्रयत्न कीजिये कि मैं इसी शरीर से स्वर्ग को प्राप्त कर लूँ ।। १८ ।।

'हाँ', इस प्रकार कहकर तथा तब उसके द्वारा युद्ध का भय न रहने पर गाधिपुत्र विश्वामित्र ने त्रिशंकु का उसके पिता के राजपद पर अभिषेक कर दिया ।। १९ ।।

उस महाबुद्धिशाली सत्यव्रत ने सभी देवताओं की और वसिष्ठ की स्तुति की । हे महेशानि देवि ! उसने कैकयी नाम की रानी में पुत्र को उत्पन्न किया ।। २० ।।

वह हरिश्चन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसने कि राजसूय यज्ञ को किया था । हे देवि ! उस विश्वामित्र ने उस राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु) को यज्ञ कराया ।। २१ ।।

हे देवि ! उस मुनि विश्वामित्र ने वेदोक्त विधि से यज्ञ कराया था । परन्तु उस यज्ञ में देवता और ब्राह्मण नहीं आये ।। २२ ।।

महायशस्वी गाधिपुत्र विश्वामित्र क्रुद्ध होकर बोले—मैं अन्य देवताओं की रचना करूँगा, दूसरा स्वर्ग बनाऊँगा तथा प्रजाजनों को बनाऊँगा ।। २३ ।।

अन्य स्थावर (जड़) पदार्थों को और पशु-पक्षी-चौपायों को बनाऊँगा । यह कहकर हे देवि ! उस मुनिराज ऋषि ने दूसरी सृष्टि बनाने की इच्छा की ।। २४ ।।

उसने कहा कि मैं वृक्षों से मनुष्यों की उत्पत्ति करूँगा । दूसरे ही विष्णु, ब्रह्मा और जगदीश्वर शिव की रचना करूँगा ।। २५ ।।

मैं त्रिशंकु के निवास स्थान पर ही दूसरे इन्द्र, अग्नि और वायु तथा अन्य देवताओं और दानवों की रचना करूँगा ।। २६ ।।

भगवान् मुनि विश्वामित्र ने दूसरे ही कुलत्थ मसूर, राजमाष और गेहूँ बनाये ।। २७ ।।

महिषांश्च तथा मेषान्भल्लूकांश्च तथैव च।
रचयामास सहसा स्वेच्छयैव महामुनिः ॥ २८ ॥

इन्द्रराज्येऽभिषेक्ष्यामि त्रिशंकुं स्वेन तेजसा।
स्वयं ब्रह्मा भविष्यामि त्रिशंकोर्यज्ञमुत्तमम् ॥ २९ ॥

कारयिष्यामि भागांश्च ग्रहीष्यामि स्वयं हि वै।
वदतिस्मेति च पुना रचयामास वै प्रिये ॥ ३० ॥

इति विरच्यमाने तु विश्वामित्रेण धीमता।
तत्रसुः सर्वभूतानि पर्वताश्च चकंपिरे ॥ ३१ ॥

देवाः सर्वे सब्रह्माद्यास्तत्रसुः सेन्द्रका गणाः।
विश्वामित्रस्य शरणं जग्मुः सर्वे महेश्वरि ॥ ३२ ॥

ऊचुः प्रांजलयः सर्वे अलं सृष्ट्येति देवताः।
न कर्त्तव्यान्यथा सृष्टिः सर्वहेतोः स्वयंभुवः ॥ ३३ ॥

यज्ञभागान् गृहीष्यामो विश्वामित्राध्वरे मुने।
इत्युक्त्वा निर्ज्जरा सर्वे विश्वामित्रं महामतिम् ॥ ३४ ॥

जगृहुर्यज्ञभागांश्च तस्य यज्ञे महीक्षितः।
पूर्वेणैव शरीरेण प्रेषितः स्वर्गमंदिरम् ॥ ३५ ॥

मध्येऽसौ स्थितवान् राजा निरोधाद्वै दिवौकसाम्।
अद्यापि दृश्यते देवि त्रिशंकुरमितद्युतिः ॥ ३६ ॥

त्रिशंकोश्चरितं यस्तु विश्वामित्रस्य यः प्रिये।
श्रुत्वा पातकयुक्तोऽपि स्वर्गलोके वसेत्परम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने
त्रिशंकुचरिते विंशोऽध्यायः।

उस महामुनि ने अपनी इच्छा से एकदम अन्य भैंसें, भेड़ें और भालू बना दिये ।। २८ ।।

मैं अपने तेज से त्रिशंकु को इन्द्र के राज्य में अभिषिक्त कर दूंगा और इसके उत्तम यज्ञ में स्वयं ब्रह्मा होऊँगा ।। २६ ।।

मैं इस यज्ञ के भागों का स्वयं निर्धारण कराऊँगा और स्वयं ही उन्हें ग्रहण करूँगा । हे प्रिये ! इस प्रकार मुनि ने कहा और पुनः रचना प्रारम्भ कर दी ।। ३० ।।

इस प्रकार बुद्धिमान् विश्वामित्र के द्वारा सृष्टि की रचना की जाने पर सभी प्राणी भयभीत हो गये और पर्वत काँपने लगे ।। ३१ ।।

हे महेश्वरि ! ब्रह्मा आदि सभी देवता और इन्द्र सहित सभी गण डर गये और वे सब विश्वामित्र की शरण में गये ।। ३२ ।।

सभी देवता हाथ जोड़कर कहने लगे — सृष्टि की रचना से बस करो । सबके कारण रूप स्वयंभू ब्रह्मा की सृष्टि के अतिरिक्त अन्य सृष्टि की रचना नहीं करनी चाहिये ।। ३३ ।।

हे मुने ! विश्वामित्र के इस यज्ञ में हम यज्ञ के भागों को ग्रहण करेंगे । इस प्रकार सभी देवताओं ने महामति विश्वामित्र से कहकर··· ।। ३४ ।।

उस राजा के यज्ञ में यज्ञ भागों को ग्रहण किया और उसको पूर्व शरीर से ही स्वर्ग भेज दिया ।। ३५ ।।

देवताओं द्वारा रोके जाने पर वह राजा मध्य में ही स्थित हो गया । हे देवि ! अमित कान्तिशाली वह त्रिशंकु आज भी दिखाई देता है ।। ३६ ।।

हे प्रिये ! जो व्यक्ति त्रिशंकु और विश्वामित्र के चरित का श्रवण करता है, वह पाप से युक्त होकर भी उत्कृष्ट स्वर्ग लोक में निवास करता है ।। ३७ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन खण्ड में
त्रिशंकुचरित का बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

एकविंशोऽध्यायः

हरिचन्द्रयज्ञवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

त्रिशंकोरभवत्पुत्रो हरिश्चन्द्रेति विश्रुतः ।
पुण्यं यशस्यमायुष्यं चरितं शृणु तस्य वै ॥ १ ॥

त्रिशंकौ स्वर्गगते देवि हरिश्चन्द्रो बभूव ह ।
सप्तद्वीपकृतानुज्ञो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ २ ॥

शशास पृथिवीं राजा धर्मेण श्रुतिवर्त्तिना ।
पितेवासीत्प्रजानां हि पालनाच्छासनात्तथा ॥ ३ ॥

तस्य पत्नी बभूवाथ वैदर्भतनया सती ।
रूपेणौदार्य्यशीलेन सर्वाधिकतमा सती ॥ ४ ॥

तस्यां बभूव पुत्रोऽपि रोहिताश्वोऽतिवीर्य्यवान् ।
हरिश्चन्द्रश्च[1] धर्मात्मा कृत्वानेकविधान् मखान् ॥ ५ ॥

राजसूये मनश्चक्रे महात्मा दृढ़विक्रमः ।
राजसूयाय यज्ञाय वरयामास गाधिजम् ॥ ६ ॥

अन्यांश्च शतशो विप्रान् नानादेशसमुद्भवान् ।
वरयामास विज्ञाय हरिश्चन्द्रो महामनाः ॥ ७ ॥

सर्वाश्च योषितस्तत्र नानालंकारवाससः ।
सुमध्यमा सुकेश्यश्च पूर्णकुंभपरोधराः ॥ ८ ॥

---

१. स्तु ।

अध्याय २१

हरिश्चन्द्र के यज्ञ का वर्णन

ईश्वर बोले—

त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके पुण्यशाली, यश प्रदान करने वाले और दीर्घायु प्रदान करने वाले चरित्त के विषय में सुनो ॥ १ ॥

हे देवि ! त्रिशंकु के स्वर्ग चले जाने पर हरिश्चन्द्र राजा हुआ। सातों द्वीपों में उसकी आज्ञा चलती थी। वह यज्ञ करने वाला था और प्रभूत दक्षिणा देता था ॥ २ ॥

वह राजा वेदों द्वारा गहे गये धर्म से पृथ्वी का शासन करता था। प्रजाजनों का पालन और शासन करने से वह उनके पिता के समान था ॥ ३ ॥

विदर्भ देश के राजा की सती पुत्री उसकी पत्नी हुयी। यह सौन्दर्य, उदारता और सदाचार में सर्वश्रेष्ठ थी ॥ ४ ॥

उसका पुत्र रोहिताश्व अति पराक्रमशाली हुआ। धर्मात्मा हरिश्चन्द्र ने अनेक प्रकार के यज्ञ किये ॥ ५ ॥

तदनन्तर पराक्रमी उस महात्मा ने राजसूय यज्ञ का विचार किया। राजसूय यज्ञ करने के लिये उसने गाधिपुत्र विश्वामित्र का वरण किया ॥ ६ ॥

महामनस्वी हरिश्चन्द्र ने जानकारी प्राप्त करके अन्य देशों के भी सैकड़ों विद्वानों का वरण इस यज्ञ के लिए किया ॥ ७ ॥

इस यज्ञ में अनेक प्रकार के अलंकारों और वस्त्रों को पहने हुए सुन्दर कटि प्रदेश वाली, सुन्दर केशों वाली और पूर्ण कुंभ के समान पयोधर वाली महिलाएँ वहाँ आयीं ॥ ८ ॥

राजानोऽपि च सर्वेभ्यो देशेभ्यः समुपागताः ।
महार्हाणि सुरत्नानि गृहीत्वोपायनानि वै ।। ९ ।।

वादित्राणि विचित्राणि भेर्य्यादीनि महेश्वरि ।
सर्वतो हि विनेदुश्च शंखानकपणगोमुखाः ।। १० ।।

चतुर्वेदमयो घोषो बभूव सर्वतो दिशः ।
न कश्चित्क्षुधितस्तत्र हरिश्चन्द्रस्य चाध्वरे ।। ११ ।।

दीयतां भुज्यतां चैव मास्तु कश्चित्तु दुर्बलः ।
अवस्त्रो वसनं चैव क्षुधितो विविधांस्तथा ।।
भोज्यान् गृह्णातु सततमिति चैव पुनः पुनः ।। १२ ।।

श्रूयंते विविधा वाचो यज्ञे तस्य महात्मनः ।
कन्यका वारमुख्याश्च नानालंकारभूषिताः ।।
जगुर्मंगलगीतानि मंगलद्रव्यसंयुताः ।। १३ ।।

नानादेशसमुद्भूतैर्नरैश्च नरपुंगवैः ।
यज्ञवाटमभूद्देवि सर्वतोऽलंकृतं तदा ।। १४ ।।

आशीर्भिर्ब्राह्मणानां च बंदिनां स्तुतिपाठकैः ।
बभूव नगरे तस्य जयशब्दः पुनः पुनः ।। १५ ।।

ब्राह्मणानां तथा राज्ञां सभासु गिरिकन्यके ।
विचारानेकवैचित्र्यैर्बभूव सततं कलिः ।। १६ ।।

महार्हवस्त्राभरणा जना रेजुर्महेश्वरि ।
देवा इवामरावत्यां रेजुर्वै वासवाध्वरे ।। १७ ।।

गवाक्षजालरंध्रेषु रत्नबद्धेषु सर्वतः ।
कौतूहलसमाविष्टाः स्थिता नागरवल्लभाः ।। १८ ।।

बहुमूल्य और उत्तम रत्नों को उपहारों के रूप में लेकर सभी देशों से राजा लोग वहाँ आये ।। ९ ।।

हे महेश्वरि ! वहाँ भेरी आदि विचित्र वाद्य तथा शंख, पणवानक (नगाड़ा), और गोमुख (एक प्रकार का शंख) नामक सुन्दर वाद्य चारों ओर बजने लगे ।। १० ।।

सभी दिशाओं में चारों वेदों के मन्त्रों की ध्वनि होने लगी। हरिश्चन्द्र के उस यज्ञ में कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं रहा ।। ११ ।।

दान करो, खाओ, कोई भी व्यक्ति दुर्बल न रहे। वस्त्ररहित वस्त्रों को ग्रहण करें और भूखे व्यक्ति अनेक प्रकार के खाने की वस्तुओं को ग्रहण करें। इस प्रकार पुनः पुनः निरन्तर कहा जाने लगा ।। १२ ।।

उस महात्मा ऋषि के यज्ञ में इस प्रकार की अनेक वाणियाँ सुनायी देती थीं। अनेक अलंकारों से सुशोभित कन्यायें और सुन्दर वेश्यायें मंगल पदार्थों से युक्त होकर मंगल गीतों को गा रही थीं ।। १३ ।।

हे देवि ! वह यज्ञ-स्थल अनेक देशों के मनुष्यों से और नर श्रेष्ठों से सर्वथा अलंकृत रहता था ।। १४ ।।

ब्राह्मणों के आशीर्वादों के द्वारा और वंदियों के स्तुतिपाठों द्वारा उसके नगर में पुनः-पुनः जय शब्द होते थे ।। १५ ।।

हे पर्वतपुत्री पार्वति ! ब्राह्मणों और राजाओं की सभा में अनेक विचित्र सुन्दर विचारों का कोलाहल होता रहता था ।। १६ ।।

हे महेश्वरि ! वहाँ बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों को पहने हुए लोग उसी प्रकार सुशोभित होते थे, जैसे कि अमरावती में इन्द्र के यज्ञ में देवता सुशोभित होते हैं ।। १७ ।।

नगर-निवासियों की प्रियायें कुतुहल से भरकर रत्नजटित खिड़कियों के जालों के झरोखों में चारों ओर बैठी रहती थीं ।। १८ ।।

दीक्षितश्च हरिश्चन्द्रः कुशहस्तो रराज ह।
यथा शचीपतिः पूर्वं सह शच्याश्वमेधके ॥ १९ ॥

घंटाछत्रगृहास्तत्र विरेजुः सर्वतो दिशः।
गावश्च सर्वाभरणाः स्वर्णघंटाविभूषिताः ॥ २० ॥

तत्रासन् ब्राह्मणानां च देवानां च महेश्वरि।
सर्वेषां ब्राह्मणानां हि मध्ये राजा रराज ह ॥ २१ ॥

देवर्षीणां यथा शक्रो नाकपृष्ठे महायशाः।
इति तस्मिन् महायज्ञे तथा विपुलदक्षिणे ॥ २२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो विचित्राणि रत्नानि विविधानि हि।
महार्हाणि च वस्त्राणि कुटुंबिभ्यो ददौ नृपः ॥ २३ ॥

यः कश्चिन् मामके यज्ञे ह्यागतो दुर्बलो जनः।
यद्यदपेक्षते तस्य गृह्णातु तद्ददामि च ॥ २४ ॥

इतीत्युक्तो हरिश्चन्द्रो ब्राह्मणेभ्यो ददौ वसु।
तथान्येभ्यो निर्धनेभ्यो बहुपुत्रेभ्य एव च ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने
हरिश्चन्द्रोप्याख्याने एकविंशोऽध्यायः।

द्वाविंशोऽध्याय

राजसूययज्ञपूर्तौ हरिश्चन्द्रेण विश्वामित्राय स्वराज्यदानं, विश्वामित्रेण दानेन सह दक्षिणायाचनं, भार्यां सुतमात्मानश्च विक्रीय हरिश्चन्द्रेण मुनितोषणम्

ईश्वर उवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा हरिश्चन्द्रस्य धीमतः।
यज्ञे बहुविधे देवि दीयमाने तथा धने ॥ १ ॥

यज्ञ में दीक्षित कौर कुशाओं को हाथ में लिये हुए हरिश्चन्द्र उसी प्रकार सुशोभित होते थे जैसे कि पहले इन्द्राणी सहित इन्द्र अश्वमेघ यज्ञ में सुशोभित हुये थे ॥ १९ ॥

वहाँ सभी दिशाओं में घण्टों और छातों से युक्त गृह एवं सोने के घण्टों से विभूषित सभी अलंकारों को धारण किये हुए गौवें शोभायमान थीं ॥ २० ॥

हे महेश्वरि ! वहाँ ब्राह्मण और देवता विराजमान थे और सब ब्राह्मणों के बीच में राजा सुशोभित था ॥ २१ ॥

विपुल दक्षिणा से युक्त उस महान् यज्ञ में वह महान् यशस्वी राजा उसी प्रकार शोभायमान था जैसे कि देवर्षियों के बीच में इन्द्र स्वर्ग में शोभायमान होता है ॥ २२ ॥

राजा ने ब्राह्मणों के लिये और कुटुम्बियों के लिये अनेक प्रकार के सुन्दर रत्न और बहुमूल्य वस्त्र दान किये ॥ २३ ॥

जो कोई दुर्बल व्यक्ति मेरे इस यज्ञ में आया है, वह जिस चीज की अपेक्षा करता है, उसको वह ले ले । मैं देता हूँ ॥ २४ ॥

यह कहकर हरिश्चन्द्र ने ब्राह्मणों के लिये धन दिया और बहुत पुत्रों वाले दूसरे निर्धनों को भी धन दिया ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत वंशानुकीर्त्तन खण्ड में हरिश्चन्द्र आख्यान प्रसङ्ग में इक्कीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय २२

राजसूय यज्ञ के सम्पन्न हो जाने पर हरिश्चन्द्र द्वारा विश्वामित्र के लिये अपने राज्य को दान करना, विश्वामित्र द्वारा इसको स्वीकार करके दान की दक्षिणा मांगना, पत्नी-पुत्र-स्वयं को बेचकर हरिश्चन्द्र द्वारा मुनि को सन्तुष्ट करना

ईश्वर बोले—

इस प्रकार उस बुद्धिमान् हरिश्चन्द्र के वचन को सुनकर हे देवि ! उस यज्ञ में बहुत प्रकार से दान दिये जाने पर···॥ १ ॥

श्रूयंते स्म तथा वाचो विविधानां नृणां तथा ।
धन्योऽस्ति त्रिषु लोकेषु हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥ २ ॥

यस्य राज्ञो महादेवि प्रश्रयेण दमेन च ।
न गच्छेयुर्गतिं केऽपि तथा यज्ञैर्महाधनैः ॥ ३ ॥

अथ राजा महातेजा राजसूयस्य दक्षिणाम् ।
विश्वामित्राय महते ददौ पृथ्वीं महेश्वरि ॥ ४ ॥

सर्वाश्वगजसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनान्विताम् ।
नानारत्नोपसंपूर्णां नानादेशान्वितां तथा ॥ ५ ॥

राजगेहं तथा रत्नैर्नानाश्वगजवाहनैः ।
शस्त्रास्त्रैर्विविधैर्वस्त्रैरन्वितैर्हेमसंचयैः ॥ ६ ॥

विश्वामित्राय राजा तु ददौ संहृष्टमानसः ।
राजचिह्नं हि सर्वं तु चामरादिकमुत्तमम् ॥ ७ ॥

इति[1] दृष्ट्वा जनाः सर्वे दृष्ट्वा तद्दानमुत्तमम् ।
विस्मयाविष्टमनसो रेजुस्ते स्थावरा इव ॥ ८ ॥

विश्वामित्रोऽप्युवाचैनं राजानं तं त्रिशंकुजम् ।
संगृह्य पृथिवीं सर्वां सरत्नां गजवाहनाम् ॥ ९ ॥

विश्वामित्र उवाच—

हरिश्चन्द्र महाराज दत्ता मे पृथिवी त्वया ।
तथा मे तस्य दानस्य दक्षिणां देहि सुव्रत ॥ १० ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

सर्वं तवैव हि मुने दत्ता सर्वा वसुन्धरा ।
सरत्नवसुसंपूर्णा ह्यनागरथाकुला ॥ ११ ॥

---

१. "इति ·····दानमुत्तमम्" पाठ इसमें नहीं है ।

विविध मनुष्यों की इस प्रकार की वाणियाँ सुनायी देती थीं। "महायशस्वी हरिश्चन्द्र तीनों लोकों में धन्य हैं" ॥ २ ॥

हे महादेवि ! जिस राजा के विनय के कारण और इन्द्रिय-दमन के कारण कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के यज्ञों और महान् धनों द्वारा इस प्रकार की गति को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

हे महेश्वरि ! इसके बाद महातेजस्वी राजा हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ की दक्षिणा के रूप में उस महान् विश्वामित्र के लिये पृथ्वी का दान कर दिया ॥ ४ ॥

यह पृथ्वी सब प्रकार के हाथियों और घोड़ों से भरी थी, हृष्ट-पुष्ट लोगों से युक्त थी, विविध रत्नों से सम्पूर्ण थी और अनेक देशों से युक्त थी ॥ ५ ॥

उसने रत्नों, विविध घोड़ों, हाथियों और वाहनों, शस्त्र-अस्त्रों, विविध वस्त्रों और स्वर्ण की राशि से युक्त राजगृह को दान कर दिया ॥ ६ ॥

प्रसन्न मन वाले राजा ने चँवर आदि से युक्त उत्तम राजचिह्न को विश्वामित्र को दे दिया ॥ ७ ॥

वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति उस उत्तम दान को देखकर विस्मय से भरे मन वाले होकर निश्चय से खड़े से रह हुए ॥ ८ ॥

रत्नों तथा हाथी आदि वाहनों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को ग्रहण करके विश्वामित्र ने भी त्रिशंकु के पुत्र इस राजा से कहा ॥ ९ ॥

विश्वामित्र ने कहा—

हे महाराज हरिश्चन्द्र ! तुमने मुझे पृथ्वी को दान कर दिया है। हे उत्तम व्रत का पालन करने वाले राजन् ! तुम मुझको उस दान की दक्षिणा भी दो ॥ १० ॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—

हे मुने ! मैंने आपको रत्नों और धनों से भरी हुयी तथा घोड़ों और हाथियों से भरी इस सारी पृथ्वी को दान कर दिया है, अतः सब कुछ तुम्हारा ही है ॥ ११ ॥

तव द्रव्ये महाभाग सत्ता नास्ति महामुने ।
कथं देया मया तेऽद्य भूमिदानस्य दक्षिणा ॥ १२ ॥

अवशिष्टा वयं देव पत्नीपुत्रावहं त्रयः ।
कोषादिकं च तत्सर्वं दत्तं तेऽद्य महामुने ॥ १३ ॥

ईश्वर उवाच

इति श्रुत्वा महादेवि वचो राज्ञा समीरितम् ।
उवाच वचनं शीघ्रं क्रोधेन कलुषीकृतः ॥ १४ ॥

विश्वामित्र उवाच—

दत्वा वसुंधरां मह्यं दक्षिणा चेन्न दीयते ।
कीदृशं भूमिदानं हि भविष्यति नृपाधम ॥ १५ ॥

किमर्थं कृतवान् दानं दानी भूत्वा महान् स्वयम् ।
इदानीं मे दक्षिणा हि न ददाति कथं भवान् ॥ १६ ॥

ईश्वर उवाच—

इति[1] श्रुत्वा वचस्तस्य हरिश्चन्द्रो महायशाः ।
क्रुद्धं मुनिं तु विज्ञाय भयाविष्टमनास्तदा ॥ १७ ॥

मुखेन शुष्यता देवि संत्रस्तश्चाभवत्तदा ।
उवाच प्रांजली राजा विश्वामित्रं महामुनिम् ॥ १८ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

क्रोधं मा कुरु विप्रार्य्य स्वदासे मयि सांप्रतम् ।
मासेनाहं प्रदास्यामि दक्षिणां ते तपोधन ॥ १९ ॥

क्षमस्व भगवन् ब्रह्मन्निदानीं मां महामते ।
यथामितं हि दास्यामि चरित्वा भैक्ष्यमुत्तमम् ॥ २० ॥

विश्वामित्र उवाच—

गच्छाशु राजन्भैक्ष्यार्थं मदर्थे त्यक्तलज्जकः ।
मासेनाहं पुनस्तत्रागमिष्यामि च सुव्रत ॥ २१ ॥

---

१. "इति ·····महायशाः" पाठ इसमें नहीं है ।

हे महाभाग ! महामुने ! तुम्हारे धन में अब मेरा अधिकार नहीं है। अब तुमको इस भूमि-दान की दक्षिणा कैसे दूँगा ।। १२ ।।

हे देव ! हे महामुने ! अब तो हम तीन ही बचे हैं—मैं, पत्नी और पुत्र। सब कोष आदि को तुम को ही दे दिया है ।। १३ ।।

शिव ने कहा—

हे महादेवि ! राजा द्वारा कहे गये इस वचन को सुनकर क्रोध से मलिन विश्वामित्र ने शीघ्र यह वचन कहा ।। १४ ।।

विश्वामित्र ने कहा—

हे राजाओं में नीच ! यदि तुम पृथ्वी का दान करके मुझे दक्षिणा नहीं देते हो, तो तुम्हारा यह कैसा भूमिदान होगा ।। १५ ।।

स्वयं महान् दानी होकर तुमने किसलिये यह दान किया है। अब आप मेरी दक्षिणा को कैसे नहीं देंगे ।। १६ ।।

ईश्वर ने कहा—

विश्वामित्र के इस वचन को सुनकर महायशस्वी हरिश्चन्द्र का मन मुनि को क्रोधी जानकर भय से आविष्ट हो गया ।। १७ ।।

हे देवि ! तब उनका मुख सूख गया और वे घबरा गये। राजा ने महामुनि विश्वामित्र के सामने हाथ जोड़कर कहा…।। १८ ।।

हरिश्चन्द्र बोले—

हे आर्य विप्र ! अब मुझ अपने दास के प्रति क्रोध मत करो। हे तपस्विन् ! मैं एक महीने में तुम्हारी दक्षिणा दे दूँगा ।। १९ ।।

हे महा बुद्धिशाली भगवन्, ब्रह्मन् ! आप मुझे क्षमा करें। मैं उत्तम भिक्षा माँगकर आपको उत्तम प्रचुर दक्षिणा दूँगा ।। २० ।।

विश्वामित्र ने कहा—

हे राजन् ! तुम लज्जा छोड़कर मेरे निमित्त भिक्षा मांगने के लिए शीघ्र जाओ। उत्तम व्रत पालन करने वाले हे राजन्। एक महीने पश्चात् मैं पुनः वहाँ आऊँगा ।। २१ ।।

ममेदं नगरं सर्वं न स्थेयं हि त्वयात्र वै।
यथेच्छं गच्छ कुत्रापि यतो द्रव्यं हि दास्यसि ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच—

इति वै गदितं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य वै नृपः।
उवाच पत्नीं पुत्रं हि गच्छामोऽद्य वनं वयम् ॥ २३ ॥

हरिश्चन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तौ पत्निपुत्रकौ।
ऊचतुस्तौ महेशानि बाष्पव्याकुललोचनौ ॥ २४ ॥

पत्नीपुत्रावूचतुः—

कथं स्थेयं वने राजन्नस्माभिः सुखवर्द्धन ॥ २५ ॥
कथं भैक्ष्यं चरिष्यावानभिज्ञौ दुःखसंकुलौ।
कुशाः काशाः कंटकाश्च श्रुता वै विजने वने ॥ २६ ॥

दुःखं च जायते भैक्ष्ये ग्रामे च नगरेऽथवा।
कुमारोऽयं महाराज सुकुमारशरीरवान् ॥
विनाश्वेन कथं देव गमिष्यति भवान् प्रभो ॥ २७ ॥

ईश्वर उवाच—

इति वै गदितं श्रुत्वा पत्न्याः पुत्रस्य निर्दयः।
क्रोधसंरक्तनयनः प्राब्रवीच्च[1] नृपं मुनिः ॥ २८ ॥

विश्वामित्र उवाच—

उपेक्ष्यसे किमर्थं हि दानं कृत्वा स्वयं नृप।
पत्न्याः पुत्रस्य वचनं शृणोषि मनसेप्सितम् ॥ २९ ॥

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा मुनिनिन्द्यस्य[2] वचनं कटुभाषितम्।
उत्थायासनतस्तूर्णं गमनाय प्रचक्रमे ॥ ३० ॥

रोहिताश्वस्तु तत्पुत्रो वैदर्भी तस्य चांगना।
एकवस्त्रधराः सर्वे गमनाय प्रचक्रमुः ॥ ३१ ॥

---

१. क्रोधसंरक्तनयनः अब्रवीच्च। २. कटुवचनानि मुनिः क्रोधपरायणः।

यह मेरा नगर है । तुम यहाँ मत ठहरना । तुम इच्छानुसार कहीं भी चले जाओ, जहाँ से कि तुम धन को दोगे ॥ २२ ॥

ईश्वर ने कहा—

विश्वामित्र के इस कथन को सुनकर राजा ने पत्नी और पुत्र से कहा कि हम आज वन को जाते हैं ॥ २३ ॥

हे महेशानि ! हरिश्चन्द्र के वचन को सुनकर आंसुओं से भरी हुई आँखों वाले वे दोनों पत्नी और पुत्र कहने लगे ॥ २४ ॥

पत्नी और पुत्र बोले—

हे सुख को बढ़ाने वाले राजन् ! हम वन में कैसे रहेंगे ॥ २५ ॥

भिक्षा से अनभिज्ञ और दुःख से भरे हुए हम किस प्रकार भिक्षा मागेंगे । सुना जाता है कि निर्जन वन में कुश, कास और कांटे होते हैं ॥ २६ ॥

ग्राम में अथवा नगर में भिक्षा मांगने में दुःख होता है । हे महाराज ! यह कुमार बहुत कोमल शरीर वाला है । हे प्रभो ! देव ! अश्व के विना आप कैसे चलेंगे ॥ २७ ॥

ईश्वर ने कहा—

हरिश्चन्द्र की पत्नी और पुत्र के इस वचन को सुनकर दया से रहित एवं क्रोध से लाल आंखों वाले विश्वामित्र मुनि ने राजा से कहा ॥ २८ ॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन् ! स्वयं काम करके तुम दक्षिणा के धन की क्यों उपेक्षा करते हो । पत्नी और पुत्र के मन के अभीष्ट वचन को क्यों सुनते हो ॥ २९ ॥

ईश्वर ने कहा—

मुनि के निन्दनीय, कटु बोली वाले कथन को सुनकर उस हरिश्चन्द्र ने शीघ्र आसन से उठकर जाने के लिए उपक्रम किया ॥ ३० ॥

उसका पुत्र रोहिताश्व और उसकी पत्नी वैदर्भी सब एक वस्त्र धारण करके जाने के लिए तत्पर हुए ॥ ३१ ॥

गच्छमानांस्तु तान् दृष्ट्वा प्रजास्तस्य महात्मनः ।
रुरोद सहसा देवि दीनान् दृष्ट्वा तु तान् प्रिये ।। ३२ ।।

गत्वा ते चीरवसना भैक्ष्यं चक्रुर्महाधियः[1] ।
स्वयं वै मुनिवृत्त्या ते जीविकां चक्रुरजसा ।। ३३ ।।

मासे पूर्णे तथा जाते यतस्तत्र गतो मुनिः ।
हरिश्चन्द्रो महाराजो वर्त्तते भैक्ष्यमाचरन् ।। ३४ ।।

विश्वामित्रं तदा दृष्ट्वा म्लानो गात्रेषु चाभवत् ।
रक्तेक्षणं श्वश्रुलं हि जटामंडलधारिणम् ।। ३५ ।।

आगत्य सहसा देवि दक्षिणां देहि देहि वै ।
समयस्ते कृतो जात आगतोऽहं त्वदंतिके ।। ३६ ।।

इति तु श्रुत्वा नृपतिर्भैक्ष्येणासादितं धनम् ।
सर्वं ददौ निर्दयाय विश्वामित्राय पार्वति ।। ३७ ।।

दृष्ट्वा तद्द्रविणं स्वल्पं चुक्रोध सहसा मुनिः ।
उवाच वचनं चेदं हरिश्चन्द्रं महामतिम् ।। ३८ ।।

विश्वामित्र उवाच—

ईदृशस्य हि दानस्य दक्षिणा चेदृशी मम ।
दीयते[2] न मया राजन्गृह्यते तव दक्षिणा ।। ३९ ।।

राजसूये महायज्ञे दत्ता मे पृथिवी त्वया ।
अपेक्ष्यते कथं तस्य दानस्येयं हि दक्षिणा ।। ४० ।।

ईश्वर उवाच—

इति तद्गदितं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य पार्वति ।
सभयस्तं जगादेदं हरिश्चन्द्रो महामनाः ।। ४१ ।।

---

१. चतु॰ । २. "दीयते......हि दक्षिणा" पाठ इसमें नहीं है ।

हे प्रिये ! देवि ! इनको जाते हुए देख कर, उस महात्मा हरिश्चन्द्र की प्रजायें उनको दीन दशा में देखकर एकाएक रोने लगीं ।। ३२ ।।

जाकर उन्होंने चीर वस्त्र पहन लिए और महान् बुद्धिशाली वे भिक्षावृत्ति करने लगे । वे स्वयं शीघ्र ही मुनिवृत्ति से जीविका चलाने लगे ।। ३३ ।।

एक महीना पूरा हो जाने तक मुनि विश्वामित्र वहाँ गए जहां कि महाराज हरिश्चन्द्र भिक्षावृत्ति से रह रहे थे ।। ३४ ।।

लाल आंखों वाले, मूंछ दाढी वाले तथा जटामण्डल को धारण करने वाले विश्वामित्र को उस समय देखकर हरिश्चन्द्र के अंग म्लान हो गये ।। ३५ ।।

हे देवि ! आकर विश्वामित्र ने कहा कि मुझको दक्षिणा दो, दो । तुम्हारा समय हो गया है, जिसके लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ ।। ३६ ।।

हे पार्वति ! विश्वामित्र के इस वचन को सुनकर राजा ने दक्षिणा में प्राप्त किए गए सम्पूर्ण धन को निर्दय विश्वामित्र के लिए दे दिया ।। ३७ ।।

उस धन को स्वल्प देखकर सहसा मुनि क्रोध में भर गये । उन्होंने महामति हरिश्चन्द्र से यह वचन कहा ।। ३८ ।।

विश्वामित्र बोले—

हे राजन् ! यदि इस प्रकार के दान की इतनी ही दक्षिणा तुम मुझको दे रहे हो तो मैं तुम्हारी दक्षिणा ग्रहण नहीं करता ।। ३९ ।।

तुमने राजसूय यज्ञ में मुझको पृथ्वी का दान किया है । तो उस दान की यह दक्षिणा कैसे अपेक्षित हो सकती है ।। ४० ।।

ईश्वर बोले—

हे पार्वति ! विश्वामित्र के इस कथन को सुनकर महामनस्वी हरिश्चन्द्र भयभीत होकर उससे कहने लगे ।। ४१ ।।

हरिचन्द्र उवाच—

गृहाणेदं मया प्राप्तं भैक्ष्येण द्रविणं मुने।
मासेनाहं पुनर्विप्र दास्यामि भगवन् धनम्॥ ४२॥

विश्वामित्र उवाच—

एकत्रीकृत्य तत्सर्वं धनं यज्ञसमं मम।
ददस्व समये राजन्नोचेच्छापं ददामि ते॥ ४३॥

ईश्वर उवाच—

इति तद्भाषितं श्रुत्वा निष्ठुरं परुषाक्षरम्।
चिंतयामास बहुशः कुतो देयं मया धनम्॥ ४४॥

पत्नीमुवाच राजा तु चिंतयित्वा बहु प्रभुः।
प्रिये क्रीणामि भवतीं दक्षिणायै मुनेरहम्॥ ४५॥

इत्युक्त्वा तत्करं धृत्वा विश्वामित्रमुवाच ह।
दक्षिणार्थं मया दत्ता पत्नी चेय सुमध्यमा॥ ४६॥

एतस्या विक्रयं कृत्वा गृह्ण द्रव्यं यथामितम्।
नोचेत्तव महाभाग सेवा सेयं करिष्यति॥ ४७॥

विश्वामित्र उवाच—

स्वीयेनैव करेणेमां विक्रीय धनमुत्तमम्।
देहि मे सत्यव्रतज सत्यसंधो भव प्रभो॥ ४८॥

ईश्वर उवाच—

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चन्द्रो महामनाः।
कस्मिंश्चिन्नगरे तां तु गृहीत्वोवाच चोच्चकैः॥ ४९॥

अपेक्ष्यते कस्यचेद्धि दासीयं परिचारिका।
स दास्यास्त्वेतस्या मूल्यं ददातु शीघ्रमुत्तमम्॥ ५०॥

इनि तत्क्रंदितं श्रुत्वा कश्चिच्छ्रेष्ठ्याजगाम ह।
हरिश्चन्द्रो स्थितो यत्र गृहीत्वा स्वस्त्रियं करे॥ ५१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा —

हे मुने ! आप भिक्षा के द्वारा प्राप्त इस धन को मुझ से ले लो । हे विप्र ! भगवन् ! मैं एक मास के पश्चात् पुनः धन दूँगा ॥ ४२ ॥

विश्वामित्र ने कहा—

हे राजन् ! यज्ञ के तुल्य मेरे उस सम्पूर्ण धन को एकत्रित करके तुम समय पर दे दो । नहीं तो मैं तुमको शाप देता हूँ ॥ ४३ ॥

ईश्वर ने कहा—

निष्ठुर और कठोर अक्षरों वाले उसके वचनों को सुनकर राजा बहुत अधिक सोचने लगा कि मैं धन कहाँ से दूंगा ॥ ४४ ॥

बहुत अधिक सोचकर उस प्रभु राजा ने पत्नी से कहा—"हे प्रिये ! दक्षिणा के लिए मैं आपको ही मुनि को बेचता हूँ ॥ ४५ ॥

ऐसा कहकर और उसके हाथ को पकड़कर विश्वामित्र से कहा कि यदि सुन्दर कटि वाली अपनी इस पत्नी को ही दक्षिणा के लिए दे दिया जाय ॥ ४६ ॥

इसका विक्रय करके आप प्रचुर धन ग्रहण करें । हे महाभाग ! नहीं तो यह आपकी सेवा करेगी ॥ ४७ ॥

विश्वामित्र ने कहा—

हे सत्य का व्रत पालन करने वाले राजन् ! इसको तुम अपने ही हाथ से बेचकर उत्तम धन दो । हे प्रभो ! तुम सत्य प्रतिज्ञा वाले बनो ॥ ४८ ॥

ईश्वर ने कहा—

महामनस्वी हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के उस वचन को सुनकर उस पत्नी को किसी नगर में ले जाकर उच्च स्वर से बोले ॥ ४९ ॥

यदि किसी को यह दासी सेविका चाहिए, तो वह इस दासी के उत्तम मूल्य को शीघ्र दे दे ॥ ५० ॥

उसके इस रुदन को सुनकर कोई सेठ वहाँ आया, जहाँ कि हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी को हाथ में पकड़कर खड़े थे ॥-५१ ॥

रूप्यकानां शतं तस्या दत्वा तां वै प्रगृह्य च।
गतः स्वभवने श्रेष्ठी वैदर्भ्या सह पार्वति ॥ ५२ ॥

पत्नीमूल्यकृतं द्रव्यं ददौ तस्मै च पार्वति।
अल्पद्रव्यं पुनर्दृष्ट्वा तोषं नावाप्तवान् मुनिः ॥ ५३ ॥

न जाता दक्षिणा राजन् भूमिदानस्य चेदृशी।
अथोवाच हरिचन्द्रः पनः पुत्रं स्वकीयकम् ॥ ५४ ॥

श्रृणु पुत्रेदमखिलं सुखदुःखात्मकं जगत्।
अध्रुवं[1] वर्तते पुत्र पुत्रादारादिकं तु यत् ॥ ५५ ॥

ध्रुवं[2] जन्महता पुत्र प्रतिज्ञातं शुभाशुभम्।
ये पुत्रा जनकस्याहो प्रतिज्ञापालकास्तथा ॥
तेषां संसारदुःखौघसागरो गोष्पदायते ॥ ५६ ॥

विश्वामित्रप्रियार्थं हि यतस्व तात रोहित।
इति श्रुत्वा जगादेदं पितरं प्राणवल्लभे ॥ ५७ ॥

शरीरं भवतस्तात मदीया ह्यसवस्तथा।
युष्मदर्थे प्रियान् प्राणान्त्यजेऽहं भगवन् विभो ॥ ५८ ॥

मदीयं विक्रयं कृत्वा मातुर्मे निकटे विभो।
अहं च मम माता च एकस्थाननिवासिनौ ॥ ५९ ॥

प्रतीक्षां समयस्याथ कुर्वः प्रियचिकीर्षया।
इति तद्भाषितं श्रुत्वा विमनाश्चाभवन्नृपः ॥ ६० ॥

करुणारुद्धगात्रो वै पुत्रस्य विक्रये सति।
बभाषे क्रुद्धवचनं विश्वामित्रोऽतिनिर्दयः ॥ ६१ ॥

---

१. ध्रुवं न चेह किमपि दृश्यमानं च रीति। २. "ध्रुवं······शुभाशुभम्" पाठ इसमें नहीं है।

हे पार्वति ! उसको सौ रुपये देकर तथा उसकी पत्नी को लेकर वह सेठ वैदर्भी के साथ अपने घर चला गया ।। ५२ ।।

हे पार्वति ! पत्नी के मूल्य से प्राप्त किये गये धन को उस मुनि को दे दिया। परन्तु उस धन को कम देखकर वे मुनि पुनः सन्तुष्ट नहीं हुए ।। ५३ ।।

हे राजन् ! भूमि के दान की इतनी दक्षिणा नहीं होती । इसके पश्चात् हरिश्चन्द्र ने पुनः अपने पुत्र से कहा ।। ५४ ।।

हे पुत्र ! यह सारा संसार सुख-दुःखात्मक है । यह पुत्र, पत्नी आदि भी अनिश्चित हैं ।। ५५ ।।

हे पुत्र ! मैंने जो भी शुभ अथवा अशुभ की प्रतिज्ञा की है । अहो ! जो पुत्र पिता की प्रतिज्ञा का पालन करते हैं, उनका संसार के दुःखों के समूह रूपी सागर गोष्पद के समान हो जाता है ।। ५६ ।।

हे प्रिय रोहित ! तुम विश्वामित्र को प्रसन्न करने का प्रयत्न करो । हे प्राण-प्रिय पार्वति ! पिता के इस वचन को सुनकर रोहित ने कहा ।। ५७ ।।

हे पिता ! मेरा यह शरीर आपका है और मेरे ये प्राण आपके हैं । हे भगवन् ! विभो ! तुम्हारे लिये मैं प्रिय प्राणों को छोड़ सकता हूँ ।। ५८ ।।

हे विभो ! मुझको तुम माता के समीप ही बेच दो । मैं और मेरी माता एक ही स्थान पर निवास करेंगे ।। ५९ ।।

प्रिय करने की इच्छा से हम समय की प्रतीक्षा करेंगे । उसके इस कथन को सुनकर राजा दुःखी मन वाला हो गया ।। ६० ।।

पुत्र के बेचने की बात होने पर राजा के अङ्ग करुणा से भर गये । तब अति निर्दय विश्वामित्र ने ये क्रुद्ध वचन कहे ।। ६१ ।।

पुत्रो वदति दुष्टात्मन्विक्रयस्व हि मां नृप ।
विक्रीणासि कथं न त्वं दक्षिणार्थे नृपाधम ।। ६२ ।।

उपेक्षा कुरुषे मे त्वं फलं प्राप्स्यसि सत्वरम् ।
इति वै परुषं श्रुत्वा हरिश्चन्द्रो महामनाः ।। ६३ ।।

करोमि विक्रयं ब्रह्मन्स्वपुत्रस्येत्युवाच ह ।
पुत्रं हस्ते गृहीत्वा वै गतस्तत्रैव बुद्धिमान् ।। ६४ ।।

तस्य वै श्रेष्ठिनो गेहे तन्माता यत्र वर्त्तते ।
कियन्मूल्यं हि तस्यापि गृहीत्वा पुनराययौ ।। ६५ ।।

ददौ तत्सर्वमूल्यं[1] हि मुनये मुनिवंदिते ।
दृष्ट्वा तदपि दुष्टात्मा न जग्राह धनं तदा ।। ६६ ।।

पुनः कटुतरं देवि जगाद नृपसत्तमम् ।
स्वस्यापि[2] विक्रयं कृत्वा ददस्व विपुलं धनम् ।। ६७ ।।

तदा प्रतिगृहीष्यामि नोचेत्सर्वं कृतं तव ।
अलं भवति दुष्टात्मन् गच्छामि स्वाश्रमे ह्यतः ।। ६८ ।।

इति वै निष्ठुरं श्रुत्वा जगाद नृपराड्विभुः ।
को गृहीष्यति मां देव मूल्येन जगतीतले ।। ६९ ।।

गृह्णाति चेत्तदा कश्चिद्विक्रीणीहि च मां मुने ।
इति श्रुत्वा वचो राज्ञो गत्वा वै वसथांतिके ।। ७० ।।

जगादोच्चैर्मुनिस्तत्र दासं गृह्णातु वै धनात् ।
दासो मूल्येन कस्यापि विक्रयामि ह्यपेक्ष्यते ।।
इति तद्वचनं श्रुत्वा उच्चैरुच्चैः समीरितम् ।। ७१ ।।

---

१. सर्वं च । २. स्वस्य च ।

हे दुष्ट राजन् ! जबकि पुत्र कह रहा है कि मुझे बेच दो तो हे अधम राजन् ! तुम दक्षिणा के लिये इसको क्यों नहीं बेचते हो ॥ ६२ ॥

यदि तुम मेरी उपेक्षा करोगे तो उसका फल शीघ्र प्राप्त करोगे । महामनस्वी हरिश्चन्द्र ने उस कठोर वचन को सुनकर··· ॥ ६३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैं अपने पुत्र को बेचता हूँ, इस प्रकार कहा । वह बुद्धिमान् पुत्र को हाथ में पकड़कर वहीं गया ॥ ६४ ॥

उस सेठ के घर में गया, जहाँ कि उसकी माता थी । उसका कुछ मूल्य लेकर वह वापस आ गया ॥ ६५ ॥

हे मुनियों द्वारा वन्दित पार्वति ! उसने उस सारे मूल्य को मुनि विश्वामित्र को दे दिया । तब दुष्टात्मा विश्वामित्र ने उस धन को देखकर भी नहीं लिया ॥ ६६ ॥

हे देवि ! उसने पुनः श्रेष्ठ राजा से और भी कटु बात कही । तुम अपने आपको ही बेचकर विपुल धन दो ॥ ६७ ॥

मैं तभी इसको ग्रहण करूँगा । नहीं तो, हे दुष्ट ! तुम्हारा सभी कुछ व्यर्थ हो जायेगा । मैं अब अपने आश्रम को जाता हूँ ॥ ६८ ॥

इस प्रकार उस सामर्थ्यशाली राजा ने मुनि के निष्ठुर वचन को सुनकर कहा—हे देव ! इस पृथ्वी पर मूल्य देकर मुझको कौन खरीदेगा ॥ ६९ ॥

हे मुने ! यदि कोई मुझको खरीदता है, तो मुझको बेच दो । राजा के इस वचन को सुनकर और आबादी के समीप जाकर··· ॥ ७० ॥

मुनि ने वहाँ उच्च स्वर से कहा—धन देकर दास को खरीद लो । मैं दास को किसी को भी बेच रहा हूँ । उसका मूल्य चाहिये । उच्च स्वर से कहे गये उस वचन को सुनकर··· ॥ ७१ ॥

आययौ सहसा तत्र श्वपाकोऽतिभयंकरः।
रूक्षांगो विकृतो देवि कर्बुराक्षोऽतिवामनः॥ ७२॥

श्यामांगो जरया व्याप्तो रथ्याकर्पटवस्त्रकः।
तथा संमार्जनीहस्तो विष्ठादुर्गंधधारकः॥ ७३॥

चर्वयंश्चणकान् देवि प्रेतभूषणभूषितः।
प्रेताजीवी स्मशाने हि वसतिः सततं तथा॥ ७४॥

दृष्ट्वा तथाविधं राजा गात्रेष्वेव[1] ममज्ज ह।
श्वपाकोऽपि बभाषेदं विश्वामित्रं महामुनिम्॥ ७५॥

श्वपाक उवाच—

मम ब्रह्मन् महाभाग दासापेक्षा हि वर्त्तते।
प्रेतानां[2] निष्क्रये कश्चिद्वर्तते न विभो मम॥ ७६॥

एकमेव ममापत्यं कन्यैका मम वै मुने।
श्मशानेऽतिभयागारे न्यस्तुं पुत्रीं हि नोत्सहे॥ ७७॥

तदर्थं मे महाभाग दासापेक्षा हि वर्त्तते।
प्रेतवस्तु निरीक्षेत स नास्ति मम सन्निधौ॥ ७८॥

तस्मात्त्वयाऽनुग्रहो मे कर्त्तव्यो दासविक्रयात्।
रात्रावत्रैव स्थातव्यं मम प्रियचिकीर्षया॥ ७९॥

प्रेतानां हि प्रसादेन वस्त्रान्नं वर्त्तते बहु।
स्वामिनश्चैव षष्ठांशं गृहीत्वा मामकं तथा॥ ८०॥

प्रेतानां वसनं धार्यमिति स्थेयं हि तत्र वै।
इति तद्भाषितं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य चांतिके॥
उवाच वचनं त्रस्तो हरिश्चन्द्रोऽतिविस्मितः॥ ८१॥

---

१ मानसे दुःखितस्तदा। २. रक्षिता प्रेतद्रव्याणां विद्यते न ममान्तिके।

वहाँ एकाएक भयानक चाण्डाल आया। उसके अंग रूखे थे और शरीर विकृत था। हे देवि ! उसकी आँखें कबरी थीं और वह अति बौना था ॥ ७२ ॥

इसके अंग काले थे, बुढ़ापे से व्याप्त था, मार्ग के चीथड़ों के वस्त्र पहिने हुये थे, झाड़ू हाथ में लिये हुए था और उसके शरीर से विष्ठा की दुर्गन्ध आ रही थी ॥ ७३ ॥

हे देवि ! वह चने चबा रहा था, प्रेत के अलंकारों से अलंकृत था, मुर्दों से उसकी आजीविका थी और उसका निवास निरन्तर श्मशान में था ॥ ७४ ॥

इस प्रकार के उस चाण्डाल को देखकर राजा के अंग डूबने लगे। चाण्डाल ने भी महामुनि विश्वामित्र से इस प्रकार कहा··· ॥ ७५ ॥

चाण्डाल ने कहा—

हे महाभाग ब्रह्मन् ! मुझको एक दास चाहिये। हे प्रभो ! मुर्दों के सम्बन्ध में व्यवहार करने के लिये मेरे पास कोई नहीं है ॥ ७६ ॥

हे मुने ! मेरी एक ही सन्तान है, मेरी एक कन्या है। भयानक श्मशान में मैं अपनी पुत्री को रखने का साहस नहीं कर सकता ॥ ७७ ॥

हे महाभाग ! ऐसा कोई व्यक्ति मेरे पास नहीं है, जो कि मुर्दों की वस्तुओं की देखभाल कर सके। उसके लिए मुझे एक दास चाहिए ॥ ७८ ॥

इसलिये आप दास को बेचकर मुझ पर कृपा करें और मेरे प्रति प्रिय करने की इच्छा से यह रात भर यहीं रहे ॥ ७९ ॥

मुर्दों की कृपा से मेरे पास वस्त्र और अन्न बहुत है। स्वामी के रूप में लिये गये मेरे छठे अंश को यह लेवे ॥ ८० ॥

यह मुर्दों के वस्त्र को धारण करे और यहीं ठहरे। इस प्रकार उस चाण्डाल के कथन को सुनकर विश्वामित्र के समीप स्थित डरे हुए अत्यधिक विस्मित राजा हरिश्चन्द्र ने कहा··· ॥ ८१ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

विश्वामित्र महाभाग श्वपाके मां न विक्रय ।
अन्यत्र गच्छ भगवन् तत्र स्थेयं कथं मया ।। ८२ ।।

सर्वधर्मविहीनोऽयं[1] चांडालोऽतिभयानकः ।
प्रेतोपजीवी भगवन् वर्त्ततेऽयं नराधमः ।। ८३ ।।

दुर्गंधः स्रवते ह्यस्माच्छ्यामांगात् प्रेतवाससः ।
वरं प्राणपरित्यागो न स्थेयमस्य चान्तिके ।। ८४ ।।

विश्वामित्रोऽप्युवाचैनं हरिश्चन्द्रं महीपतिम् ।
को वान्यस्त्वां हि मूल्येन ग्रहीष्यति च कुत्रचित् ।। ८५ ।।

यथाऽयं तव मूल्यं तु ददाति न तथान्यकः ।
ददात्ययं तवेदानीं मूल्यं ते शतमुद्रिकाम् ।। ८६ ।।

ददाति चेत्तु यज्ञस्य दक्षिणा तत्प्रतिष्ठया ।
नोचेद् भस्म करोमीति श्रुत्वा तद्भाषितं वचः ।। ८७ ।।

स वेपमानहृदयो हरिश्चन्द्रो महामतिः ।
चिंतयामास बहुशः किं करोमि पुनः पुनः ।। ८८ ।।

न गच्छेयं यदाऽनेन चांडालेन समं तदा ।
भस्मीकरोत्ययं मां हि विश्वामित्रोऽतिनिर्दयः ।। ८९ ।।

किं करोमि क्व गच्छामि विधात्रा मे कथं कृतम् ।
अवश्यं हि भविष्यंति भाविनो महतामपि ।। ९० ।।

कर्मणा येन ब्रह्मापि क्षिप्तो दुःखार्णवे विभुः ।
तदेव बलवत् कर्म मम चापि प्रवर्त्तते ।। ९१ ।।

---

१. कर्म ।

हरिश्चन्द्र बोले—

हे महाभाग ! विश्वामित्र ! मुझको चाण्डाल के पास मत बेचो । हे भगवन् ! दूसरी जगह चलो । मैं वहाँ कैसे रहूँगा ।। ८२ ।।

यह अत्यधिक भयानक चाण्डाल सभी धर्मों से रहित है । हे भगवन् ! मुर्दों से जीविका प्राप्त करने वाला यह नराधम है ।। ८३ ।।

काले अंगों वाले और मुर्दों के वस्त्र पहिने हुए इसके शरीर से दुर्गन्ध स्रवित हो रही है। प्राणों को छोड़ देना अच्छा है, परन्तु इसके समीप ठहरना अच्छा नहीं ।। ८४ ।।

विश्वामित्र ने इस राजा हरिश्चन्द्र से कहा—दूसरा ऐसा कौन है, जो मूल्य देकर तुझको खरीद लेगा ।। ८५]।

तुम्हारा जितना मूल्य यह दे रहा है, उतना और कोई नहीं देगा । तुम्हारा मूल्य यह सौ मुद्रायें दे रहा है ।। ८६ ।।

यदि तुम यज्ञ की प्रतिष्ठा के लिये उसकी दक्षिणा को नहीं देते हो तो मैं तुम्हें भस्म करता हूँ । इस प्रकार उस मुनि के कहे गये वचन को सुनकर···।। ८७ ।।

कांपते हुये हृदय वाले महाबुद्धिशाली हरिश्चन्द्र ने बहुत बार पुनः पुनः विचार किया कि मैं क्या करूँ ।। ८८ ।।

यदि मैं इस चाण्डाल के साथ नहीं जाता हूँ तो यह अति निर्दयी विश्वामित्र मुझको भस्म कर देंगे ।। ८९ ।।

मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, विधाता ने यह सब मेरे प्रति कैसे कर दिया है। होने वाली आपत्तियाँ महान् पुरुषों पर भी अवश्य आती हैं ।। ९० ।।

जिस कर्म के कारण सामर्थ्यशाली ब्रह्मा भी दुःख रूपी समुद्र में फेंक दिये गये थे, मेरा भी वही बलवान् कर्म प्रवर्तित हो रहा है ।। ९१ ।।

प्राणात्प्रियतरः पुत्रः पत्नी च प्रियभाषिणी ।
स्थास्यतस्तु कथं मेऽद्य परवेश्मनि ह्यातुरौ ।। ६२ ।।

इति वै बहुशो राजा वाष्पव्याकुललोचनः ।
रुदोद तं श्वपाकं हि दृष्ट्वा स्वं कर्म निन्दयन् ।। ६३ ।।

तथापि तस्य देवेशि करुणा मानसे न हि ।
रुदंतं तं तथा दृष्ट्वा विश्वामित्रोऽप्युवाच ह ।। ६४ ।।

त्वं च स्वयं वै तत्कर्म कृत्वा रोदनर्निदितः ।
यथेच्छं गच्छ मत्तो वै गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ।। ६५ ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा धैर्य्यं मनसि चाकरोत् ।
स्वमूल्यं तु गृहीत्वा वै ददौ तस्मै महामनाः ।। ६६ ।।

दृष्ट्वा तथाविधं देवि विश्वामित्रो निगृह्य वै ।
तेषां मूल्योद्भवं द्रव्यं जगाम च स्वमाश्रमम् ।। ६७ ।।

हरिश्चन्द्रं करे धृत्वा श्वपाकोऽपि ततो ययौ ।
श्मशाने कृतवांस्तस्य स्थितिं राज्ञो जघन्यतः ।। ६८ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने हरिचन्द्रोपख्याने द्वाविंशोऽध्यायः ।

त्रयोविंशोऽध्यायः

श्मशाने मञ्चं निर्मीय हरिश्चन्द्रेण द्वादशवर्षपर्यन्तं चाण्डालसेवनम्

ईश्वर उवाच—

उच्चैः स्तंभांस्ततः कृत्वा श्मशाने नरपुंगवः ।
तत्र चक्रे स्वयं वासो यतः सर्वं हि दृश्यते ।। १ ।।

मेरा प्राणों से भी प्रिय पुत्र और प्रिय बोलने वाली पत्नी आज दुःखी होते हुये, दूसरे के घर में कैसे रह रहे होंगे ॥ ९२ ॥

इस प्रकार आँसुओं से भरी हुई आँखों वाला वह राजा चाण्डाल को देखकर अपने कर्मों की निन्दा करता हुआ बहुत अधिक रोया ॥ ९३ ॥

हे देवताओं की ईश्वरि ! तो भी, उसको रोते हुए देखकर भी विश्वामित्र के मन में करुणा नहीं आयी । वह कहने लगा— ॥ ९४ ॥

स्वयं उस कर्म को करके तुम रोने का निन्दित काम करते हो । मेरे पास से तुम अपनी इच्छा से चले जाओ । मैं भी अपने आश्रम को चलूंगा ॥ ९५ ॥

इस प्रकार उस मुनि के वचन को सुनकर हरिश्चन्द्र ने मन में धैर्य धारण किया । महामनस्वी हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल से अपने मूल्य को लेकर विश्वामित्र को दे दिया ॥ ९६ ॥

हे देवि ! हरिश्चन्द्र को उस प्रकार का देखकर और उनके मूल्य से प्राप्त धन को ग्रहण करके विश्वामित्र अपने आश्रम को चले गये ॥ ९७ ॥

हरिश्चन्द्र को हाथ से पकड़कर चाण्डाल भी वहाँ से चला गया । उसने राजा के लिये श्मशान में जघन्य कार्य करने के लिये स्थिति बना दी ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन प्रकरण में
हरिश्चन्द्र उपाख्यान प्रसङ्ग में २२वाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय २३

श्मशान में मञ्च बनाकर बारह वर्षों तक हरिश्चन्द्र द्वारा चाण्डाल की सेवा करना

ईश्वर ने कहा—

तदनन्तर श्मशान में ऊँचे स्तम्भ बनवाकर उसने वहाँ स्वयं अपना निवास बनवाया, क्योंकि वहाँ से सब कुछ दिखाई देता था ॥ १ ॥

चितांगारचयाच्छन्ने धूमधूम्रदिगंतरे ।
चिताकाष्ठौघपुलिने[1] शिवागणनिनादिते ॥ २ ॥

श्लिष्टपुष्टशिवाकीर्णे मेदोमांसास्थिसंकुले ।
महाचिल्लसमाक्रांतप्रेतपृष्ठे भयानके ॥ ३ ॥

दह्यमानशिवोद्भूतचटिच्चटिविनादिते ।
आगच्छमानकुणपे रच्यमानचितागृहे ॥ ४ ॥

स्नाप्यमानजनैश्चैव गच्छमानजने तथा ।
शरावदीपसम्पन्ने तिलपुष्पसमाकुले ॥
वासमानवसास्वादसंहर्षितशिवागणे ॥ ५ ॥

आगच्छतां गच्छतां च काकानां शब्दसंकुले ।
रोरूयमानमनुजे हाहाहेति हता वयम् ॥ ६ ॥

हे नाथ तात पुत्रेति मातरित्यपशब्दिते ।
महावैराग्यमापन्ने नरनारीगणे तथा ॥ ७ ॥

पूतिगंधशवोद्भूतधूमधूमितपुष्करे ।
दग्धार्द्धतटवस्त्रे च प्रेतकर्पटराजिते ॥ ८ ॥

चिताभस्मसिते चैव श्यामीभूतदृषद्गणे ।
क्रौं क्रौमिति क्रुंक्रुक्रुंक्रु केककेकेति चासकृत् ॥
शब्दायमानसुतटे क्रव्यादगणराजिते ॥ ९ ॥

नानावेतालभूतानि नृत्यंति यत्र सर्वदा ।
एकपादानेकपादभूतराजिविराजिते ॥ १० ॥

कंकालमुंडसंछन्ने प्रेतास्थिगणशुभ्रिते ।
लोड्यमानमहाश्वाने प्रेतदेहविभूषिते ॥ ११ ॥

---

१. काष्ठैश्च ।

वह श्मशान चिताओं के अंगारों के ढेर से आच्छन्न था; चारों दिगन्तरों में धुयें के समूह छाये थे, चिताओं की लकड़ियों के समूह फैले थे और गीदड़ियों के समूह के शोर गूंज रहे थे ।। २ ।।

उसमें हृष्ट-पुष्ट गीदड़ियाँ घूम रही थीं । मेदा, मांस और अस्थि भरे हुये थे । उस भयानक श्मशान में बड़ी-बड़ी चीलों की पीठों पर सवार होकर प्रेत घूम रहे थे ।। ३ ।।

आग उगलती हुई गीदड़ियों से उत्पन्न अग्नि की चट-चट ध्वनि गूंज रही थी । शव आ रहे थे और चितायें रची जा रही थीं ।। ४ ।।

शवों को नहलाते हुए मनुष्य आ जा रहे थे । तिलों और पुष्पों से भरे हुये सकोरों के दीपक जल रहे थे । बहती हुई सुगन्धित चरबी का आस्वादन करके गीदड़ियाँ प्रसन्न हो रही थीं ।। ५ ।।

आते हुये और जाते हुये कौवों के शब्द भरे हुये थे । हाय-हाय हम मारे गये हैं, इस प्रकार वहाँ मनुष्य रुदन कर रहे थे ।। ६ ।।

हे नाथ ! हे पिता ! हे पुत्र ! हे माता ! इस प्रकार के करुण शब्द हो रहे थे तथा वहाँ नर नारी गण महावैराग्य को प्राप्त हो रहे थे ।। ७ ।।

वहाँ के कमल भी सड़ी हुई गन्ध वाले शवों से उठे हुए धुयें से धूमिल हो रहे थे । मृत व्यक्तियों के कफन से सुशोभित आधे जले हुये वस्त्र बिखरे हुये थे ।। ८ ।।

वह श्मशान चिता की राख से श्वेत हो रहा था और पत्थर काले पड़ गये थे । मांसभक्षी पशु-पक्षियों से सुशोभित शब्दायमान तट भागों पर कौं-कौं, कूं-कूं और केक-केक इस प्रकार ध्वनियाँ गूंज रही थीं ।। ९ ।।

जहाँ हमेशा एक पैरों वाले और अनेक पैरों वाले भूतों की पंक्ति सुशोभित रहती थी तथा अनेक प्रकार के वेताल और भूत नृत्य करते थे ।। १० ।।

जहाँ कंकाल और मुंड भरे पड़े थे, जो मृत व्यक्तियों की हड्डियों से शुभ्र हो रहा था। जहाँ बड़े-बड़े कुत्ते लोट रहे थे और जो मृत शरीरों से विभूषित था ।। ११ ।।

नानावर्णजले तत्र चिताग्निचयकाशिते ।
अग्निबिंबसमाक्रान्ते जले तत्र महेश्वरि ॥ १२ ॥

ददर्श स हरिश्चन्द्रः कौतुकाविष्टमानसः ।
कौतूहलविचित्राणि नानाशब्दांश्च पार्वति ॥ १३ ॥

प्रेतकर्प्पटधारी च हरिश्चन्द्रो नराधिपः ।
चांडालकर्मनिरतः प्रेतनिष्क्रयजीवितः ॥ १४ ॥

दृष्ट्वोच्चस्थलस्तत्र प्रेतं दग्धुं समागतान् ।
जगाम तत्र तत्राऽपि याचतेस्म च निष्क्रयम् ॥ १५ ॥

ममायं स्वामिनोऽयं वै राज्ञश्चैव तथा ह्यसौ ।
दह मा कुणपमिति ह्यदत्त्वा निष्क्रयं मम ॥ १६ ॥

इति तत्र हरिश्चन्द्रो जगादोच्चैः पुनः पुनः ।
जीर्णवस्त्रसमाच्छन्नशिराः[1] देवि स भूमिपः ॥ १७ ॥

अंगारसमवर्णो वै त्यक्तधर्मक्रियस्तथा ।
मलदग्धवपुर्भीमो धूमारक्तसुनेत्रकः ॥ १८ ॥

मुखदुर्गंधभूयिष्ठो नेत्रपूयकुनेत्रकः ।
शीतजर्जरसर्वांगः खंडिताधरपल्लवः ॥ १९ ॥

स्फुटितांघ्रिकरश्चैव इतश्चेतश्च धावति ।
यं दृष्ट्वा तु नराः सर्वे हर्षवर्षसमाकुलाः[2] ॥ २० ॥

बभूवुर्हि तदानीं तं दृष्ट्वा वै भयसंकुलाः ।
करेण येन नृपतिर्ददाति स्म धनं बहु ॥
करेण तेन गिरिजे जग्राह शवनिष्क्रयम् ॥ २१ ॥

---

१. स्तदा । २. पश्चात्तापसमाकुलाः ।

हे महेश्वरि ! वहाँ अनेक प्रकार के रंगों वाला जल था। चिताओं की अग्नियों से वह प्रकाशित था। वहाँ के जल में अग्नि के बिम्ब प्रतिबिम्बित हो रहे थे ॥ १२ ॥

हे पार्वति ! कुतूहल से भरे हुये मन वाले उस हरिचन्द्र ने विचित्र कौतूहलों को देखा और अनेक शब्दों को सुना ॥ १३ ॥

मृतकों के पुराने कपड़ों को धारण करने वाले, मृतकों की सामग्रियों के क्रय-विक्रय से जीविका प्राप्त करने वाले तथा चाण्डाल कर्म में लगे हुये राजा हरिश्चन्द्र ··· ॥ १४ ॥

ऊँचे स्थल पर खड़े होकर वहाँ जलाने के लिये लाये गये मृतक को देखकर जहाँ-जहाँ भी जाते थे वहाँ उसके मूल्य को माँगते थे ॥ १५ ॥

यह मूल्य मेरा है, यह स्वामी का है और वह राजा का है। मेरे मूल्य को बिना दिये शव को मत जलाओ ॥ १६ ॥

हे देवि ! पुराने वस्त्र से सिर को ढककर वह राजा हरिश्चन्द्र वहाँ इस बात को पुनः पुनः उच्च स्वर से कहने लगा ॥ १७ ॥

उस हरिश्चन्द्र का शरीर का रंग अंगारों के समान हो गया। उसने धार्मिक क्रियायें छोड़ दीं। शरीर पर मैल लिपट गया। धुयें से नेत्र लाल हो गये और वह भयानक लगने लगा ॥ १८ ॥

उसके मुख से बहुत दुर्गन्ध आने लगी। आँखों में गीद भर जाने से नेत्र बुरे लगने लगे। सर्दी से सारे अंग जर्जर हो गये और अधररूपी पल्लव फट गया ॥ १९ ॥

जिसको देखकर कभी सभी मनुष्य प्रसन्नता की वर्षा से भर जाते थे, वही अब फटे हुए पैरों और हाथों वाला इधर-उधर दौड़ रहा था ॥ २० ॥

तब उसको देखकर मनुष्य निश्चय से भय से भर जाते थे। हे पार्वति ! वह राजा जिस हाथ से बहुत अधिक धन दान करता था, उसी हाथ से शव के मूल्य को ग्रहण करता था ॥ २१ ॥

यो वै राजा महाबाहुः शिबिकाभिश्चचार ह ।
गतागतं महादेवी प्रेताग्निगणतापिते ।।
भूतले च पदन्यासं[1] चक्रे राजा महायशाः ।। २२ ।।
यो राजा भगवान्पूर्वं महार्हशयनोचितः ।
शेते तदानीं राजा स्म कुशकंटकसंस्तरे ।। २३ ।।
परिधाति स्म यो राजा वसनानि मृदूनि वै ।
प्रेतकंबलखण्डेन रात्रिं नयति दुःखितः ।। २४ ।।
इति द्वादश वर्षाणि राजा तत्र महामतिः ।
तस्थौ चांडालकर्मा वै तदाज्ञावरकारकः ।। २५ ।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने
हरिश्चन्द्रोपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

मृतं रोहिताश्वमादाय तस्य दाहसंस्काराय हरिश्चन्द्रपत्न्याः श्मशानागमनं, श्मशानकरमदत्त्वा हरिश्चन्द्रेण तन्निवारणं मृतबालकं स्वपुत्रं ज्ञात्वा हरिश्चन्द्रेण सपत्नीकेन चितारोहणम्

ईश्वर उवाच—

इति वै वसतस्तत्र समा द्वादश संययुः ।
प्रेताजीवस्य राज्ञो वै श्मशानेऽतिभयंकरे ।। १ ।।
अथ त्रयोदशे वर्षे कदाचिच्छ्रावणे तदा ।
धाराधरभराक्रांते कृष्णपक्षे निशीथके ।। २ ।।
खद्योतद्योतिते मेघे ऊमिऊमीति वर्षति ।
विद्युल्लेखागणाक्रांतगगने जलदाकुले ।। ३ ।।
गाढ़ांधतिमिराच्छन्ने प्रसुप्तनरनारिके ।
ज्वरादिरोगसंव्याप्तो मृतो हि तस्य चात्मजः ।। ४ ।।

---

१. विन्यासं ।

हे महादेवि ! बड़ी भुजाओं वाला जो राजा पालकियों पर बैठकर घूमता था और आता-जाता था, वही महायशस्वी अब मृतकों की अग्नियों से तपे हुए भूतल पर पैदल चल रहा था ।। २२ ।।

जो भाग्यशाली राजा पहले बहुमूल्य बिस्तर पर सोता था, वही राजा तब कुशों और काँटों के बिस्तर पर सोता था ।। २३ ।।

जो राजा पहले कोमल वस्त्रों को धारण करता था, वही राजा अब दुःखी होकर शवों से प्राप्त कम्बलों के टुकड़ों से रात बिताता था ।। २४ ।।

इस प्रकार वह महाबुद्धिशाली राजा वहाँ चाण्डाल का कार्य करते हुये और उस चाण्डालराज की आज्ञा का पालन करते हुए बारह वर्षों तक ठहरा रहा ।। २५ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड के वंशानुकीर्तन में
हरिश्चन्द्र उपाख्यान प्रसङ्ग में २३वाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय २४

मृतक रोहिताश्व का दाह संस्कार करने के लिये हरिश्चन्द्र की पत्नी का श्मशान में आना, श्मशान का कर न देने पर हरिचन्द्र द्वारा उसको रोकना, मृतक को अपना ही पुत्र जानकर उस बालक के साथ हरिश्चन्द्र का रानी सहित चिता पर आरोहण

ईश्वर (शिव) ने कहा—

इस प्रकार उस भयंकर श्मशान में शवों से आजीविका प्राप्त करते हुये उस राजा हरिश्चन्द्र के बारह वर्ष व्यतीत हो गये ।। १ ।।

अब तेरहवें बरस में अभी श्रावण का महीना था, आकाश मेघों के समूह से भरा हुआ था और कृष्णपक्ष की आधी रात थी ।। २ ।।

मेघ बिजलियों से प्रकाशित हो रहे थे और ऊँ-ऊँ करके वर्षा हो रही थी । मेघों से भरे हुये आकाश में बिजलियों की पंक्तियाँ चमक रही थीं ।। ३ ।।

जबकि सब नर-नारी सो गये थे और गाढ़ा अन्धकार छा रहा था, उसका पुत्र ज्वर आदि रोग से आक्रान्त होकर मर गया ।। ४ ।।

क्रीतो येन महादेवि श्रेष्ठिनस्तस्य मंदिरे।
मृतं तं पुत्रकं दृष्ट्वा वैदर्भी दुःखिताऽभवत् ।। ५ ।।

दासीभावेन हे देवि रोहिताश्वस्य सद्गतिम्।
न चकार तथा श्रेष्ठी दासं मत्वा च तं मृतम् ।। ६ ।।

यथाकथंचित्साऽप्येका गृहीत्वा मृतपुत्रकम्।
समाययौ श्मशाने सा कथंचिद्धृतकंधरा ।।
द्वित्रीणि ह्यार्द्रकाष्ठानि गृहीत्वा कक्षकांतरे ।। ७ ।।

तत्रागत्य राजपत्नी श्मशानेऽतिभयंकरे।
प्रज्वालयंती तं वह्नौ मनश्चक्रे महेश्वरि ।। ८ ।।

एतस्मिन्नंतरे तेन हरिश्चन्द्रेण धीमता।
निषिद्धा कात्र त्वमसि ह्यदत्वा प्रेतनिष्क्रयम् ।। ९ ।।

मम भागं च नाथस्य दत्वा दह शवं त्विदम्।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य हरिश्चन्द्रस्य धीमतः ।। १० ।।

जगाद विमना वाक्यं स्तम्भमाना स्थिता ततः ।। ११ ।।

राजपत्न्युवाच —

दास्या मे नास्ति वित्तं हि कुतो दद्मि महामते।
धर्मस्ते भविता ह्यस्मात्किंचिन्मां न वदस्व भो ।। १२ ।।

हरिश्चन्द्र उवाच—

दूरं गच्छाशु धर्मिष्ठे कीदृशो धर्म उच्यते।
अदत्त्वा मे धनं किंचिद्दग्धुमिच्छसि सांप्रतम् ।। १३ ।।

कि वदिष्यति मे नाथो येनाहमिह प्रेषितः।
भक्षयिष्यामि किं चैव परिधास्यामि किं तथा ।। १४ ।।

हे महादेवि ! वह उस सेठ के घर पर मरा, जिसने कि उसे खरीदा था। पुत्र को मृत देखकर वह सती वैदर्भी बहुत दुःखी हुई ॥ ५ ॥

हे देवि ! उस सेठ ने सती को दासी मानकर और उस मृत बालक को दास मानकर रोहिताश्व की सद्गति नहीं की ॥ ६ ॥

वह रानी भी जिस किसी प्रकार अकेली मृतक पुत्र को कन्धे पर रखकर और बगल में दो-तीन गीली लकड़ियों को लेकर श्मशान में आयी ॥ ७ ॥

हे महेश्वरि ! वहाँ भयानक श्मशान में आकर उस राजा की पत्नी ने उस मृत पुत्र को अग्नि में जलाने का विचार किया ॥ ८ ॥

इस बीच में उस बुद्धिमान् हरिश्चन्द्र ने उसको रोका और कहा कि तुम कौन हो, जो मृतक के शुल्क को बिना दिये मृतक-संस्कार कर रही हो ॥ ९ ॥

मेरे हिस्से को और मेरे स्वामी के हिस्से को देकर तुम इस शव को जलाओ। इस प्रकार उस बुद्धिमान् हरिश्चन्द्र के वचन को सुनकर··· ॥ १० ॥

तदनन्तर स्तम्भित सी खड़ी होकर दुःखी होते हुये उसने यह वाक्य कहा— ॥ ११ ॥

राजपत्नी बोली—

हे महाबुद्धिशालिन् ! मुझ दासी के पास धन नहीं है। तुम्हें कहाँ से दूँ ? इससे तुमको धर्म होगा। तुम मुझसे कुछ न कहो ॥ १२ ॥

हरिश्चन्द्र बोला—

हे धार्मिके ! तुम शीघ्र दूर चली जाओ। धर्म किसको कहते हैं ? मुझको कुछ भी धन दिये बिना तुम शव को जलाना चाहती हो ॥ १३ ॥

जिस स्वामी ने मुझको यहाँ भेजा है वह मुझसे क्या कहेगा ? मैं क्या खाऊँगा और क्या पहनूंगा ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच -

इति श्रुत्वोक्तवचनं हरिश्चन्द्रस्य पार्वति ।
परुषं निष्ठुरं चैव दुःखिता सुतरामभूत् ॥ १५ ॥

विललापतरां देवी स्वापयित्वा शिरोंकके ।
मृतस्य रोहिताश्वस्य वाष्पव्याकुललोचना ॥ १६ ॥

राजपत्न्युवाच—

हा पुत्र क्वगतोऽसि त्वमनाथाया धनं मम ।
संत्यज्य मां तात दुःखे माताऽहं ते सुदुःखिता ॥ १७ ॥

वचनं देहि पुत्र त्वं विलपंत्याः सुत प्रिय ।
क्व ते मुखगता शोभा गतेदानीं हि पुत्रक ॥ १८ ॥

इमौ ते हस्तकमलौ कीदृशौ भवतः स्थितौ ।
इदं मे हृदयं तूर्णं जायते न कथं द्विधा ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा त्वां हंत हंतेति गच्छंतं यममन्दिरम् ।
क्व गतोऽसि महाभाग विहायैकां हि दुःखिताम् ॥ २० ॥

कदा श्रोष्यामि ते वाचो मातर्मातरिति स्वयम् ।
आलिंगनादिभिः को माम् आनन्दयति सुव्रत ॥ २१ ॥

इदं ते मुखपद्मं हि शिशिरक्लिन्नसुश्रियम् ।
वर्त्तते पुत्र पुरतो नष्टपद्ममिव श्रिया ॥ २२ ॥

हा पुत्र क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ।
धिक् दैव त्वं तु सर्वं हि यद्वै दुःखतरं कृतम् ॥ २३ ॥

हा पुत्र मामपि नय यत्र त्वं च गतो ह्यसि ।
तव पाकादिकं पुत्र करिष्यामि च रोहित ॥ २४ ॥

ईश्वर (शिव) ने कहा—

हे पार्वति ! हरिश्चन्द्र के इस कठोर और निष्ठुर वचन को सुनकर वह रानी बहुत दुःखी हुई ॥ १५ ॥

आँखों में आँसू भरकर और मृत रोहिताश्व के शव को गोदी में रखकर वह देवि बहुत अधिक विलाप करने लगी ॥ १६ ॥

राजपत्नी ने कहा—

हे पुत्र ! तुम मुझको छोड़कर कहाँ चले गये हो ? तुम मुझ अनाथ के धन हो । तुम्हारे दुःख में मैं तुम्हारी माता बहुत दुःखी हो रही हूँ ॥ १७ ॥

हे प्रिय पुत्र ! तुम रोती हुई मुझको प्रत्युत्तर दो । हे पुत्र ! तुम्हारे मुख की शोभा कहाँ चली गई है ॥ १८ ॥

आपके ये हस्तरूपी कमल कैसे हो रहे हैं ? यह मेरा हृदय शीघ्र ही दो टुकड़े क्यों नहीं हो जाता ॥ १९ ॥

खेद है, खेद है कि तुमको यम के घर जाते हुए देखकर वे महाभाग मुझ दुःखियारी को अकेला छोड़कर कहाँ चले गये हैं ॥ २० ॥

मैं, हे माता ! हे माता ! इस प्रकार तुम्हारी वाणी को स्वयं कब सुनूंगी ? हे सुव्रत ! आलिंगन आदि द्वारा कौन मुझको आनन्दित करेगा ॥ २१ ॥

यह तेरा मुखकमल शिशिर ऋतु के मुरझाये हुए कमल के समान सिकुड़ा हुआ सा हो रहा है । हे पुत्र ! शोभारहित कमल के समान मेरे सामने हो ॥ २२ ॥

मुझे शोकरूपी समुद्र में छोड़कर, हाय पुत्र ! तुम कहाँ चले गये हो ? हा दैव ! तेरे लिये धिक्कार है जो तुमने इतना दुःख दिया है ॥ २३ ॥

हे पुत्र ! रोहित ! मुझे भी वहाँ ही ले चलो जहाँ तुम गये हो । रोहित ! मैं तेरा भोजन आदि बनाया करूँगी ॥ २४ ॥

धर्मिष्ठ[1] नाथ भगवन् हरिश्चन्द्र महामते ।
किं त्वयाऽपकृतं तस्य विश्वामित्रस्य हे प्रभो ॥ २५ ॥

हरिश्चन्द्र महाराज तव पुत्रस्त्वयं मृतः ।
एनं दुग्धुं न शक्नोमि धनं मे नास्ति हे नृप ॥ २६ ॥

सुकृताद्दुष्कृतं जातं हरिश्चन्द्र हि सांप्रतम् ।
पृथिवी येन विप्राय दत्तालंकारसंवृता ॥ २७ ॥

तव तस्य महाराज भृशं पत्नी हि दुःखिता ।
याऽहं पुरा मृदुतरे शयने शायिता त्वया ॥ २८ ॥

साऽहं त्विदानीं हे नाथ पुत्रशोकप्रपीड़िता ।
तीक्ष्णेषु प्रस्तरेष्वेव[1] सुखदुःखं न वेद्म्यहो ॥ २९ ॥

योऽयं तव महाराज नानालंकारविभूषितः ।
अंके ते स्थितवान् पुत्रो मृतो नाथ यदा ह्यहम् ॥ ३० ॥

त्वया त्यक्ता महाराज स्थिताहं स्वसुतेन हि ।
सोऽपि मे नष्टभाग्याया गतोऽद्य का गतिर्मम ॥ ३१ ॥

ईश्वर उवाच—

इति तद्रोदनं श्रुत्वा हरिश्चन्द्रो महामनाः ।
ज्ञात्वां स्वपत्नीं तां चैव जातो वै भृशःदुःखितः ॥ ३२ ॥

आगत्य सहसा तत्र विलंपती यतः स्थिता ।
दृष्ट्वा तां च मृतं पुत्रं विललापातिदुःखितः ॥ ३३ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

हा हा पुत्र महाभाग मया पापिष्ठकर्मणा ।
मारितोऽसि हि विक्रीत्वा सुखाभिज्ञो हि दुःखितः ॥ ३४ ॥

---

१ तीक्ष्णाय ।

महामते नाथ ! धर्मिष्ठ ! हे भगवन् ! हरिश्चन्द्र ! प्रभो ! तुमने (पुण्य स्वीकार करके) विश्वामित्र का क्या अपकार किया होगा ॥ २५ ॥

हे महाराज ! हरिश्चन्द्र ! यह आपका पुत्र ही मृतक है । मैं इसे जला नहीं सकती, मेरे पास धन नहीं है ॥ २६ ॥

हे हरिश्चन्द्र ! इस समय निश्चय ही पुण्य करने से बुरा हो गया है, जिसने कि सर्वालंकार संयुक्त भूमि ब्राह्मण को दान की ॥ २७ ॥

हे महाराज ! मैं आप सरीखे दानी की पत्नी बड़ी दुःखित हूँ, जो मैं पहले आपके द्वारा कोमल सुन्दर बिस्तर पर सुलाई जाती थी ॥ २८ ॥

हे नाथ ! वह ही मैं आज पुत्र शोक से पीड़ित हुई, तीक्ष्ण कठोर पत्थरों पर पड़ी हुई नहीं जान पा रही हूँ कि यह सुख है या दुःख है ॥ २९ ॥

हे महाराज ! तुम्हारा पुत्र जो यह अनेक प्रकार के अलंकारों से विभूषित होकर तुम्हारी गोद में उपस्थित होता था । हे नाथ ! वही आज मृतावस्था में है । जबकि मैं··· ॥ ३० ॥

आपके द्वारा, हे महाराज ! परित्याग की जाकर मैं अपने पुत्र के आधार से स्थित रही थी । वह भी आज नष्ट हो गया है । मुझ भाग्यहीन स्त्री की क्या गति होगी ॥ ३१ ॥

ईश्वर ने कहा—

इस प्रकार शैव्या का रुदन सुनकर, महामना राजा हरिश्चन्द्र, यह जानकर कि यह मेरी ही पत्नी है, बड़े दुःखी हुये ॥ ३२ ॥

सहसा उस स्थान पर आकर, जहाँ पर विलाप करती हुई शैव्या स्थित थी, मृत पुत्र और दुःखी शोकातुर हुई पत्नी को देखकर राजा हरिश्चन्द्र अतिशय दुःखी हो विलाप करने लगे ॥ ३३ ॥

हरिश्चन्द्र बोला—

हाय, पुत्र ! हे महाभाग ! मुझ पापकर्म करने वाले के द्वारा बेचे जाकर तुम मारे गये हो । सुख भोगने वाले तुम्हें बड़ा दुःख हुआ है ॥ ३४ ॥

प्रेतराज महाभाग कस्ते उत्क्रमविक्रमः।
जीविते पितरि प्रेतगतिं याति सुतस्त्वहो ॥ ३५ ॥

एनं जीवय हे नाथ मम पुत्रं सुदर्शनम्।
एतत्प्रतिनिधिं मत्वा मां नयाशु स्वमंदिरम् ॥ ३६ ॥

अज्ञातदुःखो बालोऽयं किमर्थं नीयते त्वया।
अहं सर्वं करिष्यामि तव सेवादिकं प्रभो ॥ ३७ ॥

हा पुत्र क्व गतोऽसि त्वं माता ते चास्ति दुःखिता।
एनामाश्वासय त्वं हि त्वमेका गतिरस्ति वै ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच—

इति चान्यद्बहुतरं विललाप भृशं नृपः।
उवाच पत्नीं विमुखां वाष्परुद्धविलोचनाम् ॥ ३९ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

चितिं रचय शीघ्रं त्वं भंजयित्वा गृहं मम।
दग्ध्वा स्वदेहं गच्छावः पुत्रैणैकाकिना सह ॥ ४० ॥

जाताश्च द्वादशसमा वसतो मम भामिनि।
प्रेतानां निष्क्रयं नीत्वा स्वमूल्यनिक्रृतिः कृता ॥ ४१ ॥

इदमेव सुकर्त्तव्यं वर्त्तते नृपकन्यके।
दग्ध्वा स्वदेहं गंतव्यं पुत्रैणैकाकिना सह ॥ ४२ ॥

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य पत्नी सा भृशदुःखिता।
हरिश्चन्द्रं तु तं ज्ञात्वा गले लग्ना रुरोद ह ॥ ४३ ॥

विलप्य बहुशः पुत्र पुत्र पुत्रेति चासकृत्।
चितिं वै रचयामास सोऽपि राजा महायशाः ॥ ४४ ॥

प्रेतराज हे महाभाग ! तुम्हारा विक्रम कैसा उलटा है? अहो ! पिता जीवित है, सुत पञ्चत्व को प्राप्त हो गया है ॥ ३५ ॥

हे नाथ ! मेरे प्रियदर्शन पुत्र को जीवित कर दो । इसके बदले मुझको अपने मन्दिर को ले चलो ॥ ३६ ॥

यह बालक दुःख को जानता भी नहीं है, तुम इसे किसलिये ले जा रहे हो ? हे प्रभो ! मैं तुम्हारी सभी सेवाओं को करूँगा ॥ ३७ ॥

हाय पुत्र ? तुम कहाँ गये हो ? तुम्हारी माता अत्यन्त दुःखित है । तुम इसको आश्वस्त करो, तुम इसके जीवनाधार हो ॥ ३८ ॥

ईश्वर ने कहा—

इस प्रकार कहकर तथा अन्य प्रकार से राजा ने बहुत विलाप किया । आँसुओं से अवरुद्ध दृष्टि वाली तथा मलिन मुख वाली पत्नी को राजा ने कहा— ॥ ३९ ॥

हरिश्चन्द्र बोला—

मेरी कुटीर को तोड़कर तुम चिता का निर्माण करो । अपनी देह को भस्म कर अकेले पुत्र के साथ हम जायेंगे ॥ ४० ॥

हे भामिनि ! यहाँ रहते मुझे बारह वर्ष बीत चुके हैं । प्रेतों की कर-वसूली लेकर मैंने अपने मूल्य को पूरा कर दिया ॥ ४१ ॥

हे राजकुमारि ! इस समय कर्तव्य है कि अपनी देह को दग्ध कर अकेले पुत्र के साथ हम प्रस्थान करें ॥ ४२ ॥

ईश्वर ने कहा—

हरिश्चन्द्र के इस प्रकार के वचन सुनकर वह शैव्या अति दुःखित हुई । हरिश्चन्द्र को जानकर गले लगकर अत्यन्त रोदन करने लगी ॥ ४३ ॥

हाय पुत्र ! हाय पुत्र ! बार-बार बहुशः बिलाप करके उस महाभाग राजा हरिश्चन्द्र ने ही चिता की रचना की ॥ ४४ ॥

रचयित्वा चितिं तत्रारुरोहतुश्चितौ सुतम् ।
संन्यस्य च महादेवि देहं दग्धुमुपस्थितौ ।। ४५ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सौरवंशानुकीर्त्तने हरिश्चन्द्रोपाख्याने
दंपतिविलापो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्याय

ब्रह्मविष्ण्वादिदेवैर्हरिश्चन्द्रं सपत्नीकं विमानमारोप्य स्वलोकानयनं, रोहिताश्वस्य रोहितनगरे राज्याभिषेकः

ईश्वर उवाच—

इति तत्र मतिं कृत्वा दंपती तौ सुदुःखितौ ।
यावदग्नि वेशयतश्चितां काष्ठमयीं प्रिये ।। १ ।।

हंसयुक्तविमाने वै संस्थितो भगवानजः ।
आययौ सहसा तत्र रोचिषा द्योतयन्दिशः ।। २ ।।

विमानैः शतशस्तत्र नानारत्नमयैस्ततः ।
मध्याह्नसूर्यवर्चोभिद्योतमानैर्दिशस्तथा ।। ३ ।।

निकेतास्तत्र विविधा बभूवू रत्नसंयुताः ।
गंधर्वाप्सरसश्चैव जगुः परमहर्षिताः ।। ४ ।।

साधु साधु वदंत्येके धन्यो धन्यस्तथापरे ।
विशस्वास्मिन् विमाने त्वमस्मिश्चैव पृथक् पृथक् ।। ५ ।।

ऊचु प्रांजलयः सर्वे हरिश्चन्द्रं महीपतिम् ।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये धर्मात्मा सत्यसंगरः ।। ६ ।।

इति तत्राब्रुवन् केचित् केचित्प्रांजलयः स्थिताः ।
ब्रह्माऽपि सहसा तत्र जगाद वचनं नृपम् ।। ७ ।।

हे महादेवि ! उन दोनों ने चिता की रचना करके दाह करने के लिये मृत पुत्र को चिता के ऊपर आरूढ़ किया और पति पत्नी वे दोनों भी दग्ध होने के लिए आरूढ़ हुए ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सौरवंशानुकीर्तन में हरिश्चन्द्र उपाख्यान में दम्पति-विलाप नामक २४वाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय २५

ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओं द्वारा हरिश्चन्द्र और उसकी पत्नी को विमान पर चढ़ाकर अपने लोक में ले जाना, रोहिताश्व का रोहित नगर में राज्याभिषेक

ईश्वर ने कहा —

हे प्रिये ! जव उन दोनों (राजा हरिश्चन्द्र और शैव्या) दम्पती ने सलाह करके काष्ठ निर्मित चिता की अग्नि में प्रवेश करना चाहा ॥ १ ॥

हँसयुक्त विमान में आरूढ़ हो जन्मरहित भगवान् ब्रह्मा दिशाओं को अपनी कान्ति से शोभित करते हुये सहसा उस स्थान पर आये ॥ २ ॥

उस समय नाना रत्नों से जटित सैंकड़ों विमानों की इतनी तीव्र कान्ति थी, मानो मध्याह्न में सूर्य की किरणें हों । समस्त दिशायें प्रकाशित होने लगीं ॥ ३ ॥

वहाँ विविध स्थान रत्न जटित होने के कारण दीप्तिमान हुए । गन्धर्व और अप्सरायें परम हर्षित होकर गान करने लगे ॥ ४ ॥

कोई साधु-साधु कह रहे हैं, तथा कोई धन्य-धन्य शब्द का उच्चारण कर रहे हैं । कोई कह रहे हैं हे स्वामिन् ! तुम इस विमान में अलग-अलग आरूढ़ हो जाओ ॥ ५ ॥

सभी लोगों ने हाथ जोड़कर राजा हरिश्चन्द्र को कहा – तुम्हारे समान तीनों लोकों में कोई धर्मात्मा और सत्यवक्ता नहीं है ॥ ६ ॥

कोई इस प्रकार बोल रहे थे, कोई हाथ जोड़कर खड़े थे । ब्रह्मा ने भी तत्काल वहाँ आकर राजा के प्रति ये वचन कहे ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच—

साधु साधु महाराज साधु चेयं सुमध्यमा।
त्वत्तुल्यो नास्ति त्रैलोक्ये देवो वा दानवोऽपि वा ॥ ८ ॥

युवां वै गच्छतां लोके मामके मुनिदुर्लभे।
एताभ्यामेव देहाभ्यां दुष्कर्मपरिवर्जितौ ॥ ९ ॥

अयं तु रोहिताश्वस्ते राज्यं वै पालयिष्यति।
कीर्त्तिस्ते सुतरां राजन् भविता पृथिवीतले ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा तौ दंपती तं रोहिताश्वं मृतं स्थितम्।
कमंडलुजलेनाशु संमार्ज्य सुमुखांबुजे ॥ ११ ॥

हंसयुक्ते विमाने तौ संनिवेश्य सुदुर्लभे।
गंतुं प्रचक्रमे ब्रह्मा स्वलोकं योगिदुर्लभम् ॥ १२ ॥

गीयमानैर्मुनिगणैस्तूयमानैः सुरैस्तथा।
ययतुर्ब्रह्मणा साकं ब्रह्मलोकं सुशोभनम् ॥ १३ ॥

रोहिताश्वोऽपि सहसा कमंडलुजलेन हि।
संमार्जनेन हे देवि उत्थितो हर्षयञ्जगत् ॥ १४ ॥

सर्वे लोकाः समाजाताः कौतुकाविष्टमानसाः।
श्रुत्वा वृत्तं तु तत्सर्वं शशंसुश्च सुविस्मिताः ॥ १५ ॥

देवदुंदुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात ह।
रोहिताश्वे महादेवि याम्यार्द्धे पुनरागते ॥ १६ ॥

निशीथोऽपि महादेवि मध्याह्न इव संबभौ।
विमानशतकोटीनां प्रकाशैस्तिमिरापहैः ॥ १७ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

हे महाराज ! आपको बारम्बार धन्य है और इस सुमध्यमा (पतली कमर वाली) सती को भी धन्य है । आपके समान तीनों लोकों में कोई देवता अथवा दानव नहीं है ।। ८ ।।

दुष्कर्म रहित इन्हीं देहों के माध्यम से तुम मेरे लोक में जाओ, जिसकी प्राप्ति मुनियों को भी दुर्लभ है ।। ९ ।।

यह रोहिताश्व (आपका पुत्र) आपके राज्य का पालन करेगा । हे राजन् ! तुम्हारी सुन्दर कीर्ति का भूमण्डल में विस्तार होगा ।। १० ।।

ईश्वर ने कहा-

उन दोनों दम्पत्तियों को यह कहकर मृतक पड़े उस रोहिताश्व के मुखमण्डल में कलश के जल से सम्मार्जन किया ।। ११ ।।

उन दोनों को अति दुर्लभ हँसयुक्त विमान में बैठाकर योगियों को भी दुर्लभ अपने लोक को ले जाने के लिये ब्रह्मा भी उपक्रम करने लगे ।। १२ ।।

मुनियों के द्वारा गान किये जाते हुये तथा देवताओं के द्वारा स्तुति किये जाते हुए ब्रह्मा के साथ वे दोनों दम्पती अतिशय रमणीय ब्रह्मलोक को गये ।। १३ ।।

हे देवि ! कमण्डलु के जल से सम्मार्जित रोहिताश्व भी सहसा उठ खड़ा हुआ । सम्पूर्ण जगत् हर्षोल्लसित हो गया ।। १४ ।।

समस्त लोकों में कौतूहल का आविर्भाव हो गया । इस वृत्तान्त को सुनकर सभी प्रशंसा करने लगे और विस्मय को प्राप्त हुए ।। १५ ।।

हे महादेवि ! रोहिताश्व के यमपुर से पुनरागमन करने पर देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं तथा पुष्पवर्षा हुई ।। १६ ।।

सैंकड़ों विमानों के प्रकाश से अन्धकार के नष्ट होने से, हे महादेवि ! आधी रात्रि में भी मध्याह्न का आभास हो रहा था ।। १७ ।।

स्तूयमानो जनैः सर्वैं रोहिताश्वो महामनाः ।
आययौ द्योतयन् काष्ठास्तरुणार्कसमद्युतिः ॥ १८ ॥

रोहितं नाम नगरमिंद्रलोकोपमं शुभम् ।
निवेशयामास ततो नानापण्यविराजितम् ॥ १९ ॥

नानारत्नगृहैर्युक्तं विमानैरिव सर्वतः ।
नानोद्यानसमायुक्तं मंदुरागजगेहिकैः ॥ २० ॥

विराजमानं देवेशि रोहिताश्वपुरं बभौ ।
नंदनादिवनैश्चित्रं वासवस्य पुरं यथा ॥ २१ ॥

तस्मिन्निवेशयामास चत्वारो ब्राह्मणादिकान् ।
नानासंपत्तिबहुलो रराज नृपसत्तमः ॥ २२ ॥

तत्रागत्य प्रजाः सर्वा नानोपायनहस्तकाः ।
चक्रुस्तस्याभिषेकं वै वर्णास्तु ब्राह्मणादिकाः ॥ २३ ॥

रोहिताश्वो महातेजा जित्वा नृपगणान् बहून् ।
राज्यं वै पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सूर्य्यवंशानुकीर्त्तने हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

चढ़ते रवि के समान कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए मनस्वी रोहिताश्व समस्त लोगों से प्रशंसित होते हुये अपने राज्य को आये ।। १८ ।।

उस रोहिताश्व ने अपने राज्य में नाना दुकानों से सुसज्जित और इन्द्रलोक के समान सुन्दर रोहित नामक नगर को बसाया ।। १६ ।।

अनेक रत्न जटित विमानों के समान नाना रत्नों से युक्त घरों, अनेक उद्यानों, अनेक अश्वशालाओं, अनेक हस्तिशालाओं से··· ।। २० ।।

हे देवेशि ! नन्दनादि वनों के द्वारा शोभित इन्द्रपुर के समान रोहिताश्वपुर सुशोभित होता था ।। २१ ।।

ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) चार वर्णों को उस पुर में बसाया गया । अनेक सम्पत्तियों से सम्पन्न होकर राजा रोहिताश्व विराजमान होने लगा ।। २२ ।।

ब्राह्मण आदि समस्त वर्णों से संयुक्त प्रजाओं ने अनेक उपहार हाथ में लेकर वहाँ आकर राजा का अभिषेक किया ।। २३ ।।

महातेजस्वी रोहिताश्व ने बहुत राजाओं को जीतकर पुत्र के समान राज्य और प्रजा का पालन किया ।। २४ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सूर्यवंशानुकीर्तन में हरिश्चन्द्र उपाख्यान नाम का २५वाँ अध्याय पूरा हुआ ।

षड्विंशोऽध्यायः

रोहिताश्वस्यानेकवर्षपर्यन्तं राज्यं कृत्वा सुतं राज्येऽभिषिच्य तपश्चरणाय वनगमनं, तत्पुत्रपौत्राणां क्रमशः वर्णनम्

ईश्वर उवाच—

रोहिताश्वो महाबाहुर्हरिश्चन्द्रसुतो बली।
जित्वा रिपुगणान् सर्वान् सुशोभ नगरे वरे ॥ १ ॥

कृत्वानेकविधान्यज्ञान् दृष्ट्वा नारायणं विभुम्।
हरितं नाम वै देवि पुत्ररत्नमजीजनत् ॥ २ ॥

शिक्षयित्वास्त्रविद्यां वै हरितं नाम वीर्य्यवान्।
राज्यभारं तत्र क्षिप्त्वा स्वयं विष्णुमनाभवत् ॥ ३ ॥

संसारासारतां ज्ञात्वा दत्वा तन्नगरं द्विजे।
स्वयं ययौ हि तपसे कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ४ ॥

राज्यं चकार विधिवद्धरितो नाम वीर्य्यवान्।
जितारातिगणो यज्वा प्रियवाक्पुमतिः शुचिः ॥ ५ ॥

तस्य पुत्रो बभूवाथ चंचुर्नाम महायशाः।
जातौ तस्यापि द्वौ पुत्रौ विजयो वसुदेवकः ॥ ६ ॥

अभिषिच्य सुतं राज्ये विजयं नाम नामतः।
स्वयं ययौ तु तपसे राजासौ कूर्मपर्वते ॥ ७ ॥

विजयस्तु महाराजो जेता शत्रुगणस्य हि।
अकरोत् पालनं देवि प्रजायाः पुत्रवत्तदा ॥ ८ ॥

अध्याय २६

अनेक वर्षों तक राज्य करके, पुत्र का राज्याभिषेक करके रोहिताश्व का तपस्या के लिये वन जाना, उसके पुत्र-पौत्रों का क्रमशः वर्णन

ईश्वर ने कहा –

महाबलशाली दीर्घ भुजाओं से युक्त हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व समस्त शत्रुओं को पराजित कर अपने श्रेष्ठ नगर में सुशोभित होने लगा ॥ १ ॥

अनेक यज्ञों को करके सर्वव्यापक नारायण भगवान् के दर्शन करके, हे देवि ! रोहिताश्व ने हरित नामक पुत्र को जन्म दिया ॥ २ ॥

वलिष्ठ हरित नाम के अपने पुत्र को अस्त्र (आयुध) विद्या की शिक्षा देकर राज्य-भार उसके पास छोड़कर स्वयं भगवान् के भजन में तल्लीन हुआ ॥ ३ ॥

हे पार्वति ! संसार को असार जानकर वह उस नगर को ब्राह्मण के लिये दान देकर स्वयं तपस्या करने के लिये उत्तम पर्वत कैलास पर चला गया ॥ ४ ॥

विक्रमशाली हरित नामक राजा ने विधिवत् राज्य किया । प्रियवादी, सुमति, एवं पवित्र आचरण वाले राजा ने शत्रुओं को पराजित कर यज्ञानुष्ठान किया ॥ ५ ॥

उसका परम यशस्वी चंचु नामक पुत्र हुआ और उसके भी विजय तथा वसुदेवक नाम के दो पुत्र हुए ॥ ६ ॥

विजय नाम के पुत्र को राज्य का अभिषेक देकर स्वयं वह राजा तप करने के लिए कूर्म पर्वत पर चले गये ॥ ७ ॥

महाराज विजय ने तब शत्रुओं को जीतकर, हे देवि ! पुत्र के समान प्रजा का पालन किया ॥ ८ ॥

तस्य पुत्रो महेशानि चुचुंडक इति स्मृतः ।
चंडः शत्रुगणानां हि मित्राणां चन्द्रवद् बभौ ।। ९ ।।

अथ तस्य चुचुंडस्य वृकः पुत्रो बभूव ह ।
वृकस्य तनयो राजा सर्वशत्रुविमर्दनः ।। १० ।।

बाहुर्नाम महातेजाः प्रख्यातबलविक्रमः ।
यस्य बाहुजिताः सर्वे राजानो धरणीतले ।। ११ ।।

अयोध्याधिपतिर्वीरो महात्मा दृढ़विक्रमः ।
एकदा तस्य राज्ञो वै मतिर्जाता महात्मनः ।। १२ ।।

जेतव्येति धरा सर्वा चतुर्दिक्षु समन्ततः ।
येऽत्र वीरा महीपाला रणकंडूविशारदाः ।। १३ ।।

जित्वा तान्नृपतीन् वीरान् स्थास्यामि सुखसंयुतः ।
इति कृत्वा मतिं बाहुराह्वयामास सैनिकान् ।। १४ ।।

रथनागपदातीनां वृन्दवृन्दगणैः सह ।
पूर्वामाशां ययौ पूर्वं सैन्याच्छादितभूतलः ।। १५ ।।

जित्वा तत्र महीपालांस्थापयित्वा पुनः पुरे ।
ययौ स दक्षिणामाशां रथनागैश्च संयुतः ।। १६ ।।

द्राविडान् गुर्जरान् शौण्डान् कर्णाटांश्च तिलंगकान् ।
जित्वा पुनर्यथापूर्वं स्थापयामास तत्र वै ।। १७ ।।

अथ तस्मात् महादेशात् प्रतस्थे पश्चिमां दिशम् ।
कांबोजाः पह्लवाश्चैव म्लेच्छाः शख्योद्‌भवास्तु ये ।। १८ ।।

हे महेशानि ! राजा विजय का पुत्र चुचुंडक नाम से प्रसिद्ध हुआ। शत्रुओं के प्रति वह प्रचण्ड था, परन्तु मित्रों के प्रति वह चन्द्रमा के समान शोभायमान होता था ॥ ९ ॥

उस चुचुंडक का वृक नाम का पुत्र हुआ। उस वृक का पुत्र सब शत्रुओं को नाश करने दाला राजा ॥ १० ॥

बल एवं पराक्रमशाली व कान्तिमान् बाहु नाम से विख्यात हुआ। इस राजा ने बाहु-बल से भूमण्डल को जीत लिया था ॥ ११ ॥

अतिशय विक्रमशाली यह महात्मा (बाहु) अयोध्या का अधिपति था। एक समय इस महात्मा राजा का विचार हुआ ॥ १२ ॥

समस्त भूमण्डल पर चारों दिशाओं में जहाँ युद्ध विशारद बलवान् राजा हैं, वहाँ उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए ॥ १३ ॥

उन बलवान् राजाओं को जीतकर मैं सुख से निवास करूंगा। यह विचार कर बाहु राजा ने अपने सैनिकों को बुलाया ॥ १४ ॥

रथ, हाथी, एवं पदाति गणवृंदों को साथ लेकर वह अपनी सेना से समस्त भूमण्डल को आच्छादित करता हुआ पूर्व दिशा की ओर गया ॥ १५ ॥

पूर्व दिशा में स्थित राजाओं को पराजित कर पुनः उनको ही राज्य में स्थित कर वह राजा रथ और हाथियों के साथ दक्षिण दिशा की ओर गया ॥ १६ ॥

द्रविड़, गुर्जर, शौण्ड, कर्णाट और तैलंग आदि राजाओं को जीतकर उस राजा ने पहले प्रकार से पुनः उन राज्यों में उन्हीं राजाओं को स्थापित किया ॥ १७ ॥

तदनन्तर उस राजा ने उस महादेश से पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान किया। जो वहाँ कांबोज, पह्लव, म्लेच्छ, शक ॥ १८ ॥

हैहयास्तालजंघाश्च शका जवनपारदाः ।
पल्वलाः कुक्कुराश्चैव येऽपि कौबेरवासिनः ॥ १९ ॥

जिताश्च ये महीपालाः पौण्ड्रमागधपांड्यजाः ।
एतेऽन्येऽपि च भूपालाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २० ॥

कृत्वा बलैक्यं देवेशि ययुर्यत्र वृकात्मजः ।
मध्ये कृत्वा सर्वसैन्यं बाहुनाम्नो महीपतेः ॥ २१ ॥

ववर्षुः शरजालानि किरणानीव भास्करः ।
बाहोस्तेषां नृपाणां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२ ॥

युद्धं बभूव देवेशि मांसशोणितकर्दमम् ।
अऽसीनां चर्मणां चैव च्छिन्दिर्च्छिदीति सर्वतः ॥ २३ ॥

बभूव तुमुलः शब्दो भीरूणां भयवर्द्धनः ।
कुंताः परशवश्चैव भिंदिपाला इतस्ततः ॥ २४ ॥

विरेजुस्तत्र हे देवि निशि खद्योतका यथा ।
वादित्राणि विचित्राणि भेरीतूर्यमुखानि च ॥ २५ ॥

विनेदुस्तत्र देवेशि मेघा इव जलागमे ।
श्रुत्वा तान् विविधाञ्च्छब्दान्ननर्तुः सर्वतो दिशम् ॥ २६ ॥

वीरा धैर्य्यधरास्तत्र मयूरा इव सर्वतः ।
संहतानां तथाऽन्योन्यं शस्त्राणां मम वल्लभे ॥ २७ ॥

खड्गेभ्यो निर्गता ज्वाला विरेजुस्तडितो यथा ।
धारासम्पातमभवत्पयसामसृजां तथा[1] ॥ २८ ॥

---

१ यथा ।

हैहय, तालजंघ, शक, यवन, पारद, पल्वल और कुक्कुर जो भी इस दिशा के निवासी थे ॥ १९ ॥

उन सब को जीत लिया। और पौण्ड्र, मागध और पाण्ड्य तथा अन्य भी हजारों राजाओं को उन्होंने पराजित किया ॥ २० ॥

हे देवेशि ! बल को एकत्रित करके कुछ राजा लोग वृक के पुत्र बाहु पर विजय प्राप्त करने के लिए उस दिशा में गये जहाँ बाहु निवास कर रहा था। उस राजा बाहु को मध्य में करके सेनाओं से घेर लिया ॥ २१ ॥

उन्होंने उसी प्रकार बाण समूहों की वर्षा की, जिस प्रकार सूर्य किरणों की करता है। सुतराम् बाहु और उन राजाओं का बड़ा रोमांचित करने वाला युद्ध हुआ ॥ २२ ॥

हे देवेशि ! इस युद्ध में मांस और रुधिर की कीचड़ हो गई। चारों ओर तलवारें चमकने लगीं और मारो-मारो शब्द गूंजने लगे ॥ २३ ॥

उस युद्ध में भयंकर शब्द भीरु जनों के भय को बढ़ाने वाला हुआ। भाले, फरसे और बर्छे चारों ओर चलने लगे ॥ २४ ॥

हे देवि ! वहाँ ये आयुध रात्रि में जुगुनुओं के समान विराजमान थे। और भेरी, तुरही आदि अनेक विचित्र बाजे बज रहे थे ॥ २५ ॥

हे देवेशि ! वर्षा ऋतु के मेघों की गर्जना के समान वहाँ शब्द हो रहा था। उन अनेक शब्दों को सुनकर चारों ओर नृत्य हो रहा था ॥ २६ ॥

हे मेरी प्रिये ! जबकि एक-दूसरे पर शस्त्रों का प्रहार हो रहा था, धैर्यशाली वीर इस प्रकार नृत्य करने लगे कि जैसे मयूरों का नृत्य हो रहा हो ॥ २७ ॥

तलवारों से निकली हुई ज्वालायें बिजलियों के समान चमक रही थीं। और जल के सदृश रुधिर की मूसलाधार वर्षा हो रही थी ॥ २८ ॥

चातका इव रेजुस्ते वीरा रुधिरपायिनः ।
इति तत्तुमुले युद्धे समानजलदागमे ॥ २९ ॥

विवेशुः कतिचिद्वीरा राज्ञां राज्ञश्च मानदे ।
कबंधाः शतशस्तत्र विरेजुश्चिछन्नमस्तकाः ॥ ३० ॥

रथानामयुतं तत्र गजानामयुतद्वयम् ।
चतुष्कमयुतानां हि हयानां च पदातिनाम् ॥ ३१ ॥

म्रियंते यत्र संग्रामे कंबधो जायते ततः ।
बाहोश्चैव तथा राज्ञां बहवश्चिछन्नमस्तकाः ॥ ३२ ॥

उत्थिताः खड्गचर्माणि गृहीत्वा योद्धुमुद्यताः ।
विरेजुस्तत्र संग्रामे किंशुका इव पुष्पिताः ॥ ३३ ॥

हतानां मनुजानां च हयानां च तथा प्रिये ।
गात्रेभ्यश्च गजानां हि सुस्रुवुः शोणितापगाः ॥ ३४ ॥

एतस्मिन्नंतरे बाहुं ववर्षुः शरजालकैः ।
मेघसंघा यथा देवि सानुमंतं यथा तथा ॥ ३५ ॥

वार्य्यमाणाश्च ते बाणा वाहोश्चैव कलेवरे ।
विविशुः सर्वतो देवि यथा नागास्तु भूतले ॥ ३६ ॥

बाणाकुलो महीपालो बाहुर्नाम महेश्वरि ।
पलायति स्म सततं किंचिच्छेषे च सैनिके ॥ ३७ ॥

अनुजग्मुर्महीपाला बाहोस्तस्य महीपतेः ।
राज्यं जह्रुर्महाभागे तेऽपि गत्वा महेश्वरि ॥ ३८ ॥

खून पीने वाले वीरों की विचित्र शोभा चातकों के समान विराजमान थी। इस प्रकार वह घोर युद्ध वर्षा ऋतु के समान प्रतीत हो रहा था ॥ २६ ॥

हे अभिमान को नष्ट करने वाली देवि ! इस राजा तथा अन्य राजाओं के कुछ वीर नष्ट हो गए। सिर कट जाने के कारण सैकड़ों कबन्ध उस रणभूमि में विराजमान हो रहे थे ॥ ३० ॥

उस संग्राम में दस सहस्र रथ, बीस सहस्र हाथी, चालीस सहस्र घोड़े और पदाति ॥ ३१ ॥

मृतक हुए। इस संग्राम में राजा बाहु और उन शत्रु राजाओं के अनेक कबन्ध थे, जिनके सिर कट गये थे ॥ ३२ ॥

खड्ग तथा ढाल को ग्रहण कर उठ कर युद्ध के लिए उद्यत कबन्ध उस संग्राम में इस प्रकार विराजमान थे जैसे पलाश पुष्पित हो गये हों ॥ ३३ ॥

हे प्रिये ! हत हुए मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों के शरीर से निकली हुई खून की नदियाँ बह रही थीं ॥ ३४ ॥

इसके बाद बाहु पर शत्रुओं ने वाणवर्षा की। वह वाणों की वर्षा इस प्रकार थी कि जेसे मेघ पर्वत के ऊपर जल वर्षा कर रहे हों ॥ ३५ ॥

यद्यपि बाहु ने उन वाणों का बहुत कुछ निवारण किया। किन्तु हे देवि ! भूमि में सर्पों के समान उस राजा बाहु के शरीर में वाणों ने सब ओर से प्रवेश कर ही लिया ॥ ३६ ॥

हे महेश्वरि ! वह बाहु नाम का राजा जब बाणों से व्याकुल हो गया और उसकी थोड़ी ही सेना शेष रह गई तब वह भाग गया ॥ ३७ ॥

हे महाभागे पार्वति ! राजाओं ने उस बाहु नाम के राजा का पीछा करके राज्य पर आक्रमण कर दिया ॥ ३८ ॥

तस्य पत्नी तु या देवि सगर्भा बाहुना सह ।
गता वनं द्रुतं चैव हृतराज्या च शत्रुभिः ॥ ३६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सौरवंशानुकीर्त्तने
बाहुवनप्रयाणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः

युद्धे पराजयमवाप्य बाह्वभिधानस्य नरपालस्य चितारोहण-मौर्वमुनिनिदेशेनान्तर्वत्न्यास्तत्पत्न्याः पत्यननुगमनम्, आश्रमे तस्य गर्भात् सगरोत्पत्तिः, मुनिना सगरायाग्नेयास्त्रप्रदानम्

ईश्वर उवाच—

शत्रुभिर्हृतराज्योऽयं बाहुर्नाम वृकात्मजः ।
जगाम विपिनं घोरं मृगव्यालसमाकुलम् ॥ १ ॥

यादवी तस्य पत्नी या तस्यै देवि गरं ददौ ।
वंध्या सपत्नी काचिद्वै अमर्षा पूर्णमानसा ॥ २ ॥

हृतराज्यस्तु बाहुर्वै इंधनाद्यैश्चिर्तिं तथा ।
रचयित्वा महेशानि मर्तुं वै कृतनिश्चयः ॥ ३ ॥

आरुरोह चितां तत्र बाहुर्नाम महीपतिः ।
यादवी साऽपि देवेशि पत्या सह चितिं स्थिता ॥ ४ ॥

न्यवारयत्तु तां बाहुस्सगर्भां निजवल्लभाम् ।
बाहुः पञ्चात्मकं देहं दग्ध्वा स्वर्गपुरं ययौ ॥ ५ ॥

यादवी तु महाभागा संस्कारमौर्वकारितम् ।
चकार सर्वकर्माणि सरित्तीरे महेश्वरि ॥ ६ ॥

कृत्वा वै सर्वकर्माणि और्वाश्रमपदं ययौ ।
कालेन दशमे मासे सुषुवे चन्द्रवर्चसम् ॥ ७ ॥

हे देवि ! उस बाहु की पत्नी जो सगर्भा थी, अपने पति बाहु के साथ वन को चली गई। उसका राज्य शत्रुओं ने छीन लिया था ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सूर्यवंश अनुकीर्तन में बाहु-वन प्रयाण नामक छत्तीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय २७

युद्ध में पराजित होकर बाहु नामक राजा का चिता में प्रवेश करना, और्व मुनि के उपदेश से राजा की गर्भवती पत्नी का पति का अनुगमन न करना, आश्रम में उसके गर्भ से सागर की उत्पत्ति, मुनि द्वारा उसको आग्नेयास्त्र प्रदान करना

शिवजी बोले—

शत्रुओं के द्वारा राज्य को छीन लिये जाने पर यह वृक का पुत्र बाहु नामक राजा मृग, सर्प आदि हिंसक जन्तुओं से आक्रान्त घोर गहन वन में चला गया ॥ १ ॥

हे देवि ! उसकी यादवी नाम की पत्नी सगर्भा थी। उसको दूसरी किसी बन्ध्या पत्नी ने मन में क्रोध भरकर विष दे दिया ॥ २ ॥

हे महेशानि ! राज्य के शत्रुओं द्वारा छीन लिये जाने पर बाहु राजा ने लकड़ियों से चिता की रचना करके उसमें मरने के लिए निश्चय किया ॥ ३ ॥

जब बाहु नाम का राजा चिता पर आरूढ़ हुआ, हे देवेशि ! तब उसकी दूसरी रानी यादवी भी अपने पति उस बाहु के साथ चिता में स्थित हुई ॥ ४ ॥

उसने सगर्भा अपनी रानी को चिता में भस्म होने से निषेध कर दिया। पाञ्चभौतिक शरीर को चिता में दग्ध कर बाहु स्वर्ग लोक को गये ॥ ५ ॥

महाभागा उस यादवी ने अपने पति का और्ध्वदैहिक संस्कार किया। हे महेश्वरि ! इस सब पितृकर्म का सम्पादन उस रानी ने नदी के तट पर किया ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण पितृकर्म का सम्पादन करके वह रानी और्व ऋषि के आश्रम में चली गई। दसवें महीने में उस रानी ने चन्द्रमा की कान्ति के समान पुत्र को उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

गरेण सह संजातमौर्वस्तं प्रत्युवाच ह।
सगरोऽयं नृपो जातः कृतांतसदृशो युधि ॥ ८ ॥

जातकर्मादिकर्माणि कारयामास वै मुनिः।
जातस्य सगरस्यासावौर्वो नाम महातपाः ॥ ९ ॥

सगरोऽपि ततो बाल्ये चचाराश्रमके मुनेः।
बालक्रीडनकैः सर्वैर्मुनीनां बालकैः सह ॥ १० ॥

भिन्नैव प्रकृतिर्जाता सगरस्य महात्मनः।
मुनीनां बालकेभ्यश्च शौर्यादिगुणसंयुतः ॥ ११ ॥

अथ कौमारतां प्राप्तो मृगयासक्तमानसः।
चचार विपिने तत्र विघ्नन् मृगगणान् बहून् ॥ १२ ॥

एकस्मिन् समयेऽसौ वै सगरो नाम बाहुजः।
पप्रच्छ मातरं देवि विस्मयाविष्टमानसः ॥ १३ ॥

सगर उवाच—

आश्चर्यं परमं मातर्ममास्त्यद्य महावने।
गताः स्मः शतशो बाला आहर्तुं समिधः कुशान् ॥ १४ ॥

मामूचुस्तत्र ते सर्वे मातृपुत्रोऽसि हा कथम्।
न ते दृष्टः पिताऽस्माभिर्ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ॥ १५ ॥

किं गोत्रोऽसि कथं जातो भवांस्त्वद्य महावने।
संकल्पकाले भवता क्रियते किं कथं क्रिया ॥ १६ ॥

जनन्युवाच—

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पितुर्वृत्तं तवाद्य वै।
वाहुर्नाम महातेजाः क्षत्रियांतकरः प्रभुः ॥ १७ ॥

विष के साथ जन्म होने पर (माता के विष पीने पर भी गर्भ के जीवित होंने पर) उसके प्रति और्व ऋषि ने कहा। यह राजा क्योंकि विष के साथ (सगर) उत्पन्न हुआ है, अतः सगर नाम का होकर युद्ध में यमराज के समान दुर्जेय होगा ॥ ८ ॥

महातपस्वी उस और्व मुनि ने उत्पन्न हुये सगर के जातकर्म आदि संस्कार किये ॥ ९ ॥

तदनन्तर सगर भी बाल्यावस्था में मुनिबालकों के साथ बालक्रीड़ाओं में तत्पर होकर और्व ऋषि के आश्रम में विचरण करने लगा ॥ १० ॥

महात्मा सगर की प्रकृति शौर्य आदि गुणों से सम्पन्न थी, जो मुनि बालकों से भिन्न ही थी ॥ ११ ॥

तदनन्तर कौमार अवस्था में मृगया में आसक्त मन वाला वह सगर वन में विचरण करने लगा। वहाँ उसने अनेक मृगगणों का वध किया ॥ १२ ॥

हे देवि ! एक समय में इस बाहु के पुत्र सगर ने विस्मयान्वित हुए चित्त से माता से पूछा ॥ १३ ॥

सगर ने कहा—

हे माता ! मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आज गहन वन में हम सैकड़ों बालक समिधाओं और कुशों को लेने के लिए गये थे ॥ १४ ॥

वहाँ उन सभी बालकों ने मेरे को कहा कि हाय, तुम अपनी मां के कैसे पुत्र हो। हमने तुम्हारे पिता को देखा ही नहीं कि वह ब्राह्मण था या क्षत्रिय ॥ १५ ॥

तुम्हारा क्या गोत्र है, तुम इस महावन में कैसे उत्पन्न हुए। संकल्प के समय में आपके द्वारा कौन सी क्रिया की जाती है ॥ १६ ॥

माता ने कहा—

हे पुत्र ! सुनो मैं आज तुम्हारे पिता का वृत्तान्त कहुँगी। क्षत्रियों को आतंकित करने वाला, श्रेष्ठ, महाबलिष्ठ बाहु नाम का राजा था ॥ १७ ॥

विजयाय मनश्चक्रे राज्ञां सर्वदिशां सुत ।
ते सर्वे पृथिवीपाला यवनाद्या महौजसः ।। १८ ।।

हृतवंतो महाराज्यं तावकीनं महामते ।
पिता तवागतोऽरण्ये मया सह मुनेस्तदा ।। १९ ।।

लज्जायुक्तो महाबाहुश्चितां वै अध्यरोहत ।
प्रविशंतीं तु मामौर्वस्तदाऽसौ प्रत्यवारयत् ।। २० ।।

राजा पंचात्मकं देहं दग्ध्वा स्वर्गपुरं ययौ ।
त्वमत्रैव हि संजातो मुनिना संस्कृतो ह्यसि ।। २१ ।।

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा वचो मातुरमर्षापूर्णमानसः ।
संदश्य दंतैरोष्ठं हि ववंदे मुनिवंदितम् ।। २२ ।।

और्वोऽपि सगरं दृष्ट्वा बुद्धिमंतं नृपात्मजम् ।
ददावाग्नेयमस्त्रं हि सगराय महात्मने ।। २३ ।।

लब्ध्वा तत्परमस्त्रं वै अप्रधर्ष्यं सुरासुरैः ।
जेतुं चारीन्मनश्चक्रे ये तदा पृथिवीश्वराः ।। २४ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सौरवंशानुकीर्त्तने
सगरोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

सगरस्यैकस्यां पत्न्यां षष्टिसहस्रसुतोत्पत्तिरन्यस्यां
पत्न्यामेकसुतस्योत्पत्तिः

ईश्वर उवाच—

आग्नेयास्त्रं ततो लब्ध्वा महात्मा सत्यसंगरः ।
मुनेराज्ञां गृहीत्वा तु प्रणम्य च पुनः पुनः ।। १ ।।

हे पुत्र ! समस्त राजाओं की विजयश्री को प्राप्त करने के लिए बाहु ने मन में विचार किया। उन सभी यवन आदि बड़े पराक्रमी राजाओं ने ॥ १८ ॥

हे मतिमान् ! तुम्हारे विशाल राज्य का अपहरण कर लिया था। तब तुम्हारे पिता मुझे साथ लेकर मुनि के वन (आश्रम) में चले आये थे ॥ १९ ॥

लज्जित हुए वे महाबाहु चिता में आरूढ़ हुए। मैं भी जब चिता में प्रवेश करने लगी तब इन और्व ऋषि ने मुझे निषेध कर दिया ॥ २० ॥

राजा ने पाञ्चभौतिक शरीर को जला कर स्वर्ग लोक में प्रवेश किया। तुम्हारा जन्म इसी वन में हुआ और मुनि के द्वारा ही तुम्हारा संस्कार किया गया ॥ २१ ॥

ईश्वर ने कहा—

माता के इन वचनों को सुनकर सगर का मन क्रोध से भर गया। दांतों से होंठ को चबाकर उसने मुनि को प्रणाम किया ॥ २२ ॥

और्व ऋषि ने भी राजा के पुत्र सगर को बहुत बुद्धिमान् समझकर उस महात्मा सगर के लिए आग्नेय नामक अस्त्र प्रदान किया ॥ २३ ॥

उस परमोच्च आग्नेय अस्त्र को प्राप्त कर वह राजा देवताओं तथा दानवों के लिए अजेय हो गया। तब उसने शत्रुओं को जीतने की मन में इच्छा की, जो उस समय भूमण्डल के स्वामी थे ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सूर्यवंश अनुकीर्तन में सगरोपाख्यान प्रसङ्ग में सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय २८

सगर की एक पत्नी में साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति, दूसरी पत्नी में एक पुत्र का उत्पन्न होना

ईश्वर ने कहा—

तदनन्तर सत्यवादी महातमा सगर ने आग्नेय अस्त्र प्राप्त कर मुनि की आज्ञा ग्रहण कर उन्हें पुनः-पुनः प्रणाम किया ॥ १ ॥

ययौ जेतुं पितुः शत्रूनाग्नेयबलसंयुतः ।
हैहयांस्तालजंघांश्च यवनान् पल्लवांस्तथा ।। २ ।।

पारसीकांश्च कांबोजान्बङ्गान्मगधपौंड्रकान्[1] ।
शल्लकांश्च कुरूंश्चैव खसान्कालिंगकांस्तथा ।। ३ ।।

निजघान महातेजाः कालेनेह यथा पशून् ।
तेऽवशिष्टा महीपाला वशिष्ठं शरणं ययुः ।। ४ ।।

खंडीभूताः स्त्रियो वेषा जातास्तत्र महीश्वराः ।
वसिष्ठोऽपि महातेजाः सगरं प्रत्यवारयत् ।। ५ ।।

सगरस्तां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं प्रणम्य च ।
तेषां धर्मं जघानासौ सर्ववर्णबहिष्कृताः[2] ।। ६ ।।

सगरेण कृता भूपा महाबलपराक्रमाः ।
निःस्वाध्यायवषट्कारांस्तथा चांडालकर्मकान् ।। ७ ।।

चकार सहसा राजा जटिलान् श्मश्रूधारिणः ।
ते जाताः कालिकाः सर्पा दार्वा वै केरलाः शकाः ।। ८ ।।

मुद्गलाः पट्टकाः शल्लाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ।
सोऽपि राजा महाबाहुर्जित्वा तद्धर्म्मंमुत्तमम् ।। ९ ।।

महार्हवस्त्राभरणो नानासैनिकसैनिकः ।
रथाश्वगजसंपूर्णः सगरो वृकजात्मकः ।। १० ।।

अयोध्यायां महातेजा वशीकृतमहीतलः ।
शशास पृथिवीं सर्वां ससागरवनद्रुमाम् ।। ११ ।।

---

१ पारसी⋯तथा पाठ द्रसमें नहीं है ।   २. धर्म ।

आग्नेय अस्त्र से सम्पन्न होकर पिता के शत्रुओं को जीतने के लिए उस सगर ने प्रस्थान किया । हैदय, तालजंघ, यवन, पल्लव तथा ॥ २ ॥

पारसीक, कांबोज, मगध, पौण्ड्रक, शल्लक, कुरु, खस एवं कलिंग ॥ ३ ॥

राजाओं का इस प्रकार हनन किया, जिस प्रकार वधिक के द्वारा पशुओं का हनन किया जाता है । उससे बचे राजा वशिष्ठ की शरण में गये ॥ ४ ॥

वे राजा खण्डित हो गये थे और स्त्रियों का वेशधारण किये हुये थे वसिष्ठ ने महातेजवान् सगर को युद्ध करने से रोक दिया ॥ ५ ॥

सगर ने गुरु वशिष्ठ की प्रतिज्ञा की और वाणी को स्वीकार कर प्रणाम किया । उस सगर ने उन राजाओं को सर्ववर्णों से वहिष्कृत कर उनके धर्म का विनाश किया ॥ ६ ॥

सगर ने महाबलिष्ठ विक्रमशाली भूपतियों को स्वाध्याय रहित एवं चाण्डाल कर्म करने वाला बना दिया ॥ ७ ॥

राजाओं ने सहसा लम्बी-२ जटायें एवं बड़ी-२ दाढी बढ़ानी आरम्भ कर दी । कालिक, सर्प, दार्व, केरल, शक आदि राजाओं ने अपनी यही दशा बनाली ॥ ८ ॥

मुद्गल, पट्टक, शल्ल आदि धर्म वहिष्कृत राजाओं को पराजित कर उत्तम धर्म के पालक उस महाबाहु राजा सगर ने उत्तम धर्म की स्थापना की ॥ ९ ॥

उत्तमोत्तम वस्त्रों से सुसज्जित, अनेक प्रकार के सैनिकों से युक्त, रथ, अश्व एवं हाथियों से परिपूर्ण वृक-पुत्र बाहु के पुत्र सगर ने···॥ १० ॥

जोकि महातेजस्वी था और जिसने सम्पूर्ण भूमण्डल को वश में करके अयोध्या में निवास किया था, समुद्र वन और वृक्षों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन किया ॥ ११ ॥

कोशलाः केरलाः बंगाः कोंकणा द्रविडास्तथा ।
तैलिंगाश्च महाराष्ट्राः गुर्जराः कुरवः खसाः ॥ १२ ॥

शाल्वाः कैष्किधकाः शौणा माद्राः पौण्ड्रास्तथापरे ।
उपायनानि चित्राणि ददुरस्मै नराधिपाः ॥ १३ ॥

अयोध्याऽपि तदा देवि बभौ तेन महीभृता ।
रथ्यागोपुरवप्रैश्च शोभिता गिरिजे प्रिये ॥ १४ ॥

तस्य पत्नीद्वयं देवि बभूव मुनिवंदिते ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनीति परिश्रुता ॥ १५ ॥

कनिष्ठा तस्य पत्नी तु रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
अरिष्टनेमेर्दुहिता कमलाक्षीति विश्रुता ॥ १६ ॥

पतिधर्मरते नित्यं बभूवतुरनिंदिते ।
तदाज्ञाकारके देवि ते पत्न्यौ सगरस्य हि ॥ १७ ॥

एकदा सगरो देवि वने तस्य महात्मनः ।
और्वस्य मुनिवंद्यस्य पत्नीभ्यां स जगाम ह ॥ १८ ॥

निषिद्धसैनिको राजा चिकीर्षुर्मुनिदर्शनम् ।
तमागतं तदा दृष्ट्वा और्वो नाम महामुनिः ॥ १९ ॥

पाद्यमाचनीयं च चकारातिथ्यमुत्तमम् ।
दत्तासनं महाराजं पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥ २० ॥

स्वागतं च महेशानि चकार विधिवन्मुनिः ।
तस्य पत्न्यौ महाभागे प्रणनामतुरौर्वकम् ॥ २१ ॥

कोशल, केरल, बंग, कोंकण, द्रविड़, तैलंग, महाराष्ट्र, गुर्जर, कुरु, खस ॥ १२ ॥

शाल्व, कैष्किन्धक, शोण, मद्र तथा पौण्ड्र आदि राजाओं ने अनेक विचित्र उपहार इस राजा के लिए प्रदान किए ॥ १३ ॥

हे गिरिजे, प्रिये, देवि ! अयोध्या नगरी भी उस महीपाल सगर के द्वारा निर्मित गली, गोपुर और किले से अलंकृत होकर अतिशय शोभा को धारण करने लगी ॥ १४ ॥

हे देवि ! मुनिवन्दिते ! उस राजा की दो पत्नियां हुईं। बड़ी पत्नी विदर्भ राजा की कन्या केशिनी नाम से विख्यात थी ॥ १५ ॥

उनकी छोटी पत्नी भूमि में अनुपम रूप वाली थी। अरिष्ट नेमि की कन्या कमलाक्षी नाम से वह विख्यात थी ॥ १६ ॥

सबके द्वारा प्रशंसित होकर वे दोनों रानियां पातिव्रत्य धर्म का नित्य पालन करती थीं। हे देवि ! वे दोनों सगर की पत्नियां अपने पति की आज्ञा का पालन करती थीं ॥ १७ ॥

हे देवि ! एक समय राजा सगर उन महात्मा पूज्य और्व ऋषि के आश्रम में अपनी दोनों पत्नियों के साथ गये ॥ १८ ॥

राजा ने अपने सैनिकों को लौटा दिया और वे मुनि के दर्शन करने के लिए आश्रम में गये। उन्हें आते हुए देखकर और्व मुनि ने···॥ १९ ॥

सगर का पाद-प्रक्षालन, आचमन द्वारा उत्तम आतिथ्य किया। मुनि ने राजा को आसन देकर कुशल क्षेम पूछी ॥ २० ॥

और हे महेशानि ! मुनि ने उस राजा का विधिवत् स्वागत किया। महा-भाग्यशालिनी राजा की दो पत्नियों ने और्व ऋषि को प्रणाम किया ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा स विनयं राज्ञोरुवाच वचनं हितम्।
विनयाविष्टमनसोर्मुनीनां प्रवरो मुनिः ॥ २२ ॥

औौर्व उवाच—
षष्टिं पुत्रसहस्राणामेका गृह्णातु वै वरम्।
एकं वंशधरं पुत्रं गृह्णातु सत्वरं पुनः ॥ २३ ॥

ईश्वर उवाच—
इत्यौर्वस्य वचः श्रुत्वा ज्येष्ठा चैव कनीयसी।
प्रहृष्टमनसा देवि चिंतयामासतुस्तदा ॥ २४ ॥

तत्रैका केशिनी नाम विदर्भतनया सती।
उवाच वचनं हृष्टा तं मुनिं वरदं स्थितम् ॥ २५ ॥

केशिन्युवाच—
भगवन् मे सुतान् षष्टिसहस्राणि मुनीश्वर।
महापौरुषसंयुक्तान्मेरुमंदरसन्निभान् ॥ २६ ॥

कमलाक्ष्युवाच—
एकं वंशधरं पुत्रं देहि देव मुनीश्वर।
न कांक्षे षष्टिसाहस्रं यदि ते वंशहारकाः ॥ २७ ॥

ईश्वर उवाच—
उक्तं तयोस्तु वचनं यथारुच्यब्रवीद्वचः।
गृहीत्वा तद्वरं राज्ञ्यौ सगरश्च महायशाः ॥ २८ ॥

आययुर्नगरे स्वीये नानासंपत्समाकुले।
नानावादित्रघोषेण कृतमंगलकर्मणि ॥ २९ ॥

अथ काले केशिनी तु तुंबीमेकां व्यजीजनत्।
कृमिसादृश्यपुत्रैस्तु संपूर्णां निबिडैः श्रुतिः ॥ ३० ॥

धात्र्यस्तावत्यो देवेशि पुत्राणां चैव संख्यया।
राज्ञा नियुक्ताः पुत्रेभ्य; कृमिरूपेभ्य एव हि ॥ ३१ ॥

विनय से भरे मन वाले उस राजा को देखकर मुनियों में श्रेष्ठ मुनि और्व ने उससे हितकर वचन बोले— ॥ २२ ॥

और्व ने कहा—

साठ हजार पुत्र एक रानी से तुम प्राप्त करोगे और दूसरी रानी से जल्दी ही वंश को धारण करने वाला एक पुत्र उत्पन्न करोगे ॥ २३ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे देवि ! इस प्रकार और्व के वचनों को सुनकर बड़ी एवं छोटी रानी तब प्रसन्न मन होकर अपने मन में विचार करने लगीं ॥ २४ ॥

उनमें एक विदर्भ नरेश की कन्या केशिनी नाम की रानी ने हर्षित होकर उस वर देने वाले मुनि से कहा— ॥ २५ ॥

केशिनी ने कहा—

हे भगवन् ! मुनीश्वर ! मुझे साठ हजार पुत्र बड़े पराक्रमी एवं सुमेरु पर्वत तथा मन्दराचल पर्वत के समान दीजिए ॥ २६ ॥

कमलाक्षी ने कहा—

हे देव ! मुनीश्वर ! मुझे वंश को धारण करने वाले एक पुत्र को दीजिए । मैं साठ हजार पुत्रों की अभिलाषा नहीं करती, यदि वे वंश का नाश करने वाले हों ॥ २७ ॥

ईश्वर ने कहा—

दोनों रानियों के उक्त वचनों को सुनकर मुनि ने उनकी इच्छा के अनुकूल ही कहा । उस वर को ग्रहण कर राजा महायशस्वी सगर··· ॥ २८ ॥

अनेक सम्पत्तियों से परिपूर्ण अपने नगर में आये । उस समय नाना वाद्य-वादन आदि कृत्यों से मांगलिक कर्म किये गये ॥ २९ ॥

कुछ समय बीत जाने पर केशिनी रानी ने एक तुम्बी को जन्म दिया, जो कीड़ों के समान पुत्रों से भरी हुई थी ॥ ३० ॥

हे देवेशि ! जितनी उस तुम्बी में पुत्रों की संख्या थी, उतनी ही धात्रियाँ (धायें) राजा ने उन कृमिरूप पुत्रों के लिए नियुक्त कर दीं ॥ ३१ ॥

कृत्वा नीडानि तूलस्य न्यस्तास्तेषु सुतास्ततः ।
पयसो बिन्दुभिर्धात्र्यो जीवयामासुरंजसा ।। ३२ ।।

कालेन देवि ते सर्वे कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
धात्रीभिर्लालिताश्चैव शिक्षिता नातिसत्कताः ।। ३३ ।।

दुहितारिष्टनेमेस्तु कमलाक्षी हि नामतः ।
सुषुवे पुत्रमेकं च ह्यसमंजसनामकम् ।। ३४ ।।

सोऽपि राजा महाबाहुः सगरो नाम बुद्धिमान् ।
दृष्ट्वा तान् वै सुतान् देवि श्रुत्वा स्पष्टं च बालिशम् ।। ३५ ।।

प्रहर्षं परमं लेभे धृतोत्साहः परंतपः ।
यथा महादधेः पूरो दृष्ट्वा पूर्णं कलानिधिम् ।। ३६ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्तने सगरोपाख्याने सगरपुत्रोत्पत्तिर्नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ।

एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अश्वमेधयज्ञतत्परस्य सगरस्य यज्ञीयाश्वस्य वासवेनापहरणं सागरपुत्रैः पाताललोके कपिलमुनिं निकषा ह्यस्यावलोकनं कपिलं मुनिं चौरं मत्वा सगरपुत्रैस्तत्पीडनं, कपिलमुनेः कोपवह्निना षष्टिसहस्रसगरपुत्राणां भस्मीभवनं, सगरपौत्रेण यज्ञीयाश्वस्यानयनमश्वमेधस्य सम्पूर्णता

ईश्वर उवाच —

ततः कालेन केनापि सगरस्यात्मजाः शुभाः ।
यौवनं वय आपन्नाः कृतविद्या महौजसः ।। १ ।।

कृतोपवीताः सोद्वाहाः कुमारादित्यवर्चसः ।
सर्वास्त्रविद्यानिपुणा धनुर्वेदपरायणा ।। २ ।।

दौहित्रोरिष्टनेमेस्तु असमंजसनामकः ।
कृतोद्वाहोऽपि राज्ञा वै परस्त्रीनिरतोऽभवत् ।। ३ ।।

रुई के घोंसलों (थैलों) को बनाकर तदनन्तर उन पुत्रों को उनमें रख दिया गया। तदनन्तर वे धात्रियाँ दूध की बूंदों से इनका पालन करने लगीं ॥ ३२ ॥

हे देवि ! कुछ समय व्यतीत होने पर उन सभी बालकों की कान्ति सूर्य के समान हो गई। धात्रियों द्वारा उनका लालन-पालन होने लगा और वे उन्हें सत्कर्म की शिक्षा देने लगीं ॥ ३३ ॥

और अरिष्टनेमि की कन्या कमलाक्षी नाम की रानी ने एक असमंजस नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥

हे देवि ! वह महाबाहु, अतिशय बुद्धिमान् राजा सगर उन बालकों के जन्म के बारे में स्पष्ट रूप से सुनकर और उन्हें देखकर··· ॥ ३५ ॥

उत्साहित होकर तथा शत्रुओं को तपाने वाला होकर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुआ। उसका उल्लास ऐसा बढ़ा जैसा कि पूर्णिमा के चन्द्र को देखकर समुद्र का प्रवाह बढ़ता है ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन में सगर उपाख्यान में पुत्रोत्पत्ति नाम का २८वाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय-२९

अश्वमेध यज्ञ करने वाले सगर के यज्ञीय अश्व का इन्द्र द्वारा अपहरण, सगर पुत्रों द्वारा पाताल लोक में कपिल मुनि के पास यज्ञीय अश्व को देखना, कपिल मुनि को चोर समझ कर सगर पुत्रों द्वारा उनको पीटना, मुनि के क्रोध की अग्नि से साठ हजार सगर पुत्रों का भस्म हो जाना, सगर के पौत्र द्वारा यज्ञीय अश्व को लाना, अश्वमेध यज्ञ का सम्पूर्ण होना

ईश्वर ने कहा—

तदनन्तर कुछ समय के बीत जाने पर राजा सगर के महातेजस्वी सगर पुत्रों ने यौवनावस्था तक विद्याओं का अध्ययन कर लिया ॥ १ ॥

समस्त अस्त्र विद्याओं में निपुण, धनुष विद्या में पारंगत सूर्य के समान कान्ति-मान् उन राजपुत्रों का यज्ञोपवीत एवं विवाह संस्कार किया गया ॥ २ ॥

अरिष्टनेमि का दौहित्र राजा असमंजस, राजा सगर द्वारा विवाह कर दिये जाने पर भी परस्त्रीगामी हुआ ॥ ३ ॥

बलान्निगृह्य केषांचिदाजहार भृशं स्त्रियः ।
इति संतापितास्तेन प्रजाः परमदुःखिताः ।।
ऊचुः प्रांजलयो देवि ! राजानं सगरं तदा ।। ४ ।।

प्रजाः ऊचुः—

जय राजन् ! महाराज ! दुःखिताःस्मो भृशं वयम् ।
अयं तवात्मजो नाम्नासमंजस इति श्रुतः ।। ५ ।।

स्त्रियोऽस्माकं बलादेव हरते च धनं तथा ।
कथं वै स्थीयतामत्र प्रजाभिरिति चेद्वद ।। ६ ।।

तदाज्ञापय नो राजन् गच्छामोऽद्य वयं प्रभो ।
त्यागो मास्त्वस्य पुत्रस्य गमिष्यामो वयं वनम् ।। ७ ।।

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा निगदितं प्रजाया वृकजात्मजः ।
पुत्रत्यागं ममन्ये हि साधु नैव प्रजाशुभम् ।। ८ ।।

यस्त्वसमंजसो हीनः नाम्ना पंचजनासुतः ।
तमुवाच महातेजाः सगरो नाम वीर्य्यवान् ।। ९ ।।

यथेच्छं गच्छ दुर्बुद्धे न त्वया कार्यमस्ति मे ।
कर्मणा दुष्कृतेन त्वं त्याज्योऽसि सांप्रतं मम ।। १० ।।

इति तद्वचनं श्रुत्वा नाम्ना पंचजनस्तु सः ।
जगाम सहसारण्यं मृगव्यालशताकुलम् ।। ११ ।।

तस्य पुत्रं महेशानि नाम्ना अंशुमतं प्रियम् ।
पौत्रं बहुतरं राजा ममन्ये जगतीपतिः ।। १२ ।।

ते तस्य पुत्राः शतशो वयः प्राप्य तु यौवनम् ।
ययुर्दिग्विजयं कर्त्तुं महाबलपराक्रमाः ।। १३ ।।

किन्हीं की स्त्रियों को बलात् पकड़कर वह अपहरण कर लेता था। इस प्रकार उसके द्वारा संतापित प्रजा बड़ी दुःखी हुई। हे देवेशि! हाथ जोड़कर वह प्रजा राजा सगर से कहने लगी ॥ ४ ॥

प्रजा ने कहा—

हे राजन्! महाराज! आपकी जय हो, हम बहुत दुःखी हैं। आपका असमंजस नाम का यह पुत्र··· ॥ ५ ॥

हमारी स्त्रियों तथा धन का बलात् ही अपहरण कर लेता है। आप ही बतायें कि हम आपकी प्रजा यहाँ कैसे रह सकती हैं ॥ ६ ॥

हे राजन्! आप आज्ञा दीजिए हम अभी अन्यत्र चले जाते हैं। हे प्रभो! यदि अपने इस पुत्र का त्याग नहीं करेंगे तो हम बन को चले जायेंगे ॥ ७ ॥

ईश्वर ने कहा—

बाहु के पुत्र सगर ने इस प्रकार अपनी प्रजा के वचन सुनकरः पुत्र को त्याग देने और सज्जन प्रजा के हित के लिये शुभ चिन्तन करने का विचार किया ॥ ८ ॥

हे अन्त्यजसुत के सदृश पुत्र असमंजस! तुम बड़े हीन बुद्धि के हो। ऐसा महातेजस्वी, बलशाली, सगर नाम के राजा ने उससे कहा ॥ ९ ॥

हे दुर्बुद्धे! तुम अपनी स्वेच्छा से चले जाओ। मुझे तुझसे कोई काम नहीं है। दुष्कृत कर्मों के कारण तेरा परित्याग मुझे अभी करना ही होगा ॥ १० ॥

इस प्रकार राजा सगर के वचन सुनकर वह असमंजस अन्त्यज होकर सैकड़ों मृग एवं सर्पों से आकीर्ण वन को तत्काल चला गया ॥ ११ ॥

हे महेशानि! उस असमंजस का अंशुमान् नाम का प्रिय पुत्र था। जगत्पति राजा सगर ने उस अपने पौत्र अंशुमान् को ही अतिशय प्रिय माना ॥ १२ ॥

राजा के सैकड़ों प्रिय, महाबलिष्ठ एवं पराक्रमी पुत्र युवा अवस्था की प्राप्ति के अनन्तर दिग्विजय करने के लिये चल पड़े ॥ १३ ॥

सर्वान् वै पृथिवीपालान्वशं निन्युर्महाभुजाः ।
जित्वा ससागरां पृथ्वीमाययुः स्वपुरे पुनः ॥ १४ ॥

एकदा सगरस्याभूद्यष्टुं मनसि शार्ङ्गिणम् ।
हयमेधेन देवेशि दृष्ट्वा तान् वै महाबलान् ॥ १५ ॥

दीक्षितश्चाभवद्राजा हयमेधाय पार्वति ।
अश्वं वै चारयामास पुत्रांश्चैव महाबलान् ॥ १६ ॥

चारयित्वा तमश्वं तु पृथिवीं सगरात्मजाः ।
आययुर्यज्ञभूमौ हि यत्र राजा सुदीक्षितः ॥ १७ ॥

एवं बहुविधान् यज्ञांश्चकार विधिना प्रिये ।
एकदा सगरो राजा पुनरश्वं चचार ह ॥ १८ ॥

ते पुत्राः सगरस्याहो षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ।
गतास्तदनु देवेशि यत्र वै घोटको गतः ॥ १९ ॥

तान् दृष्ट्वा सहसा देवो विजिगीषून् पुरंदरम् ।
पुरंदरोऽपि संत्रस्तो देवैः सह ययौ हरिम् ॥ २० ॥

सुरासुरैः सेव्यमानं शेषपर्य्यंकशायिनम् ।
उवाच परमत्रस्तो विष्णुं त्रैलोक्यनायकम् ॥ २१ ॥

इन्द्र उवाच—

नमस्तेस्तु सुराध्यक्ष नमस्त्रैलोक्यमंगल ।
नमस्तेस्तु सुरेन्द्राय नमस्त्रैलोक्यरूपक ॥ २२ ॥

न ते रूपं न वयसः पारं जानाति कश्चन ।
आदिं न वा न वा चांतं मध्य नैव तवेश्वर ॥ २३ ॥

उन महाबाहुओं ने सम्पूर्ण पृथिवी के राजाओं को वश में कर लिया। समुद्र पर्यन्त समस्त भूमण्डल को जीतकर वे पुनः अपने नगर को आ गये ॥ १४ ॥

हे देवेशि ! एक समय महाबलवान् अपने उन पुत्रों को देखकर राजा सगर के मन में अश्वमेध के द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने की भावना का उदय हुआ ॥ १५ ॥

हे पार्वति ! राजा सगर अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित हुये। उन्होंने बलवान् अपने पुत्रों को अश्व का विचरण कराने के लिये भेजा ॥ १६ ॥

सगर के पुत्र उस घोड़े को सम्पूर्ण पृथिवी का भ्रमण कराके उस यज्ञ भूमि में आये जहाँ कि राजा सगर ने दीक्षा ली थी ॥ १७ ॥

हे प्रिये ! इस प्रकार उस राजा सगर ने विधिपूर्वक विविध यज्ञों को सम्पन्न किया। एक समय राजा सगर ने पुनः अश्व विचरण करने के लिए भेजा ॥ १८ ॥

हे देवेशि ! अहो ! सगर के वे साठ हजार पुत्र, जहाँ वह घोड़ा जाता था, उसके पीछे-पीछे गये ॥ १९ ॥

इन्द्र को विजय करने की इच्छा रखने वाले उन राजकुमारों को देखकर वे देव सहसा संत्रस्त हुये, इन्द्र देवताओं के साथ भगवान् विष्णु के पास गये ॥ २० ॥

देवताओं एवं दानवों से सेवित, शेषनागरूपी शय्या में शयन करने वाले, तीनों लोकों के अधिपति विष्णु से अत्यन्त त्रस्त इन्द्र ने कहा ॥ २१ ॥

इन्द्र ने कहा—

हे देवाधिपति ! आपको नमस्कार है, तीनों लोकों का मंगल करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे देवेन्द्र ! आपको प्रणाम है, तीनों लोकों को रूप देने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

आपके रूप को एवं आयु के अन्त को कोई नहीं जानता है। हे ईश्वर ! आपके आदि, मध्य और अन्त को भी कोई नहीं जानता ॥ २३ ॥

अप्सु वै द्रवरूपोऽसि तेजस्सु द्योतकात्मकः ।
वायौ शोषणशक्तिस्त्वमाकाशे व्यापकात्मकः ।। २४ ।।

पृथिव्यां गंधरूपोऽसि काले चासंख्यरूपकः ।
धैर्य्यरूपो हि मनसि दिक्षु त्वं पृथगात्मकः ।। २५ ।।

आत्मा त्वं सर्वकर्ता त्वं जगत्प्रलयकारणम् ।
कर्मणां गतिरूपोऽसि कालस्त्वं सर्वदेहिनाम् ।। २६ ।।

ददासि दातृरूपेण हरस्याहर्तृ रूपकः ।
सृजसि ब्रह्मरूपेण पितृरूपेण पोषसि ।। २७ ।।

यमरूपेण हरसि कर्मरूपेण दुःखदः ।
सत्कर्मणः स्वरूपेण स्वर्गदोऽसि जनार्दन ।। २८ ।।

अपारद्रवरूपस्त्वं बहिर्ब्रह्मांडबाह्यतः ।
लूतांडा इव राजंते त्वयि ब्रह्मांडपंक्तयः ।। २९ ।।

नमस्ते शतशो देव त्राहि मां सगरात्मजाः ।
बाधंते ते भूमितलं स्वर्गं वै जेतुमिच्छवः ।। ३० ।।

उपायः क्रियतामेषां विनाशाय दुरात्मनाम् ।
त्वन्नः पालयितास्माकं सर्वस्य जगतः प्रभो ।। ३१ ।।

श्रीभगवानुवाच—

गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे न भेतव्यं सुरोत्तमाः ।
उपायं वो वदाम्यद्य तत्कुरुध्व सुरोत्तमाः ।। ३२ ।।

हृत्वा तमश्वं यज्ञीयं नयध्वं सुतले[1] स्थले ।
तत्र कापिलरूपेण स्थितोऽहं तद्विनाशकृत् ।। ३३ ।।

---

१. सुमुनेः ।

आप जल में द्रवरूप से, तेज में प्रकाश रूप से, वायु में शोषण की शक्ति रूप से, आकाश में व्यापकता रूप से व्याप्त हैं ॥ २४ ॥

पृथिवी में गन्ध रूप और काल में असंख्य रूप आपका ही है। मन में धैर्य रूप से, दिशाओं में अलग-अलग आत्मस्वरूप से आप ही व्याप्त हो रहे हैं ॥ २५ ॥

सब जीवों के आत्मा, जगत् का निर्माण करने वाले, सृष्टि के प्रलय के कारण आप ही हैं। कर्मों के गतिरूप, समस्त देहधारियों के कालरूप आप ही हैं ॥ २६ ॥

दाता रूप से आप देते हैं, हर (शिव) रूप से आप विनाश करते हैं। ब्रह्मरूप से आप सृष्टि का सृजन करते हैं और पितृ रूप से आप पालन करते हैं ॥ २७ ॥

यमरूप से आप हरण करते हैं और कर्मरूप से दुःख देते हैं। हे जनार्दन ! सत्कर्म के स्वरूप से आप स्वर्ग को देने वाले हैं ॥ २८ ॥

अथाह द्रवरूप आपका ही है, आपके बाह्य शरीर में ब्रह्माण्ड पंक्तियाँ इस प्रकार हैं, जिस प्रकार मकड़ी के अण्डों की पंक्तियाँ विराजमान रहती हैं ॥ २९ ॥

हे देव ! आपको सैकड़ों बार नमस्कार है। सगर के पुत्रों से आप मेरी रक्षा करें। उन्होंने भूमण्डल को वश में कर लिया है। अब वे स्वर्ग को जीतने की इच्छा कर रहे हैं ॥ ३० ॥

दुरात्माओं के नाश के लिये आप उपाय कीजिये। हे प्रभो ! आप ही हमारे एवं समस्त संसार के पालन करने वाले हो ॥ ३१ ॥

श्री भगवान् ने कहा—

हे श्रेष्ठ देवताओ ! तुम जाओ, भय मत करो, आपको जो उपाय कहा जाये, उसे करो ॥ ३२ ॥

उनके अश्व को हरण करके तुम सुतल लोक में ले जाओ। वहाँ कपिल रूप से उनका विनाश करने वाला मैं स्थित हूँ ॥ ३३ ॥

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वोक्तवचनं शार्ङ्गिणः सर्वदेवताः।
ययुर्यथागतं देवि यथास्थानं यथागृहम् ॥ ३४ ॥

तेषां चारयितामश्वं समुद्रनिकटे विभुः।
संजहार हयं तूर्णमदृष्टिविषयस्ततः ॥ ३५ ॥

दृष्ट्वा हृतं तमश्वं वै विस्मयाविष्टचेतनाः।
चक्रुरन्वेषण तत्र बहुशो घोटकस्य हि ॥ ३६ ॥

अप्राप्ते घोटके वीराः निचख्नुः पृथिवीतलम्।
निचख्नन्तोऽपि सर्वत्र नावापुर्हयमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

पितुः समीपमागत्य तद्वै वृत्तं हयात्मकम्।
श्रुत्वा तदानीं सगरो भर्त्सयामास तान् सुतान् ॥ ३८ ॥

भर्त्सितास्ते तदा राज्ञा सगरेण महात्मना।
ययुस्तूर्णं सागरास्तु हृतो यत्र हयोत्तमः ॥ ३९ ॥

निचख्नुः पृथिवीं भूयः परिघोपमितैः करैः।
कुद्दालाग्रैरेकवारं भूमिं वै योजनायताम् ॥ ४० ॥

निचख्नंतो ययुस्तूर्णं पातालेऽधतमोवृते।
गजं पूर्व दिशासंस्थं ददृशुः पर्वतोपमम् ॥ ४१ ॥

पप्रच्छुस्तं गजं दृष्ट्वा हयान्वेषणतत्पराः।
किंचिन्नोवाच तान् सोऽपि धिगुक्त्वा तं ययुः पुरः ॥ ४२ ॥

पुनर्द्वितीयं नागेन्द्रं ददृशुः सगरात्मजाः।
अवमन्य गजं तं च पश्चिमायां गतास्ततः ॥ ४३ ॥

ईश्वर ने कहा —

सब देवताओं ने भगवान् के उक्त वचन सुनकर, हे देवि ! जैसे आये थे वैसे ही, अपने स्थान और घरों को प्रस्थान किया ।। ३४ ।।

सगर के पुत्रों के चरते हुये घोड़े का समुद्र के पास इन्द्र ने अपहरण कर दिया । तदनन्तर वह अदृश्य हो गया ।। ३५ ।।

उस अश्व को अपहृत हुये देखकर आश्चर्यान्वित मन से उन सगर के पुत्रों ने घोड़े का बहुत अन्वेषण किया ।। ३६ ।।

उन वीरों के अन्वेषण करने पर भी जब घोड़ा न मिला तो उन्होंने पृथिवी तल को खोदना आरम्भ किया । भूमि के सर्वत्र उत्खनन से भी उन्हें वह उत्तम घोड़ा नहीं मिला ।। ३७ ।।

पिता के समीप आकर उन्होंने घोड़े का समस्त वृत्तान्त कहा । उस समय सगर ने इस वृत्तान्त को सुनकर अपने पुत्रों के प्रति बड़ा क्रोध किया, पुत्रों को फटकारा ।। ३८ ।।

महात्मा राजा सगर के द्वारा फटकारे गये वे सगर के साठ हजार पुत्र समुद्र के पास उसी स्थान पर गये जहाँ पर उनके घोड़े का हरण किया गया था ।। ३९ ।।

वज्र के समान हाथों से पुनः पुनः पृथिवी का वे उत्खनन करने लगे । उनके कुदाल से एक ही बार में एक योजन भूमि की खुदाई होती थी ।। ४० ।।

भूमि को खोदते हुए वे शीघ्र अंधेरे से व्याप्त पाताल में पहुंचे । पर्वत के समान दिग्गज को उन्होंने पूर्व दिशा में स्थित देखा ।। ४१ ।।

अश्वान्वेषण में तत्पर सगर के उन पुत्रों ने उस दिग्गज को देखकर पूछा । दिग्गज के कुछ न कहने पर उसे धिक्कार देकर वे आगे चले गये ।। ४२ ।।

सगर के पुत्रों ने पुनः दूसरे दिग्गज को देखा और उसका भी निरादर करके वे पश्चिम दिशा की ओर चले गये ।। ४३ ।।

दद्दशुस्तत्र कपिलं ध्यायमानं जनार्दनम् ।
अग्निपुंजमिताः सर्वे द्योतयंतो दिशो दश ।। ४४ ।।

नीतो हयोऽपि तत्रैव वासवेन पुरा तु यः ।
बद्धं वै पृष्ठतस्तस्य कपिलस्य महात्मनः ।। ४५ ।।

दृष्ट्वा हयं महादेवि चौरं तं मेनिरे तदा ।
भर्त्सयामासुरव्यग्रं चौर चौरेति चासकृत् ।। ४६ ।।

भर्त्स्यमाणोऽपि कपिलो न जहौ ध्यानमुत्तमम् ।
गदाभिः परिघैश्चैव कालस्य वशमागताः ।। ४७ ।।

निजघ्नुः सततं वीरा वज्रोपमशरीरकम् ।
तैः प्रहारैस्तस्य देहे कंडर्जाता महात्मनः ।। ४८ ।।

उन्मील्य नयने देवि दृष्ट्वा तानेकचक्षुषा ।
दग्धाः सगरपुत्राश्च नेत्रोत्पन्नाग्निना ततः ।। ४९ ।।

अग्नेरंशाद्यथा देवि दह्यन्ते तूलराशयः ।
तथा ते षष्टिसाहस्राः पतंगा इव पावके ।। ५० ।।

भस्मीभूताः क्षणाद्देवि सर्वे ते नष्टदेहकाः ।
दग्ध्वा तान् सागरान् सद्यो ध्यानं परममास्थितः ।। ५१ ।।

नष्टेषु तेषु सर्वेषु सगरो नाम भूमिपः ।
वहुषु च व्यतीतेषु वर्षेषु परमेश्वरि ।। ५२ ।।

बहुशश्चितयामास नागतास्ते कथं गृहम् ।
पुत्रा वै बहुसाहस्रा महाबलपराक्रमाः ।। ५३ ।।

अग्निपुंज समान दस दिशाओं को द्योतित करते हुये उन सब राजकुमारों ने वहाँ भगवान् के ध्यान में अवस्थित कपिल मुनि को देखा ॥ ४४ ॥

इन्द्र के द्वारा पहले से ले जाया गया सगर के पुत्रों का घोड़ा भी वहाँ ही उस महात्मा कपिल मुनि के पीछे के भाग में बँधा हुआ था ॥ ४५ ॥

हे देवि ! अपने अश्व को देखकर उन राजकुमारों ने उस महर्षि कपिल को ही चोर माना और बार-बार चोर-चोर आदि अपशब्दों से ऋषि को अपमानित किया ॥ ४६ ॥

अपमानित होते हुये भी कपिल मुनि ने अपने उत्तम ध्यान को नहीं छोड़ा। काल के वशीभूत हो गदाओं और परिघों से··· ॥ ४७ ॥

वे वीर, वज्र के समान कठोर कपिल के शरीर पर निरन्तर प्रहार करने लगे। उन प्रहारों से उन महात्मा कपिल की देह में खुजली हो गई ॥ ४८ ॥

हे देवि ! तदनन्तर आँखें खोलकर कपिल मुनि ने उन सगर पुत्रों को एक नेत्र से देखकर, नेत्र के द्वारा उत्पन्न अग्नि से जला दिया ॥ ४९ ॥

हे देवि ! जैसे अग्नि के अंश से कपास का ढेर जल जाता है एवं अग्नि में पतंग भस्म हो जाते हैं, ऐसे ही वे सगर के साठ हजार पुत्र भस्म हो गये ॥ ५० ॥

हे देवि ! वे सब सगर के पुत्र क्षण भर में ही भस्मीभूत होकर नष्ट देह हो गये। उन सगर के पुत्रों को भस्म कर कपिल मुनि तत्काल ही ध्यान में अवस्थित हो गये ॥ ५१ ॥

हे परमेश्वरि ! उन सबके नष्ट हो जाने पर और बहुत समय के व्यतीत हो जाने पर राजा सगर··· ॥ ५२ ॥

बहुत चिन्ता करने लगे कि महाबलिष्ठ, पराक्रमशाली हजारों मेरे पुत्र घर क्यों नहीं आये ॥ ५३ ॥

उवाच पंचजननं कुमारं दस्रुरूपिणम् ।
अंशुमंतं महात्मानमन्वेषय पितृव्यकान् ।। ५४ ।।

क्व गतास्ते महाभाग त्वमेव कुलदीपकः ।
ज्ञात्वा तेषां स्थितिं तात शीघ्रमेहि ममांतिकम् ।। ५५ ।।

तमश्वमश्वमेधीयं ज्ञात्वागच्छ यथासुखम् ।
इतीरितं तु तच्छ्रुत्वा अंशुमान्नाम वीर्य्यवान् ।। ५६ ।।

हयपृष्ठं समारुह्य स्वल्पेनैव बलेन च ।
समुद्रतीरे यत्राश्वो नीतो वृत्रारिणा ययौ ।। ५७ ।।

तां भूमिं खनितां दृष्ट्वा कोटियोजनमायताम् ।
महद्बिलं तत्र दृष्ट्वा विवेश सहसा ततः ।। ५८ ।।

नत्वा नारायणं देवं गंगाख्यं परमं शिवम् ।
निर्गच्छतस्तस्य देवि पुरुषो ददृशे ततः ।। ५९ ।।

पद्माकारं महद्वर्णं स्वर्णरत्नादिशोभितम् ।
विशालनयनं शांतं रक्तनेत्रं सुवाससम् ।। ६० ।।

ददर्श सुखमासीनं यादसां गणशोभितम् ।
प्रसन्नवदनं देवि ववंदे सहसांशुमान् ।। ६१ ।।

अंशुमानिव तेजोभिरेष सागरनंदनः ।
बद्धांजलिं तु तं दृष्ट्वा सागरं भक्तितत्परम् ।। ६२ ।।

प्रणमंतं बहुतरं पित्रन्वेषणतत्परम् ।
उवाच पुरुषस्तं च प्रसन्नमुखपंकजम् ।। ६३ ।।

राजा ने अश्विनी कुमार के समान रूपवान् कुमार अन्त्यज (असमंजस) के पुत्र महात्मा अंशुमान् को कहा कि तुम कनिष्ठ पिताओं का अन्वेषण करो ।। ५४ ।।

कि वे कहाँ गये ? हे महाभाग ! तुम ही कुलदीपक हो । हे तात ! उनकी स्थिति को जानकर शीघ्र तुम मेरे पास लौट आओ ।। ५५ ।।

उस अश्वमेध के अश्व को जानकर तुम सुख से आओ । सगर के इस वाक्य को सुनकर वीर्यशाली अंशुमान्··· ।। ५६ ।।

घोड़े पर आरूढ़ होकर और थोड़ी ही सेना को साथ में लेकर समुद्र के किनारे पर गये, जहाँ इन्द्र ने घोड़े को हरण कर बाँधा हुआ था ।। ५७ ।।

करोड़ योजन विस्तृत उस भूमि को खुदी हुई देखकर, वहाँ विशाल बिल को देखकर सहसा उसमें प्रवेश किया ।। ५८ ।।

हे देवि ! नारायण भगवान् और गंगा नाम वाले परम शिव को नमस्कार करके वहाँ से निकलते हुए एक पुरुष को देखा ।। ५९ ।।

कमल के समान सुन्दर वर्ण वाले, स्वर्ण एवं रत्न आदियों से शोभित, विशाल नेत्र वाले शान्त स्वरूप, लाल आँखों वाले सुन्दर वस्त्रों से शोभित··· ।। ६० ।।

जन्तु गणों से सुशोभित, सुख से बैठे हुए पुरुष को अंशुमान् ने देखा । हे देवि ! अंशुमान् ने सहसा उस प्रसन्नवदन पुरुष को प्रणाम किया ।। ६१ ।।

वह सगर पुत्र असमंजस का पुत्र अंशुमान् अपने तेज से सूर्य के समान था । हाथ जोड़कर, भक्ति में तत्पर, उस सगर के पुत्र को देखकर··· ।। ६२ ।।

जो कि अनेक बार प्रणाम कर रहा था और पिताओं के अन्वेषण में तत्पर था, और जिसका मुख कमल के समान प्रसन्न था, उस पुरुष ने कहा— ।। ६३ ।।

पुरुष उवाच—

प्रसन्नोऽस्मि महाभाग विनयेन तवाद्य वै।
अहं वच्मि पितृव्यानां गतिं ते सागरात्मज॥ ६४॥

समुद्रोऽहं महाबाहो वर्द्धितोऽस्मि पितृव्यकैः।
तवांशुमन्महाभाग सप्तधैव गतोऽस्म्यहम्॥ ६५॥

मामूचुर्देवताः सर्वाः सागरस्त्वन्न संशयः।
त्वत्पितृव्यैर्वर्द्धितोऽहं पितृतुल्या यतस्त्विमे॥ ६६॥

ततस्त्वं मामको भ्राता वर्त्तसे नरपुंगव।
हयं हृत्वा गतो देवो भगवान्पाकशासनः॥ ६७॥

तदन्वेषणकार्याय पितृव्यास्ते गताः ह्यतः।
अन्यतत्सर्वं भवानेव वेत्स्यसेऽग्रे गतः खलु॥ ६८॥

यशस्त्वमेव भगवन्प्राप्स्यसे निश्चयं शुभम्।
गच्छ शीघ्रं दिग्गजं तं नत्वा गच्छ यथासुखम्॥ ६९॥

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य परिक्रम्य प्रणम्य च।
ययौ स त्वरयायुक्तस्तत्र न्यस्य हयं स्वकम्॥ ७०॥

ददर्श दिग्गजं देवि नत्वा तं दक्षिणीकृतः।
दक्षिणाशां गतस्तूर्णं ददर्शान्यं तु दिग्गजम्॥ ७१॥

परिक्रम्य प्रणम्यासौ दिग्गजं तं च बुद्धिमान्।
पश्चिमायां गतो देवि पित्रन्वेषणतत्परः॥ ७२॥

ददर्श सहसासीनं ध्यायमानं परात्परम्।
कोटिसूर्यसमाभासं द्योतयंतं दिशो दश॥ ७३॥

पुरुष ने कहा—

हे महाभाग ! मैं आज तुम्हारे विनय से प्रसन्न हूँ। अतः हे सागरात्मज ! अंशुमान् ! मैं तुम्हारे पितृव्यों की गति का वर्णन करता हूँ ॥ ६४ ॥

हे महाबाहो ! मैं समुद्र हूँ, तुम्हारे पितृव्यों के ही द्वारा मेरी वृद्धि हुई है। हे महाभाग ! अंशुमान् ! तभी से मेरे सात विभाग हो गये हैं ॥ ६५ ॥

सागर के पुत्रों द्वारा परिवर्द्धित होने के कारण सब देवताओं ने मुझसे कहा कि निःसन्देह तुम सागर हो। तुम्हारे पितृव्यों के द्वारा मैं वृद्धि को प्राप्त हुआ हूँ। अतः वे मेरे भी पिता के ही तुल्य हैं ॥ ६६ ॥

तदनन्तर हे नरपुंगव ! अंशुमान् ! तुम मेरे भाई होते हो। अश्व का अपहरण करके भगवान् देव इन्द्र चले गये हैं ॥ ६७ ॥

इसी अश्व के अन्वेषण करने के लिए आपके पितृव्य गये थे। इससे सम्बन्धित अन्य सब वृतान्त आप निश्चय ही आगे जाकर देख सकेंगे ॥ ६८ ॥

हे भगवन् ! तुम्हें अवश्य ही शुभ यश प्राप्त होगा। भगवान् को प्रणाम कर सुख सहित शीघ्र दिगन्तों में प्रवेश करो ॥ ६९ ॥

ईश्वर ने कहा—

समुद्र के इस प्रकार वचन सुनकर, उन्हें प्रणाम कर और उनकी परिक्रमा कर अपने अश्व को वहाँ ही रखकर वह तत्काल.उस स्थान से चला गया ॥ ७० ॥

हे देवि ! उस अंशुमान् ने दिग्गज को देखा। उन्हें प्रणाम कर उसकी परिक्रमा कर फिर दक्षिण दिशा में जाकर उसने दूसरे दिग्गज को देखा ॥ ७१ ॥

हे देवि ! बुद्धिमान् उस अंशुमान ने उस दिग्गज को प्रणाम किया तथा उसकी परिक्रमा करके अपने पितृव्यों के अन्वेषण में तत्पर वह पश्चिम दिशा की ओर गया ॥ ७२ ॥

वहां उन्होंने परमात्मा के ध्यान में आसीन हुए करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, उस प्रकाश से दशों दिशाओं को उदीप्त करते हुए मुनि को देखा ॥ ७३ ॥

ऊर्द्ध्वकेशं विरूपाक्षं नासाग्रन्यस्तदृष्टिकम्।
दृष्ट्वा तं सहसा देवि प्रणनाम महामुनिम्॥ ७४॥

प्रणामाः शतशस्तत्र कृतास्तेन महात्मना।
उवाच प्रणतो वाक्यं विस्मयाकुलचेतनः॥ ७५॥

अंशुमानुवाच—

नमो नमस्ते शतशोऽनंतमूर्त्ते महेश्वर।
सर्वतः पाणिपादाक्षिन्सर्वतस्ते नमो नमः॥ ७६॥

यज्ञस्त्वं यज्ञकर्त्ता त्वं यज्ञेशो ज्ञानतत्परः।
परात्परनिरूप्योऽसि वशीकृतजगतत्त्रयः॥ ७७॥

बुद्धिदो धनदोऽसि त्वं मानदो ज्ञानदः प्रभुः।
सत्यकारयिता त्वं हि पराणां परमो गुरुः॥ ७८॥

शिष्यस्य बुद्धिरूपेण गुरोर्विज्ञानमूर्तिना।
महतः शक्तिरूपेण पितुर्जनकशक्तिमान्॥ ७९॥

त्वमेव सर्वं भवसि जगदेतच्चराचरम्।
त्वदन्यं त्रिषु लोकेषु न पश्यामि महाप्रभो॥ ८०॥

ईश्वर उवाच—

इति स्तुतोंऽशुमता भगवान्कपिलात्मकः।
प्रसन्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं मेघगंभीरया गिरा॥ ८१॥

श्रीकपिल उवाच—

प्रसन्नोऽस्मि महाबाहो प्रश्रयेण दमेन च।
स्तुत्या च कृतयाऽहं ते वरं वरय सुव्रत॥ ८२॥

अंशुमानुवाच—

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्तव सांप्रतम्।
विशेषवरदोऽस्सि त्वं गतिमिच्छामि पैतृकीम्॥ ८३॥

उनके केश ऊर्ध्वगामी थे, नेत्र विषम थे, दृष्टि को नासाग्र भाग में लगाये हुये थे। हे देवि ! उस महामुनि को देखकर अंशुमान् ने प्रणाम किया ।। ७४ ।।

वहां उस महात्मा अंशुमान् ने सैंकड़ों बार प्रणाम किया। नम्रतापूर्वक विस्मय से व्याकुल मन हो यह वाक्य कहा ।। ७५ ।।

अंशुमान् ने कहा—

हे अनन्तमूर्त्ते ! महेश्वर आपको सैंकड़ों बार प्रणाम है। आपके हाथ, पैर, आंखें जो सर्वत्र विद्यमान हैं, उनको बार-बार प्रणाम है ।। ७६ ।।

आप ही यज्ञ हैं, आप ही यज्ञकर्ता हैं, आप ही यज्ञ के अधिपति हैं, ज्ञान में तत्पर भी आप ही हैं। परे से परे जो परमात्मा हैं, उनका भी आपके ही द्वारा निरूपण होता है, आप तीनों लोकों को वशीभूत किये हुये हैं ।। ७७ ।।

हे प्रभो ! आप बुद्धि, धन, मान एवं ज्ञान के देने वाले हैं। सत्य को करने वाले तथा ज्ञानियों के परम गुरु भी आप ही हैं ।। ७८ ।।

शिष्य की बुद्धिरूप से, गुरु की विशेष ज्ञान रूप से, महात्माओं की शक्तिरूप से, पिता और पालनकर्ता की शक्ति से आप ही सर्वत्र व्याप्त हैं ।। ७९ ।।

यह सब चर और अचर जगत् आप ही हो। हे महाप्रभो ! आपके अतिरिक्त तीनों लोकों में कुछ भी नहीं देख रहा हूँ ।। ८० ।।

ईश्वर ने कहा—

इस प्रकार अंशुमान् के द्वारा स्तुति करने पर भगवान् कपिलदेव ने प्रसन्न होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी में यह वाक्य कहा ।। ८१ ।।

श्री कपिलदेव ने कहा—

हे महाबाहो ! तुम्हारे विनय और मनोनिग्रह से मैं प्रसन्न हूँ। हे सुव्रत ! तुम मेरी स्तुति के बदले वर की याचना करो ।। ८२ ।।

अंशुमान् ने कहा—

इस समय आपके दर्शनों से मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हो गया हूँ। आप विशेष वर देते हो तो मैं अपने पितरों (पितृव्यों) की गति करना चाहता हूँ ।। ८३ ।।

कपिल उवाच—

पितृव्यास्ते महाभाग दुष्टा वै हतबुद्धयः ।
मच्छापवह्निना दग्धा गतास्तु यममंदिरम् ॥ ८४ ॥

पितामहस्य ते राज्ञो यज्ञीयोऽश्वो महानयम् ।
एनं गृहीत्वा शीघ्रं त्वं यज्ञं कुरु महोत्सवम् ॥ ८५ ॥

अंशुमानुवाच—

दुरात्मनः पितृव्या मे दग्धास्त्वच्छापवह्निना ।
तेषां सद्गतिमिच्छामि प्रसन्नोऽसि यतो मम ॥ ८६ ॥

कपिल उवाच—

भक्त्या तव महाभाग गतिं वच्मि दुरात्मनाम् ।
गंगाख्यं परमं तेजः श्री विष्णोः परमात्मनः ॥ ८७ ॥

आगमिष्यति केनापि भक्त्यानीतं तदा त्विमे ।
गतिं प्राप्स्यंति परमां पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ ८८ ॥

तद्गच्छ स्वगृहे तूर्णं यज्ञं कारय सुव्रत ।
यतस्व गंगानयनमस्मिन्देशे हि मुक्तये ॥ ८९ ॥

ईश्वर उवाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्यासौ दयानिधिम् ।
ययौ नीत्वा हयं देवि पितामहपुरे ततः ॥ ९० ॥

आगतं तु ततो दृष्ट्वा सर्वे पौरा महोत्सवाः ।
अनुजग्मू राजमार्गे वदंतो जयशब्दकान् ॥ ९१ ॥

श्रुत्वागमं तु पौत्रस्य सगरो हृष्टमानसः ।
दुरात्मनां तु पुत्राणां वधेन न हि दुःखितः ॥ ९२ ॥

प्रहर्षं परमं लेभे दृष्ट्वा यज्ञीयघोटकम् ।
तं प्रपूज्य च पौत्रं वै तथा स्वागतभाषणैः ॥ ९३ ॥

कपिल ने कहा—

हे महाभाग ! तुम्हारे पितृव्य दुष्ट और मन्दबुद्धि के थे । मेरे शाप की अग्नि से भस्म होकर वे यमपुर को चले गये हैं ॥ ८४ ॥

अपने पितामह (दादा) राजा सगर के यज्ञ का यह महान् अश्व ले जाकर, इसे ग्रहण कर तुम शीघ्र यज्ञ रूप महोत्सव को करो ॥ ८५ ॥

अंशुमान् ने कहा—

दुरात्मा मेरे पितृव्य आपके शाप की अग्नि से भस्म हो गये हैं । यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं उनकी सद्गति की इच्छा करता हूँ ॥ ८६ ॥

कपिल ने कहा—

हे महाभाग ! आपकी भक्ति से मैं उन दुरात्माओं की सद्गति का उपाय कहता हूँ । परमात्मा श्री विष्णु का गंगा नामक परम तेज ॥ ८७ ॥

यहां आवे या कोई भी भक्त भक्ति से इसे यहां लावे, तो उनको दुर्लभ पुनर्जन्म रहित परम गति प्राप्त होगी ॥ ८८ ॥

हे सुव्रत ! इसलिए शीघ्र घर जाओ, यज्ञ सम्पन्न करवाओ और अपने पितृव्यों की मुक्ति के लिए इस देश में गंगा को लाने का यत्न करो ॥ ८९ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे देवि ! इस प्रकार कपिल मुनि के वचनों को सुनकर उस दयानिधि अंशुमान् ने उन्हें प्रणाम कर, तदनन्तर घोड़े को लेकर वह अपने पितामह (सगर) के नगर में गया ॥ ९० ॥

तदनन्तर उस अंशुमान् को देखकर नगर के सभी निवासियों ने महोत्सवों का आयोजन किया । जय शब्दों का उच्चारण करते हुए वे राजमार्ग में उनके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ९१ ॥

अपने पौत्र (नाती) का आगमन सुनकर राजा सगर मन में बड़े प्रसन्न हुए । दुरात्मा पुत्रों के मरण को सुनकर उन्हें लेश भी दुःख नहीं हुआ ॥ ९२ ॥

यज्ञ के घोड़े को देखकर राजा सगर को परम हर्ष प्राप्त हुआ । उस घोड़े की पूजा करके राजा सगर ने अपने आशीर्वादात्मक वचनों से अपने पौत्र अंशुमान् का स्वागत किया ॥ ९३ ॥

अंके तं न्यस्य पौत्रं तु चुचुंब मुखपंकजम्।
पृष्टवान् सर्ववृत्तान्तं ज्ञातवांश्च तथेरितम्॥ ९४॥

अश्वमेधं महायज्ञं पौत्रेण सह भूमिपः।
कृतवान्सगरो राजा बहुसाहस्रदक्षिणम्॥ ९५॥

एतच्चान्यच्च भो देवि कृतवान्कर्म स्वर्गदम्।
इष्ट्वा च विपुलैर्यज्ञैर्देवं नारायणं विभुम्॥ ९६॥

जगाम तपसे देवि केदारेश्वरमंडले।
सरस्वतीसरित्तीरे तुंगेशशिवदक्षिणे॥ ९७॥

इति ते कथितं देवि सगराख्यानमुत्तमम्।
यच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या स्वर्गं गच्छति पार्वति॥ ९८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे सौरवंशानुकीर्त्तने
सगरोपाख्यानं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

त्रिंशोऽध्यायः

पितॄनुद्धर्तुं भूमौ गङ्गावतरणार्थं भगीरथस्य तपश्चरणम्

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि सगरस्यान्वयं शुभम्।
यत्र जाता महात्मानो राजानो भूरितेजसः॥ १॥

अंशुमान्नाम राजेन्द्रो बभूवारिप्रमर्द्दनः।
त्रिषु लोकेषु विख्यातबलो वै बलविक्रमः॥ २॥

पुत्रो बभूव तस्यापि दिलीप इति विश्रुतः।
तं वै राज्येऽभिषिच्यासौ संदेशं तं प्रपूज्य च॥
ययौ स तपसे राजा गंगोत्तरगिरौ शुभ॥ ३॥

अपने पौत्र अंशुमान् को गोद में बैठाकर राजा सगर ने उसके कमलरूपी मुख का चुम्बन किया। सगर ने उससे सब वृत्तान्त पूछा तथा उसके कहने पर सब वृत्तान्त को जाना ॥ ९४ ॥

पौत्र अंशुमान् को साथ लेकर भूमिपाल राजा सगर ने हजारों दक्षिणा वाले अश्वमेध नामक महायज्ञ को सम्पन्न किया ॥ ९५ ॥

हे देवि ! इस प्रकार और अन्य प्रकार से स्वर्ग को देने वाले कर्म को उस राजा सगर ने किया और अनेक यज्ञों के द्वारा देव नारायण भगवान् का यजन कर ॥ ९६ ॥

हे देवि ! वह राजा सगर केदारेश्वर मण्डल में तुंगेश नामक शिव के दक्षिण में, सरस्वती नदी के तट पर तपस्या करने के लिए चला गया ॥ ९७ ॥

हे देवि ! राजा सगर का उत्तम उपाख्यान इस प्रकार वर्णित किया गया। जिसे भक्तिपूर्वक सुनकर भी हे पार्वति ! मनुष्य स्वर्गलोक को जाते हैं ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सूर्यवंश-अनुकीर्तन में सगरोपाख्यान नामक उनतीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ३०

पितरों का उद्धार करने के लिये, भूमि पर गंगा को लाने के लिये भगीरथ द्वारा तपस्या करना

ईश्वर ने कहा—

हे देवि ! सुनो मैं सगर के सुन्दर वंश का वर्णन करूँगा। जिस वंश में महात्मा एवं परमतेजस्वी राजाओं ने जन्म लिया ॥ १ ॥

इन्द्र के समान अंशुमान् नाम का राजा शत्रुओं को नाश करने वाला हुआ। इसका बल एवं पराक्रम तीनों लोकों में विख्यात था ॥ २ ॥

उसका भी अति प्रशंसनीय दिलीप नामक पुत्र हुआ। दिलीप का राज्याभिषेक कर उसे उपदेश देकर और उसका सत्कार कर वह राजा अंशुमान् तप करने के लिए सुन्दर गंगोत्तर पर्वत पर चले गये ॥ ३ ॥

दिलीपोऽपि महाराजो महात्मा दृढ़विक्रमः।
त्रिषु लोकेषु विख्यातकीर्त्तिः सागरजात्मजः॥ ४॥

दिलीपोऽयं महाबाहुः खट्वांग इति विश्रुतः।
तेनापि गंगानयनं न कृतं गिरिकन्यके॥ ५॥

पुत्राय हि महातेजा बलारिसमतेजसे।
भगीरथाय देवेशि संदिश्य तपसे ययौ॥ ६॥

राजाऽयोध्यां महातेजाः पालयामास धर्म्मतः।
जित्वा स सकलां भूमिं पालयामास धर्मवित्॥ ७॥

श्रुत्वा पितामहगतिं लोकेभ्यः स भगीरथः।
चिंतयामास बहुशः स्मृत्वा तद्वै मुहुर्मुहुः॥ ८॥

कथं मे पितरः स्वर्गे गच्छेयुर्दग्धकिल्वषाः॥ ९॥

एतस्मिन्नंतरे राजा शयनीयोपरि स्थितः।
चिंतयानो वहुतरं सस्मार पितुरीरितम्॥ १०॥

संदेशं तं तदा स्मृत्वा हर्षसंहृष्टमानसः।
तपस्तप्तुं मनश्चक्रे गंगायै अमितद्युतिः॥ ११॥

गंगोत्तरमहाक्षेत्रे कैलासे पर्वतोत्तमे।
जितेंद्रियः शांतमना ययौ राजा भगीरथः॥ १२॥

पंचवर्षसहस्राणि पंचवर्षशतानि च।
तपस्तेपे महाबाहुर्जीर्णपर्णाशनो व्रती॥ १३॥

सगर के वंशज दृढ़ पराक्रमशाली, महात्मा, महाराज दिलीप ने भी तीनों लोकों में अपनी कीर्ति का विस्तार किया ॥ ४ ॥

महाबाहु यह दिलीप ही खट्वांग नाम से विख्यात हुआ। हे गिरिकन्यके ! वह भी गंगा को नहीं लाया ॥ ५ ॥

हे देवेशि ! तेजस्वी दिलीप इन्द्र के समान परम तेजवान् अपने पुत्र भगीरथ को राज्य एवं उपदेश देकर, तप करने के लिए चले गये ॥ ६ ॥

उस महातेजस्वी राजा ने अयोध्या राज्य का धर्म से पालन किया। धर्मज्ञ उसने सम्पूर्ण भूमि को विजय कर उसका पालन किया ॥ ७ ॥

वह भगीरथ लोगों से अपने पितामह (दादा) जनों की दुर्गति सुनकर उसे वारम्वार स्मरण कर बहुशः चिन्ता करने लगा ॥ ८ ॥

क्या उपाय होगा कि मेरे पितरों के पाप भस्म होकर वे स्वर्गलोक में गमन करें ॥ ९ ॥

इसी बीच शय्या पर लेटे हुये राजा भगीरथ पिता की आज्ञा का स्मरण करते हुए अतिशय चिन्ता करने लगे ॥ १० ॥

पिता की आज्ञा का स्मरण करके हर्षोल्लसित मन वाले अमोघ कान्ति वाले राजा ने गंगा को लाने के लिए मन में तपस्या करने का विचार किया ॥ ११ ॥

पर्वतों में उत्तम कैलाश पर्वत में गंगोत्तर महाक्षेत्र में शान्त मन हो, जितेन्द्रिय राजा भगीरथ तप करने चले गये ॥ १२ ॥

महाबाहु उस व्रती ने पांच हजार और पांच सौ वर्षों तक पुराने पत्तों का भोजन करते हुये तपस्या की ॥ १३ ॥

यस्य वै तप्यमानस्य वल्मीकमुपरि ध्रुवम् ।
जातं यदा महेशानि तस्मिन्देशे महीपतिः ।। १४ ।।

एकदा भगवान् देवो ववर्ष पाकशासनः ।
धाविता तज्जलेनास्य मृत्तिकाऽपि च पार्वति ।। १५ ।।

तस्य राज्ञो महेशानि जातं तेजोमयं वपुः ।
तेन वै वपुषा तस्य द्योतितं भुवनत्रयम् ।। १६ ।।

प्रत्यागमन्महातेजा ब्रह्मा कमलसंभवः ।
हंसयुक्तविमानेन[1] सरस्वत्या महेश्वरि ।। १७ ।।

प्रसन्नश्चाब्रवीद्वाक्यं राजानं तपसि स्थितम् ।
भक्त्या परमया युक्तं ब्रह्मा कमलसंभवः ।। १८ ।।

ब्रह्मोवाच—

भगीरथ महाबाहो वरं वरय सुव्रत ।
तुष्टोऽस्मि तपसा राजन् यद्यन्मनसि वर्त्तते ।। १९ ।।

भगीरथ उवाच—

वरं ददासि चेन्मह्यं वरयोग्योऽस्म्यहं यदि ।
गंगायाः संप्रदानं मे पितॄणां मुक्तये कुरु ।। २० ।।

ब्रह्मोवाच—

धन्योऽसि नरशार्दूल यस्येयं भक्तिरीदृशी ।
संतुष्टा यस्य पितरो धन्यः स जगतीतले ।। २१ ।।

जानामि त्वां महाभाग सुतरां पितृभक्तकम् ।
पितरोऽपि पितॄणां हि वर्त्तंते स्वर्गमन्दिरे ।। २२ ।।

तत्पितॄणां पिता देवो वासुदेवो जनार्द्दनः ।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं जगदेतच्चराचरम् ।। २३ ।।

---

१ "हंसयुक्त ··· कमलसंभवः" पाठ इसमें नहीं है ।

भगीरथ के तपस्या करते रहने पर निश्चय ही उस स्थान में हे महेशानि ! राजा के ऊपर तक बांबी बन गई ।। १४ ।।

एक समय भगवान् देव इन्द्र ने मेघवर्षा की और उस जल से हे पार्वति ! भगीरथ के ऊपर की मिट्टी भी धुल गई ।। १५ ।।

हे महेशानि ! उस राजा का शरीर कान्तिमान् हो गया और उसके उस तेजोमय शरीर से तीनों लोक द्योतित होने लगे ।। १६ ।।

हे महेश्वरि ! कमल में उत्पन्न तेज के पुञ्ज ब्रह्मा जी सरस्वती के साथ हंस-युक्त वाहन में बैठकर उस स्थान में आये ।। १७ ।।

और प्रसन्न होकर कमल में उत्पन्न ब्रह्मा जी ने परमभक्तियुक्त तपस्या में स्थित राजा भगीरथ को यह वचन कहा ।। १८ ।।

ब्रह्मा ने कहा—

हे सुव्रत ! भगीरथ ! महाबाहो ! तुम्हारी तपस्या से मैं सन्तुष्ट हूँ । हे राजन् जो आपके मन में हो उस वर को मांगो ।। १९ ।।

भगीरथ ने कहा—

यदि मैं वर प्राप्त करने योग्य हूँ और आप वर देना चाहते हैं तो मेरे पितरों की मुक्ति के लिए मुझे गंगा प्रदान करो ।। २० ।।

ब्रह्मा ने कहा—

हे नरशार्दूल ! आप धन्य हैं कि आपकी इस प्रकार की अनन्य भक्ति है । जिसके पितर सन्तुष्ट हैं, वही इस भूतल में धन्य है ।। २१ ।।

हे महाभाग ! मैं जानता हूँ कि आप निश्चित ही पितृ भक्त हैं । आपके पितरों के पितर भी स्वर्ग लोक में विराजित हैं ।। २२ ।।

उन पितरों के पिता साक्षात् विष्णु हैं, जिनमें चराचर यह संसार लिपटायमान रहता है ।। २३ ।।

यस्मिन्ब्रह्मादयो देवाः कालेऽन्तर्धानमाप्नुयुः।
जायंते च पुनस्तद्वत्सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः परात् ॥ २४ ॥

भगीरथ उवाच—

पितरः के हि विख्याता यत्पिता भगवानजः।
येषां वै पूजनाद्देवः संतुष्टो जायते हरिः॥ २५ ॥

मृता वै पुरुषा ये वै पितरः संभवंति हि।
तेषां च पितरः के वै कुत्र तद्वसतिस्थलम् ॥ २६ ॥

पितृणां पूजनाद्येषां मृतास्ते तृप्तिमाप्नुयुः।
कथमन्यभवे ब्रह्मंस्तृप्तिं यांति सुरोत्तम ॥ २७ ॥

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यस्य मे भाग्यमीदृशम्।
जगत्कर्त्ता भवान्यस्य पृच्छ्योऽस्ति सर्वविद्विभुः॥ २८ ॥

एतत्सर्वं समासेन कथयस्व मम प्रभो।
दासोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भक्तोऽस्मि पुत्रवत्तव ॥ २९ ॥

ब्रह्मोवाच—

साधु पृष्टं त्वया भूप भक्तोऽसि मम सागर।
सर्वं वै पितृमाहात्म्यं समासेन शृणुष्व मे ॥ ३० ॥

श्रवणादपि राजेंद्र महापातकिनो नराः।
मुच्येयुः सर्वदुःखैस्तु संसाराब्धि समुद्भवैः॥ ३१ ॥

श्लोकं श्लोकार्द्धमेकं वा यः पठेद् भक्तिसंयुतः।
पितृयागे महाभाग पितरस्तस्य सागर॥ ३२ ॥

प्राप्नुवंति परां भूप तृप्तिं वै शतवार्षिकीम्।
श्राद्धकाले[1] तु यः कश्चिच्छृणुयादपि भक्तितः॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने भगीरथोपाख्याने पितृकल्पो नाम त्रिंशोऽध्यायः।

---

१. "श्राद्धकाले···भक्तितः" पाठ इसमें नहीं है।

जिस (विष्णु) में सृष्टि के अन्तकाल में ब्रह्मा आदि देवता अन्तर्धान हो जाते हैं और पुनः सृष्टि के सृजन-काल में वे उन्हीं परम ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥

भगीरथ ने कहा—

वे कौन से मेरे प्रसिद्ध पितर हैं, जिनके पिता साक्षात् भगवान् विष्णु हैं, और जिनके पूजन मात्र से ही भगवान् सन्तुष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

जिन मनुष्यों की मृत्यु होती है वे ही पितर होते हैं, यह निश्चित है। उनके भी पितर कौन हैं और वे कहां निवास करते हैं ? ॥ २६ ॥

जिन पितरों के पूजन करने से वे मृत आत्मायें भी तृप्ति को प्राप्त होती हैं। सुरोत्तम हे ब्रह्मन् ! अन्य जन्म में वे किस प्रकार तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हो गया हूँ, क्योंकि मेरा भाग्य श्लाघनीय है, क्योंकि जगत्कर्ता, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, आप से प्रश्न पूछा जा सकता है ॥ २८ ॥

हे प्रभो ! इस सब वृत्तान्त को संक्षेप से मुझसे कहिए। मैं आपका दास हूँ, भक्त हूँ, पुत्रवत् हूँ, अनुगृहीत हूँ ॥ २९ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

सागर-कुलोत्पन्न हे राजन् ! तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारे प्रश्न उत्तम हैं। सम्पूर्ण पितरों का माहात्म्य संक्षेप से सुनो ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र ! इस माहात्म्य को सुनने से महापापी मनुष्य भी संसारजनित समस्त दुःखों से निवृत्त हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

एक श्लोक अथवा श्लोक का आधा भाग भी जो भक्ति युक्त होकर पढ़ता है, हे सागर ! महाभाग ! उनके पितर पितृयाग में···॥ ३२ ॥

सैकड़ों वर्षों तक परम तृप्ति प्राप्त करते हैं। हे भूप ! श्राद्धकाल में इसे भक्तिपूर्वक सुनने से भी यही फल प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्री श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंशानुकीर्तन
में भगीरथोपाख्यान में पितृकल्प नाम का तीसवां
अध्याय पूरा हुआ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

पितृकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच—

श्रृणु भूप प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे।
पितृसर्गमहं तावत्कथयामि तवानघ ॥ १ ॥

सृष्टिकाले पुरा देव देवादीनसृजंस्ततः।
भास्वरान्सप्तपुरुषान् दीपस्य कलिकाकृतीन् ॥ २ ॥

जातमात्रास्तु मामूचुः फलं देहि फलार्थिनः।
क्रुद्धोऽहं वचसा तेषां शपितास्ते मया ततः ॥ ३ ॥

मूढा भवत दुर्नीता[1] नष्टसंज्ञा यतो भृशम्।
जातमात्राः फलं ब्रूयुर्भवंतो बुद्धिदुर्बलाः ॥ ४ ॥

ततस्ते पुरुषा राजन्मोहिता ह्यभवंस्तदा।
ते पुनः प्रणता मह्यं शापात्संहृतचेतनाः ॥ ५ ॥

पुरुषाः ऊचुः—

बाल्यात्त्वं भगवन्देव नास्माभिर्नमितो भृशम्।
तत्क्षमस्व वयं सर्वे दासास्ते भगवन्प्रभो ॥ ६ ॥

इत्युक्तोऽहं तदा तैस्तु पुरुषानब्रुवं तथा।
अनुग्रहाय लोकानां भगीरथ महामते ॥ ७ ॥

प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः।
पुत्रांश्च परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ॥ ८ ॥

---

१. दुर्विनीता।

अध्याय ३१

पितृकल्प का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—

हे अनघ भूप ! सुनो ! स्वयम्भू विष्णु भगवान् को प्रणाम करके कहता हूँ कि मैं पितृसर्ग का वर्णन तुम से करूँगा ।। १ ।।

पहले सृष्टि के आदि में ईश्वर ने दीपशिखा की आकृति के सूर्य के समान सात देव पुरुषों का सृजन किया ।। २ ।।

उत्पन्न होते ही उन पुरुषों ने मुझ से कहा कि हम फल के इच्छुक हैं, हमें फल दीजिए । उनके वचन से क्रुद्ध होकर मैंने उन्हें शाप दे दिया ।। ३ ।।

हे दुर्विनीतो, मूर्खो ! तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो जाये । क्योंकि बुद्धि से बहुत दुर्बल तुम उत्पन्न होते ही फल मांगने लगे ।। ४ ।।

तदनन्तर हे राजन् ! उसी काल वे पुरुष मूढ़ हो गये । शाप से अपहृत चेतना वाले उन्होंने पुनः मुझे प्रणाम किया ।। ५ ।।

पुरुषों ने कहा—

हे देव ! भगवन् ! अज्ञान होने से ही हमने आपको प्रणाम नहीं किया । हे भगवन् ! प्रभो ! अब हमारे उस अपराध को क्षमा कीजिए । हम सब आपके सेवक हैं ।। ६ ।।

इस प्रकार उनके वचनों को सुनकर हे महामते ! भगीरथ ! लोकों के हित की कामना से मैंने उनसे कहा ।। ७ ।।

आपने व्यभिचार कर्म किया है, अतः उसका प्रायश्चित्त करो और तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति तब होगी जब अपने पुत्रों से पूछोगे ।। ८ ।।

इति श्रुत्वा मम वचो गतास्ते प्रष्टुमार्त्तवत् ।
तेषां च मानसाः पुत्रा जातास्ते त्रिदिवौकसः ।। ९ ।।

पप्रच्छुस्तांस्तदा देवाः पुत्राः पौत्रा इति भृशम् ।
देवास्तांस्तु महाबाहो शशंसुश्च भगीरथ ।। १० ।।

प्रायश्चित्तानि बहुशो वाङ्मनःकर्मभिस्तथा ।
शंसंति कुशला नित्यं तद्वै कुरुत सांप्रतम् ।। ११ ।।

इति श्रुत्वा वचस्तेषां ज्ञातज्ञाना महौजसः ।
गताभ्यां पुत्र पुत्रेति प्रययुर्ब्रह्मवादिनः ।। १२ ।।

अभिसंशयिता देवास्तेन वाक्येन वै भृशम् ।
मामागतास्तदा तूर्णं संशयच्छेदनाय ते ।। १३ ।।

मामूचुस्ते महाभाग कथं पुत्राः परस्परम् ।
भगवन्निति ते सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः ।। १४ ।।

अवोचं च तदा तान्वै यूयं वै ब्रह्मवादिनः ।
शरीराणां च कर्त्तारस्तेषां चैव भविष्यथ ।। १५ ।।

ज्ञानस्य च प्रदातारः पितरो वो न संशयः ।
अन्योऽन्यं पितरो यूयं भविष्यथ महाप्रभाः ।। १६ ।।

वरं ब्रूत महाभागाः कश्च कामः परो हि वः ।
इत्युक्तास्ते मया भूप मामूचुर्विस्मयान्विताः ।। १७ ।।

वृत्ति देहि महाभाग कथं नो भगवन् स्थितिः ।
मयोक्तं तांस्ततो भूप पितरो वो न संशयः ।। १८ ।।

इस प्रकार मेरे वचनों को सुनकर दुःखी हुए वे प्रायश्चित करने गये और उनके मानस पुत्र देवता हुए ॥ ९ ॥

तब वे पुत्र और पौत्र देवता उनसे पुनः पुनः पूछने लगे। हे महाबाहो ! भगीरथ ! देवता लोग उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥

वाणी-मन और कर्म के द्वारा होने वाले कुशल अनेक प्रायश्चित्तों का वर्णन किया और इन्हीं का इस समय तुम नित्य आचरण करो ॥ ११ ॥

इस प्रकार उनके वचन सुनकर वे महातेजस्वी पुरुष ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी होकर, पुत्र ! पुत्र ! कहकर चले गये ॥ १२ ॥

उनके वाक्य से देवता बड़े संशय में पड़ गये और वे अपने सन्देहच्छेदन के लिए तत्काल मेरे पास आये ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! हे महाभाग ! हम आपस में पुत्र कैसे हैं, इस प्रकार आश्चर्यान्वित हुए उन्होंने मेरे से कहा ॥ १४ ॥

तब मैंने उनसे कहा तुम सब वेदान्ती ब्रह्म को जानने वाले हो और शरीरों के कर्ता भी तुम ही भविष्य में होओगे ॥ १५ ॥

और तुम उनको ज्ञान के देने वाले हो, इसलिए तुम उनके पितर हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे महातेजस्वियो ! तुम परस्पर एक दूसरे के पितर होओगे ॥ १६ ॥

हे महाभाग्यशालियो ! तुम्हारी विशेष अभिलाषा क्या है, वर मांगो। हे भूप ! मेरे इस प्रकार कहने पर आश्चर्यान्वित होकर उन्होंने मेरे से कहा ॥ १७ ॥

हे महाभाग ! हमें आजीविका दीजिए। बिना आजीविका के हमारी स्थिति कैसे हो सकती है ? हे राजन् ! तब मैंने उनसे कहा कि वे ही सब निःसन्देह आपके पितर हैं ॥ १८ ॥

ये श्राद्धे तु पितॄणां हि करिष्यंति क्रियां हि वः ।
राक्षसा दानवा नागास्तेषां प्राप्स्यंति नो फलम् ।। १९ ।।

श्राद्धैराप्यायिता यूयं सोममाप्य यथा भृशम् ।
युष्माभिः पितरः सोमो लोकमाप्याययिष्यति ।। २० ।।

श्राद्धानि पुष्टिकामा ये करिष्यंति नरोत्तमा ।
तेषामायुश्च पुत्रांश्च धनं चैव महत्तरम् ।। २१ ।।

दास्यथ प्रचुरं चैव परत्र च परां गतिम् ।
येषां वै पितरः स्वर्गे नरके चैव संस्थिताः ।। २२ ।।

सर्वत्र वर्त्तमानास्ते ये च जन्मसु संश्रिताः ।
तृप्तास्ते च भविष्यंति नरके स्वर्गिणश्च ये ।। २३ ।।

नामगोत्रे समुच्चार्य दद्यात्पिडान्विचक्षणः ।
ये चेह पितरः स्वर्गे इति मंत्रेण वै पृथक् ।। २४ ।।

आहूय वो महाभागा दद्याच्छ्राद्धं विचक्षणः ।
एवं मया महाभाग कथितं च महौजसाम् ।। २५ ।।

इति मद्वचनात्तेऽपि पितरो हृष्टमानसाः ।
पुत्राश्च पितरश्चैव वरं सर्वे परस्परम् ।। २६ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्त्तने भगीरथो-
पाख्याने पितृकल्पो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।

जो मनुष्य श्राद्ध में पितरों की क्रिया करेंगे, उनके फल को राक्षस-दानव और नाग प्राप्त नहीं कर सकेंगे ।। १९ ।।

सोम को सन्तुष्ट करके आप लोगों को श्राद्ध से सन्तुष्ट किया जायेगा। सोम तथा पितर तुम्हारे द्वारा संसार का कल्याण करेंगे ।। २० ।।

जो उत्तम मनुष्य पुष्टि की कामना से श्राद्ध का आचरण करते हैं, उनको आप इस लोक में महान् आयु, पुत्र और प्रभूत धन ।। २१ ।।

देंगे और अन्य लोक में परमगति प्रदान करेंगे। जिनके पितर स्वर्ग में तथा नरक में स्थित हों···।। २२ ।।

और चाहे जिस जन्म में भी हों, स्वर्ग तथा नरक में स्थित हों वे सर्वत्र ही तृप्त हो जायेंगे ।। २३ ।।

बुद्धिमान् पुरुष को नाम और गोत्र का उच्चारण करके पिंडदान करना चाहिए। जो पितर यहाँ हैं और स्वर्ग में हैं, इस मंत्र से पृथक्-पृथक् ।। २४ ।।

आह्वान करके, चतुर मनुष्य, हे महाभाग्यशालियो ! श्राद्ध करे। हे महाभाग ! इस प्रकार बड़े महनीय पितरों का मैंने वर्णन किया ।। २५ ।।

इस प्रकार मेरे वचनों को सुनकर वे पितर भी प्रसन्नचित्त हुए और वे सब परस्पर पुत्र और पितर हुए ।। २६ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में वंश-
अनुकीर्तन में भगीरथोपाख्यान में पितृकल्प
नाम का इकत्तीसवां अध्याय पूरा हुआ।

द्वात्रिंशत्तमोऽध्याय

पितॄणां संख्या तेषां निवासप्रदेशादीनां विस्तरेण वर्णनम्

भगीरथ उवाच—

कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिन् लोके च ते स्थिताः ।
एतत्सर्वं हि भगवन् कथयस्व मम प्रभो ।। १ ।।

प्राणिनां कर्म नियतं फलं भवति निश्चितम् ।
श्राद्धकर्म प्रकुर्वन्ति फलदं हि सदा नराः ।। २ ।।

अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ।
पितामहं च तस्यापि तेषु पिंडेषु सर्वदा ।। ३ ।।

श्राद्धानि यानि दत्तानि कथं गच्छन्ति तान् पितॄन् ।
निरयस्थाश्च स्वर्गस्थाः शक्ता दातुं कथं फलम् ।। ४ ।।

के वास्माकं नराणां हि कान् यजामो वयं पुनः ।
देवानां चैव पितरो वर्त्तन्त इति नः श्रुतम् ।। ५ ।।

यथादत्तं पितॄणां हि तारणायेह कथ्यते ।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि यदि भक्तेषु ते दया ।। ६ ।।

ब्रह्मोवाच—

साधु पृष्टं त्वया राजन् शृणु साम्प्रतमुच्यते ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। ७ ।।

मानसा ये समुत्पन्ना मत्तो राजन् भगीरथ ।
भ्रातरः सप्त नृपते तेषां वंशाः प्रतिष्ठिताः ।। ८ ।।

अध्याय ३२

पितरों की संख्या, उनके निवास स्थान आदि का विस्तृत वर्णन

भगीरथ बोला—

पितृगण कितने हैं और वे किस लोक में स्थित रहते हैं? हे भगवन्! प्रभो! यह सब आप मेरे से कहो ।। १ ।।

प्राणियों को कर्म के द्वारा नियत फल निश्चित प्राप्त होता है। मनुष्य हमेशा ही फल देने वाले श्राद्ध कर्म को करते हैं ।। २ ।।

पिता और उनके पिता (पितामह) तथा इनके पितामह (प्रपितामह) उन सब को नामोच्चारण करके सदा पिण्ड देने चाहियें ।। ३ ।।

श्राद्ध जो दिए जाते हैं, वे पितृगणों को किस प्रकार प्राप्त होते हैं? नरक में स्थित एवं स्वर्ग में स्थित वे पितृगण फल देने की शक्ति किस प्रकार रखते हैं? ।। ४ ।।

अथवा हम मनुष्यों के वे क्या हैं, हम किसके लिए यजन करें और हमने सुना है कि देवताओं के ही पितर होते हैं ।। ५ ।।

जो कुछ दान दिया जाता है वह पितरों के उद्धार के लिए कहा जाता है। यदि आपकी भक्तों पर दया है तो आप इसे विस्तार से बोलिए ।। ६ ।।

ब्रह्मा ने कहा—

हे राजन्! आपने इस समय उत्तम प्रश्न पूछा है, मैं कहता हूँ, तुम सुनो। जिसको सुनकर सब पापों से मुक्ति मिलती है, यहां इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। ७ ।।

हे राजन्! भगीरथ! मेरे से जो मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे, हे नृपते! उन सात भाइयों के सात प्रतिष्ठित वंश हुए ।। ८ ।।

अत्रिर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरंगिराः।
सनत्कुमार इत्येते मानसाः समुदीरिताः ॥ ९ ॥

सप्तैते जगतां श्रेष्ठास्ते वै पितृगणाः स्मताः।
चत्वारो मूर्त्तिमन्तो वै त्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥ १० ॥

लोकं सर्गं महाराज कथयामि समासतः।
नामानि धर्ममूर्त्तीनां परमाणां महौजसाम् ॥ ११ ॥

लोकाः सनातनतमास्तत्र भास्वरमूर्त्तयः।
पितॄंश्च तान् महाभाग देवाः सर्वे यजन्ति हि ॥ १२ ॥

एते वै योगविभ्रष्टाः पुनर्जाता महीतले।
युगानां दशसाहस्रे स्मृतिर्नो ब्रह्मवादिनः ॥ १३ ॥

स्मृत्वा भूयः सांख्योगं परमां गतिमाप्नुयुः।
योगिनां पितरो ह्येते योगिनां योगवर्द्धनाः ॥ १४ ॥

श्राद्धानि योगिनां तस्माद्देयं वै श्राद्धमुत्तमम्।
एष वै प्रथमः कल्पः सोमपानां मयेरितः ॥ १५ ॥

तेषां राजन् मानसी तु कन्या मेना व्यजायत।
या पत्नी वै हिमवतो यस्या मैनाकपुत्रकः ॥ १६ ॥

मैनाकस्य सुतः श्रीमान् क्रौञ्चो नाम महागिरिः।
तिस्रः कन्याः समुत्पन्ना मेनायाश्च गिरेर्नृप ॥ १७ ॥

अपर्णा चैकपर्णा च तथैकपाटला मता।
तपस्तेपुश्च ताः सर्वा जगत्संतापकारणम् ॥ १८ ॥

अत्रि, वशिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, सनत्कुमार ये सात मानस पुत्र हुये थे ।। ६ ।।

संसार में ये सात ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इनको ही पितृगण कहते हैं। उनमें चार मूर्तरूप और तीन अमूर्तरूप थे ।। १० ।।

हे महाराज ! लोक को एवं सर्ग को मैं संक्षेप में कहता हूँ। परम महा-तेजस्वी धर्ममूर्ति उनके नाम भी कहता हूँ ।। ११ ।।

वहां उनके लोक सनातन हैं, तथा उनके दीप्तिमान् स्वरूप हैं। हे महाभाग ! उन पितरों का सब देवता यजन करते हैं ।। १२ ।।

ये ही योगभ्रष्ट होकर भूमण्डल में पुनः उत्पन्न होते हैं। इनमें जो ब्रह्मवादी हैं उनको दस हजार वर्षों का स्मरण रहता है ।। १३ ।।

पुनः सांख्य-योग का स्मरण करके इन्हें परम गति का लाभ हुआ। ये ही योगियों के पितर और योगियों के योग बढ़ाने वाले हुए ।। १४ ।।

इसलिए योगियों को निश्चय से श्राद्ध दें, उनका उत्तम श्राद्ध करें। सोम-पान करने वालों के प्रथम कल्प का मैंने वर्णन किया है ।। १५ ।।

हे राजन् ! उनकी मेना नाम की मानसी कन्या उत्पन्न हुई। जो हिमालय की पत्नी हुई और जिसका मैनाक नाम का पुत्र हुआ ।। १६ ।।

मैनाक का पुत्र श्रीमान् क्रौंच नाम का विशाल पर्वत हुआ। हे नृप ! मेना के हिमालय से तीन कन्यायें उत्पन्न हुईं ।। १७ ।।

एक अपर्णा, दूसरी एकपर्णा और तीसरी का नाम एकपाटला हुआ। उन्होंने ऐसी तपस्या की कि उससे संसार संतप्त हो गया ।। १८ ।।

आहारमेकपर्णेन सैकपर्णा तदा स्मृता ।
पाटलायाः पुष्पमेकं समदादेकपाटला ।। १९ ।।

तत्रैका या निराहारा मेनका तां न्यषेधयत् ।
उमा इति समाख्याता देवी दुश्चरचारिणी ।। २० ।।

तपःकलेवराः सर्वा युक्ता योगबलेन हि ।
सर्वा वै ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्द्ध्वरेतसः ।। २१ ।।

उमा च चारुसर्वाङ्गी महादेवकुटुम्बिनी ।
महात्मनो देवलस्य सैकपर्णा कुटुम्बिनी ।। २२ ।।

जैगीषव्यस्य पत्नी तु नाम्नैकपाटला मता ।
इमे चापि महाभागे योगाचारे व्यवस्थिते ।। २३ ।।

तयोः पुत्रास्तथा जाता लोके सोमपदस्थिताः ।
पितरस्ते महीपाल देवास्तान्भावयन्ति हि ।। २४ ।।

अग्निष्वात्ता इति ख्याता महात्मानो महौजसः ।
तेषां वै मानसी कन्या नाम्ना छोदा प्रकीर्तिता ।। २५ ।।

यस्याः सरः समुत्पन्नमच्छोदं नाम तत्र वै ।
दृष्टास्तयाऽप्यपूर्वास्तु पितरस्ते भगीरथ ।। २६ ।।

अमूर्त्तानपि तान्भूप ददर्श कलिकाकृतीन् ।
तान्दृष्ट्वा सहसा छोदा व्रीडिता चाभवत्क्षणात् ।। २७ ।।

तेन दुःखेन सन्तप्ता वभूव वरवर्णिनी ।
वसूनां पितरं दृष्ट्वा सैकदा ह्यन्तरिक्षगम् ।। २८ ।।

एकपर्णा नाम की कन्या एक ही पत्ते का भोजन कर लेती थी इसलिए उसका नाम एकपर्णा हुआ। एकपाटला पाढल के केवल एक ही पुष्प का भक्षण करती थी इसलिए उसका नाम एकपाटला हुआ ॥ १९ ॥

उनमें एक जो निराहार थी, उसको मेनका ने ऐसा तप करने के लिए निषेध किया। ("उ" हे पुत्रि ! "मा" ऐसा तप मत कर)। यह उमा नाम से विख्यात हुई। देवि ने उग्र तप किया ॥ २० ॥

सबके शरीर तपस्या और योगबल से युक्त थे। वे सभी ब्रह्मवादिनी और सभी ब्रह्मचारिणी थीं ॥ २१ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरी उमा महादेव की गृहिणी हुई और वह एकपर्णा महात्मा देवल की पत्नी हुई ॥ २२ ॥

एकपाटला नाम की कन्या जैगीषव्य की पत्नी हुई। एकपर्णा और एकपाटला, ये दोनों भाग्यशालिनी योग की क्रियाओं से युक्त थीं ॥ २३ ॥

उनके पुत्र जगत् में सोमपद नाम से प्रसिद्ध हुए। हे महीपाल ! वही पितर हैं। देवता लोग इन्हीं का सत्कार करते हैं ॥ २४ ॥

ये महातमा अत्यन्त तेजस्वी थे और अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हुये। उनकी एक मानसी कन्या छोदा नाम से प्रसिद्ध हुई ॥ २५ ॥

इसी से एक सर (तालाब) उत्पन्न हुआ, जो अच्छोद नाम से वहाँ प्रसिद्ध हुआ। हे भगीरथ ! उसने भी तुम्हारे अपूर्व पितरों का अवलोकन किया था ॥ २६ ॥

हे राजन् ! कोई रूप न होने पर भी (छोदा ने) उनकी कलिकाकृति को देखा और सहसा उनको देखकर वह उसी क्षण लज्जित हो गई ॥ २७ ॥

वह वरवर्णिनी (छोदा) उस दुःख से सन्तप्त हो गई। उसने एक समय वसुओं के पितर को आकाश में जाते हुए देखकर···॥ २८ ॥

अमावसुमितिख्यातमद्रिकाप्सरसा युतम् ।
वव्रे तं पितरं देवि विमानस्थं यशस्विनम् ।। २९ ।।

व्यभिचारेण मनसा योगभ्रष्टा पपात ह ।
त्रीण्यपश्यद्विमानानि पतमानानि वै दिव: ।। ३० ।।

पितृँस्तांस्तु सुसूक्ष्माणि वह्नीन्वह्निष्विवाहितान् ।
त्रायध्वं पितरो वव्रे पतन्ती तानवाक्छिरा: ।। ३१ ।।

उक्ता तैस्तु महाराज मा भैषीरिति व्योमगा ।
प्रसादयामास तत: स्वपितृन्दीनया गिरा ।। ३२ ।।

पितरस्ते सुतामूचुर्योगभ्रष्टां भगीरथ ।
भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते ।। ३३ ।।

यैर्यथा क्रियते कर्म तत्फलं प्राप्यते पुन: ।
सद्य: फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ।। ३४ ।।

पुत्रि तस्माद्धि त्वमपि तपस: प्राप्यसे फलम् ।
इत्युक्ता तैर्महाभागा ध्यात्वा देवं जनार्दनम् ।। ३५ ।।

प्रसादं ते तथा चक्रु: पितरो ह्यनुकम्पया ।
भाविनं च तथा ज्ञात्वा तथोचुर्नरपुंगव ।। ३६ ।।

तस्यैव कन्यारत्नं हि वसोस्त्वं हि भविष्यसि ।
पुत्रौ द्वौ कीर्तिमंतौ वै नामत: शृणु तौ शिवे ।। ३७ ।।

एकं विचित्रवीर्यं वै तथा चित्रांगदं परम् ।
जनयित्वा तु तौ पुत्रौ पुनर्लोकानवाप्स्यसि ।। ३८ ।।

हे देवि ! विमान में स्थित परम यशस्वी, अप्सराओं से युक्त अमावसु नाम के पितर को देख कर वर मांगा ॥ २९ ॥

व्यभिचरित मन से योग भ्रष्ट होकर वह पतित हो गई और उसने आकाश से तीन विमानों को गिरता हुआ देखा ॥ ३० ॥

उनमें अग्नि के कण के समान सूक्ष्मरूप धारी पितर स्थित थे । नीचे की ओर सिर करके गिरती हुई छोदा ने उन पितरों से प्रार्थना की कि मेरी रक्षा करो ॥ ३१ ॥

डरो मत उनके द्वारा यह कहे जाने पर हे महाराज ! उस आकाशचारिणी ने अपने पितरों को नम्र वाणी से प्रसन्न किया ॥ ३२ ॥

हे भगीरथ ! वे पितर योगभ्रष्टा उस कन्या को बोले—'हे शुचिस्मिते ! अपने दोष से तेरा ऐश्वर्य भ्रष्ट हो गया है और तुम गिर रही हो ॥ ३३ ॥

जो जिस प्रकार के कर्म करते हैं, उनका फल वे अवश्य प्राप्त करते हैं । देवत्व को प्राप्त कर मनुष्य के कर्म सद्यः फलीभूत होते हैं ॥ ३४ ॥

इसलिए हे पुत्रि ! तुझे भी तपस्या का फल अवश्य प्राप्त होगा । उनके द्वारा यह कहने पर वह महाभाग्यशालिनी छोदा भगवान् जनार्दन का ध्यान करने लगी ॥ ३५ ॥

पितरों ने भी अनुकम्पा करके उसको अनुकूल प्रसाद वितरित किया । हे नरोत्तम ! भविष्य को जानकर ही उन्होंने ऐसा कहा ॥ ३६ ॥

तू भविष्य में उस वसु की ही कन्या होगी और तेरे कीर्तिशाली दो पुत्र होंगे । हे शिवे ! तुम उनके नाम सुनो ॥ ३७ ॥

एक का नाम विचित्रवीर्य तथा दूसरे का नाम चित्रांगद होगा । इन दो पुत्रों को जन्म देकर तुम पुनः अपने लोकों को प्राप्त होवोगी ॥ ३८ ॥

अष्टाविंशयुगे त्वं हि भवित्री मत्स्ययोनिजा।
पितृव्यतिक्रमेण त्वं जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम्॥
दासेयी तु पुनश्चैव नाम्ना सत्यवती तथा॥ ३९॥

ब्रह्मोवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तेषां पितॄणां सा तथाऽभवत्।
तस्यामेव समुत्पन्नाः सुता राज्ञो महात्मनः॥ ४०॥

वैभ्राजा नाम लोकास्ते दिवि भान्ति भगीरथ।
यत्र बर्हिषदो भूप तान्यजन्ति हि दानवाः॥ ४१॥

नागाः सर्पा राक्षसाश्च तथा गन्धर्वकिन्नराः।
सुपर्णाश्च तथैवान्ये भावयन्ति महाप्रभान्॥ ४२॥

एते[1] पुत्रा महात्मानः पुलस्त्यस्य प्रजापतेः।
महाभागाः समाख्यातास्तपोवीर्यसमन्विताः॥ ४३॥

तेषां च मानसी कन्या धीवरी[2] समुदाहृता।
तत्रैव द्वापरयुगे व्यासः सत्यवतीसुतः॥ ४४॥

शुकं नाम महात्मानमरण्यां जनयिष्यति।
एतस्यां पितृकन्यायां पञ्चापत्यानि भूपते॥ ४५॥

कृष्णं गौरं प्रभुं शङ्कुं कन्यां कृत्वीं तथैव च।
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु योगाचार्यान्भगीरथ॥ ४६॥

शुकोऽपि परधर्म्मज्ञो योगिनां प्रवरो मुनिः।
गमिष्यति गतिं तात पुनरावृत्तिदुर्ल्लभाम्॥ ४७॥

ते मूर्त्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्त्तिधरा मताः।
कामगेषु च लोकेषु वर्त्तन्ते नृपसत्तम॥ ४८॥

---

१. एते प्रजापतेः पुत्राः पुलस्त्यस्य महात्मनः। २. पीवरी।

अट्ठाईसवें युग में तुम ही मत्स्य योनि से उत्पन्न होवोगी। पितरों के व्यति-क्रम से तुम कुत्सित जन्म प्राप्त करोगी। और पुनः तुम दास की पुत्री होकर सत्यवती नाम से प्रसिद्ध होवोगी ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा बोले—

इस प्रकार पितरों के वचन सुनकर वह वैसी ही हो गई। उसमें ही महात्मा राजा के पुत्रों का जन्म हुआ ॥ ४० ॥

हे भगीरथ! विभ्राज नाम के वे लोक द्यु लोक में सुशोभित हो रहे हैं। हे राजन्! जहां वर्हिषद नाम के दानव उनका यजन करते हैं ॥ ४१ ॥

नाग, सर्प, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, सुपर्ण तथा अन्य वर्ग भी उन तेजस्वियों का पूजन करते हैं ॥ ४२ ॥

ये सब महात्मा प्रजापति पुलस्त्य के पुत्र हुये। ये महाभाग तपस्वी एवं विक्रमी थे, अतः महाभाग कहे गये ॥ ४३ ॥

उनकी एक धीवरी मानसी कन्या होगी। उसी से द्वापर युग में सत्यवती-पुत्र व्यास की उत्पत्ति होगी ॥ ४४ ॥

वह शुक नाम के महात्मा को वन में उत्पन्न करेगा। हे भूपते! इस पितृ कन्या से पांच सन्तानों का जन्म होगा ॥ ४५ ॥

कृष्ण, गौर, प्रभु, शङ्कु और कृत्वी नाम की कन्या, को वह उत्पन्न करेगी। हे भगीरथ! ये सब पुत्र योगाचार्य होंगे ॥ ४६ ॥

हे तात! परम धर्मज्ञ योगियों में श्रेष्ठ मुनि शुक भी उस परम गति को प्राप्त होंगे, जिससे पुनर्जन्म नहीं होगा ॥ ४७ ॥

धर्ममूर्ति को धारण करने वाले वे ही मूर्तरूप पितर माने गये हैं। हे श्रेष्ठ नृप! वे अपने उन लोकों में विद्यमान हैं, जहाँ इच्छानुसार गति होती है ॥ ४८ ॥

कुवला नाम पितरो वसिष्ठस्य सुता मताः ।
निरता दिवि देवेषु द्विजास्तान् भावयन्त्युत ॥ ४९ ॥

तेषां वै मानसी कन्या गौरीति समुदाहृता ।
एकश्रृंगी शुकस्यास्य भार्गवस्य कुटुम्बिनी ॥ ५० ॥

भगीरथ महाराज सा साध्यप्रीतिवर्द्धिनी ।
मरीचिगर्भास्ते लोकाः सत्पुत्राश्च व्यवस्थिताः ॥ ५१ ॥

एते चांगिरसः पुत्राः क्षत्रिया भावयन्ति तान् ।
तेषां च मानसी कन्या याऽच्छोदेति प्रकीर्तिता ॥ ५२ ॥

सा पत्नी विश्वमहतो राजर्षेर्विदितात्मनः ।
तत्पुत्राश्च भविष्यन्ति कर्द्दमस्य तथांशजाः ॥ ५३ :।

सुखधा नाम पितरः सर्वे ते पुलहात्मजाः ।
लोकेष्वद्यापि वर्त्तन्ते कामगेषु विहंगमाः ॥ ५४ ॥

तांस्तु वैश्या महाराज भावयन्ति शमिच्छवः ।
तेषां कन्या च विरजा मानसी समजायत ॥ ५५ ॥

नाहुषस्य ययातेः सा जननी ब्रह्मवादिनी ।
गणा एते त्रयः ख्याताः पितॄणां स्वर्गहेतवः ॥ ५६ ॥

चतुर्थं पितृगणं राजन् यथावच्च निगद्यते ।
स्वधायां च समुत्पन्नाः कवेः पुत्राश्च सोमपाः ॥ ५७ ॥

हिरण्यगर्भगर्भास्ते शूद्रैस्ते पूजिताः सदा ।
मानसा नाम ये लोकास्तत्र तिष्ठन्ति ते दिवि ॥ ५८ ॥

कुवला नाम के पितर वशिष्ठ के पुत्र माने गये हैं। वे स्वर्गलोक देवताओं में गिने जाते हैं। ब्राह्मण उनकी प्रतिष्ठा करते हैं ।। ४९ ।।

उनकी गौरी नाम की मानसी कन्या हुई। शुक की एकशृंगी नाम की कन्या हुई, जो भार्गव की पत्नी हुई ।। ५० ।।

हे महाराज ! भगीरथ ! वह साध्यों की प्रीति बढ़ाने वाली थी। उन साध्यों का जन्म मरीचि के गर्भ से हुआ और वे सत्पुत्र थे ।। ५१ ।।

ये सब अंगिरा के पुत्र हैं। क्षत्रिय इनको पूजते हैं। उनकी मानसी कन्या हुई, जो अच्छोदा नाम से प्रसिद्ध हुई ।। ५२ ।।

आत्मतत्व को जानने वाले विश्वमहत् राजर्षि की वह पत्नी हुई। कर्दम के अंश से उनके पुत्र होंगे ।। ५३ ।।

सभी वे सुखधा नाम के पितर पुलह ऋषि के पुत्र हैं। आकाश में गति करने वाले वे पितर इच्छानुसार लोकों में जाते हैं ।। ५४ ।।

हे महाराज ! कल्याण के इच्छुक वैश्य लोग उनकी पूजा करते हैं। उनकी एक मानसी कन्या बिरजा नाम की हुई ।। ५५ ।।

वह ब्रह्मवादिनी नहुष के पुत्र ययाति की माता थी। स्वर्ग के हेतु पितरों में ये तीन गण प्रसिद्ध हुये ।। ५६ ।।

और हे राजन् ! इसी प्रकार चतुर्थ पितृगण को कहते हैं। स्वधा में भृगु के सोमप नाम के पुत्र उत्पन्न हुये ।। ५७ ।।

वे हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुये। वे सर्वदा शूद्रों के द्वारा पूजित हुये। स्वर्ग स्थित मानस नाम के लोकों में वे स्थित रहते हैं ।। ५८ ।।

तेषां बभूव नृपते मानसी नर्मदा सुता ।
पुनाति या त्रिभुवनं दक्षिणापथगामिनी ॥ ५९ ॥

युणे युगे मनुस्तात प्रावर्त्तयति बुद्धिमान् ।
श्राद्धानि यस्य तुष्ट्यर्थं श्राद्धदेवस्य वै प्रभो ॥ ६० ॥

एते चान्ये च बहवः पितृसर्ग्गाः प्रकीर्तिताः ।
तद्रूपं रौप्यवर्णं यत्तत्पात्रं राजतं तथा ॥ ६१ ॥

सोमस्याप्यायनं वह्वेस्तथा वैवस्वतस्य हि ।
कृत्वा विप्रमुखे राजन् संतुष्टाः पितृदेवताः ॥ ६२ ॥

संचरन्ति महात्मानस्ततः पूज्यतमाः स्मृताः ।
अविद्यं वा सविद्यं वाऽवेहि विष्णुं सनातनम् ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा यो ब्राह्मणं देवं प्रणामं न करोति वै ।
पितरस्तस्य नरके स्वर्गस्थाश्च पतन्ति हि ॥ ६४ ॥

येन केनाप्युपायेन ब्राह्मणं तोषयेद् बुधः ।
ब्राह्मणा यस्य सन्तुष्टाः सन्तुष्टास्तस्य देवताः ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणा यस्य राजर्षे विषये दुःखिताः स्थिताः ।
तस्य राज्यं कुलं सर्वं नश्यते नरपुंगव ॥ ६६ ॥

दावाग्निः शमनीयोऽस्ति वज्रपातादिकं तथा ।
न ब्राह्मणभवः कोपस्तस्मात्तं कारयेन्न हि ॥ ६७ ॥

श्राद्धे यस्य महाभाग ब्राह्मणास्तोषिता भृशम् ।
देवा यक्षास्तथा नागाः संतुष्टाः पितरस्तथा ॥ ६८ ॥

हे नृपते ! उनकी नर्मदा नाम की मानसी कन्या हुई, जो दक्षिणापथ गामिनी होकर तीनों लोकों को पवित्र करती है ।। ५९ ।।

हे तात प्रभो ! बुद्धिमान् मनुष्य युग-युग में उस श्राद्ध देवता की तुष्टि के लिए श्राद्ध को प्रवृत्त करते हैं ।। ६० ।।

ये और अन्य बहुत से पितृसर्ग कहे गये हैं। उनका वर्ण चांदी के समान है। उनका श्राद्ध रजत-पात्र में किया जाता है ।। ६१ ।।

सोम, अग्नि तथा वैवस्वत की तुष्टि के लिए ब्राह्मण भोजन कराके हे राजन् ! पितृ देवता सन्तुष्ट होते हैं ।। ६२ ।।

महात्मा ये ब्राह्मण सर्वत्र विचरण करते हैं, इसलिए पूज्यतम माने गये हैं। ये विद्या से रहित हों अथवा विद्वान् हों, इन्हें सनातन विष्णु के रूप में मानना चाहिए ।। ६३ ।।

जो व्यक्ति ब्राह्मण देव को देखकर भी प्रणाम नहीं करता, उसके स्वर्ग स्थित भी पितर नरक में गिर जाते हैं ।। ६४ ।।

जिस किसी प्रकार से ब्राह्मण को सन्तुष्ट करना चाहिए। जिससे ब्राह्मण सन्तुष्ट हैं, उससे देवता भी सन्तुष्ट रहते हैं ।। ६५ ।।

हे नरश्रेष्ठ राजर्षे ! जिसके देश में ब्राह्मण दुःखी रहते हैं, उसका राज्य, कुल सब नष्ट हो जाता है ।। ६६ ।।

दावाग्नि तथा वज्रपात आदि तो शान्त किये जा सकते हैं, किन्तु ब्राह्मण में उत्पन्न क्रोध शान्त नहीं होता। इसलिए ब्राह्मण को प्रकुपित करना ही नहीं चाहिए ।। ६७ ।।

हे महाभाग ! जिसके श्राद्ध में ब्राह्मण सन्तुष्ट होते हैं, उससे देवता, यक्ष, नाग तथा पितर अति सन्तुष्ट होतें हैं ।। ६८ ।।

देवास्तृप्यन्ति विप्राणां तृप्तितः सुतरां प्रभो ।
तत्तृप्तितः पितृगणा ये ये चोक्ता मया तव ॥ ६९ ॥

ते वै पितृगणा राजंस्तत्पितॄंस्तर्पयन्ति हि ।
नरके ये स्थितास्तांस्तु पितृलोकं नयन्ति ते ॥ ७० ॥

स्वर्गेऽपि चाधिकां प्रीतिं कारयन्ति महीपते ।
तर्पयन्ति च संसारे भोजनाच्छादनादिभिः ॥ ७१ ॥

यस्य पुत्रादयः श्राद्धं प्रकुर्वन्ति यथा दिने ।
तस्मिन्दिने सुभोज्यं ते लभन्ते मनसेप्सितम् ॥ ७२ ॥

राजंस्तुष्टेषु पितृषु सन्तुष्टो जगदीश्वरः ।
तस्मिस्तुष्टे महेशानि त्रैलोक्ये दुर्लभं न हि ॥ ७३ ॥

आयुर्बलं यशो विद्यां परत्र च परां गतिम् ।
लभन्ते श्राद्धकर्तारस्तस्मात्तत्कार्यमेव हि ॥ ७४ ॥

चतुर्वर्गस्य मूलं हि ब्राह्मणाः संस्थिता भुवि ।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र ब्राह्मणान्पूजयस्व हि ॥ ७५ ॥

विप्रप्रकोपनिर्दग्धाः पितरस्ते भगीरथ ।
भूतवेतालरूपाश्च संचरन्ति महीतले ॥ ७६ ॥

सुसन्तुष्टेन मुनिना कपिलेन प्रदर्शितम् ।
पितृमुक्तिकरं सद्यो गङ्गाख्यं धाम चोत्तमम् ॥ ७७ ॥

आनयिष्यसि गंगां त्वं तद्बिले पितृमुक्तये ।
दृष्ट्वा तद्धाम परमं गमिष्यन्ति परांगतिम् ॥ ७८ ॥

हे प्रभो ! ब्राह्मणों की तृप्ति से देवता भी बहुत तृप्त होते हैं। मेरे द्वारा कथित जो जो पितृगण हैं, उनकी तृप्ति ब्राह्मणों की तृप्ति से ही होती है ॥ ६९ ॥

हे राजन् ! वे पितृगण उनके पितरों को तृप्त करते हैं। जो पितर नरक में स्थित हैं उनको भी पितृ लोक में ले जाते हैं ॥ ७० ॥

हे महीपते ! स्वर्ग में भी जो पितर स्थित हैं, उन्हें भी वे अतिशय प्रसन्न करते हैं और संसार में भोजन एवं वस्त्रों के द्वारा उन्हें तृप्त करते हैं ॥ ७१ ॥

जिनके पुत्र आदि जिस दिन श्राद्ध करते हैं, उस दिन में वे मन इच्छित सुन्दर भोज्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं ॥ ७२ ॥

हे राजन् ! पितरों के सन्तुष्ट होने पर भगवान् जगदीश्वर सन्तुष्ट होते हैं। हे महेश्वरि ! भगवान् के सन्तुष्ट होने पर तीनों लोकों में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥ ७३ ॥

श्राद्ध करने वाले आयु, वल, यश और विद्या प्राप्त करते हैं और मरने के बाद परमगति प्राप्त होती है। इसलिए श्राद्ध करना चाहिए ॥ ७४ ॥

चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल भूमि पर स्थित ब्राह्मण हैं। इसलिए हे राजन् ! तुम भी ब्राह्मणों की पूजा करो ॥ ७५ ॥

हे भगीरथ ! आपके पितर ब्राह्मण के क्रोध से भस्म हुये हैं और भूत-वेताल रूप धारण कर वे भूमण्डल में विचरण कर रहे हैं ॥ ७६ ॥

कपिल मुनि ने सन्तुष्ट होकर तत्काल पितरों को मुक्त करने वाले, गंगा नाम के उत्तम धाम को प्रदर्शित किया ॥ ७७ ॥

पृथिवी के गर्भ में स्थित उस कपिल आश्रम में पितरों की मुक्ति के लिए तुम गंगा को लाओगे। उस परम धाम गंगा जी के दर्शन करके पितर परम गति को प्राप्त होंगे ॥ ७८ ॥

गंगया न समं तीर्थं पावनं सर्वदेहिनाम् ।
यतोऽसौ वासुदेवस्य तनुरेव न संशयः ॥ ७९ ॥

महादेवस्य शिरसि वर्त्तते सरिदुत्तमा ।
संतोष्य तं महादेवं गंगामानय भूपते ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे पितृसर्गे वंशानुकीर्त्तने
भगीरथोपाख्याने गंगानयने द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणा भगीरथस्य पूर्वजन्मनो वृत्तस्य कथनम्

ईश्वर उवाच—
इत्युक्त्वा तं महाराजं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच प्रणतं वाक्यं प्रष्टुकामं भगीरथम् ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच—
विघ्नान्यपि भविष्यन्ति श्रीगंगानयने ध्रुवम् ।
प्रायः श्रेयस्सु कार्येषु भविष्यन्ति न संशयः ॥ २ ॥

महानुभाववशतः सर्वं सम्पाद्यते किल ॥ ३ ॥

त्वया राजन् पूर्वभवे विष्णोः श्रीशिवरूपिणः ।
आराधनं कृतं सम्यक् तेन ते भक्तिरीदृशी ॥ ४ ॥

हिमालयं नगं गच्छ भावि कार्य्यप्रवर्त्तने ॥ ५ ॥

सब प्राणियों के लिए गंगा के समान अन्य कोई पवित्र तीर्थ नहीं है। इसका कारण यह है कि वह गंगाजल भगवान् का शरीर ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ७९ ॥

वह उत्तम नदी गंगा महादेव के सिर में विद्यमान है। हे राजन्! महादेव को सन्तुष्ट करके गंगा जी को लाओ ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में पितृसर्ग में
वंश-अनुकीर्तन में भगीरथोपाख्यान में गंगा आनयन
प्रसङ्ग में बत्तीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ३३

ब्रह्मा द्वारा भगीरथ के पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहना

ईश्वर ने कहा—

इस प्रकार कहकर उस महाराज से लोकपितामह ब्रह्मा ने नम्र वाणी से प्रश्न पूछने के इच्छुक भगीरथ को कहा ॥ १ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

निश्चय ही गंगा जी को लाने में अनेक विघ्न भी होंगे, प्रायः श्रेयस्कर कार्यों में विघ्न होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २ ॥

महानुभावों के प्रभाव से अवश्य ही सभी कार्य सम्पादित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

हे राजन्! तुम्हारे द्वारा पूर्वजन्म में शिवरूपी विष्णु का पूजन किया गया था, उससे तुम्हारी भक्ति इस प्रकार की है ॥ ४ ॥

भविष्य के कार्य को प्रवर्तित करने के लिए तुम हिमालय पर्वत को जाओ ॥ ५ ॥

भगीरथ उवाच—

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यस्याग्रे त्वं महाप्रभुः ।
प्रष्टव्यमस्ति भगवंस्तद्ब्रूहि मम सर्वकृत् ।। ६ ।।

केन कर्मविपाकेन भवन्तो दर्शनं गताः ।
गङ्गाख्यं परमं धाम मत्कृते ह्यागमिष्यति ।। ७ ।।

इति मे संशयो ब्रह्मन् महानेव प्रवर्त्तते ।
कोऽहं भवान्तरे जातः कदारभ्य मया कृतम् ।। ८ ।।

ब्रह्मोवाच—

श्रृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं भक्तितस्त्वया ।
यस्येच्छया जगत्सर्वं जायते लीयते विभोः ।। ९ ।।

आदिदेवं महादेवं नत्वा नारायणात्मकम् ।
इदं संसारचक्रं वै माया तस्य महात्मनः ।। १० ।।

यथा स्वप्ने महाराज जायते यद्भवांतरम् ।
राजा भूत्वा पुनर्योगी बुद्ध्वा किंचिन्न दृश्यते ।। ११ ।।

तद्वदेव महाराज सर्वं भवति मायिकम् ।
न किंचिद्वर्तते भूप मायया रहितं जगत् ।। १२ ।।

स्ववृत्तान्तं पुरा[1] जातं श्रृणु सर्वं यथातथम् ।
येनेमां जन्मना भूप भूपतां त्वं गतः खलु ।। १३ ।।

त्वं[2] बभूव पुरा वैश्यो देवगुप्तः परंतपः ।
रेवातीरे महापुर्यां माहिष्मत्यां हि याम्यके ।। १४ ।।

धनधान्याभिरामे हि गेहे राजकुले तथा ।
तव पुत्रौ तदा जातौ द्वावेव सगरात्मज ।। १५ ।।

---

१. यथा । २. आसीस्त्वं ।

भगीरथ बोला—

मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ जिसके समक्ष आप महाप्रभु उपस्थित हैं। हे भगवन्! मुझे कुछ पूछना है। किए गये या करने योग्य मेरा सारा कार्य करने वाले, आप बतायें ॥ ६ ॥

किस कर्म के करने के परिणामस्वरूप मुझे आपके दर्शन मिले। क्या गंगा नाम का परम धाम मेरे ही कर्म करने से (भूमण्डल पर) आयेगा? ॥ ७ ॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मुझे बहुत बड़ा सन्देह होता है। मैं पहले जन्म में कौन था, मेरे द्वारा (भगवान् की आराधना) किस समय आरम्भ की गई थी ॥ ८ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

हे राजन्! आपके द्वारा भक्तिभाव से जो प्रश्न पूछा गया, मैं उसे बताऊँगा आप सुनो। जिस भगवान् की इच्छा से सम्पूर्ण जगत् लय को प्राप्त होता जाता है ॥ ९ ॥

नारायण स्वरूप उस आदिदेव महादेव को नमस्कार करके उस महात्मा की माया इस संसारचक्र को परिचालित कर रही है ॥ १० ॥

हे महाराज! जैसे स्वप्न में अन्य जन्म होता है। राजा होकर पुनः योगी होता है किन्तु जागने पर कुछ दिखाई नहीं देता ॥ ११ ॥

उस प्रकार से ही हे महाराज! सब मायिक होता है। हे भूप! माया से रहित जगत् में कोई वस्तु नहीं है ॥ १२ ॥

हे राजन्! तुम्हारा जो पूर्व वृत्तान्त है उसको यथावत् सुनो, जिससे इस जन्म में तुम्हें भूपति की उपाधि मिली है ॥ १३ ॥

तुम पूर्वजन्म में परमतपस्वी देवगुप्त नाम के वैश्य थे। रेवा नदी के तट पर दक्षिण दिशा की ओर माहिष्मती नगरी में···॥ १४ ॥

धन-धान्य से भरे हुये राजकुल के समान घर पर आपका जन्म हुआ था। हे सगरात्मज! उस समय तुम्हारे दो ही पुत्र उत्पन्न हुये थे ॥ १५ ॥

ज्येष्ठस्तु सोमगुप्तोऽभूत्कनीयान्धनगुप्तकः ।
तयोरेको बभूवाथ दुर्वृत्तो ज्ञानदुर्बलः ॥ १६ ॥

धनगुप्तेति यो नाम्ना कनीयान् मन्दबुद्धिमान्[1] ।
तवैव सविधे तेन धनं[2] सर्वं क्षयं गतम् ॥ १७ ॥

वेश्या द्यूतपणैः पानैः सर्वं सपादितं तु यत् ।
पुनस्त्वया हि कष्टेन धनं किंचित्सर्माजितम् ॥ १८ ॥

तदेव तव द्रव्यं हि सर्वं स्वमभवत्तदा ।
एकदा तेन दुष्टेन धनगुप्तेन भूपते ॥ १९ ॥

ततः प्रभातजातायां रजन्यां सागरर्षभ ।
न दृष्टं तद्धनं सर्वं मूर्च्छितोऽभूत्परंतप ॥ २० ॥

रुदितं च बहुतरं त्वया तत्र महामते ।
नष्टाजीवेन भवता ज्येष्ठायोक्तं महीपते ॥ २१ ॥

अयं दुष्टो मारणीयो येन सर्वे हि मारिताः ।
पुत्रः प्रियतरो वापि कुमार्गनिरतो भवेत् ॥ २२ ॥

न तस्य मारणे पापं कुबुद्धिर्न भविष्यति ।
इति श्रुत्वा वचो ज्येष्ठ उवाच क्षणमुत्तरम् ॥ २३ ॥

स्वबुद्ध्यैव मृतो यस्तु न मारयितुमर्हसि ।
अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ॥ २४ ॥

नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ।
शतपत्रांतसंलग्नवायुलोलाम्बुबिन्दुकः ॥ २५ ॥

---

१. तव चात्मजः । २. तीतं सर्वं धनक्षयम् ।

बड़े का नाम सोमगुप्त और छोटे का नाम धनगुप्त था। उनमें एक दुश्चरित्र तथा अज्ञानी हुआ ॥ १६ ॥

मन्दबुद्धि धनगुप्त नाम के कनिष्ठ पुत्र ने आपके सम्मुख ही सब धन नष्ट कर दिया था ॥ १७ ॥

जो संग्रहीत धन था वह सब उसने वेश्यावृत्ति, जुआ, मदिरापान से नष्ट कर दिया। पुनः आपने कष्ट से कुछ धन अर्जित किया ॥ १८ ॥

उस समय आपके द्वारा संचित वह धन ही सब कुछ था। हे भूपते ! एक समय उस दुष्ट धनगुप्त ने उस धन को नष्ट कर दिया ॥ १६ ॥

शत्रुओं को नष्ट करने वाले हे सगरवंशी श्रेष्ठ राजन् ! रात समाप्त होने पर, प्रभात होने पर उसने उस सब धन को नहीं देखा और वह मूर्च्छित हो गया ॥ २० ॥

हे महामतिमान् ! तुमने वहाँ बहुत रुदन किया। हे महीपते ! नष्ट आजी-विका वाले तुमने अपने ज्येष्ट पुत्र से कहा ॥ २१ ॥

यह दुष्ट मारने योग्य है, जिसके द्वारा सब मारे गये हैं। प्रियतम पुत्र भी यदि कुमार्ग निरत हो तो ॥ २२ ॥

उस कुबुद्धि को मारने पर उसका पाप नहीं होता। इस प्रकार के वचन सुनकर ज्येष्ठ पुत्र ने क्षण भर में उत्तर देते हुए कहा ॥ २३ ॥

जो अपनी बुद्धि से ही मर गया हो, उसको मारना ठीक नहीं है। शरीर अनित्य है और धन भी निश्चल नहीं है ॥ २४ ॥

मृत्यु हमेशा निकट रहती है, अतः धर्म का संग्रह करना चाहिए। जैसे कमल के पत्ते में पड़ा हुआ जलबिन्दु वायु से संचालित रहता है ॥ २५ ॥

तथेदं जीवितं तात न त्वं शोचितुमर्हसि।
विद्युल्लीला समद्योत चंचला कमला किल ॥ २६ ॥

नियतो यस्य नाशस्तु तस्य नाशे दरः कुतः।
विचार्य्यैवं पितः कार्य्यं कार्यं सर्वं सुबुद्धिना ॥ २७ ॥

क्षणनाशिनि संसारे जराशोकसमाकुले।
आधिव्याधिभयोद्विग्ने नानादुःखसुयंत्रिते ॥ २८ ॥

ममायमहमस्यास्मि बुद्धिरेतादृशी तु या।
बुद्ध्या तया महाभाग अंधीभूतं जगत्त्रयम् ॥ २९ ॥

तथैव मुह्यते जन्तुस्तथैव जायते पुनः।
इति निश्चित्य सुधिया बोद्धव्यं हि परात्परम् ॥ ३० ॥

भोगा मेघवितानस्थविद्युल्लेखेव चंचलाः।
आयुर्वै क्षीयते नित्यं पलैश्च घटिकादिभिः ॥ ३१ ॥

माता वदति पुत्रो मे वर्द्धिष्णुर्वर्त्तते ह्ययम्।
कालो वदति सर्वात्मा भक्ष्यं मे पचति ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

स्वपतो गच्छतो देव तिष्ठतो जाग्रतस्तथा।
छायामिषेण पुसंस्तु मृत्युर्धावति धावति[1] ॥ ३३ ॥

दृश्यंतेऽहो म्रियमाणा जायमानाः पुनस्तथा।
सायं यो दृश्यते तात प्रातर्नो दृश्यते तु सः ॥ ३४ ॥

प्रातर्यो दृश्यते जन्तुर्मध्याह्ने क्व प्रयाति सः।
दृष्ट्वा संसारवैचित्र्यं हा कथं जगदीश्वरम् ॥
न भजन्ति परात्मानं मूढ़ास्ते ज्ञानवर्जिताः ॥ ३५ ॥

---

१. धावतः।

हे तात ! उसी प्रकार यह जीवन है। आपको चिन्तित नहीं होना चाहिए। लक्ष्मी निश्चय ही बिजली की कान्ति के समान चंचल है ॥ २६ ॥

जिसका नाश अवश्यम्भावी है उसके नाश में अनुराग क्यों हो। हे पितः ! इस प्रकार उत्तम बुद्धि से विचार कर सब कार्य करने चाहिएं ॥ २७ ॥

क्षण में नाश होने वाला यह संसार जरा और शोक से आकुलित, आधि-व्याधि-भय से उद्विग्न और अनेक दुःखों से सुनियंत्रित है ॥ २८ ॥

मेरा यह है, इसका मैं हूँ इस प्रकार की जो बुद्धि है, हे महाभाग ! उस बुद्धि से तीनों लोक अन्धे हो रहे हैं ॥ २९ ॥

इसी प्रकार जीव मरता है और इसी प्रकार पुनः जन्म लेता है। इस प्रकार निश्चय करके विद्वानों के द्वारा परमात्मा का स्मरण किया जाता है ॥ ३० ॥

ये भोग मेघ के वितान में स्थित बिजली के समान चंचल हैं। आयु भी नित्य पल, घड़ी करके क्षीण होती जा रही है ॥ ३१ ॥

माता कहती है कि यह मेरा पुत्र वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। काल कहता है कि ईश्वर मेरे भोजन के लिए इसे निश्चित ही पका रहा है ॥ ३२ ॥

सोते हुये, जाते हुये, बैठते हुये, जागते हुए मनुष्यों में छाया रूप से मृत्यु दौड़ती रहती है ॥ ३३ ॥

अहो ! ये प्राणी मरते हुये तथा फिर जन्म लेते हुये दिखाई देते हैं। हे तात ! जो सायंकाल दिखाई देता है, वह पुनः प्रातःकाल दिखाई नहीं देता है ॥ ३४ ॥

जो जन्तु प्रातःकाल दिखाई देता है, वह मध्याह्न में कहीं चला जाता है। संसार की विचित्रता को देखकर भी हाय, जगदीश्वर भगवान् को ज्ञान रहित मन्दबुद्धि मनुष्य क्यों नहीं भजते ? ॥ ३५ ॥

ब्रह्मोवाच—

इति श्रुत्वेरितं तस्य विस्मयाविष्टमानसः ।
सोमगुप्तं महात्मानं पप्रच्छ नृपतिः पिता ॥ ३६ ॥

देवगुप्त उवाच—

सत्यं वद महाभाग पुत्ररूपेण मद्गृहे ।
देवो वा मुनिवर्य्यो वा धन्योऽहं पुत्रवांस्त्वया ॥ ३७ ॥

केन पुण्येन मे पुत्रो जातोऽसि भगवान्स्वयम् ।
केन वै कर्मणा दुष्टो जातो मम गृहे ह्ययम् ॥ ३८ ॥

इति मे संशयो देव महानेव मुनीश्वर ।
एतत्सर्वं हि भक्ताय वद मे पृच्छतेतराम् ॥ ३९ ॥

सोमगुप्त उवाच—

यत्पृष्टोऽहं त्वया तात तत्सर्वं कथयामि ते ।
अयं पुरा चन्द्रपुरे श्रेष्ठिनां प्रवरः पितः ॥ ४० ॥

धनवांश्च गुणी तात नानाभोगसमन्वितः ।
अभूत्सर्वस्य जगतः ख्यातो धनबलेन हि ॥ ४१ ॥

पूर्वं त्वया ऋणं नीतमस्मादेव महाश्रियः ।
अस्मात्त्वं दुर्बलो जातः कदाचित्कालसंगमे ॥ ४२ ॥

त्यक्ता त्वया वैश्यवृत्तिः क्षात्रधर्मरतोऽभवः ।
कदाचिदटता पृथ्व्यां गतं देशे हि पौंड्रके ॥ ४३ ॥

तस्य देशस्य यो राजा पुत्रेण रहितः स्थितः ।
तेन राज्ञापि पुत्रत्वे कल्पितस्त्वं तदा हि वै ॥ ४४ ॥

प्रजाश्च भाग्ययोगेन प्रीतिवंत्योऽखिलास्ततः ।
जातास्त्वय्येव हे तात कर्मणा[1] पूर्वजन्मना ॥ ४५ ॥

---

१. कर्मणः पूर्वजन्मनः ।

ब्रह्मा ने कहा—

हे राजन् ! पुत्र के द्वारा कथित इन वचनों को सुनकर आश्चर्यचकित हो पिता ने महात्मा सोमगुप्त को पूछा ॥ ३६ ॥

देवगुप्त ने कहा—

हे महाभाग ! सत्य बोलो, मेरे घर पर पुत्र रूप में देवता या मुनिवर्य्य तुम कौन हो, मैं धन्य हूँ, जो तुमसे पुत्रवान् हुआ हूँ ॥ ३७ ॥

किस पुण्य से स्वयं भगवान् तुम मेरे पुत्र हुये हो। और किस कर्म से यह दुष्ट मेरे घर में उत्पन्न हुआ है ॥ ३८ ॥

हे देव ! मुनीश्वर ! इससे मुझे बड़ा ही संशय हो रहा है। पूछे गये इस सब वृतान्त को मुझ भक्त के लिए कहो ॥ ३९ ॥

सोमगुप्त ने कहा—

हे तात ! जो आपके द्वारा मुझ से पूछा गया है, वह सब मैं आपसे कहता हूँ। हे पितः ! यह पूर्व जन्म में चन्द्रपुर में बहुत बड़ा सेठ था ॥ ४० ॥

हे तात ! नाना भोगों से समन्वित हो यह धनवान् और गुणवान् था। अपने धन और बल के कारण यह सम्पूर्ण जगत् में विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥

पहले आपने इस महाधनी से ऋण लिया था। इसी से कदाचित् समय बीतने पर आप दुर्बल हो गये ॥ ४२ ॥

आपने वैश्यवृत्ति का परित्याग कर दिया। आप छात्र धर्म में निरत हो गये थे। किसी समय आप पृथिवी में भ्रमण करते हुये पौण्ड्रक देश में चले गये ॥ ४३ ॥

उस देश का राजा सन्तान से रहित था। तब उस राजा ने भी आपको पुत्र के रूप में कल्पित किया ॥ ४४ ॥

भाग्य के योग से उसकी सारी प्रजा भी प्रेम करने लगी। हे तात ! आपके पूर्वजन्म के कर्मों के द्वारा यह संयोग बना ॥ ४५ ॥

राजापि जरया व्याप्तो ममार कतिचिद्दिनैः ।
सर्वाभिश्च प्रजाभिस्त्वमभिषिक्तो नृपासने ।। ४६ ।।

त्वया तत्रापि विधिना प्रजायाः पालनं कृतम् ।
काले बहुतिथे जाते अन्विष्यन्नृणवल्लभः ।। ४७ ।।

आगतस्तव सविधे त्वया नीतं तु यद्धनम् ।
तद्धनं याचयामास उत्तमर्णस्तव ह्ययम् ।। ४८ ।।

राज्यश्रिया प्रमत्तेन न दत्तं तद्धनं त्वया ।
भर्त्सितश्चैव बहुधा कोऽहं राजा महीपतिः ।। ४९ ।।

कस्त्वं दुःखी दरिद्रेण व्याप्तो धनविवर्जितः ।
गृहीतं च कदा लोका एतस्यर्णं मया हि वै ।। ५० ।।

इति श्रुत्वा वचो लोका राज्ञस्तव महामते ।
विस्मयाविष्टमनसो भर्त्सयामासुरेव तम् ।। ५१ ।।

विमनाश्च गतोऽरण्यं मर्तुं वै कृतनिश्चयः ।
कालेन निधनं प्राप त्वं चापि निधनं गतः ।। ५२ ।।

सोऽयं ते पुत्ररूपेण जातोऽत्र उत्तमर्णकः ।
गृहीत्वा स्वधनं तात मरिष्यति न संशयः ।। ५३ ।।

स्वस्यैव द्रविणं सर्वं पूर्वदत्तं महामते ।
गृहीतं कर्मणा तेन तव किं हारितं पितः ।। ५४ ।।

शोकं त्यज द्रविणजं शिवं भज परात्परम् ।
अहं चैव पुरा विप्रो ज्ञानवान्वेदपारगः ।। ५५ ।।

राजा भी वृद्ध थे। कुछ दिनों के अनन्तर वे मर गये। समस्त प्रजाओं ने आपको राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया ॥ ४६ ॥

आपने वहां भी विधिपूर्वक प्रजा का पालन किया। बहुत समय बीत जाने पर ऋणदाता खोज करता हुआ ॥ ४७ ॥

आपके निकट आया। आपने जो धन लिया था, उस धन को इस उत्तमर्ण ने तुम से मांगा ॥ ४८ ॥

राज्यलक्ष्मी से प्रमत्त हुए आपने वह धन नहीं दिया और उसे अनेक प्रकार से झिड़का। कहाँ मैं भूमि का स्वामी राजा हूँ··· ॥ ४९ ॥

और कहाँ तुम दुःख दरिद्रता से व्याप्त निर्धन हो। हे लोगो! मैंने किस समय इससे लिया ॥ ५० ॥

हे महामते! इस प्रकार लोगों ने जब आपके वचन सुने तब आश्चर्यचकित मन हो उसको ही भर्त्सित करने लगे ॥ ५१ ॥

वह मरने का निश्चय करके दुःखी होकर वन को गया। समय पाकर वह मृत्यु को प्राप्त हो गया और आपका भी निधन हो गया ॥ ५२ ॥

वही उत्तमर्ण आपके पुत्र रूप से यहाँ उत्पन्न हुआ है। हे तात! अपने धन को लेकर वह मरेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥

हे महामते! अपना ही पहिले दिया गया धन कर्म द्वारा उसने ग्रहण किया। है। हे पितः! आपका उसने क्या लिया? ॥ ५४ ॥

धन से उत्पन्न हुये शोक का आप त्याग करो, परमात्मा शिव को भजें। मैं पूर्व जन्म में वेदों का पारंगत परम ज्ञानी ब्राह्मण था ॥ ५५ ॥

षट्कर्मनिरतो ह्यासं धर्म्मनिष्ठस्तपोधनः ।
येन केनापि सन्तुष्टः समलोष्ठाश्मकांचनः ।। ५६ ।।

जिज्ञासुर्योगसिद्धेस्तु मुमुक्षुर्ब्रह्मतत्परः ।
ब्रह्मशर्म्मेति विख्यातो ह्यरावपि दयापरः ।। ५७ ।।

एकदा मम गेहे तु ह्यागतो नारदो मुनिः ।
प्राणायामप्रसक्तेन मया नो वंदनं कृतम् ।। ५८ ।।

नारदस्तु तदा क्रुद्धो गर्भवासं व्रजेति माम् ।
उवाच सहसा येन मदेन मां न भाषसे ।। ५९ ।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य वेपमानः कृताञ्जलिः ।
अहमाराधितवांश्च विनयैर्बहुभिर्युतः ।। ६० ।।

आराधितो मुनिः प्राह प्रणमन्तं पुनः पुनः ।
ममामोघेन शापेन गर्भवासो भविष्यति ।। ६१ ।।

परं तत्रापि ते ज्ञानं जन्मादीनां भविष्यति ।
तेन शापेन हे तात गर्भवासं गतो ह्ययम्[1] ।। ६२ ।।

अहं स्मरामि जन्मानि शतं तव निजस्य च ।
तस्मात्त्वमपि संसारमवेहि क्षणनाशिकम् ।। ६३ ।।

एतद्बुद्ध्या समालोच्य शोकं वै मा कृथा वृथा ।
इयं[2] माया भगवतः श्रीविष्णोः परमात्मनः ।। ६४ ।।

ब्रह्मोवाच—

इत्युक्तस्त्वं हि पुत्रेण ज्ञातसंसारवैभवः ।
त्यक्त्वा सर्वाणि कर्माणि श्रीविष्णुनिरतो गिरौ ।। ६५ ।।

---

१. ह्यहम् । २. "इयं माया ...... परमात्मनः" पाठ इसमें नहीं है ।

मैं षट्कर्मों में निरत रहने वाला धर्मनिष्ठ एवं परम तपस्वी था। जो कुछ भी मिल जावे, सब में सन्तोष करने वाला, सुवर्ण और मिट्टी को समान समझने वाला था ॥ ५६ ॥

योग सिद्धि को जानने का इच्छुक, मोक्षार्थी, ब्रह्म के विचार में तत्पर रहने वाला था। शत्रुओं के ऊपर भी दया करने वाला मैं ब्रह्मशर्मा नाम से विख्यात था ॥ ५७ ॥

एक समय मेरे घर में नारद मुनि आये। प्राणायाम में लगे मैंने उनको प्रणाम नहीं किया ॥ ५८ ॥

इससे नारद जी ने क्रुद्ध होकर सहसा मुझ से कहा—जिस मद के कारण तुमने मुझ से वार्ता नहीं की उससे तुम गर्भवास करो अर्थात् पुनर्जन्म धारण करो ॥ ५९ ॥

इस प्रकार उनके वचन सुनकर, हाथ जोड़कर कांपते हुये मैंने उनकी बहुत विनय-भावना से आराधना की ॥ ६० ॥

आराधना करने पर, मुनि ने, पुनः-पुनः प्रणाम करने वाले मुझ से कहा कि मेरे अमोघ शाप से आपको गर्भ में वास करना ही होगा ॥ ६१ ॥

किन्तु वहां भी आपको पूर्व जन्मों का ज्ञान रहेगा। हे तात! उस शाप के कारण यह जन्म धारण करना पड़ा है ॥ ६२ ॥

मैं, आपके और अपने सौ जन्मों का स्मरण करता हूँ। इसलिए आप भी संसार को क्षणभंगुर जानो ॥ ६३ ॥

इसको बुद्धि से विचार कर शोक मत कीजिए। शोक करना वृथा है। यह तो परमात्मा भगवान् विष्णु की माया है ॥ ६४ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

इस प्रकार संसार चक्र का ज्ञान पुत्र के द्वारा दिये जाने पर तुम सब कर्मों को त्याग कर पर्वत के ऊपर जाकर विष्णु में निरत हो गये ॥ ६५ ॥

भवान् सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य जगदात्मनि ।
जातो ब्रह्मविदां श्रेष्ठस्तुल्यमानापमानकः ।। ६६ ।।

काले पञ्चत्वमापन्नो मम लोके स्थितो भवान् ।
बहुकालं हि तत्रापि भुक्त्वा भोगान्महीपते ।। ६७ ।।

जातोऽसि प्रवरे वंशे सूर्यस्य परमात्मनः ।
पितृभक्तिरतो विष्णौ शिवे च समतां गतः ।। ६८ ।।

धन्योऽसि तेन राजेन्द्र कर्मणा सुकृतेन हि ।
स्वस्त्यस्तु ते महाराज गच्छामि निजलोककम् ।। ६९ ।।

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा ययौ हसेन वै दिवि ।
सोऽपि राजा महाबाहुराश्चर्यं परमं गतः ।। ७० ।।

इदं परममाख्यानं राज्ञो वै ब्रह्मणस्तथा ।
संवादं शृणुते यस्तु पठते च महामतिः ।। ७१ ।।

समाहितमना देवि स प्राप्नोति परं पदम् ।
यत्र गत्वा न शोच्योऽस्ति पुनः पर्वतनंदिनि ।। ७२ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वंशानुकीर्तने भागीरथो-
पाख्याने गंगानयने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

तपसा सन्तुष्टस्य शिवस्य भगीरथेन साक्षात्करणम्

ईश्वर उवाच—

भगीरथो महाबाहुः श्रुत्वा तद्ब्रह्मणेरितम ।
पूर्वस्य जन्मनो वृत्तं यथावन्मम बल्लभे ।। १ ।।

ययौ कैलासनिलये यत्राहं समवस्थितः ।
मयाऽपि भूतवेतालाः प्रेषिता यत्र वै नृपः ।। २ ।।

अपने सब कर्मों को परमेश्वर में अर्पित कर मान एवं अपमान में समान दृष्टि से तुम वेदान्तवादियों में श्रेष्ठ हो गये ।। ६६ ।।

कालान्तर में मृत्यु होने पर आप मेरे लोक में स्थित हुये । हे राजन् ! वहाँ भी बहुत समय तक अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग कर···।। ६७ ।।

परमात्मा सूर्य के उत्तम वंश में आप उत्पन्न हुये हो । पितृभक्ति में निरत रहते हुये विष्णु और शिव में तुम्हारी समान भक्ति है ।। ६८ ।।

हे राजेन्द्र ! उस पुण्य रूप कर्म से तुम धन्य हो । हे राजन् ! आपका कल्याण हो । मैं अपने लोक को जाता हूँ ।। ६९ ।।

ईश्वर ने कहा—

यह कहकर भगवान् ब्रह्मा हंस वाहन से स्वर्ग लोक को चले गये । महाबाहु वह राजा भी परम आश्चर्य को प्राप्त हुआ ।। ७० ।।

राजा भगीरथ और ब्रह्मा जी के परम संवाद को जो मतिमान् व्यक्ति सुनता है और पढता है···।। ७१ ।।

हे देवि ! भगवान् के प्रति समाहित मन वाला वह मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है । हे पर्वतनन्दिनि ! वहां जाकर पुनः सांसारिक दुःखों की चिन्ता नहीं रहती ।। ७२ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में वंश
अनुकीर्तन में भगीरथोपाख्यान में गंगा आनयन प्रसङ्ग
में तैंतीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ३४

तपस्या से सन्तुष्ट शिव का भगीरथ को दर्शन देना

ईश्वर ने कहा—

हे मेरी प्रिये ! बड़ी भुजाओं वाले भगीरथ ब्रह्मा के द्वारा कहे गये अपने पूर्व जन्म के वृतान्त को यथावत् सुनकर···।। १ ।।

मेरे निवास स्थान कैलाश पर्वत पर गये । जहाँ राजा उपस्थित थे, मैंने भी वहाँ अनेक भूत-बेतालों को भेजा ।। २ ।।

श्रीमुखे पर्वते रम्ये नानाधातुविचित्रिते ।
स्थित्वा तत्कन्दरायां हि चकार परमं तपः ॥ ३ ॥

जजाप परमां विद्यां पंचवर्णां सुसिद्धिदाम् ।
प्रमथास्तेऽपि देवेशि नानारूपा महौजसः ॥ ४ ॥

तपतस्तस्य राज्ञो वै विघ्नं कर्तुं समागताः ।
भीषयामासुरपि तं नानारूपैर्महेश्वरि ॥ ५ ॥

कश्चिन्मार्जाररूपेण गतस्तत्र नृपान्तिके ।
जजाप[1] परमांविद्यां पञ्चवर्णां सुसिद्धिदाम् ॥ ६ ॥

प्रमथास्तेऽपि देवेशि नानारूपा महौजसः ।
जहास तं नृपं दृष्ट्वा किं करोषि नृपेश्वर ॥ ७ ॥

पश्य मे नेत्रयो रूपं स्वस्यापि परमं नृप ।
सुन्दरे कस्य वै नेत्रे दंताः कस्य शुभास्तथा ॥ ८ ॥

कश्चिद् वै व्याघ्ररूपेण हुंकृतिं च चकार ह ।
केचित्कोलाहलं चक्रुश्छिन्धि च्छिन्धीति वै पुनः ॥ ९ ॥

इति वै बहुधा कृत्वा अशक्तास्तद्विभीषणे ।
आगता मम सामीप्ये सर्वे हतपराक्रमाः ॥ १० ॥

अहं च तेन तपसा सन्तुष्टो जगदम्बिके ।
गतस्त्वया विस्मृतं किं त्वया सह तदन्तिके ॥ ११ ॥

तत्र गत्वा च हे देवि मयोक्तं हि महात्मने ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे राजन् शिवोऽस्मि वद मे वरम् ॥ १२ ॥

यत्ते मनसि नृपते वर्त्तते यत्कृते नृप ।
अदेयमपि दास्यामि वरं त्र्यैलोक्यदुर्ल्लभम् ॥ १३ ॥

इति श्रुत्वा वचो देवि प्रणनाम स भूमिपः ॥ १४ ॥

---

१. "जजाप ····· महौजसः" पाठ इसमें नहीं है ।

नाना धातुओं से चित्रित, सुरम्य श्रीमुख पर्वत की कन्दरा में स्थित होकर उस राजा ने परम तप का आचरण किया ॥ ३ ॥

परम सिद्धि को देने वाली पंचवर्णात्मिका विद्या का जप किया । हे देवेशि ! बड़े पराक्रमी नाना रूप वाले हमारे पार्षद भी…॥ ४ ॥

उस राजा की तपस्या में विघ्न करने के लिए उद्यत हुए । हे महेश्वरि ! नाना रूपों से वे राजा को भयभीत करने लगे ॥ ५ ॥

कोई गण विडाल के रूप से वहां राजा के पास गया । परन्तु वह राजा पंचवर्णात्मिका उत्तम सिद्धि देने वाली परम विद्या का जप करता रहा ॥ ६ ॥

हे देवेशि ! वे महातेजस्वी शिव गण भी अनेक रूपों को धारण करके आये । उस राजा को देखकर एक हंसा और कहा कि हे राजन् ! आप यह क्या कर रहे हैं ॥ ७ ॥

हे राजन् ! मेरे तथा अपने नेत्रों के परम रूप को देखो, किसकी आंखे सुन्दर हैं और किसके दांत सुन्दर हैं ॥ ८ ॥

कोई गण व्याघ्र रूप से गर्जना करने लगे । कोई काटो-काटो इन शब्दों से कोलाहल करने लगे ॥ ६ ॥

इस प्रकार बहुत से भय देने वाली प्रक्रियाओं को करके भी जब वे राजा को भयभीत करने से सफल न हो सके । तब हताश पराक्रम वाले सब गण मेरे समीप आये ॥ १० ॥

उसकी तपस्या से मैं सन्तुष्ट हो गया और हे जगदम्बिके ! क्या तुम भूल गई हो, तुम्हारे साथ उनके निकट मैं गया था ॥ ११ ॥

है देवि ! वहाँ जाकर मैंने उस महात्मा से कहा—'हे राजन् ! उठो । मैं शिव हूँ । मुझ से वर मांगो' ॥ १२ ॥

हे नृपते ! जो तुम्हारे मन में है और जिसके लिए तुमने इतना बड़ा उग्र तप किया है । तीनों लोकों में दुर्लभ अदेय वर भी मैं तुमको दूंगा ॥ १३ ॥

यह वचन सुनकर हे देवि ! उस राजा ने मुझे प्रणाम किया ॥ १४ ॥

भगीरथ उवाच—

अद्य मे निष्कृतिः प्राप्ता शिवेदानीं स्वजन्मनः ।
यस्य त्वं सर्वरहितः प्रत्यक्षं भाषसे प्रभो ॥ १५ ॥

पुरा ब्रह्मा च विष्णुश्च द्रष्टुं त्वल्लिंगमुत्तमम् ।
गतौ न ददृशुर्देव लिङ्गस्यान्तं न चादिमम् ॥ १६ ॥

यस्त्वं ब्रह्मादिभिर्देवैर्ध्यायसे मुक्तिलालसैः ।
धन्यस्य मम प्रत्यक्षं गतोऽसि सर्ववर्जितः ॥ १७ ॥

न ते रूपं न ते ज्ञानं न ते ध्यानं महेश्वर ।
योगनिष्ठा विचिन्वन्तः प्राप्नुवन्ति गतालसाः ॥ १८ ॥

सर्वस्य जगतो रूपं सर्वस्य जगतः स्थितिः ।
सर्वस्य सृष्टिरूपोऽसि नमस्ते शतशो नमः ॥ १९ ॥

द्यावापृथिव्योरंतरं यद्ब्रह्माण्डानां तथा प्रभो ।
त्वमेवासि महादेव नमस्ते शतशो नमः ॥ २० ॥

महावायुप्रेरितास्ते ब्रह्माण्डानां सहस्रशः ।
रोमकूपेषु सततं विशंति प्रविशन्ति च ॥ २१ ॥

यथा गवाक्षजालेषु दृश्यन्ते किरणा रवेः ।
अणवो धूमसदृशा इति केचिज्जगुर्बुधाः ॥ २२ ॥

केचिद् वदन्ति सुधियो योगनिष्ठा महर्षयः ।
उदुम्बरे यथा देव वर्त्तंते हि फलानि वै ॥ २३ ॥

तथा त्वद्ब्रह्मरूपेऽस्मिन्ब्रह्माण्डानां सहस्रशः ।
लम्बमानानि सततं दृश्यन्ते च तथैव हि ॥ २४ ॥

विवादश्चैव शास्त्राणां त्वदर्थं वै प्रवर्त्तते ।
परं तव महिम्नो न पारं जानाति कश्चन ॥ २५ ॥

तस्मात्ते शतशो देव नमस्कुर्यां महेश्वर ।
अग्रतः पृष्टतो वाऽपि जानेऽहं मनुजः कथम् ॥ २६ ॥

भगीरथ बोला—

हे शिव ! आज मुझे अपने जन्म के बन्धन से छुटकारा मिल गया है। हे प्रभो ! जिससे कि सब विकृतियों से रहित आप प्रत्यक्ष रूप से बोल रहे हो ॥ १५ ॥

पहले ब्रह्मा और विष्णु आपके उत्तम लिंग के दर्शन करने गये, किन्तु उन्हें लिंग का आदि और अन्त दिखाई नहीं दिया ॥ १६ ॥

मुक्ति के इच्छुक ब्रह्मा आदि देवता भी जिन आपका ध्यान करते हैं, सबको छोड़ कर ऐसे आप प्रत्यक्ष हो मुझ से सम्भाषण कर रहे हैं। अतः मैं धन्य हूँ ॥ १७ ॥

हे महेश्वर ! आपका रूप, ज्ञान और ध्यान नहीं हो सकता। योग में तल्लीन हुये आलस्य रहित लोगों को ही आपकी प्राप्ति हो सकती है ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण जगत् के रूप, सम्पूर्ण जगत् की स्थिति, सम्पूर्ण जगत् के तुम सृष्टिरूप हो, अतः आपको बारम्बार सैकड़ों प्रणाम है ॥ १९ ॥

हे प्रभो ! आकाश, भूमि और ब्रह्माण्डों का अन्तर तुम ही हो, हे महादेव ! आपको सैंकड़ों बार प्रणाम है ॥ २० ॥

हजारों ब्रह्माण्ड महावायु से प्रेरित होकर आपके रोमकूपों में सतत प्रवेश करते हैं और उनसे बाहर निकलते हैं ॥ २१ ॥

जिस प्रकार झरोखों में अणु और धूप रूप बनकर सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार कुछ विद्वान् आपके शरीर में ब्रह्माण्डों की स्थिति बताते हैं ॥ २२ ॥

कोई योगनिष्ठ निद्वान् महर्षि लोग कहते हैं—जिस प्रकार गूलर के वृक्ष में फल विद्यमान रहते हैं ठीक ··॥ २३ ॥

उसी प्रकार ही आपके इस ब्रह्म रूप में सहस्त्रों ब्रह्माण्ड की लटकते सतत दिखाई देते हैं ॥ २४ ॥

शास्त्रों का विवाद आपके विषय में प्रवृत्त होता है। परन्तु आपकी महिमा के अन्त को कोई नहीं जानता है ॥ २५ ॥

इसलिये हे देव ! महेश्वर ! आपको मैं सैकड़ों बार प्रणाम करता हूँ। मैं मनुष्य आपको आगे अथवा पीछे से कैसे जान सकता हूँ ॥ २६ ॥

तस्मात्त्वं बुद्धिरूपेण स्थितोऽसि सदसत्कर: ।
पुण्यानां निचयैनेति योगानां त्वं शतैरपि ॥ २७ ॥

न वेद्योऽसि परं ब्रह्मन् विना भक्तिं महेश्वर ।
आदरेण मया ज्ञातं यतस्ते शिरसा धृतम् ॥ २८ ॥

सप्तर्षयोऽपि भगवन् स्पृष्ट्वा गतिमवाप्नुयु: ।
त्वत्त एव समुद्भूतं जगदेतच्चराचरम् ॥ २९ ॥

त्वय्येव परिलीयेत सर्वं तत्कार्यकं खलु ।
त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानंति तत्त्वत: ॥ ३० ॥

ऐन्द्रीं मायां समाश्रित्य वृत्रहंता त्वमेव हि ।
मायां तु वैष्णवीं कृत्वा निहतौ मधुकैटभौ ॥ ३१ ॥

तयोर्वै मेदसा देव कृता वै मेदिनी त्वया ।
ब्राह्मीं मायां समाश्रित्य सर्गकर्ता त्वमेव हि ॥ ३२ ॥

पुरा शबररूपेण निहता दानवास्त्वया ।
त्रिपुराणां हि दहने पृथ्वी तव रथो विभो ॥ ३३ ॥

धनु: स्वर्णगिरिर्जातो बाणो विष्णुर्महेश्वर ।
इषुधि: कमलावासो वासुकिर्ज्या समीरित: ॥ ३४ ॥

लोकस्य मोहकरणे तव युक्तिरियं स्थिता ।
किमु त्वं भस्मसात्कर्तुं त्रिपुरं नेत्रवह्निना ॥ ३५ ॥

समर्थोऽसि न वा किन्तु तव लोकविडम्बना ।
लोका: सर्वे विजानन्ति वह्निर्दहति सर्वत: ॥ ३६ ॥

त्वमाग्नेयीं समाश्रित्य दहसे वै त्रिलोककम् ।
युगान्ते द्वादशादित्यरूपं कृत्वा महेश्वर ॥ ३७ ॥

चराचरं जगत्सर्वं भस्मसात्तपसि प्रभो ।
त्वं पुरा मत्स्यरूपेण वेदोद्धारकर: प्रभो ॥ ३८ ॥

इसलिए कि तुम सत् और असत् के विचार करने के लिए बुद्धिरूप से स्थित हो । पुण्यों का निचोड़ एवं योगों के अंश भी आप ही हो ।। २७ ।।

हे महेश्वर ! हे ब्रह्मन् ! भक्ति के विना कोई आपको जान नहीं सकता । क्योंकि आदरपूर्वक आपने शिर से मुझको धारण किया है, अतः उसे मैं ठीक जानता हूँ ।। २८ ।।

हे भगवन् ! सप्त ऋषियों ने उसका स्पर्श कर परमगति प्राप्त की थी । तुम से ही यह चर-अचर समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है ।। २९ ।।

तुम्हारे द्वारा किये गये समस्त इस कार्यरूप जगत् का तुम में ही लय होगा । किन्तु आपकी माया के द्वारा हतबुद्धि हुआ आपके तत्त्व को नहीं जानता ।। ३० ।।

इन्द्र की माया को आश्रित करके तुमने ही वृत्रासुर को मारा है । वैष्णवी माया की रचना करके आपने मधु और कैटभ नाम के दैत्यों को मारा था ।। ३१ ।।

हे देव ! उन्हीं मधु और कैटभ के मेद से आपके द्वारा इस मेदिनी का निर्माण हुआ । ब्राह्मी माया को आश्रित करके तुमने ही सर्गों का निर्माण किया ।। ३२ ।।

शबररूप को धारण करके तुमने पहले दानवों को मारा था । हे विभो ! त्रिपुरों को जलाने के समय पृथिवी आपका रथ बनी थी ।। ३३ ।।

हे महेश्वर ! स्वर्णगिरि धनुष बना था, विष्णु वाण बने थे, समुद्र तरकस और वासुकि सर्प प्रत्यञ्चा बना था ।। ३४ ।।

जगत् को मोहित करने के लिए आपकी यह युक्ति प्रवृत्त होती है । क्या आप त्रिपुरों को नेत्र जनित अग्नि से भस्म करने में···।। ३५ ।।

समर्थ नहीं थे ? यह लोक की बिडम्बना है कि सभी लोग जानते हैं कि अग्नि सब कुछ जला देती है ।। ३६ ।।

आप वह्निरूप शक्ति के आश्रय से समस्त तीनों लोकों को भस्म कर देते हैं । हे महेश्वर ! युग के अन्त में बारह सूर्यों का रूप बनकर···।। ३७ ।।

हे प्रभो ! चराचर सम्पूर्ण जगत् को आप भस्म कर देते हो । हे प्रभो ! पहले तुमने मत्स्यरूप धारण कर वेदों का उद्धार किया था ।। ३८ ।।

स्वमायाकल्पितो दैत्यः शंखनामा हतस्त्वया ।
पुनः कमठरूपेण मायामाश्रित्य वैष्णवीम् ।। ३९ ।।

त्वं धारयसि भूतानि कथमेतद् विडम्बना ।
पुनर्वाराहरूपेण रसातलगता धरा ।।
उद्धृता दष्ट्र्या देव त्वया वाराहमायया ।। ४० ।।

हिरण्यकशिपुः पूर्वं देवतानां भयावहः ।
विनाशितस्त्वयैवाहो नारसिंहीं समाश्रितः ।। ४१ ।।

नृसिंहं च महादेव जगत्संत्रासकारणम् ।
नीतवान्शारभेन त्वं क्षीराब्धौ जगदीश्वर ।। ४२ ।।

पुनर्वामनरूपेण बलिर्वैरोचनिस्त्वया ।
नीतः पातालनिलये मायामाश्रित्य वैष्णवीम् ।। ४३ ।।

द्रवत्वेन तु यत्ख्यातं तव रूप बहिः स्थितम् ।
लोकानां हितकामाय निःसृतोऽसि नखेन हि ।। ४४ ।।

रामरूपेण भगवन्क्षत्रियांतकरो ह्यसि ।
भुवो भारावतारस्ते कृतो रामात्मिकां गतः ।। ४५ ।।

पौलस्त्यजयशब्दस्य पात्रं रामो रघूद्वहः ।
योगमार्गं समास्थाय स्थितस्त्वं बदरीवने ।। ४६ ।।

युगान्ते म्लेच्छजातीयान् सर्वान्नियसि भस्मसात् ।
सर्वस्य जगतः कर्त्ता हर्ता पालयिता भवान् ।। ४७ ।।

नमस्ते शतशो देव पृष्ठतस्ते नमोऽग्रतः ।
न जाने ते महिम्नो हि पारं क्षन्तव्यमेव मे ।। ४८ ।।

ईश्वर उवाच—

भगीरथसमाख्यातं तव राजन् पठेत्तु यः ।
न तस्य मामकी माया बाधतेऽत्रैव कच्चन ।। ४९ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने
शिवस्तोत्रं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अपनी माया से कल्पित शंखनाम के दैत्य का वध आपने किया था। फिर कच्छप रूप धारण कर वैष्णवी माया के आश्रय से···॥ ३६ ॥

आप सब प्राणियों को धारण करते हैं। यह कैसी विडम्बना है। फिर वाराह रूप धारण कर रसातल गई हुई पृथिवी का वाराही माया के आश्रय से हे देव ! तुम्हारी दंष्ट्राओं के द्वारा उद्धार किया गया ॥ ४० ॥

पहिले देवताओं को भय देने वाला हिरण्यकशिपु का नारसिंही माया के आश्रय से तुम्हारे ही द्वारा, अहो ! विनाश किया गया था ॥ ४१ ॥

और हे महादेव जगदीश्वर ! जगत् को संतप्त करने वाले नृसिंह रूप को शरभ रूप धारण करके आपने क्षीरसागर में पहुँचा दिया था ॥ ४२ ॥

फिर वामनरूप धारण कर वैष्णवी माया के आश्रय से विरोचन के पुत्र बलि को आपके द्वारा पाताल लोक ले जाया गया ॥ ४३ ॥

द्रव रूप (जल रूप) से बाहर स्थित आपका जो विख्यात रूप है। वह लोगों की हित की कामनाओं के लिए आपके नख से ही निकला है ॥ ४४ ॥

हे भगवन् ! परशुराम रूप से क्षत्रियों के अन्त करने वाले आप ही हैं। राम रूप धारण करके आपने भूमि के भार को हलका किया ॥ ४५ ॥

पुलस्त्य के पौत्र रावण का नाश करने वाले जयशब्द के पात्र रघुकुल में उत्पन्न राम भी आप ही हैं। योग मार्ग का आश्रय लेकर बदरीवन में (बदरिकाश्रम) तुम ही स्थित हो ॥ ४६ ॥

युग के अन्त में म्लेच्छ जातियों (पापियों) को सर्वथा आप भस्मसात् कर देते हैं। आप सम्पूर्ण जगत् के कर्ता, हर्ता एवं पालनकर्ता हो ॥ ४७ ॥

हे देव ! आपके लिए आगे तथा पीछे से सैंकड़ों बार नमस्कार है। मुझे आपकी महिमा का पार जानने की सामर्थ्य नहीं है, अतः मुझे क्षमा कीजिए ॥ ४८ ॥

ईश्वर ने कहा—

उस राजा भगीरथ के द्वारा कथित इस उपाख्यान को जो पढ़ते हैं, उन्हें किसी प्रकार से इस संसार में मेरी माया बाँध नहीं सकती ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भगीरथोपाख्यान में शिवस्तोत्र नाम का चौबीसवाँ
अध्याय पूरा हुआ।

पंचत्रिंशोऽध्यायः

गङ्गाया भूमावतरणार्थं शिवेन भगीरथाय तद्दानं गङ्गामादाय भगीरथस्य मर्त्यलोकाय प्रस्थानम्

ईश्वर उवाच—

इति स्तुतोऽहं राज्ञा तु प्रसन्नस्त्वब्रुवं वचः ।
वरं ब्रूहि महाराज प्रसन्नोऽस्मि तवेप्सितम् ॥ १ ॥

अदेयमपि दास्यामि भक्ताय वरमुत्तमम् ।
भक्तो मे नास्ति त्रैलोक्ये सदृशस्ते नृपोत्तम ॥ २ ॥

इति श्रुत्वा मम वचः स वै राजा भगीरथः ।
कृतांजलिपुटो देवि ह्युवाच जगदम्बिके ॥ ३ ॥

भगीरथ उवाच—

पितरो मे महाभाग कपिलाग्निसमीरिताः ।
ते गच्छन्तु स्वर्गगतिं प्रसादेन तव प्रभो ॥ ४ ॥

गंगाख्यं परमं ब्रह्म वर्त्तते शिखरे तव ।
तन्मे देहि पितॄणां हि समुद्धाराय भो प्रभो ॥ ५ ॥

विनिर्दग्धास्तु गच्छेयुः पितरो गतिमुत्तमाम् ।
अन्ये कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः ॥
दृष्ट्वा लोकान् हि गच्छन्तु पुनरावृत्तिदुर्लभान् ॥ ६ ॥

पीत्वामृतमयं वारि मुक्तिमैश्वर्यमाप्नुयुः ।
इति श्रुत्वेरितं तस्य राजानं पुनरब्रुवम् ॥ ७ ॥

इदं परमहं राजन्वरमेतद्धि याचितम् ।
तद्ददामि तवेदानीं सर्वपापभयापहम् ॥ ८ ॥

अध्याय ३५

गङ्गा को भूमि पर लाने के लिये शिव द्वारा उसको भगीरथ के लिये देना, उसको लेकर भगीरथ का मर्त्यलोक के लिये प्रस्थान

ईश्वर ने कहा—

इस प्रकार राजा के द्वारा स्तुति किये जाने पर मैंने कहा, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। हे महाराज ! मैं प्रसन्न हूँ, तुम इच्छित वर मांगो ॥ १ ॥

तुझ भक्त के लिए मैं न देने योग्य उत्तम वर भी दूंगा। हे नृपोत्तम ! तुम्हारे समान भक्त तीनों लोकों में भी मेरा नहीं है ॥ २ ॥

हे देवि ! जगदम्बिके ! उस राजा भगीरथ ने मेरे इन वचनों को सुनकर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा ···॥ ३ ॥

भगीरथ ने कहा—

हे महाभाग ! मेरे पितर कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म हो गये हैं। हे प्रभो ! आपके प्रसाद से उन्हें स्वर्ग की गति मिलनी चाहिए ॥ ४ ॥

हे प्रभो, परमात्मन् ! गंगा नाम का परम ब्रह्मरूप द्रव आपके शिखर पर विद्यमान है। मेरे पितरों के उद्धार के लिए उसे मुझे दीजिए ॥ ५ ॥

जिससे कि भस्म हुये मेरे पितर उत्तम गति को पा सकें। घोर कलियुग में अन्य लोग भी पुण्य-रहित होंगे। गंगा का दर्शन करके वे भी उस लोक को जायेंगे, जहाँ से उनका पुनर्जन्म नहीं होगा ॥ ६ ॥

अमृत के समान गंगाजल को पीकर इस जन्म में ऐश्वर्य और परलोक में मुक्ति प्राप्त करेंगे। इस प्रकार राजा के वचन सुनकर फिर मैंने उससे कहा ॥ ७ ॥

हे राजन् ! यह परम उत्तम वर आपने मांगा है। सब पापों को और भय को दूर करने वाले इस वर को तुम्हें मैं अब देता हूँ ॥ ८ ॥

सर्वेषां हितकामाय त्वयोक्तं परमं वचः।
स्फुरदिन्दुकलाभास्वज्जटाटव्यां विराजिताम् ॥ ९ ॥

धारां त्रैलोक्यपापघ्नीं गृहाण पितृमुक्तये।
यस्या दर्शनमात्रेण सर्वे यांति शुभां गतिम् ॥ १० ॥

यां दधार ब्रह्मा व्यापारकलशे विभुः।
पुत्रीगमनजं पापं धौतं तेनैव वारिणा ॥ ११ ॥

सप्तर्षयो महाभाग धृत्वा यां शिरसा नृप।
कृतकृत्या बभूवुस्ते यत्प्रसादान्नराधिप ॥ १२ ॥

सैव धारा स्वर्णगिरावागता नंदनांतिके।
ततश्चतुर्धा संजाता चतुर्दिक्षु प्रगामिनी ॥ १३ ॥

सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रेति नामभिः।
अलकायां समायाता या धारा शिरसा धृता ॥ १४ ॥

सर्वं पावयितुं विश्वं त्वं गृहाण जनेश्वर।
रथमार्गेण ते भूप गंगेयं सरिदुत्तमा ॥
आयास्यति नृलोके तु प्रसादेन मम प्रभो ॥ १५ ॥

इति देवि मया प्रोक्तं राज्ञे तस्मै महात्मने।
प्रादां जटासमूहात्तु धारां त्रैलोक्यपाविनीम् ॥ १६ ॥

तस्मिन्नेव क्षणे रम्ये नानादिग्भ्यः समागताः।
यक्षा विद्याधरा देवास्तथा गन्धर्वकिन्नराः ॥ १७ ॥

इन्द्रोऽपि लोकपालैश्च गंगाया दर्शनाय वै।
गायन्त्योऽप्सरसां श्रेष्ठास्तथा गन्धर्वसत्तमाः ॥ १८ ॥

नेदुः सर्वाणि वाद्यानि भेरीझांकारकानि च।
शंखानां च मृदंगानां गोमुखानां तथैव च ॥ १९ ॥

बभूवुः सर्वतो दिग्भ्यो जय राजन्भगीरथ।
राजन् जयेति सततं ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ २० ॥

सबके हित की कामना से आपने यह वचन कहा। चमकते हुये चन्द्रमा की कलाओं से प्रकाशित जटा रूपी वन में विराजमान···॥ ९ ॥

तीनों लोकों के पापों का नाश करने वाली धारा को पितरों की मुक्ति के लिए ग्रहण करो। जिसके मात्र दर्शन करने से सब शुभ गति को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

जिसको पहले विभु ब्रह्म ने अपने भिक्षा कलश में धारण किया हुआ था। उसने पुत्री के साथ सम्भोग करने के पाप को उसके जल से ही धोया था ॥ ११ ॥

हे महाभाग राजन् ! नृप ! जिस गंगा को सिर पर धारण करके मेरी कृपा से वे सप्त ऋषि कृतकृत्य हुए थे ॥ १२ ॥

वही धारा नन्दन पर्वत के निकट सुमेरु पर्वत के ऊपर आयी और वहाँ से चार भागों में विभाजित होकर चारों दिशाओं में गई ॥ १३ ॥

सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामों से वह विख्यात हुई। जो धारा सिर में रखी गई थी वह अलका में उपस्थित हुई ॥ १४ ॥

हे राजन् ! सम्पूर्ण विश्व को पवित्र करने के लिए तुम इसे ग्रहण करो। हे प्रभो, भूप ! तुम्हारे रथ के मार्ग से यह उत्तम नदी गंगा मेरे प्रसाद से मनुष्यलोक में आयेगी ॥ १५ ॥

हे देवि ! उस महातमा भगीरथ से मैंने इस प्रकार कहा। तदनन्तर मैंने तीनों लोकों को पवित्र करने वाली धारा को जटाओं के समूह से प्रवाहित कर दिया ॥ १६ ॥

उसी सुरम्य क्षण में ही नाना दिशाओं से यक्ष, विद्याधर, देव, गन्धर्व तथा किन्नर वहां पर आये ॥ १७ ॥

इन्द्र भी लोकपालों के साथ गंगा जी के दर्शन करने के लिए वहां आये तथा श्रेष्ठ गन्धर्व और अप्सरायें गान करते हुये आये ॥ १८ ॥

भेरी, झांकार, शंख, मृदंग और गोमुख आदि अनेक वाजे वहां बजने लगे ॥ १९ ॥

चारों दिशाओं से हे राजन् ! "भगीरथ ! आपकी जय हो" शब्द होने लगे। सिद्ध, चारण और ऋषि भी इसी शब्द का सतत उच्चारण करने लगे— "हे राजन् ! भगीरथ ! आपकी जय हो" ॥ २० ॥

ऊचुः सर्वे विमानेभ्यः समुत्तीर्य ततस्ततः।
तस्मिन्महोत्सवे देवि गंगाया निर्गमे यथा॥ २१॥

बभूव हर्षो बहुलस्तथा नैव कदा शिवे।
ननर्त्तुः सर्वतो देवा हर्षनिर्भरमानसाः॥ २२॥

वसिष्ठ उवाच—

इति श्रुत्वा वचो भर्त्तुः पार्वती सुरवन्दिता।
विस्मयाविष्टमनसा पुनः प्रोवाच शंकरम्॥ २३॥

पार्वत्युवाच—

संशयं च्छिन्धि भगवन्महान्मे हृदि वर्त्तते।
यदा त्वया हतो दैत्यस्त्रिपुरो नाम सर्वद॥ २४॥

ईदृशं न तथा हर्षं प्रापुर्वै त्रिदिवौकसः।
यदा तव सुतेनापि गुहेन निहतो युधि॥ २५॥

तारको नाम दुर्द्धर्षो देवदानवदर्प्पहा।
एतादृशं तदा हर्षं नाप्नुयुश्च महेश्वर॥ २६॥

हर्षस्य कारणं देव देवादीनां वद प्रभो।
गंगासमागमे भूमौ हर्षिता दिवि देवताः॥ २७॥

एतन्महेश भगवन्परं कौतूहलं हि मे।
भक्ताऽस्मि कृतपुण्याऽस्मि यस्याः पृच्छयोऽसि मे पतिः॥ २८॥

ईश्वर उवाच—

इदं वै कारणं गुह्यं वर्त्तते प्रियवादिनि।
कुत्रापि ते न वक्तव्यं भावि कार्यस्य गौरवात्॥ २९॥

कार्तिकेयेन पुत्रेण तव देवि हतो युधि।
तारकाख्यो महादैत्यो दैत्यानां प्रवरोऽसुरः॥ ३०॥

शंकुकर्णादयो वीरा निहतास्ते रणाजिरे।
पृथिव्यां ते महीपाला भविष्यन्ति सुरद्विषः॥ ३१॥

विमानों से उतर-उतर कर वे सब जय शब्द बोलने लगे। हे देवि ! वह महोत्सव गंगा के अवतरण महोत्सव के समान था ॥ २१ ॥

है शिवे ! उस समय इतना बड़ा हर्ष हुआ कि जितना कभी नहीं हुआ था। सब देवता हर्षान्वित मन हो नाचने लगे ॥ २२ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

देवताओं से पूजित हुई पार्वती देवी अपने पति शिव के इस वचन को सुनकर पुनः आश्चर्यचकित हो शंकर को पूछने लगी ॥ २३ ॥

पार्वती ने कहा—

मेरे हृदय में उत्पन्न महान् संशय का, हे भगवन् ! निवारण करो। हे सर्वद ! तुम्हारे द्वारा जब त्रिपुर नाम के दैत्य का वध किया गया था ॥ २४ ॥

उस समय भी इस प्रकार का हर्ष देवताओं ने प्राप्त नहीं किया था, जब आपके पुत्र स्वामी कार्तिकेय ने भी युद्ध में ॥ २५ ॥

देवताओं और दानवों के घमण्ड को हरण करने वाले बलिष्ठ तारकासुर नाम के दैत्य को मारा था। हे महेश्वर ! इस प्रकार का हर्ष उस समय भी उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था ॥ २६ ॥

हे देव ! प्रभो ! इस हर्ष का कारण तुम बोलो। गंगा के भूमि पर आने पर देवता लोग हर्ष को प्राप्त हुये। इस बात का हे महेश्वर ! मुझे बड़ा कौतूहल है ॥ २७ ॥

मैं आपकी भक्त हूँ, मैंने पुण्य भी किए हैं, जिससे मेरे पति प्रश्न पूछने योग्य आप हुये हैं ॥ २८ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे प्रियवादिनी ! यह गुप्त कारण है। आपको भविष्य में होने वाले कार्य के महत्त्व को ध्यान में रखकर इसे कहीं भी नहीं बोलना चाहिए ॥ २९ ॥

हे देवि ! आपके पुत्र कार्तिकेय ने दैत्यों में बलिष्ठ तारकासुर नाम के महा-दैत्य का वध किया था ॥ ३० ॥

उस रण में शंकु-कर्ण आदि अनेक वीर मारे गये थे। वे ही पृथिवी में देवताओं के साथ द्वेष रखने वाले राजा होंगे ॥ ३१ ॥

पृथिवीं पीडयिष्यन्ति भारेण पर्वतोपमाः ।
नागतास्ते यतो लोकं वासवस्य च ब्रह्मणः ॥ ३२ ॥

तत एव सुरैर्ज्ञातं नागतं तैः सुरालये ।
ततो वै मुनिरूपेण तपस्तप्तुं गता भुवि ॥ ३३ ॥

जेतुकामाश्च ते दैत्याश्चरन्ति तप उत्तमम् ।
इति सन्तप्तहृदया देवा जग्मुः पयोनिधिम् ॥ ३४ ॥

तुष्टुवुः प्रणताः सर्वे जगत्कर्तारमीश्वरम् ।
ऊचुश्च भयसंविग्नास्तद्वृत्तं दितिजैः कृतम् ॥ ३५ ॥

निवेदितं तु तच्छ्रुत्वा ज्ञापयामास तान् हरिः ।
सर्वे यूयमहं चैव गमिष्यामोंऽशभागकैः ॥ ३६ ॥

मर्त्यरूपं समास्थाय हनिष्यामः सुरद्विषः ।
यूयं गच्छत स्वर्लोकमिदानीं दैवतर्षभाः ॥ ३७ ॥

इति ते भाषितं श्रुत्वा गत्वा सर्वे दिवौकसः ।
बुद्ध्वा काकुत्स्थयाञ्चां च हर्षितास्ते महेश्वरि ॥ ३८ ॥

गमिष्यामो[1] वयं मर्त्ये पास्यामोऽस्या जलं शुभम् ।
मुक्तिं चैव गमिष्यामस्तृप्ता गंगाजलेन हि ॥ ३९ ॥

इति ते कारणं गुह्यमुक्तं चैव महेश्वरि ।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य जहर्षुस्त्रिदिवौकसः ॥ ४० ॥

मया मुक्तापि सा धारा पतिता श्रीमुखे गिरौ ।
तस्याः प्रवाहवेगेन खण्डिता बहवोऽद्रयः ॥ ४१ ॥

तस्या दर्शनमात्रेण जग्मुः स्वर्गं पिशाचकाः ।
त्रिधा वै पतिता मर्त्ये ब्रह्महत्यौघनाशिनी ॥ ४२ ॥

भगीरथोऽपि संप्राप्य गंगां परमदुर्लभाम् ।
मेने कृतार्थमात्मानं प्रणनाम पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

---

१. ''गमिष्यामो महेश्वरि'' पाठ इसमें नहीं हैं।

पर्वतों के समान अपने भार से वे पृथिवी को पीड़ित करेंगे, क्यों कि वे मृत्यु के बाद वे न तो इन्द्रलोक को आये और नाही ब्रह्मलोक को गये ।। ३२ ।।

उसके बाद ही देवताओं को मालूम हुआ कि वे देवलोक नहीं आये हैं और मुनिरूप से भूमि पर तपस्या करने गये हैं ।। ३३ ।।

वे दैत्य विजय की इच्छा से उत्तम तप का आचरण कर रहे हैं। इससे सन्तप्त हृदय होकर देवता क्षीर सागर को गये ।। ३४ ।।

संसार की रचना करने वाले ईश्वर को उन सबने वहाँ प्रणाम कर प्रसन्न किया और दिति के पुत्रों के द्वारा किया वृत्तान्त भय से विह्वल होकर कहा···।। ३५ ।।

उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम सब और मैं अपने अंशभागों के साथ जायेंगे ।। ३६ ।।

मनुष्य रूप धारण कर देवताओं के दुश्मन दैत्यों को मारेंगे। हे श्रेष्ठ देवताओ ! इस समय तुम स्वर्गलोक को जाओ ।। ३७ ।।

हे महेश्वरि ! इस प्रकार भगवान् के वचनों को सुनकर सब देवता स्वर्गलोक में गये। हे महेश्वरि ! ककुत्स्थवंशी भगीरथ की याचना को जान कर वे परम हर्षित हुये ।। ३८ ।।

हम मर्त्यलोक में जायेंगे और इसके शुभ जल का पान करेंगे। इसके जल से तृप्त होकर हम निश्चय से मुक्ति को प्राप्त करेंगे ।। ३९ ।।

हे महेश्वरि ! इस प्रकार मैंने इसके अति गोपनीय कारण को कह दिया है। इस वृत्तान्त को बार-बार स्मरण करके देवता लोग हर्षित होते थे ।। ४० ।।

मेरे द्वारा छोड़ी गई वह गंगा की धारा श्रीमुख नाम के पर्वत के ऊपर अवतरित हुई। गंगा के प्रवाह के वेग से बहुत से पर्वत खण्डित हो गये ।। ४१ ।।

गंगा के दर्शन मात्र से ही पिशाच भी स्वर्ग को गये। ब्रह्महत्या आदि पापों का नाश करने वाली गंगा नदी तीन भागों में मनुष्य लोक में निपतित हुई ।। ४२ ।।

भगीरथ ने भी परम दुर्लभ गंगा को प्राप्त करके अपने को कृतकृत्य माना और बार-बार प्रणाम किया ।। ४३ ।।

इति ते कथिता देवि गंगोत्पत्तिर्मया शुभा।
श्रुत्वा यां स्वर्गमाप्नोति मनुजो नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने
गंगासंप्रदानं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशोऽध्याय

गंगाधारायास्त्रिधा विभागः, गङ्गामानयतो भगीरथस्य गन्धर्वैरप-हरणप्रयासः, गन्धर्वजयेऽसुरैस्तस्याः रसालते नयनं, तान्विजित्य निवाचकवचदानवैर्हृतां मनोहरीनाम्नीं प्रतिष्ठानपुराजकन्यां परिणीय, भागीरथीमादाय भगीरथस्य पृथिव्यामागमनम्

ईश्वर उवाच—

साऽपि गंगा त्रिधा जाता नामतः शृणु पार्वति।
ज्येष्ठा धारा रथस्यानु राज्ञो भागीरथी मता ॥ १ ॥

श्रीमुखस्योत्तरे पार्श्वे गता सा मुक्तिदायिनी।
अलकेभ्यो महेशान्यलकनंदा पुनः स्मृता ॥ २ ॥

बदरीविपिने सा वै नारायणपदांबुजे।
यत्र ब्रह्मादयो देवा मेरुशृंगं समाश्रिताः ॥ ३ ॥

निवसन्ति स्थले रम्ये नानामुनिगणान्विते।
तृतीया कुरुवर्षे तु नाम्ना कुमुद्वती मता ॥ ४ ॥

एकचक्ररथो राजा प्रहृष्टमनसा ययौ।
नेमिमार्गेण गंगाऽपि नाम्ना भागीरथी मता ॥ ५ ॥

पार्वत्युवाच—

कथं गंगा समायाता सुखेन जगतीतले।
ब्रह्मणोक्तं हि विघ्नानि भविष्यन्ति पथि प्रभो ॥ ६ ॥

हे देवि ! इस प्रकार शुभ देने वाली गंगा की उत्पत्ति का वृत्तान्त मैंने आपसे कहा है, जिसे सुनकर मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। इसमें कोई संशय नहीं नहीं है ।। ४४ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भगीरथोपाख्यान
में गंगासम्प्रदान नाम का पैंतीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ३६

गङ्गा का तीन धाराओं में विभाजन, भगीरथ द्वारा गङ्गा को लाते समय गन्धर्वों द्वारा उसके अपहरण का प्रयत्न, गन्धर्वों को जीत लेने पर असुरों द्वारा गङ्गा को रसातल में ले जाना, उनको जीत कर तथा निवातकवच दानवों द्वारा अपहरण की गई प्रतिष्ठानपुर की मनोहरी नाम की राजकुमारी से विवाह करके भागीरथी को लेकर भगीरथ का पृथिवी पर आना

ईश्वर ने कहा —

हे पार्वति ! उस गंगा की तीन धारायें हुईं, उनके नाम सुनो। सबसे बड़ी धारा राजा भगीरथ के पीछे-पीछे चली थी। उसका नाम भागीरथी हुआ ।। १ ।।

वह मोक्ष को देने वाली धारा श्रीमुख पर्वत के उत्तर भाग में गई। हे महेशानि ! पुनः वह शिव के अलकों (केशों) से निकली, अतः उसका नाम अलकनन्दा हुआ ।। २ ।।

वह गंगा बदरीवन में गई, जहां सुमेरु पर्वत के ऊपर ब्रह्मा आदि देवता भगवान् के चरणकमलों में उपस्थित थे ।। ३ ।।

रमणीक स्थल बदरीवन में अन्य अनेक मुनिगण निवास करते हैं। तीसरी धारा कुरुवर्ष में गई, जिसका नाम कुमुद्वती हुआ ।। ४ ।

अपने मन में प्रसन्न होकर राजा एक चक्र वाले रथ से गये। उसकी चक्रधार के मार्ग (भाग) से गंगा भी गई, जिससे गंगा का नाम भागीरथी हुआ ।। ५ ।।

पार्वती ने कहा—

हे प्रभो ! गंगा जी भूतल पर शान्तिपूर्वक कैसे पहुँच गईं ? ब्रह्मा जी ने तो कहा था कि मार्ग में अनेक विघ्न होंगे ।। ६ ।।

कथं विघ्नानि जातानि मार्गे तस्य महात्मनः ।
मुक्तिं प्राप्ताश्च के मार्गे तद् वदस्व मम प्रभो ।। ७ ।।

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि गच्छतोऽग्रे महीपतेः ।
शैले चन्द्रपुरे रम्ये गन्धर्वाणां भगीरथः ।। ८ ।।

गंगामादाय सहसा ह्यागतो गिरिनंदिनि ।
तस्य चक्रेण तेषां च कंपोभून्नृपतेः शिवे ।। ९ ।।

युद्धं कर्तुं समारब्धा गन्धर्वा वरवर्णिनि ।
कोऽयं गच्छति दुष्टात्मा धारां हृत्वा परात्मनः ।। १० ।।

धृष्टो न वेत्ति चास्मान्वै अवज्ञाय चलत्यसौ ।
एनं सर्वे समागत्य मारयध्वं महौजसः ।। ११ ।।

इति ते संमतिं कृत्वा कृतकार्मुकतूणकाः ।
सन्नद्धकवचा वीरास्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रुवन् ।। १२ ।।

इति श्रुत्वा वचस्तेषां गन्धर्वाणां भगीरथः ।
विस्मयाविष्टहृदयो धनुर्धृत्वा महात्मवान् ।। १३ ।।

तेषां तस्य च देवेशि संग्रामः समपद्यत ।
महास्त्रैर्विविधैः खड्गचर्मतोमरसायकैः ।। १४ ।।

एतस्मिन्पथि तेनापि राज्ञा निस्त्रिंशपाणिनाम् ।
हताः केचिद् गताः केचिज्जग्मुः स्वर्गपुरे ततः ।। १५ ।।

क्षणेन तेन तत्रापि वायुनेव महाम्बुदाः ।
नाशितास्तीक्ष्णवेगेन गन्धर्वा देवयोनयः ।। १६ ।।

जित्वा तान्सागरो राजा गंगामादाय सत्वरम् ।
आययौ वायुवेगेन स्वच्छोदं नाम वै सरः ।। १७ ।।

तत्रागत्य महेशानि तस्मिन्नेव सरोवरे ।
अन्तर्धानं गता तत्र गंगा या परपाविनी ।। १८ ।।

उस महात्मा भगीरथ को रास्ते में विघ्न कैसे हुए और किन-किन लोगों को मार्ग में मोक्ष प्राप्त हुआ, हे प्रभो ! यह सब मेरे से कहिए ।। ७ ।।

शिव ने कहा—

हे देवि ! राजा भगीरथ का आगे जाने का वृतान्त मैं तुमसे कहता हूँ, तुम सुनो । गन्धर्वों के सुरम्य चन्द्रपुर पर्वत पर भगीरथ···।। ८ ।।

हे पर्वतकन्यके ! सहसा गंगा को लेकर आये । हे शिवे ! भगीरथ के चक्र से वे गन्धर्व कांप गये ।। ९ ।।

हे पार्वति ! उन गन्धर्वों ने राजा भगीरथ के साथ युद्ध करना आरम्भ किया । कौन यह दुष्टात्मा परमात्मा की धारा को अपहरण करके ले जा रहा है ।। १० ।।

यह कैसा धृष्ट है, जो हमें नहीं जानता और हमारी अवज्ञा करके जा रहा है । सब पराक्रमी इकट्ठे होकर इसे मारो ।। ११ ।।

वे वीर इस प्रकार से सलाह करके धनुषबाण लिए और कवचों को धारण करके ठहरो ! ठहरो ! इस प्रकार राजा भगीरथ को कहने लगे ।। १२ ।।

राजा भगीरथ ने उन गन्धर्वों के इस प्रकार वचन सुनकर हृदय में विस्मित हो उस महात्मा भगीरथ ने धनुष धारण किया ।। १३ ।।

हे देवेशि ! उस राजा का और उन गन्धर्वों का विविध खड्ग, चर्म, तोमर और बाण आदि अस्त्रों से युद्ध हुआ ।। १४ ।।

इस समय खड्ग हाथ में लिए उस राजा के द्वारा अनेक गन्धर्व मारे गये । तदन्तर वे स्वर्ग लोक को गये ।। १५ ।।

उस राजा भगीरथ ने तीक्ष्ण वेग से क्षण भर में ही देवयोनि उन गन्धर्वों का नाश इस प्रकार किया, जिस प्रकार वायु महान् मेघों का ध्वंस करता है ।। १६ ।।

उन गन्धर्वों को पराजित कर राजा भगीरथ जल्दी ही वायु वेग से गंगा को लेकर स्वच्छोद नाम के सरोवर (तालाब) पर आये ।।

हे महेशानि ! परम पावनी गंगा उस तालाब में आकर अन्तर्धान हो गई ।। १८ ।।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं तदा राजा भगीरथः ।
हर्तारं नैव गंगाया ददर्शान्वेषयन्नपि ॥ १९ ॥

शोकाविष्टमना राजा विचचार वनान्तरे ।
एतस्मिन्नन्तरेऽरण्ये ददर्श सर उत्तमम् ॥ २० ॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
नानागुल्मलताकीर्णं भ्रमरालिविराजितम् ॥ २१ ॥

सरसस्तस्य निकटे ददर्श मुनिसत्तमम् ।
ध्यायमानं महेशानं प्रणनाम भगीरथः ॥ २२ ॥

प्रणमन्तं च तं दृष्ट्वा तमूवाच नृपेश्वरम् ।
कोऽसि त्वं क्वच गंतासि द्वात्रिंशलक्षणैर्युतः ॥ २३ ॥

राजोवाच तदा देवि मुनिं मुनिगणान्वितम् ।
अहमंशुमतः पौत्रो नाम्ना ख्यातो भगीरथः ॥ २४ ॥

गंगां नेतुं समायातो मुने पितृविमुक्तये ।
आनीता च मया गंगा आराध्य जगदीश्वरम् ॥ २५ ॥

अत्रारण्ये मुनिश्रेष्ठ नष्टा गंगा क्वचिद्गता ।
किं करोमि क्व गच्छामि किं वदिष्यन्ति मां नराः ॥ २६ ॥

गतो भगीरथो गंगामानेतुं पितृमुक्तये ।
एवमेव समायातो हास्यमेवं भविष्यति ॥ २७ ॥

अस्मिन्नेव महारण्ये प्राणांस्त्यक्ष्यामि बन्धनात् ।
इति प्रवदतस्तस्य कृपाविष्टो मुनीश्वरः ॥ २८ ॥

उवाच ध्यात्वा तत्सर्वं गंगाहरणकारणम् ।
शृणु राजन्न भेतव्यं खेदं मा कुरु मा कुरु ॥ २९ ॥

सरसो दक्षिणे पार्श्वे रन्ध्रमेकं हि वर्तते ।
तस्माद्रंध्राद्गता राजन्नीयमानाऽसुरैर्भृशम् ॥ ३० ॥

यह देखकर राजा भगीरथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्वेषण करने पर भी गंगा का अपहरण करने वाले को भगीरथ ने नहीं देखा ॥ १९ ॥

वह राजा शोकाकुल मन होकर वन में विचरण करने लगा। इसी काल में ही वन में उन्होंने एक उत्तम तालाब को देखा ॥ २० ॥

वह सरोवर हंसों और कारण्डवों से आकीर्ण एवं चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित था तथा अनेक लता, गुल्मों से व्याप्त एवं भ्रमर-पंक्तियों से विराजमान था ॥ २१ ॥

उस तालाब के निकट राजा ने शंकर का ध्यान करते हुये एक श्रेष्ठ मुनि को देखा। भगीरथ ने उस मुनि को प्रणाम किया ॥ २२ ॥

उस राजा भगीरथ को प्रणाम करते हुये देखकर उस मुनि ने कहा कि तुम बत्तीस शुभ लक्षणों से युक्त कौन हो और कहाँ जाना चाहते हो ? ॥ २३ ॥

तब हे देवि ! मुनिगणों से युक्त उस मुनि को राजा ने कहा—मैं अंशुमान् का पौत्र भगीरथ नाम से विख्यात हूँ ॥ २४ ॥

हे मुने ! अपने पितरों की मुक्ति के लिए गंगा को ले जाने के लिए मैं यहाँ आया था और भगवान् की आराधना करके मैं गंगा को ले भी आया था ॥ २५ ॥

हे श्रेष्ठ मुनि ! इस जंगल में गंगा नष्ट होकर कहीं चली गई। क्या करूँ, कहाँ जाऊं, लोग मुझे क्या कहेंगे ॥ २६ ॥

पितरों की मुक्ति के लिए राजा भगीरथ गंगा लाने के लिए गया था, किन्तु खाली ही आ गया, इस प्रकार लोक में मेरी हंसी होगी ॥ २७ ॥

मैं इस वन में ही फांसी लगाकर अपने प्राणों का त्याग कर दूंगा। राजा के इस प्रकार कहने पर मुनि के मन में दया का भाव उदय हुआ ॥ २८ ॥

गंगा के अपहरण का सारा कारण ध्यान कर उस मुनि ने राजा से कहा—हे राजन् ! सुनो ! भय मत करो ! खेद मत करो ! मत करो ! ॥ २९ ॥

तालाब के दक्षिण भाग में एक बिल है। हे राजन् ! उसी बिल से असुरों के द्वारा गंगा ले जाई गई है ॥ ३० ॥

गता पातालनिलये रत्नभूता यतः स्थिता।
श्रेयांसि बहुविघ्नानि वर्त्तंते मा खिद प्रभो॥ ३१॥

सर्वं साधु महाराज भविष्यति महीपते।
गच्छ तेनैव मार्गेण यत्र ते ह्यसुराः स्थिताः॥ ३२॥

जहि तान्युद्धदुर्द्धर्षान्दानवाञ्छूरसम्मतान्।
पिधाय तन्महारन्ध्रं तां नयस्व पितृस्थले॥ ३३॥

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा महेशानि सोऽपि राजा भगीरथः।
प्रणम्य सहसा राजा ययौ तस्मिन् सरोवरे॥ ३४॥

ददर्श तद्रंध्रदेशे पुरुषौ द्वौ महाबलौ।
कृष्णास्यौ ह्रस्वरूपौ तु मुद्गराभ्यां विराजितौ॥ ३५॥

यावदागच्छति नृपस्तावदूचतुरम्बिके।
तिष्ठ तिष्ठ च युद्ध्यस्व त्वया किं गम्यते कुतः॥ ३६॥

यदर्थं गमनं तत्र तन्नीतं स्वामिनावयोः।
नोचेद्योद्धुं समर्थोऽसि तद्गच्छस्व गृहं स्वकम्॥ ३७॥

इति श्रुत्वेरितं देवि संग्रामः समवर्त्तत।
हत्वा च तौ यातुधानौ तद्देशं तु भगीरथः॥
जगाम तेन मार्गेण पातालं दितिजालयम्॥ ३८॥

तस्य राज्ञश्च तेषां च संग्रामः समवर्त्तत।
शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तत्र युयुधुर्दितिजात्मजाः॥ ३९॥

इति तस्मिस्तु संग्रामे सप्त मासास्तदाऽभवन्।
मासेऽष्टमे तु सम्प्राप्ते हताः केचिद् गताः क्वचित्॥ ४०॥

तेन राज्ञा महेशानि नाशितं राक्षसं कुलम्।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श स्त्रियमेकलाम्॥ ४१॥

तन्वङ्गीं चारुसर्वांगीं कामस्येव रतिं यथा।
तं दृष्ट्वा सापि सुमुखी स्मेरं चक्रे शुभानना॥ ४२॥

पाताल लोक में गई हुई रत्नरूप होकर वह स्थित है। हे प्रभो ! शुभ कामों में अनेक विघ्न होते हैं, तुम खेद मत करो ॥ ३१ ॥

हे महाराज ! महीपते ! सब अच्छा ही होगा। उसी मार्ग से आप भी चले जाओ, जहां वे असुर स्थित हैं ॥ ३२ ॥

उस युद्ध में अजेय साहसी एकत्र हुए दानवों को तुम मार डालो। उस बिल को बन्द करके गंगा जी को पाताल से ही पितृलोक को ले जाओ ॥ ३३ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे महेशानि ! उस राजा भगीरथ ने यह सुनकर उस मुनि को प्रणाम कर उस तालाब में प्रवेश किया ॥ ३४ ॥

उस बिल में राजा ने काले रंग के बलवान् दो पुरुषों को देखा। उनका कद छोटा था और मुद्गर उनके हाथों में विराजमान थे ॥ ३५ ॥

हे अम्बिके ! राजा के वहाँ आने पर उन्होंने कहा—"ठहरो ! ठहरो ! तुम कहाँ जा रहे हो, युद्ध करो" ॥ ३६ ॥

जिसके लिए तुम वहाँ जा रहे हो, उसको हमारे स्वामी ले गये हैं। यदि तुम युद्ध के लिए समर्थ नहीं हो तो अपने घर को लौट जाओ ॥ ३७ ॥

हे देवि ! इस कथन को सुनते ही संग्राम आरम्भ हो गया। उन दोनों का वहीं वध करके राजा भगीरथ उसी स्थान से दैत्यों के निवास स्थान पाताल को गये ॥ ३८ ॥

उस राजा और उन दैत्यों का संग्राम हुआ। दैत्यों ने अनेक शस्त्र-अस्त्रों से भगीरथ के साथ युद्ध किया ॥ ३९ ॥

इस प्रकार उस संग्राम में सात महीने का समय हो गया। आठवें महीने में कुछ दैत्य मारे गये और कुछ भाग गये ॥ ४० ॥

हे महेशानि ! उस राजा ने राक्षस कुल का नाश किया। इसी काल में वहाँ उस राजा ने एक अकेली स्त्री को देखा ॥ ४१ ॥

वह पतली, सुन्दर अंगवाली कामदेव की पत्नी रति के समान थी। राजा को देखकर उस सुमुखी ने मन्द मुस्करा दिया ॥ ४२ ॥

कामबाणाभिसंतप्ता बभूव सहसा तथा ।
तां तत्र तादृशीं दृष्ट्वा रूपेणाप्रतिमां भुवि ॥ ४३ ॥

उवाच का त्वं सुश्रोणि कस्य भार्या च कन्यका ।
सर्वं ब्रूहि समासेन के चेमे दानवा हताः ॥ ४४ ॥

स्त्र्युवाच—

शृणु राजन् यथा वृत्तं मम चैषां महीपते ।
यथागताऽत्र भगवन्नहं वै राजकन्यका ॥ ४५ ॥

निवातकवचा नाम दानवा युद्धदुर्मदाः ।
गताः पूर्वं मर्त्यलोके शूराणां च दिदृक्षया ॥ ४६ ॥

प्रतिष्ठाने पुरे राजा नाम्ना सम्वरणो नृपः ।
पिता मम स्थितो गेहे नारीभिः परिवारितः ॥ ४७ ॥

वसन्तसमये प्राप्ते गृहोद्याने महीपते ।
तस्मिन्नेव पुरे गत्वा युद्धाय कृतनिश्चयाः । ४८ ॥

आगताऽहं स्वहर्म्ये हि द्रष्टुमेतांस्तु दानवान् ।
अवमन्य स्थितो राजा श्रुत्वा ह्यं तान्समागतान् ॥ ४९ ॥

तेऽपि श्रुत्वा स्त्रीयुतं तं मां धृत्वैकाकिनीं ततः ।
आगतास्ते तदा राजन्नत्र पातालवेश्मनि ॥ ५० ॥

नाम्ना मनोहरी ख्याता तदाद्यत्र समास्थिता ।
एभिर्वै छन्दमानापि शयनेऽहं गता न वै ॥ ५१ ॥

पूर्वमेव श्रुतस्त्वं हि विख्यातबलविक्रमः ।
गंगां नेतुं समायातः कैलासे त्र्यम्बकालये ॥ ५२ ॥

मयोक्तं हि यदा गंगामस्मिन्देशे नयिष्यथ ।
वृणे युष्माकमेकं तु तदा सेवागमो भवेत् ॥ ५३ ॥

मयोक्तं वचनं श्रुत्वा यतमानास्तदर्थकम् ।
सम्प्राप्त दूतवचनैः श्रुत्त्वा गंगानयनं नृपम् ॥ ५४ ॥

वह वहाँ कामदेव के बाणों से सहसा सन्तप्त हो गई। उसे कामातुर अवस्था में देखकर, जो भूमि पर अप्रतिम रूपवती थी, राजा ने पूछा। हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो, और किसकी कन्या हो ?

और ये दानव कौन थे, जिनका हमने बध किया ? वह सब संक्षेप में कहो ॥ ४३–४४ ॥

स्त्री ने कहा—

हे राजन् ! महीपते ! मेरा तथा इन दानवों का समस्त वृत्तान्त सुनो। हे भगवन् ! मैं राजकन्या जैसे यहाँ आई हूँ, सब सुनो ॥ ४५ ॥

युद्ध में दुर्जेय निवातकवच नामक दानव पूर्व काल में वीरों को देखने के लिए मर्त्यलोक में गये ॥ ४६ ॥

प्रतिष्ठानपुर में मेरा पिता सम्वरण नाम का राजा अपनी स्त्रियों से घिरा हुआ घर पर स्थित था ॥ ४७ ॥

हे महीपते ! वसन्त ऋतु आने पर अपने घर उद्यान में वह राजा बैठा था। उसी काल में वे दानव युद्ध का निश्चय कर उस पुर को गये ॥ ४८ ॥

आते हुये इन दानवों को देखने के लिए मैं भी अपने मकान के ऊपर चली गई। इनका आना सुनकर भी राजा ने इनकी अवज्ञा की और बैठा ही रहा ॥ ४९ ॥

हे राजन् ! उन्होंने जब यह सुना कि राजा अपनी स्त्रियों से घिरा बैठा हुआ है, तब वे मुझ अकेली को इस पाताल लोक में ले आये ॥ ५० ॥

मेरा नाम मनोहरी प्रसिद्ध है। तब से मैं यहाँ स्थित हूँ। इनके द्वारा चाहने पर भी मैं कभी इनके पलंग पर नहीं सोई हूँ ॥ ५१ ॥

आपके बल-विक्रम की ख्याति मैंने पहले ही सुनी थी, जब आप गंगा को लाने के लिए शंकर के स्थान कैलास पर्वत पर आये थे ॥ ५२ ॥

मैंने भी उनको कहा था जब तुम गंगा को इस प्रान्त में लाओगे तब मैं तुम्हारी सेवा के लिए एक का वरण करूँगी ॥ ५३ ॥

मेरे इन वचनों को सुनकर वे मेरे लिए प्रयत्नशील हुये। उन दानवों ने दूतों के मुख से गंगा को लाने के लिए आपका आगमन सुना ॥ ५४ ॥

आनीतेयं मदर्थं तैर्गंगा परमपाविनी।
त्वदर्थमेव सर्वोऽयमुद्यमस्तु मया कृतः॥ ५५॥

हतास्तेऽपि दुरात्मामो यैर्हृता पितुरालयात्।
मनोऽभिलषित जातं मम त्वं मिलितो यतः॥ ५६॥

जातो हि प्रवरे वंशे इक्ष्वाकोर्वै महात्मनः।
पराक्रमं च वंशं सर्वं जानाम्यहं तव॥ ५७॥

मां वृणीष्व महाराज जिताऽस्मि तव सुन्दर।
वंशं सम्बरणस्यापि जानासि प्रकटं नृप॥ ५८॥

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा निगदितं तस्याः परमविस्मितः।
वेदोक्तविधिना तत्र तां संगृह्य मनोहरीम्॥ ५९॥

आययौ तेन मार्गेण तस्मिन्नेव सरोवरे।
महाशिलां समानीय रन्ध्रमाच्छाद्य सत्वरम्॥ ६०॥

गृहीत्वा तं प्रहारं च पुनरग्रे ययौ नृपः।
विदारयन्नगगणान्मुद्गरेण समन्ततः॥ ६१॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने
मनोहरीलाभो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

जह्नोराश्रमे गङ्गाया तत्पूजासम्भारकुशादीनां स्ववेगेनापहरणं जह्नुना चुलुकीकृत्य गङ्गायाः पानं, भगीरथप्रार्थनया मुनिना स्वजंघाप्रदेशमार्गेण गङ्गायाः बहिर्निष्कासनम्

ईश्वर उवाच—

प्राप्य गंगां पुनः राजा ययौ भूमिं हिरण्मयीम्।
रम्यां करतलप्रख्यां त्रिशतायामविस्तृताम्॥ १॥

वे इस परम पावनी गंगा को मेरे लिए यहां लाये। आपके लिए ही यह सारा उद्यम मैंने किया था ॥ ५५ ॥

जिनके द्वारा पिता के घर से मेरा अपहरण किया गया था, उन दानवों को आपने मार डाला है। मुझे आप मिल गये हैं। मेरी सभी अभिलाषायें पूर्ण हो गई हैं ॥ ५६ ॥

आपका जन्म महात्मा इक्ष्वाकु के पवित्र श्रेष्ठ वंश में हुआ है। आपके सब पराक्रम और वंश को मैं जानती हूँ ॥ ५७ ॥

हे महाराज ! आप मेरे साथ विवाह करो, क्योंकि हे सुन्दर ! आपने मुझे जीत लिया है। हे राजन् ! सम्वरण के वंश को भी आप प्रकट रूप से जानते ही हैं ॥ ५८ ॥

ईश्वर ने कहा—

उसके इस प्रकार के वचन सुनकर राजा अति विस्मित हुआ। और वहां वेदोक्त विधि से राजा ने उस मनोहरी के साथ विवाह किया ॥ ५९ ॥

एक विशाल शिला से उस बिल को बन्द करके जल्दी ही वह राजा उसी मार्ग से स्वच्छोद सरोवर पर आये ॥ ६० ॥

और उन दानवों के मुद्‌गरों को लेकर राजा आगे गया और उनसे पर्वत मालाओं पर चारों ओर से प्रहार कर उन्हें विदीर्ण करने लगा ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भगीरथोपाख्यान
में मनोहरी-लाभ नाम का छत्तीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ३७

जह्नु के आश्रम में गंगा द्वारा उनकी पूजा-सामग्री कुश आदि का अपने वेग से बहा ले जाना, जह्नु द्वारा चुल्लू में लेकर गंगा को पी लेना, भगीरथ की प्रार्थना पर जह्नु द्वारा अपनी जांघ के प्रदेश से गंगा को बाहर निकालना

ईश्वर ने कहा—

फिर राजा गंगा को प्राप्त कर स्वर्णिम भूमि को गये जो सुरम्य और समतल थी एवं तीन सौ योजन विस्तृत थी ॥ १ ॥

नानाजनपदाढ्यां च सिद्धचारणसेविताम् ।
यत्र सन्ति महावृक्षाः मधुद्रोणफलाः प्रिये ॥ २ ॥

नद्यः क्षीरवहाः सर्वाः शिवलिंगैर्विभूषिताः ।
सरांसि यत्र राजन्ते महान्ति स्वर्णकुक्कुटैः ॥ ३ ॥

राजहंसैस्तथाऽन्यैश्च वन्यैः स्वेणैस्तथा मृगैः ।
तस्मिन्देशे महादेवि स्वर्णभूमौ महाप्रिये ॥ ४ ॥

गंगा सरिद्वरा तत्र रौप्यरेखेव सुन्दरी ।
भगीरथो महातेजाः सूर्यवंशविवर्द्धनः ॥ ५ ॥

पश्यन्वनानि चित्राणि सुगन्धीनि सरांसि च ।
सोमकूटगिरौ राजा आययौ क्रमशस्ततः ॥ ६ ॥

अग्रे दृष्ट्वा समाधिस्थं जह्नुं राजर्षिसत्तमम् ।
प्रणनाम न हे देवि राजा वेगसमन्वितः ॥ ७ ॥

गंगापि सहसागत्य उवाह कुशकण्डिकाम् ।
जह्नोराश्रमनिकटे[1] नानावृक्षसमाकुले ॥ ८ ॥

आययौ सा महादेवि गंगा परमपाविनी ।
जह्नोः पूजोपचारं वै उवाह सहसा ततः ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा तत्कर्म गंगाया जह्नू राजर्षिसत्तमम् ।
चुकोप परमक्रुद्धो निर्जग्राह कराम्बुजे ॥ १० ॥

कृत्वाऽऽचमनवत्तत्र गंगां त्रैलोक्यपाविनीम् ।
स्थितः पुनः समाधौ च जह्नू राजर्षिसत्तमः ॥ ११ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं तदा राजा भगीरथः ।
मुखेन शुष्यता तत्र तस्थौ वाष्पसमाकुलः ॥ १२ ॥

हाहाकृतः क्व यास्यामि किं कृतं मे हि कर्मणा ।
ययौ तत्रैव राजा तु जह्नोराश्रममंडले ॥ १३ ॥

---

१ ''जह्नो······सहसा ततः'' पाठ इसमें नहीं है ।

अनेक जनपद वहां थे। सिद्ध और चारण वहां निवास करते थे। हे प्रिये ! यहाँ बड़े-बड़े वृक्ष थे, जिन पर शहद से भरे बड़े फल लगते थे ।। २ ।।

वहाँ दुग्ध पूरित नदियाँ बहती थीं। अनेक शिवलिंग वहाँ विराजमान थे। वहाँ सुनहरे कुक्कुटों से महान् सरोवर सुशोभित थे ।। ३ ।।

हे महादेवि महाप्रिये ! उस स्वर्ण भूमि में राजहंस, सुन्दर कृष्णमृग अन्य मृग और अन्य वनचर जीव सुशोभित हो रहे थे ।। ४ ।।

उस सुवर्ण धरा में श्रेष्ठ गंगा नदी चांदी की रेखा के समान सुशोभित होने लगी। सूर्यवंश को बढ़ाने वाले महातेजस्वी राजा भगीरथ ।। ५ ।।

सुगन्धित एवं विचित्र वनों और तालाबों को देखते हुए तदनन्तर वह राजा क्रमशः सोमकूट पर्वत पर आये ।। ६ ।।

सामने समाधिस्थ हुए श्रेष्ठ रार्जषि जह्नु को देखकर—हे देवि ! वेग से जाते हुए उस राजा ने ऋषि को प्रणाम नहीं किया ।। ७ ।।

अनेक विविध वृक्षों से भरे हुये जह्नु ऋषि के आश्रम के निकट सहसा आकर गंगा ने उनकी कुश-कंडिका को बहा दिया ।। ८ ।।

हे महादेवि ! परम पाविनी वह गंगा वहां आई और तदनन्तर सहसा उसने ऋषि की पूजा-सामग्री को बहा दिया ।। ६ ।।

गंगा के इस काम को देख कर श्रेष्ठ रार्जषि जह्नु ने अत्यन्त क्रोध किया। उसने गंगा को अपने करकमल में ग्रहण कर लिया ।। १० ।।

तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा जी को आचमन करके पी लिया। तदनन्तर रार्जषियों में श्रेष्ठ जह्नु ऋषि पुनः समाधिस्थ हो गये ।। ११ ।।

यह देखकर राजा भगीरथ को परम आश्चर्य हुआ। उस समय उनका मुख सूख गया तथा आँखों में आँसू भर कर वे वहीं बैठ गये ।। १२ ।।

हा-हा करते हुये, मैं कहाँ जाऊँगा, मेरे कर्मों के द्वारा यह क्या किया गया, राजा वहां जह्नु के आश्रम में गये ।। १३ ।।

दृष्ट्वा जह्नु महाराजं द्योतयंतं दिशस्ततः ।
दण्डवत्पतितो भूमौ पुनः पुनरुदारधीः ॥ १४ ॥

एकपादेन च पुनस्तस्थिवांश्च भगीरथः ।
इति तस्य च राजर्षेः स्थितमग्रे स्थितस्य हि ॥ १५ ॥

एकदा स मुनिर्भूपं समाद्ध्यन्ते ददर्श तम् ।
पुनः पुनः प्रणामांश्च कुर्वन्तं तु भगीरथम् ॥
उवाच भक्तिसम्पन्नं प्रणमन्तं पुनः पुनः ॥ १६ ॥

जह्नुरुवाच—

कस्त्वं पुरुषशार्दूल सिंहव्याघ्रनिषेविते ।
वने झिल्लीगणाह्लादे नानाधातुविचित्रिते ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा वेपमानः कृताञ्जलिः ।
उवाच सहसा त्रस्तो जह्नु चैव तपोधनम् ॥ १८ ॥

भगीरथ उवाच—

अहं भगीरथो नाम सगरस्यातमसम्भवः ।
सगरो नाम मे पूर्वं पितामहपिता स्थितः ॥ १९ ॥

अश्वमेधस्य कर्ता यो विख्यातबलविक्रमः ।
श्रुतो भवेत्कदाचित्तु त्वया भगवता क्वचित् ॥ २० ॥

द्वाभ्यां तद्धर्मपत्नीभ्यां जाता एकोत्तरं सुताः ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि महाबलपराक्रमाः ॥ २१ ॥

एकस्मिन्नश्वमेधे तु हयो यज्ञहविः श्रुतः ।
चोरितो वासवेनाशु स्थापितः कपिला मे ॥ २२ ॥

अन्वेषभाणा यज्ञीयं ययुस्ते वरुणालये ।
खातयित्वा च तां भूमिं पाताले कपिलाश्रये ॥ २३ ॥

दिशाओं को अपनी ज्योति से प्रदीप्त करते हुये जह्नु ऋषि को देखकर उदार चित्त उस राजा ने भूमि में नतमस्तक हो पुनः-पुनः ऋषि के लिए दण्डवत् प्रमाण किया ।। १४ ।।

फिर राजा भगीरथ एक पैर से खड़े हो गये । इस प्रकार समाधिस्थ वे राजर्षि जह्नु के आगे खड़े हो गये ।। १५ ।।

एक दिन समाधि के अन्त में मुनि ने पुनः-पुनः प्रणाम करते हुये उस राजा भगीरथ को देखा । भक्ति से सम्पन्न एवं पुनः-पुनः प्रणाम करते हुये भगीरथ को ऋषि ने कहा···।। १६ ।।

जह्नु ने कहा—

हे पुरुषसिंह ! सिंहों और व्याघ्रों से भरे नाना प्रकार की चित्र-विचित्र धातुओं से व्याप्त और झिल्लीगण की झंकार से झंकृत वन में तुम कौन हो? ।। १७ ।।

ईश्वर ने कहा—

उनके इस वचन को सुनकर कांपता हुआ हाथ जोड़कर खड़ा हुआ, दुःखी वह राजा भगीरथ सहसा उस जह्नु तपस्वी को कहने लगा ।। १८ ।।

भगीरथ ने कहा—

मैं सगर के पुत्रों का पुत्र हूँ । भगीरथ मेरा नाम है । पहले सगर नाम के राजा मेरे पितामह थे ।। १९ ।।

वे अश्वमेध यज्ञ करने वाले थे । उनका बल-विक्रम सर्वत्र विख्यात था कदाचित् आपने भी उनके विषय में सुना होगा ।। २० ।।

उनकी दो धर्मपत्नियों ने महाबली पराक्रमी साठ हजार एक पुत्रों को जन्म दिया ।। २१ ।।

एक अश्वमेध यज्ञ में यज्ञ के घोड़े को इन्द्र ने शीघ्र चुरा लिया और कपिल ऋषि के आश्रम में बांध दिया ।। २२ ।।

वे साठ हजार राजकुमार उस यज्ञ के घोड़े को खोजते-खोजते वरुण लोक को गये और उस भूमि को खोदकर पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे ।। २३ ।।

मेनिरे तं हयं दृष्ट्वा पृष्ठस्थं कपिलं तदा ।
चौरोऽयं बध्यतां शीघ्रं बब्रुस्ते दुष्टबुद्धयः ॥ २४ ॥

दृष्ट्वैव तेन मुनिना भस्मनीताः पितामहाः ।
नप्ता राज्ञो बाहुजस्य अंशुमान् दृढविक्रमः ॥ २५ ॥

विनयाविष्टहृदयो ववंदे चरणौ मुनेः ।
तेषां गतिं याचितवान् पितृव्यानां दुरात्मनाम् ॥ २६ ॥

प्रसन्नश्चाभवत्सोऽपि कपिलो भगवान्मुनिः ।
यदा वः कुलसंजातो गंगामत्रानयिष्यति ॥ २७ ॥

तदा मच्छापनिर्दग्धा यास्यंति परमां गतिम् ।
एवं परम्पराप्राप्तं श्रुतमेतन्मया विभो ॥ २८ ॥

भवादृशानां कृपया नीता सा पितृमुक्तये ।
सा त्वया भगवन्नीता हृदये पावनी परा ॥ २९ ॥

किं कर्तव्यं मयेदानीं क्व गच्छामि करोमि किम् ।
कथं मे मरणं नाथ भविष्यति वद प्रभो ॥ ३० ॥

मन्दभाग्यान्मया प्राप्तं दुःखमेतन्मुनीश्वर ।
हा हतोऽस्मि न गच्छामि तां विना स्वगृहं मुने ॥ ३१ ॥

ईश्वर उवाच—

निशम्येदं वचो राज्ञो जह्नुर्वै मुनिपुँगवः ।
कृपाविष्टमना देवि प्रोवाच वचनं नृपम् ॥ ३२ ॥

जह्नुरुवाच—

शृणु राजन् समाधौ मे विघ्नं वै अनया कृतम् ॥
उपचारादिकं सर्वं तस्मादेवाहितं नृप ॥ ३३ ॥

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य ते मतिरीदृशी ।
पितृभक्तिरतो दांतो देवतानां च पूजकः ॥ ३४ ॥

प्रसन्नोऽस्मि दमेन त्वत्प्रश्रयेण नयेन च ॥
पुनरेतादृशं कर्म न विधेयं क्वचित्त्वया ॥ ३५ ॥

वहां कपिल ऋषि के पीछे घोड़े को बंधे देखकर कपिल को ही उन्होंने चोर माना । यह चोर है, इसे शीघ्र बांधो, इस प्रकार उन नष्ट बुद्धियों ने कहा ॥ २४ ॥

उस मुनि ने दृष्टिमात्र से ही मेरे पितामहों को भस्म कर दिया । तदनन्तर राजा सगर के पौत्र दृढ़ विक्रम अंशुमान् ने···॥ २५ ॥

विनयान्वित हो मुनि के चरणों की वन्दना की और अपने दुरात्मा पितृव्यों की उत्तम गति की याचना की ॥ २६ ॥

अंशुमान् की प्रार्थना से वे भगवन् कपिल मुनि प्रसन्न हुये । उन्होंने कहा कि जब आपके कुल में उत्पन्न लोगों के द्वारा स्वर्गलोक से गंगा मर्त्य लोक में लाई जायेगी ॥ २७ ॥

तब मेरे शाप से भस्मीभूत हुये ये साठ हजार राजकुमार परमगति को प्राप्त होंगे । हे विभो ! परम्परागत यह वृत्तान्त मैंने सुन रखा था ॥ २८ ॥

आप जैसे महात्माओं की कृपा से पितरों की मुक्ति के लिए मैं गंगा जी को लाया हूँ । हे भगवन् ! उस परम पावनी गंगा को आपने हृदय में धारण कर लिया है ॥ २९ ॥

इस समय मुझे क्या करना चाहिए, क्या करूँ कहाँ जाऊँ ? हे प्रभो ! नाथ ! आप बताओ, मेरा मरण किस प्रकार होगा ॥ ३० ॥

हे मुनीश्वर ! अभाग्य से यह महान् दुःख प्राप्त हुआ है । हे मुने ! मैं मारा गया । मैं बिना गंगा को लिए घर नहीं जाऊँगा ॥ ३१ ॥

ईश्वर ने कहा —

हे देवि ! मुनियों में श्रेष्ठ जह्नु ने राजा के इस प्रकार के वचन सुनकर करुणा से युक्त मन होकर राजा से यह वचन कहा ॥ ३२ ॥

जह्नु ने कहा—

हे राजन् ! सुनो । इस गंगा ने मेरी समाधि में विघ्न किया और हे नृप ! मेरी औपचारिक सम्पूर्ण सामग्री बहा दी । इसलिए इसे मैंने आचमन कर लिया ॥ ३३ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम धन्य हो, जो कि तुम्हारी मति इस प्रकार है । तुम पितृ भक्ति में निरत, इन्द्रियों को दमन करने वाले और देवताओं के पूजक हो ॥ ३४ ॥

मैं तुम्हारे मनोविग्रह, इन्द्रिदमन, नम्रस्वभाव और नीतिपूर्ण आचरण से प्रसन्न हूँ । पुनः इस प्रकार का कर्म आपको कदापि नहीं करना चाहिए ॥ ३५ ॥

अप्रमत्तेन गन्तव्यं गंगामानी यसत्वरम् ।
अतः परं महाराज मन्नाम्नीयं भविष्यति ।। ३६ ।।

जाह्नवीति[1] समाख्याता कन्या मे पापनाशिनी ।
कीर्तिस्तवादि राजेन्द्र महती संभविष्यति ।। ३७ ।।

मुंचामि जानुना देवीं विनयेन तवाधुना ।
यस्या दर्शनमात्रेण सर्वपापं विनश्यति ।। ३८ ।।

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो जानुदेशात्पुनर्ददौ ।
गंगाप्रवाहं पापघ्नं कन्येति कथितं पुनः ।। ३९ ।।

सोऽपि राजा महाबाहुः परिक्रम्य प्रणम्य च ।
तां प्राप्य संययावग्रे चक्रैकेन रथेन हि ।। ४० ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने गंगानयने
जह्नुपाख्यानं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अष्टात्रिंशोऽध्याय

गङ्गासहस्रनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच—

पुनः राजा महाबाहुर्नन्दनाद्रिसमीपगे ।
वासुकिप्रमुखान्नागांस्तपस्तप्तुं समास्थितान् ।। १ ।।

तमेवार्थं चिन्तमानान् शिवसंन्यस्तमानसान् ।
कीर्त्तमानान् हि गंगेति गंगागंगेति वा पुनः ।। २ ।।

तस्मिन्नेव स्थले रम्ये ददर्श मुक्तिलालसान् ।
दृष्ट्वा तान्विस्मयाविष्टो गंगां स्तोतुं मनो दधे ।। ३ ।।

---

१. जाह्नवीति······संभविष्यति" पाठ इसमें नहीं है ।

शीघ्र ही गंगा को लेकर अब आपको सावधानी से जाना चाहिए। हे महाराज ! इसके वाद मेरे नाम से भी यह गंगा प्रसिद्ध होगी ॥ ३६ ॥

पापों का विनाश करने वाली मेरी यह कन्या जाह्नवी नाम से प्रसिद्ध होगी। हे राजेन्द्र ! अब से लेकर तुम्हारी महान् कीर्ति प्रसरित होगी ॥ ३७ ॥

इस समय आपकी प्रार्थना से देवी गंगा को मैं छोड़ूँगा, जिसके मात्र दर्शन करने से सब पाप नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

ईश्वर ने कहा—

मुनियों में श्रेष्ठ मुनि जह्नु ने यह कहकर अपने जानु से पुनः गंगा को राजा भगीरथ को दे दिया। फिर गंगा के पापनाशक प्रवाह को कन्या कहकर सम्बोधित किया ॥ ३९ ॥

बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले उस राजा भगीरथ ने गंगा को प्राप्त कर मुनि जह्नु की परिक्रमा कर और उन्हें प्रणाम करके एक चक्र रथ के द्वारा आगे को चलना आरम्भ किया ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भगीरथोपाख्यान में गंगानयन में जह्नु उपाख्यान नाम का सैंतीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ३८

गंगासहस्रनाम स्तोत्र

ईश्वर ने कहा—

फिर महाबाहु राजा भगीरथ ने नन्दन पर्वत के समीप तपस्या करने के लिए उपस्थित वासुकि आदि प्रमुख नागों को देखा ॥ १ ॥

वे शंकर भगवान् में अपनी चित्तवृत्ति को लगाये हुए, उसी गंगा रूप अर्थ को विचारते हुए पुनः-पुनः गंगा-गंगा कहकर कीर्तन कर रहे थे ॥ २ ॥

उसी सुरम्य स्थल में मुक्ति की लालसा करते हुए उन नागों को भगीरथ ने देखा। उनको देखकर विस्मयान्वित होकर वह गंगा की स्तुति करने का विचार करने लगा ॥ ३ ॥

चिन्तयाभास बहुधा किं कर्तव्यमतः परम् ।
पाताले नागनिलये नयिष्यन्ति सरिद्वराम् ।। ४ ।।

किं कर्त्तव्यं क्व गच्छामि को मे दुःखं निवारयेत् ।
इति वै चिन्तमानोऽसौ तुष्टाव च सरिद्वराम् ।। ५ ।।

नाम्नां सहस्रमाख्यातं गंगायास्तत्र पार्वति ।
दिव्यरूपधरा देवी प्रत्यक्षं प्राह तं नृपम् ।। ६ ।।

पार्वत्युवाच —

देवदेव महादेव भक्तानां प्रीतिवर्द्धन ।
कानि नामानि प्रोक्तानि तेन राज्ञा महात्माना ।। ७ ।।

सहस्रनाम गंगायाः स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।
वद मे देवशार्दूल भक्तास्मि सततं प्रिया ।। ८ ।।

ईश्वर उवाच—

साधु साधु महादेवि पृष्टं नामामृतं त्वया ।
गुह्याद् गुह्यतरं स्तोत्र प्रवक्ष्यामि समासतः ।। ९ ।।

यस्य स्मरणमात्रेण नरो वै शिवतां व्रजेत् ।
पठनाल्लिखनाच्चैव पूजनात्किं न जायते ।। १० ।।

श्लोकमेकं पठित्वाऽपि गंगायाः शतयोजने ।
गंगास्नानफलं सद्यः प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।। ११ ।।

सहस्रनामस्तोत्रस्य भगीरथ ऋषिर्मतः ।
छन्दोऽनुष्टुप् तथाख्यातं गंगा वै देवता मता ।। १२ ।।

सर्वतः पापनाशार्थं सर्वकामार्थसिद्धये ।
अक्षयस्वर्गकामाय विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।। १३ ।।

गंगा सरिद्वरा विष्णुपादाम्बुजजनिः परा ।
शिवशेखरसंवासा ब्रह्मणः कलशस्थिता ।। १४ ।।

अब मुझे क्या करना चाहिए, ये नाग इस श्रेष्ठ नदी गंगा को पाताल में स्थित नागलोक में ले जायेंगे, इस प्रकार राजा बहुत चिन्ता करने लगा ॥ ४ ॥

मुझे क्या करना चाहिए, कहाँ जाऊँ कौन ऐसा होगा जो मेरा दुःख दूर कर सकेगा । इस प्रकार विचारते हुए उस राजा ने श्रेष्ठ नदी गंगा की स्तुति की ॥ ५ ॥

हे पार्वति ! उस समय राजा ने गंगा जी के सहस्र नामों का कीर्तन किया । तब दिव्य रूप धारण करके गंगा देवी ने उस राजा भगीरथ से कहा ॥ ६ ॥

पार्वती ने कहा—

हे देवाधिदेव ! महादेव ! आप भक्तों के प्रेम को बढ़ाने वाले हैं । उस महात्मा राजा भगीरथ ने गंगा के कौन से नाम कहे ॥ ७ ॥

गंगा का सहस्रनाम स्तोत्र परम दुर्लभ है । हे श्रेष्ठ देवता ! उसे मुझसे कहो, क्योंकि मैं आपकी प्रिया आपकी परम भक्त हूँ ॥ ८ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे पार्वति ! साधु-साधु । आपके द्वारा पूछा गया गंगासहस्र नाम स्तोत्र यद्यपि अत्यन्त गोपनीय है, तथापि मैं संक्षेप में इस स्तोत्र को आपसे कहूँगा ॥ ९ ॥

जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य शिवत्व को प्राप्त हो जाता है, तो इसके पढ़ने, लिखने और पूजन करने से क्या नहीं मिल सकता ? ॥ १० ॥

गंगा के सौ योजन दूर से एक श्लोक के पाठ करने से सद्यः गंगास्नान का फल निःसन्देह प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

गंगासहस्र नाम के भगीरथ ऋषि, अनुष्टुप छन्द और गंगा देवता हैं ॥ १२ ॥

समस्त पापों के नाश के लिए, सब कामों की सिद्धि के लिए और अक्षय स्वर्ग की कामना के लिए इसका प्रयोग (विनियोग) कीर्तन किया गया है ॥ १३ ॥

गंगा सरिद्वरा (सब नदियों में श्रेष्ठ), विष्णुपादम्बुजजनिः (विष्णु के चरण कमलों से उत्पन्न), परा (सर्वोत्तम), शिवशेखरसंवासा (महादेव के सिर में विराजमान रहने वाली), ब्रह्मण कलशस्थिता (ब्रह्मा के कलश में स्थित) ॥ १४ ॥

आकाशगामिनी भद्रा चतुरात्मा प्रवाहिनी ।
ब्रह्मरन्ध्रसमुद्भूता ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनी ।। १५ ।।

ब्रह्मरन्ध्रधरा धेनुः सर्वकामार्थदायिनी ।
ब्रह्माण्डोद्भेदनपरा परब्रह्मधरा परा ।। १६ ।।

द्रवरूपधरा चैव शिवसंगमदायिनी ।
मुक्तिदा भुक्तिदाऽनंगा शत्रुदावानलात्मिका ।। १७ ।।

अनंगांगी त्रिमूर्तिश्च ब्रह्माणी कमला स्थिता ।
सरस्वती च सावित्री जयसेना जयात्मिका ।। १८ ।।

जयभद्रा वैष्णवी च चिच्छक्तिः परमेश्वरी ।
त्रयी वेदवदान्या च मेदिनी मेदिनीधरा ।। १९ ।।

वेदमूर्तिस्त्रिमूर्तिश्च देवमूर्तिर्दयापरा ।
दामिनी दामिनीवासा कुलिशा कुलिशप्रिया ।। २० ।।

कुलिशांगी कुलांगी च कुलनाथकुटुम्बिनी ।
कुलीना सुभगा भाग्या भागगम्या यशोमती ।। २१ ।।

कला कलाधरधरा कलाधरशतप्रिया ।
षोडशी षोडशाराध्या षोढान्याससहायिनी ।। २२ ।।

षोठा समासनिलया षोढांगी कालरूपिणी ।
कालिका मुण्डमाला च कालाना शतनाशिनी ।। २३ ।।

कालांगी कालनिलया काली कालेश्वरी वरा ।
शैवी माया शिवा रुण्डा चण्डमुण्डविनाशिनी ।। २४ ।।

चंडाट्टहासा दुर्गम्या चण्डानां प्रीतिवर्द्धिनी ।
चण्डेश्वरी महाप्राज्ञा प्रज्ञा धीः सिद्धिदायिनी ।। २५ ।।

लक्षलाभस्य जननी शतलाभा सुरेश्वरी ।
कौमारी शक्तिरुद्दिष्टा क्रौंचदैत्यविनाशिनी ।। २६ ।।

आकाशगामिनी, भद्रा (कल्याणमूर्ति), चतुरात्मा, प्रवाहिनी, ब्रह्मरन्ध्रसमुद्‌भूता, ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनी ॥ १५ ॥

ब्रह्मरन्ध्रधरा, धेनु, समस्त कामनाओं और अर्थों को देने वाली, ब्रह्माण्ड का भेदन करने वाली, परब्रह्म को धारण करने वाली, परा ॥ १६ ॥

द्रवरूप को धारण करने वाली, शिव के सामीप्य को देने वाली, मुक्ति को देने वाली, भुक्ति को देने वाली, अंगरहित, शत्रुओं के लिए दावानल रूपा ॥ १७ ॥

अनंग-अंगी, ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी, ब्रह्माणी, कमल में रहने वाली, सरस्वती, सावित्री, जयसेना, जय की आत्मरूपा ॥ १८ ॥

जयभद्रा, वैष्णवी, चित् शक्ति, परमेश्वरी,ऋग्यजु:सामवेदादिरूपा, मेदिनी, मेदिनी को धारण करने वाली ॥ १९ ॥

वेदमूर्ति, त्रिमूर्ति, देवमूर्ति, दयापरा, दामिनी, दामिनीवामा, कुलिशा, कुलिश प्रिया ॥ २० ॥

कुलिशांगी, कुलांगी कुलनाथ की भार्या, कुलीना, सुभगा, भाग्या भाग्यगम्या (भाग्य से प्राप्त होने वाले), यशोमती ॥ २१ ॥

कला, चन्द्रमा को धारण करने वाली, कलाधरशतप्रिया, षोडशी (सोलह कलायें), षोडशाराध्या, षोढा, न्याससहायिनी ॥ २२ ॥

षोढा, समासनिलया षोढांगी, कालरूपिणी, कालिका, मुण्डमाला, कालानां, शतनाशिनी ॥ २३ ॥

कालांगी, कालनिलया, काली, कालेश्वरी, वरा, शैवी, माया, शिवा, रूंडा चण्डमुण्डविनाशिनी (चामुण्डा) ॥ २४ ॥

चण्डाट्टहासा, दुर्गम्या, चण्डानांप्रीतिवर्द्धिनी, चण्डेश्वरी, महाप्राज्ञा, प्रज्ञा, धी:, सिद्धिदायिनी ॥ २५ ॥

लक्षलाभ की माता, शतलाभवाली, सुरेश्वरी, कौमारी शक्ति, क्रौंच दैत्य को मारने वाली ॥ २६ ॥

तारकासुरहंत्री च तारकामयगामिनी ।
तारकस्य परा शक्तिस्तारकाणां पतिप्रिया ।। २७ ।।

तारकेशपरा ज्योत्स्ना तारेशशतरूपिणी ।
नारायणी दयासिन्धुः सिन्धूत्तरनिवासिनी ।। २८ ।।

सिन्धुश्रेष्ठतमा भार्य्या रत्नदा रत्नहारिणी ।
जलन्धरस्य जननी जलन्धरविरूपिणी ।। २९ ।।

काममाता च कामघ्नी रतिरूपा शतप्रिया ।
भीष्ममाता महामोष्मा भीष्माणां प्रीतिवर्द्धिनी ।। ३० ।।

ज्वाला कराली तुंगेशी तुंगशेखरवासिनी ।
तुंगेश्वरसहाया च बदर्य्याश्रमवासिनी ।। ३१ ।।

श्रीक्षेत्रनिलया चैव द्वारस्था द्वारपालिनी ।
जाह्नवी जह्नुतनया नागालयनिवासिनी ।। ३२ ।।

नागानां जननी चैव नागप्रीतिविवर्द्धिनी ।
नागेश्वरसहाया च कैलाशनिलया तथा ।। ३३ ।।

महाप्रभा वरेण्या च वेदमाता विलासिनी ।
हरसंगरता चैव हरिपादविनिःसृता ।। ३४ ।।

अदितिश्च दितिश्चैव कद्रू च विनता तथा ।
सुरसा चाग्निगर्भा च रत्नगर्भा विभावरी ।। ३५ ।।

शारदी वै चन्द्रकला नलकूबरसेविता ।
अरिष्टनेमिदुहिता नहुषांगणवासिनी ।। ३६ ।।

शंतनोर्गृहिणी भव्या वसुमाता कृशोदरी ।
मत्स्योदरी सुराराध्या सुराणां प्रीतिदायिनी ।। ३७ ।।

यमुना चन्द्रभागा च शतद्रूः सरयूस्तथा ।
सरस्वती शुभामोदा नन्दनाद्रिनिवासिनी ।। ३८ ।।

तारकासुर को मारने वाली, तारकासुरगामिनी, तारक की महाशक्ति, तारकों की पतिप्रिया ॥ २७ ॥

तारकेशपरा, ज्योत्स्ना, तारेशशतरूपिणी, नारायणी, दयासिन्धुः सिन्धूत्तर-निवासिनी ॥ २८ ॥

सिन्धु की श्रेष्ठ भार्या, रत्नदा, रत्नहारिणी, जलन्धर की माता जलन्धर-विरुपणी ॥ २९ ॥

काममाता, कामघ्नी, रतिरूपा, शतप्रिया, भीष्ममाता महाभीष्मा, भीष्मों की प्रीति को बढ़ाने वाली ॥ ३० ॥

ज्वाला, कराली, तुंगेशी, तुंगशेखरवासिनी, तुंगेश्वरसहाया, बदरिकाश्रम में निवास करने वाली ॥ ३१ ॥

श्रीक्षेत्रनिलया, द्वारस्था, द्वारपालिनी, जाह्नवी, जह्नुतनया, नागालय में निवास करने वाली ॥ ३२ ॥

नागमाता, नागों की प्रीति बढ़ाने वाली, नागेश्वर की सहायिका, कैलास में निवास करने वाली ॥ ३३ ॥

महाप्रभा, वरेण्या, वेदमाता, विलासिनी, हरसंगरता, हरिपाद-विनि:सृता ॥ ३४ ॥

अदिति, दिति, कद्रू, विनता, सुरसा, अग्निगर्भा, रत्नगर्भा, विभावरी ॥ ३५ ॥

शारदी, चन्द्रकला, नलकूबरसेविता, अरिष्टनेमि की पुत्री, नहुषांग-णवासिनी ॥ ३६ ॥

शन्तनु की भार्या, भव्या, वसुमाता, कृशोदरी, मत्स्योदरी, सुरपूजिता, देवताओं को प्रीति देने वाली ॥ ३७ ॥

यमुना, चन्द्रभागा, शतद्रु, सरयू, सरस्वती, शुभामोदा, नन्दन गिरि निवासिनी ॥ ३८ ॥

नन्दप्रयागनिलया देवतीर्थनिवासिनी ।
रुद्राणी रुद्रसावित्री महाभैरवनादिनी ॥ ३९ ॥

भैरवी भीषणरवा भृगुतुंगनिवासिनी ।
केदारशिखरावासा महावलयवासिनी ॥ ४० ॥

तुंगभद्रा सुषेणा च मांधातृजयदायिनी ।
भूतभव्यपरा सर्वा खर्वगर्वा नृपेश्वरी ॥ ४१ ॥

भविष्यज्ञानदा भूतज्ञानदा वर्त्तमानदा ।
शुकस्य जननी सौम्या व्यासमाता सुरेश्वरी ॥ ४२ ॥

धारापातधराधीरा धैर्य्यदा शुभदायिनी ।
कंकणा कंकणप्रख्या शुभकंकणदायिनी ॥ ४३ ॥

कंकणैः पातकहरा प्रबला शत्रुनाशिनी ।
स्मरतां भुक्तिदा मुक्तिरूपा रूपविवर्जिता ॥ ४४ ॥

देवानीका देवसेव्या सेवारूपफलामला ।
कृतिका कार्तिकावासा कार्तिकस्नानदायिनी ॥ ४५ ॥

पुष्करा पुष्करावासा पुष्यप्रचयसुंदरी ।
मुनिसेव्या मुनिर्मेना मानवाकारधारिणी ॥ ४६ ॥

मैनाकशिखरावासा काशोपुरनिवासिनी ।
महाप्रयागनिलया तीर्थराजप्रसाधिनी ॥ ४७ ॥

अक्षया क्षयरूपा च संसारक्षयकारिणी ।
मृगशीर्षधरा मार्गशीर्षस्नानफलप्रदा ॥ ४८ ॥

पुष्यनक्षत्ररूपा च पौषेतीव फलप्रदा ।
माघी मघायुता माघ्या माघस्नाननिवासिनी ॥ ४९ ॥

श्रीपंचमी श्रियोरूपा षष्टिचारण्यसंज्ञिता ।
अचला निश्चला जम्बूर्जम्बूद्वीपसहायिनी ॥ ५० ॥

नन्दप्रयाग में निवास करने वाली, देवतीर्थवासिनी, रुद्राणी, रुद्रसावित्री, महाभैरवनादिनी ॥ ३९ ॥

भैरवी, भीषणरवा, भृगुतुंगनिवासिनी, केदारशिखरावासा महावलय-वासिनी ॥ ४० ॥

तुंगभद्रा, सुषेणा, मान्धाता को विजय देने वाली, भूतभव्यपरा, सर्वा, खर्वगर्वा, नृपेश्वरी ॥ ४१ ॥

भविष्यज्ञानदा, भूतज्ञानदा, वर्तमानदा, शुकदेव की माता, सौम्या, व्यासमाता, सुरेश्वरी ॥ ४२ ॥

धारापातधरा, धीरा, धैर्य्यदा, शुभदायिनी, कंकणा, कंकणप्रख्या, शुभकंकण-दायिनी ॥ ४३ ॥

कंकणों से भी पाप को हरने वाली प्रबला, शत्रुनाशिनी, स्मरणकर्ताओं को भुक्ति देने वाली, मुक्तिदा, रूप से रहित ॥ ४४ ॥

देवानीका, देवकेव्या, सेवारूपफलामला, कृतिका, कार्तिकावासा, कार्तिक-स्नानदायिनी ॥ ४५ ॥

पुष्करा, पुष्करावासा, पुष्पप्रचयसुन्दरी, मुनिसेव्या, मुनि, मेना, मानवा-कारधारिणी ॥ ४६ ॥

मैनाकशिखरवासिनी, काशीनगरी में वास करने वाली, महाप्रयाग में निवास करने वाली, तीर्थराजप्रसाधिनी ॥ ४७ ॥

अक्षया, क्षयरूपा, संसार को नाश करने वाली, मृगशीर्षधरा, मार्गशीर्ष स्नान का फल देने वाली ॥ ४८ ॥

पुष्यनक्षत्ररूपा, पौष में अतिशय फल देने वाली, माघी, मघायुता, माघ्वा, माघ स्नान निवासिनी ॥ ४९ ॥

श्रीपंचमी, श्रियोरूपा, सष्टिचारणी, असंज्ञिता, अचला, निश्चला, जम्बू, जम्बूद्वीप की सहायिनी ॥ ५० ॥

भीष्माष्टमी भीष्मगर्भा भीष्मपंचकसेविता ।
एकादशी द्वादशी च पुण्यापुण्यसहायिनी ।। ५१ ।।

पुण्यदा पुण्यनिलया पुण्यांगी चारुवाहिनी ।
फाल्गुनी फाल्गुने सेव्या होलिका गन्धरूपिणी ।। ५२ ।।

हुताशनी महादेवी सन्तुष्टा भस्मधारिणी ।
वसन्तर्त्तुसुसेव्या च वसन्तोत्सवदायिनी ।। ५३ ।।

चैत्री चित्रा प्रिया पुष्यगणरूपा गणेश्वरी ।
मकरन्दस्वरूपा च मकरन्दनिवासिनी ।। ५४ ।।

चैत्रशुक्लप्रतिपदा वर्षारम्भकरा शुभा ।
माधवी माधवागारा माधवप्रीतिदायिनी ।। ५५ ।।

विशाखा वेणुपापघ्ना वैशाखी भानुसप्तमी ।
वैशाखस्नानशुभदा पिंडाकरनिवासिनी ।। ५६ ।।

तथाक्षयतृतीया च सक्तुदानशुभप्रदा ।
प्रपा पुण्यप्रदा चैव नित्यस्नानवशीकृता ।। ५७ ।।

ज्येष्ठा ज्येष्ठस्य महती दशपापप्रणाशिनी ।
निर्ज्जलारूपिणी चैव तथानन्तशया मता ।। ५८ ।।

आषाढी चारुसर्वांगी तथा हरिशयस्थिता ।
श्रावणी श्रवणानन्दा सर्वसौख्यप्रदायिनी ।। ५९ ।।

भद्रा भाद्रपदे सेव्या जन्मा जन्माष्टमी तथा ।
दूर्वापूजनसन्तुष्टा बीजाङ्कुरनिवासिनी ।। ६० ।।

आश्विने सुतरां सेव्या पितृभक्तिप्रदायिनी ।
नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लपक्षस्य पूर्णिमा ।। ६१ ।।

नवरात्रसहाया च कालरात्रिर्महाष्टमी ।
अश्विनी भौमवारस्य शतरूपा ह्ययोनिजा ।। ६२ ।।

भीष्माष्टमी, भीष्मगर्भा, भीष्मपंचक सेविता, एकादशी, द्वादशी, पुण्यापुण्य-सहायिनी ॥ ५१ ॥

पुण्य देने वाली, पुण्यनिलया, पुण्यांगी, चारुवाहिनी, फाल्गुनी, फाल्गुने सेव्या, होलिका, गन्धरूपिणी ॥ ५२ ॥

हुताशनी, महादेवी, सन्तुष्टा, भस्मधारिणी, वसन्त ऋतु में सुसेवित, वसन्तोत्सव को देने वाली ॥ ५३ ॥

चैत्री, चित्रा, प्रिया, पुष्यगणरूपा, गणेश्वरी, मकरन्दस्वरूपा, मकरन्द-निवासिनी ॥ ५४ ॥

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, वर्षारम्भकरा, शुभा, माधवी, माधवागारा, माधव को प्रीति देने वाली ॥ ५५ ॥

विशाखा, वेणुपापघ्ना, वैशाखी, भानुसप्तमी, वैशाख-स्नान-शुभदा, पिंडाकर-निवासिनी ॥ ५६ ॥

अक्षयतृतीया, सक्तुदानशुभप्रदा, प्रपा, पुण्यप्रदा, नित्यस्नानवशीकृता ॥ ५७ ॥

ज्येष्ठा, ज्येष्ठ की महती, दस पापों का नाश करने वाली, निर्जलारूपिणी अनन्तशया ॥ ५८ ॥

आषाढी, चारुसर्वांगी, हरिशयनी, श्रावणी, श्रवणानन्दा, सर्वसौख्य-प्रदायिनी ॥ ५९ ॥

भद्रा, भाद्रपदे सेव्या, जन्मा, जन्माष्टमी, दूर्वापूजन से सन्तुष्ट होने वाली, बीजांकुर में निवास करने वाली ॥ ६० ॥

आश्विन में अत्यन्त सेवा करने योग्य, पितृभक्ति को देने वाली, कृष्णपक्ष की नवमी, शुक्लपक्ष की पूर्णमासी ॥ ६१ ॥

नवरात्रसहाया, कालरात्रि, महाष्टमी, मंगलवार की अश्विनी, शतरूपा, अयोनिजा ॥ ६२ ॥

हरसेव्या हरांगी च हरिमन्दिरगामिनी ।
प्रमोदा मोदसंकल्पा नानारूपा महोदरी ॥ ६३ ॥

महानन्दप्रदात्री च नानालंकारधारिणी ॥
अलंकारप्रिया चैव नानातिथिसमाश्रया ॥ ६४ ॥

तिमिंगिलधरा स्वच्छा नानाग्रावविदारिणी ।
गंडशैलवहा चैव कामदेवधराम्बरा ॥ ६५ ॥

सर्वतीर्थमयी सर्वदेवदानवरूपिणी ।
काशीप्रान्तवहा तुच्छप्रवाहा भारनाशिनी ॥ ६६ ॥

भरणी भारणांगी च तथ्यातथ्यप्रिया सती ।
सतीनां प्रथमं गण्या गण्या सर्वमयी प्रभुः ॥ ६७ ॥

धीर्द्धारणावती सर्वजनस्य हृदि संस्थिता ।
स्थितिरूपा स्थितिधरा स्थिरांगी कमलप्रिया ॥ ६८ ॥

कुशाच्छन्नतटा चैव दूर्वांकुरविराजिता ।
तरंगिणी शैवलिनी तरंगशतसंकुला ॥ ६९ ॥

महाकच्छपनिलया कच्छपपृष्ठसंस्थिता ।
नानाजन्तुधरा प्रोक्ता नानाजन्तुविनाशिनी ॥ ७० ॥

वर्षाकालतरा सौम्या वातकल्लोलकारिणी ।
तीरस्थशवसंछन्ना धन्यानां शववाहिनी ॥ ७१ ॥

तरंगशतशोभाढ्या तरंगशतमालिनी ।
स्वर्नारीकुचकुम्भस्थकुंकुमारुणसुन्दरी ॥ ७२ ॥

नानापुष्पोपहारा च सुखसम्पत्तिदायिनी ।
मन्दाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा सर्वदेवविगाहिनी ॥ ७३ ॥

सर्वलोकमयी तंद्रा तंत्रशास्त्रविनोदिनी ।
तंत्री तंत्रस्थिता विद्या महादेवकुटुम्बिनी ॥ ७४ ॥

हरसेव्या, हरांगी, हरिमन्दिरगामिनी, प्रमोदा, मोदसंकल्पा, नानारूपा, महोदरी ॥ ६३ ॥

महान् आनन्द को देने वाली, नाना अलंकारों को धारण करने वाली, अलंकार-प्रिया, नानातिथिसमाश्रया ॥ ६४ ॥

तिमिंगिलधरा, स्वच्छा, नानाग्रावविदारिणी, गंडशैलवहा, कामदेवधरा, अम्बरा ॥ ६५ ॥

सर्वतीर्थमयी, सर्वदेवदानवरूपिणी, काशी प्रान्त में बहने वाली, तुच्छप्रवाहा, भारनाशिनी ॥ ६६ ॥

भरणी, भारणांगी, तथ्यातथ्यप्रिया, सती, सतियों में अग्रणी, सर्वमयी, प्रभु ॥ ६७ ॥

धी, धारणावती, सब लोगों के हृदय में स्थित, स्थितिरूपा, स्थितिधरा, स्थिरांगी, कमलप्रिया ॥ ६८ ॥

कुशाच्छन्नतटा, दूर्वांकुरविराजिता, तरंगिणी, शैवलिनी, तरंगशत-संकुला ॥ ६९ ॥

महाकच्छपनिलया, कच्छपपृष्ठसंस्थिता, नानाजन्तुधरा, नाना जन्तुओं का नाश करने वाली ॥ ७० ॥

वर्षाकालतरा, सौम्या, वातकल्लोलकारिणी, तीरस्थशवसंच्छन्ना, धन्य जनों के शवों को बहाने वाली ॥ ७१ ॥

तरंगशतशोभाढ्या, तरंगशतमालिनी, अप्सराओं के कुचस्थ कुंकुम की लालिमा से अरुण और सुन्दर ॥ ७२ ॥

नानापुष्पोपहारा, सुख-सम्पत्ति को देने वाली, मन्दाकिनी, सरिताओं में श्रेष्ठ, समस्त देवताओं को स्नान कराने वाली ॥ ७३ ॥

सर्वलोकमयी, तन्द्रा, तंत्रशास्त्रविनोदिनी, तंत्री, तंत्रस्थिता, विद्या, महादेव-कुटुम्बिनी ॥ ७४ ॥

सर्वशास्त्रमयी नंदा वासवेश्वरपालिनी ।
शची पुलोमजा तुंगा कश्यपस्य प्रिया मता ॥ ७५ ॥

सृष्टिः सृष्टिकृदाराध्या प्रलये कालरूपिणी ।
द्वादशादित्यसदशी प्रभा त्रैलोक्यदीपिका ॥ ७६ ॥

त्रिलोकनिलया वेद्या वेदरूपाऽघर्मर्दिनी ।
मणिप्रचयसम्पूज्या मध्याह्नार्कनिवासिनी ॥ ७७ ॥

प्रभातारुणसर्वांगी सर्वकामप्रदायिनी ।
प्रातः सन्ध्या तथा प्रोक्ता सन्ध्या मध्याह्निकी मता ॥ ७८ ॥

सायं सन्ध्या तथा रात्रिसन्ध्या तिमिररूपिणी ।
निशीथतारका प्रख्या विद्युद्रूपा महोत्सवा ॥ ७९ ॥

दुःखानां च निहंत्री च नानादुःखनिवारिणी ।
विनोदिनी सुकल्लोला सागरस्वननिःस्वना ॥ ८० ॥

गंभीरावर्त्तशोभाढ्या गंभीरगजगामिनी ।
नानापद्मसमाकीर्णा जलकुक्कुटशोभिता ॥ ८१ ॥

जलजारुणसर्वांगी शंखवत्कैरवांबरा ।
कुन्दश्वेता कुन्दभूषा श्वेताम्बरविराजिता ॥ ८२ ॥

राजहंसपरीवारा तटस्थद्रुमशोभिता ।
द्रुमाम्बरा द्रुमावासा वृद्धद्रुमविदारिणी ॥ ८३ ॥

पद्मलेखा पद्मसेव्या पद्मा पद्मजपूजिता ।
लक्ष्मीः श्यामा वरारोहा वरांगी भुवनेश्वरी ॥ ८४ ॥

तारा श्रीर्दानदा धन्या दानवानां विनाशिनी ।
छिन्नभस्ता च नाक्षत्रा योगिनी योगसेविता ॥ ८५ ॥

योगगम्या योगिधरा योगिप्रीतिविवर्द्धिनी ।
योगमार्गरता साध्या साधकाभीष्टदायिनी ॥ ८६ ॥

सर्वशास्त्रमयी, नन्दा, वासवेश्वरपालिनी, शची, पुलोमजा, तुंगा, कश्यप की प्रिया ॥ ७५ ॥

सृष्टि, सृष्टि करने वाली, आराध्या, प्रलय में कालरूपिणी, बारह सूर्यों के समान, प्रभा, त्रैलोक्यदीपिका ॥ ७६ ॥

त्रिलोकनिलया, वेद्या, वेदरूपा, अघमर्दिनी, मणिप्रचयसम्पूज्या, मध्याह्न के सूर्य में वास करने वाली ॥ ७७ ॥

प्रभात के समान सब अरूण अंगों वाली, सब कामों को देने वाली, प्रातः सन्ध्या, मध्याह्निकी सन्ध्या ॥ ७८ ॥

सायं सन्ध्या, रात्रि सन्ध्या, तिमिररूपिणी, निशीथतारका, प्रख्या, विद्युद्रूपा, महोत्सवा ॥ ७९ ॥

दुःखों को नाश करने वाली, अनेक दुःखों का निवारण करने वाली, विनोदिनी, सुकल्लोला, सागरस्वननिःस्वना ॥ ८० ॥

गंभीरावर्तशोभाढ्या, गंभीरगजगामिनी, नानापद्मसमाकीर्णा, जलकुक्कुट-शोभिता ॥ ८१ ॥

जलजारुणसर्वांगी, शंखवत्कैरवाम्बरा, कुन्दश्वेता, कुन्दभूषा श्वेताम्बर-विराजिता ॥ ८२ ॥

राजहंसपरीवारा, तटस्थद्रुमशोभिता, द्रुमाम्बरा, द्रुमावासा, वृद्धद्रुम-विदारिणी ॥ ८३ ॥

पद्मलेखा, पद्मसेव्या, पद्मा, पद्मजपूजिता, लक्ष्मी, श्यामा, वरारोहा, वरांगी, भुवनेश्वरी ॥ ८४ ॥

तारा, श्रीः, दानदा, धन्या, दानवों का नाश करने वाली, छिन्नमस्ता, नाक्षत्रा, योगिनी, योगसेविता ॥ ८५ ॥

योगगम्या, योगिधरा, योगप्रीतिविवर्द्धिनी, योगमार्गरता, साध्या, साधकों को अभीष्ट देने वाली ॥ ८६ ॥

सिद्धिदा सिद्धसंसेव्या सिद्धपूज्या सुरेश्वरी ।
साधिका साधना तुष्टा साधकानां प्रियंकरी ॥ ८७ ॥

प्रद्युम्नस्यैव जननी प्रद्युम्नशतसुंदरी ।
प्रद्युम्नांगी सुप्रद्युम्ना वराभयकरा तथा ॥ ८८ ॥

वरदा वरसेव्या च वरांगी वरवर्णिनी ।
वनेचरगणाधीशा वनेचरजनप्रिया ॥ ८९ ॥

वनेचरतृषाहंत्री वनेचरमनःप्रिया ।
सुखदा सुखसेव्या च शुभानां शतसंयुता ॥ ९० ॥

बलभद्रसमाभासा बलभद्रप्रिया तथा ।
बलाराध्या बला वृष्णिबालानां प्रीतिवर्द्धिनी ॥ ९१ ॥

रामा रामप्रिया साध्वी सीतारामसुसेविता ।
रमणीया सुरम्यांगी तथा श्रीरमणप्रिया ॥ ९२ ॥

रेवती रैवते गम्या तथा रैवतवासिनी ।
रतिरूपधरा सुभ्रूर्नारदी नारदेरिता ॥ ९३ ॥

मृदंगशतसंवाद्या मृदंगशतपूजिता ।
पणवा पणवाकारा पणवेरितशब्दिका ॥ ९४ ॥

नानावादित्रकुशला वादित्रशतशोभिता ।
रससारा रसाकारा शतसारसशोभिता ॥ ९५ ॥

सन्धिः सन्धिस्वरूपा च सन्धिनिर्णयदीपिका ।
सन्धिस्वरूपदुर्गम्या स्वरसन्धिस्थिता प्रिया ॥ ९६ ॥

शब्दा शब्दस्वरूपा च शब्दशास्त्रप्रमोदिनी ।
युष्मदस्मत्स्वरूपा च कारका कारकप्रिया ॥ ९७ ॥

शब्दसन्धिस्वरूपा च तद्धितप्रत्यया परा ।
धातुवादरता चैव धातूनां सन्धिरूपिणी ॥ ९८ ॥

सिद्धिदा, सिद्धिसंसेव्या, सिद्धपूज्या, सुरेश्वरी, साधिका, साधना, तुष्ठा, साधकों का प्रिय करने वाली ॥ ८७ ॥

प्रद्युम्न की माता, प्रद्युम्नशतसुन्दरी, प्रद्युम्नांगी, सुप्रद्युम्ना, वराभय-करा ॥ ८८ ॥

वरदा, वरसेव्या, वरांगी, वरर्वाणिनी, वनेचरगणाधीशा, वनेचरजन-प्रिया ॥ ८६ ॥

वनेचरवृषाहंभी, वनेचरमनःप्रिया, सुखदा, सुखसेव्या, सैकड़ों शुभों से युक्त ॥ ६० ॥

बलभद्र के समान कान्ति वाली, बलभद्र की प्रिया, बलाराध्या, बला, वृष्णि बालकों की प्रीति को बढ़ाने वाली ॥ ६१ ॥

रामा, रामपत्नी, साध्वी, सीतारामसुसेविता, रमणीया, सुरम्यांगी, श्रीरमण-प्रिया ॥ ६२ ॥

रेवती, रैवतगम्य, रैवतवासिनी, रतिरूपधरा, सुभ्रू, नारदी, नारदेरिता ॥ ६३ ॥

सैकड़ों मृदङ्गों के समान शब्द करने वाली, मृदंगशतपूजिता, पणवा, पणवा-कारा, पणव के समान नाद करने वाली ॥ ६४ ॥

अनेक बाजों को वजाने में कुशल, सैकड़ों वाद्यों से शोभित, रससारा, रसकारा, सैकड़ों सारसों से शोभित ॥ ६५ ॥

सन्धि, सन्धिस्वरूपा, सन्धिनिर्णयदीपिका, सन्धिस्वरूपदुर्गम्या, स्वरसन्धि-स्थिता, प्रिया ॥ ६६ ॥

शब्दा, शब्दस्वरूपा, शब्दशास्त्रप्रमोदिनी, युष्मदष्मतस्वरूपा, कारका, कारक-प्रिया ॥ ६७ ॥

शब्द सन्धि स्वरूपा, तद्धितप्रत्यया, परा, धातुवादरता, धातुओं की सन्धि-रूपा ॥ ६८ ॥

नैयायिकी तर्कविद्या तर्काराध्या सुतर्किका ।
चतुः प्रमाणगम्या च द्रव्यरूपा गुणेश्वरी ॥ ९९ ॥

कर्मज्ञा कर्मनिलया सामान्या समपूजिता ।
समवायस्थिता भावरूपा सर्वप्रियंकरी ॥ १०० ॥

पंचविंशतितत्त्वज्ञा मीमांसकरता तथा ।
मीमांसशास्त्रनिरता तथा मोमांसकप्रिया ॥ १०१ ॥

मीमांसागम्यरूपा च कर्मब्रह्मप्रपादिता ।
सांख्या सांख्यपरा संख्या सांख्यसूत्रप्रमोदिनी ॥ १०२ ॥

प्रकृतिः पुरुषाकारा भिन्नाभिन्नस्वरूपिणी ।
स्पर्शिनी स्पर्शरूपा च स्पर्श्या चुम्बकलोहवत् ॥ १०३ ॥

पातंजलिधरा गम्या पतंजलिमुनिप्रिया ।
वेदान्तिनी वेदगम्या वेदान्तप्रतिपादिनी ॥ १०४ ॥

वेदान्तनिलया वेद्या वेदान्तिकजनप्रिया ।
अद्वैतरूपिणी चैव अद्वैतप्रतिपादिनी ॥ १०५ ॥

अगम्याकाशरूपा च सर्वदेहस्वरूपिणी ।
वृथासर्वप्रपंचा च संसारशतसंकुला ॥ १०६ ॥

संसृतिर्ग्रामनिरता धर्मनिष्ठा पुरावरा ।
धर्मिष्ठा धर्मनिरता धर्मशास्त्रप्रबोधिनी ॥ १०७ ॥

यज्ञीया यज्ञविद्या च यज्ञगम्या जनाधिपा ।
अश्वमेधादियज्ञानां जननी जातकप्रिया ॥ १०८ ॥

इष्टापूर्तिधरापूर्तिः[1] पूर्णाहुतिस्वरूपका ।
यज्ञभूमिर्यज्ञदेवी यज्ञानां नाशकारिणी ॥ १०९ ॥

यज्ञवाटस्थिता यज्ञा हविर्दात्री प्रभंजिनी ।
वाय्वाहारा वायुसेव्या शीतवातमनोहरी ॥ ११० ॥

---

१. "इष्टापूर्ति ··· स्वरूपका" पाठ इसमें नहीं है ।

नैयायिकी, तर्कविद्या, तर्काराध्या, सुतर्किका, चतुःप्रमाणगम्या, द्रव्यरूपा, गुणेश्वरी ॥ ९९ ॥

कर्मज्ञा, कर्मनिलया, सामान्या, समपूजिता, समवायस्थिता, भावरूपा, सर्वप्रियंकरी ॥ १०० ॥

पच्चीस तत्त्वों को जानने वाली, मीमांसकों में रत रहने वाली, मीमांसा शास्त्र में निरत, मीमांसकों की प्रिया ॥ १०१ ॥

मीमांसागम्यरूपा, कर्मब्रह्मप्रपादिता, सांख्या, सांख्यपरा, संख्या, सांख्यसूत्रप्रमोदिनी ॥ १०२ ॥

प्रकृति, पुरुषस्वरूप, भिन्ना, अभिन्नस्वरूप, स्पर्शिनी, स्पर्शरूपा, लोह के चुम्बक के समान स्पर्श्या ॥ १०३ ॥

पातंजलिधरा, गम्या, पतंजलिमुनिप्रिया, वेदान्तिनी, वेदगम्या, वेदान्तप्रतिपादिन्नी ॥ १०४ ॥

वेदान्तनिलया, वेद्या, वेदान्तिकजनप्रिया, अद्वैतरूपिणी, अद्वैत को प्रतिपादित करने वाली ॥ १०५ ॥

अगम्या, आकाशरूपा, सर्वदेहस्वरूपिणी, वृथासर्वप्रपञ्चा, संसारशतसंकुला ॥ १०६ ॥

संसृति, ग्रमनिरता, धर्मनिष्ठा, पुरावरा, धर्मिष्ठा, धर्मनिरता, धर्मशास्त्रप्रवोधिनी ॥ १०७ ॥

यज्ञीया, यज्ञविद्या, यज्ञगम्या, जनाधिपा, अश्वमेध आदि यज्ञों की माता, जातकप्रिया ॥ १०८ ॥

इष्टापूर्ति, धरापूर्ति, पूर्णाहुतिस्वरूप, यज्ञभूमि, यज्ञदेवी, यज्ञों का नाश करने वाली ॥ १०९ ॥

यज्ञवाटस्थिता, यज्ञा, हवि, दात्री, प्रभंजिनी, वाय्वाहारा, वायुसेव्या, शीतवातमनोहरी ॥ ११० ॥

ललना सरलापूर्वा दक्षिणा वारुणी तथा ।
कौबेरी च तथा शैवी आग्नेयी नैर्ऋती तथा ॥ १११ ॥

मारुती नन्दिनी चैव नन्दनारण्यवासिनी ।
पातालनिलया सौम्या बोधी बुद्धकुलोद्भवा ॥ ११२ ॥
राजनीतिर्दण्डनीतिस्त्रयीवार्तापरायणा ।
स्वाहा स्वधा वषट्कारा ओंकारसदृशी जरा ॥ ११३ ॥

नारिकेलप्रिया खर्ज्जूप्रिया रोगविनाशिनी ।
विस्फोटकहरा[1] दिव्या सर्वरोगविनाशिनी ॥ ११४ ॥

जगदाधाररूपा च रूपेणाप्रतिमा तथा ।
भद्रकालस्वरूपा च मधुकैटभनाशिनी ॥ ११५ ॥

योगमाया महामाया निद्रा तंद्रा प्रवासिनी ।
नित्यानन्दस्वरूपा च सुधामाता त्रिधातिमका ॥ ११६ ॥

निःप्रपंचा निराधारा खड्गचर्मधरा सरित् ।
वनौकसारासवना अलका चामरावती ॥ ११७ ॥

भोगा भोमवती चैव यमसंयमनी कृपा ।
ईर्ष्यासूया तथा निन्दा तितिक्षाक्षान्तिरार्जवम् ॥ ११८ ॥

दुर्गा दुर्गतमा दुर्गवसिनी वासवप्रिया ।
चन्द्रानना चन्द्रवती तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥ ११९ ॥

त्रिपुरा त्रिपुरेशानी त्रिपुरेशी त्रिनेत्रका ।
त्रिपुरध्वंसिनी चित्रा नित्यक्लिन्ना भगेश्वरी ॥ १२० ॥

शुभगा शुभगाराध्या भर्गपूजनतत्परा ।
सुवासिन्यर्चनप्रीता सुवासाः सुमनोहरा ॥ १२१ ॥

सुप्रकाशा सुराराध्या शोभना शुंभनाशिनी ।
रजोगुणविनिर्मुक्ता निर्मुक्ता मुक्तिदायिनी ॥ १२२ ॥

---

१. "विस्फोटकहरा ··· रोगविनाशिनो" पाठ इसमें नहीं है ।

ललना, सरला, अपूर्वा, दक्षिणा, वारुणी, कौबेरी, शैवी, आग्नेयी, नैर्ऋती ॥ १११ ॥

मारुती, नन्दिनी, नन्दनारण्यवासिनी, पातालनिलया, सौम्या, बोधी, बुद्ध-कुलोद्भवा ॥ ११२ ॥

राजनीति, दण्डनीति, त्रयीवार्ता, परायणा, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, ओंकारसदृशी, जरा ॥ ११३ ॥

नारिकेलप्रिया, खर्ज्जूप्रिया, रोगविनाशिनी, विस्फोटकहरा, दिव्या, सर्वरोग-विनाशिनी ॥ ११४ ॥

जगदाधाररूपा, रूपेणाप्रतिमा, भद्रकालस्वरूपा, मधुकैटभनाशिनी ॥ ११५ ॥

योगमाया, महामाया, निंद्रा, तंद्रा, प्रवासिनी, नित्यानन्दस्वरूपा, सुधामाता, त्रिधात्मिका ॥ ११६ ॥

निष्प्रपञ्चा, निराधारा, खड्गचर्मधरा, सरित्, वनौकसारा, सवना, अलका, अमरावती ॥ ११७ ॥

भोगा, भोगवती, यमसंयमनी, कृपा, ईर्ष्या, असूया, निन्दा, तितिक्षा, क्षान्ति, आर्जव ॥ ११८ ॥

दुर्गा, दुर्गतमा, दुर्गवासिनी, वासवप्रिया, चन्द्रानना, चन्द्रवती, त्रिपुर-सुन्दरी ॥ ११९ ॥

त्रिपुरा, त्रिपुरेशानी, त्रिपुरेशी, त्रिनेत्रका, त्रिपुरध्वंसिनी, चित्रा, नित्यक्लिन्ना, भगेश्वरी ।: १२० ॥

शुभगा, शुभगाराध्या, भर्गपूजनतत्परा, सुत्रासिनी, अर्चनप्रीता, सुवासा, सुमनोहरा ॥ १२१ ॥

सुप्रकाशा, सुराराध्या, शोभना, शुम्भनाशिनी, रजोगुणविनिर्मुक्ता, निर्मुक्ता, मुक्तिदायिनी ॥ १२२ ॥

निःप्रकाशा निराधारा साधारा गुणसंयुता ।
गम्भीरवेदिनी सौरी तपनी तपनप्रिया ॥ १२३ ॥

अम्भोजिनी पुरारातिसेव्या तु सुरभिः स्वरा ।
नादिनी सुनदा नंदी अम्बिका त्र्यम्बकासुरी ॥ १२४ ॥

त्रिमार्गगा त्रिवलिनी त्रिजिह्वा त्रितयात्मिका ।
त्रिनंदा त्रिप्रिया चैव अनसूया त्रिमालिनी ॥ १२५ ॥

त्रिपादिका त्रितंत्री च तंत्रशास्त्रप्रमोदिनी ।
मंत्रज्ञा मंत्रनिलया मंत्रसाधनतत्परा ॥ १२६ ॥

मंत्राणी मंत्रसुभगा मंत्रजाप्यजला विभुः ।
रक्तदंती रक्ततुंडा रक्तबीजविनाशिनी ॥ १२७ ॥

रक्ताम्बरधरारक्ता रक्ताक्षी रक्तवर्जिता ।
रक्ततृप्ता रवतहरा रक्तस्य वृद्धिदायिनी ॥ १२८ ॥

हरिताभा हरिद्राभा हरिद्रागन्धपूजिता ।
हरिद्रारससंपूज्या हरिद्रांगी हरित्स्थिता ॥ १२९ ॥

पीताम्बरधरानंता पीतगन्धसुवासिनी ।
कुर्बुरांगी कर्बुरा च कर्बुराम्भप्रपूजिता ॥ १३० ॥

कनकाभा श्यामरूपा कामरूपधरा धरा ।
कामरूपस्थिता विद्या कामरूपनिवासिनी ॥ १३१ ॥

पीठगा पीठसंपूज्या पीठस्था पीठवासिनी ।
स्वर्णपीठासना पीठा सर्वपीठप्रपूजिता ॥ १३२ ॥

राजराजेश्वरी माला राजराजधनाधिपा ।
कुबेरगृहसंपच्च यक्षगन्धर्वसेविता ॥ १३३ ॥

विद्याधरगणाधीशा विद्याधरप्रपूजिता ।
यक्षविद्या देवविद्या दैत्यविद्या विदेहिका ॥ १३४ ॥

निःप्रकाशा, निराधारा, साधारा, गुणसंयुता, गम्भीरवेदिनी, सौरी, तपनी, तपनप्रिया ।। १२३ ।।

अम्भोजिनी, पुरारातिसेव्या, सुरभि, स्वरा, नादिनी, सुनदा, नन्दी, अम्बिका, त्यम्बकासुरी ।। १२४ ।।

त्रिमार्गगा, त्रिबलिनी, त्रिजिह्वा, त्रितयात्मिका, त्रिनन्दा, त्रिप्रिया, अनसूया, त्रिमालिनी ।। १२५ ।।

त्रिपादिका, त्रितंत्री, तंत्रशास्त्रप्रमोदिनी, मंत्रज्ञा, मंत्रनिलया, मंत्रसाधन-तत्परा ।। १२६ ।।

मंत्राणी, मंत्रसुभगा, मंत्रजा, अजला, विभु, रक्तदन्ती, रक्ततुंडा, रक्तबीज-विनाशिनी ।। १२७ ।।

रक्ताम्बरधरा, रक्ता, रक्ताक्षी, रक्तवर्जिता, रक्ततृप्ता, रक्तहरा, रक्त को बढ़ाने वाली ।। १२८ ।।

हरिताभा, हरिद्राभा, हरिद्रागन्धपूजिता, हरिद्रारससम्पूज्या, हरिद्रांगी, हरित्स्थिता ।। १२९ ।।

पीताम्बरधरा, अनन्ता, पीतगन्धसुवासिनी, कर्बुरांगी, कर्बुरा, कर्बुराम्भः-प्रपूजिता ।। १३० ।।

कनकाभा, श्यामरूपा, कामरूपधरा, धरा, कामरूपस्थिता, विद्या, कामरूप-निवासिनी ।। १३१ ।।

पीठगा, पीठसंपूज्या, पीठस्था, पीठवासिनी, स्वर्णपीठासना, पीठा, सर्वपीठ-प्रपूजिता ।। १३२ ।।

राजराजेश्वरी, माला, राजराजधनाधिपा, कुबेरगृहसम्पत्ति, यक्षगन्धर्व-सेविता ।। १३३ ।।

विद्याधरगणाधीशा, विद्याधरप्रपूजिता, यक्षविद्या, देवविद्या, दैत्यविद्या, विदेहिका ।। १३४ ।।

शुक्रमाता शुक्रसेव्या शुक्रहस्तगता तथा।
संजीवनामृतविद्या कचगा कचसेविता ॥ १३५ ॥

देवायानी च शर्मिष्ठा शर्मदा शर्म्मभाविनी।
सुरासर्पिस्तथा माध्वी मदविह्वललोचना ॥ १३६ ॥

सर्वभक्ष्या सर्वगम्या सर्वस्वर्गप्रदायिनी।
छन्दोमाता पिंगलाक्षी सूत्रपिंगलदीपिका ॥ १३७ ॥

वृत्ता वृत्तप्रिया मन्दा पापानां शतमर्द्दिनी।
जगती पृथिवी आर्या अनुष्टुप् त्रिष्टुभुक्तिका ॥ १३८ ॥

स्रग्धरा स्रग्धरा चैव माल्या माल्यप्रिया सुधीः।
निर्ममा निरहंकारा निर्मोहा मोहवर्जिता ॥ १३९ ॥

मोहनाशकरा कार्य्या सर्वकार्य्यकरी मता।
मोहनी मोहवलया महावलयसुन्दरी ॥ १४० ॥

सुमेरुशिखरावासा सुमेरुगृहपूजिता।
सुमेरुशालिनी सुन्दा सुमुखी सुमुखप्रिया ॥ १४१ ॥

वैनायकी विघ्नहरी दुष्टविघ्नकरीश्वरी।
मुक्ताम्बरा मुक्तकेशी मत्तमात्तंगगामिनी ॥ १४२ ॥

ज्वाला करालवदना ज्वलनांगी जलोदरी।
जलपूरितसर्वांगी जलेश्वरप्रपूजिता ॥ १४३ ॥

जलेश्वरजनिर्जाया जलपा जलशोभिता।
वृन्दा वृन्दाधिपा वृन्दसेविका वृन्दवृक्षका ॥ १४४ ॥

त्वचा त्वचाविहीना च पल्वला पल्वले स्थिता।
मीना मीनसहाया च मीनध्वजविमर्दिनी ॥ १४५ ॥

बडिशा बडिशाकारा धीवरा धीवरात्मजा।
पारिजातप्रसूनाभा पारिजातप्रपूरिता ॥ १४६ ॥

शुक्रमाता, शुक्रसेव्या, शुक्रहस्तगता, संजीवना, अमृतविद्या कचगा, कच-सेविता ।। १३५ ।।

देवयानी, शर्मिष्ठा, शर्मदा, शर्मभाविनी, सुरासर्पिः, माध्वी, मदविह्वल-लोचना ।। १३६ ।।

सर्वभक्ष्या, सर्वगम्या, सर्वस्वर्गप्रदायिनी, छन्दोमाता, पिंगलाक्षी, सूत्रपिंगल-दीपिका ।। १३७ ।।

वृत्ता, वृत्तप्रिया, मन्दा, पापानां शतमर्दिनी, जगती, पृथिवी, आर्या, अनुष्टुप्, त्रिष्टुभुक्तिका ।। १३८ ।।

स्रग्धरा (इन्द्र, तद्रूपवती), स्रग्धरा (मालाधारिणी), माल्या, माल्यप्रिया, सुधी, निर्ममा, निरहंकारा, निर्मोहा, मोहवर्जिता ।। १३९ ।।

मोहनाशकरा, कार्य्या, सर्वकार्यकरी, मोहनी, मोहवलया, महावलय-सुन्दरी ।। १४० ।।

सुमेरुशिखरावासा, सुमेरुगृहपूजिता, सुमेरुशालिनी, सुन्दा, सुमुखी, सुमुख-प्रिया ।। १४१ ।।

वैनायकी, विघ्नहरी, दुष्टविघ्नकरी, ईश्वरी, मुक्ताम्बरा, मुक्तकेशी, मत्तमातंग-गामिनी ।। १४२ ।।

ज्वाला, करालवदना, ज्वलनांगी, जलोदरी, जलपूरितसर्वांगी, जलेश्वर-प्रपूजिता ।। १४३ ।।

जलेश्वरजनि, जाया, जलपा, जलशोभिता, वृन्दा, वृन्दाधिपा, वृन्दसेविका, वृन्दवृक्षका ।। १४४ ।।

त्वचा, त्वचाविहीना, पल्वला, पल्वलेस्थिता, मीना, मीनसहाया, मीनध्वज-विमर्दिनी ।। १४५ ।।

वडिशा, वडिशाकारा, धीवरा, धीवरात्मजा, पारिजातप्रसूनाभा, परिजात-प्रपूरिता ।। १४६ ।।

पारिजाततटापारा कामधेनुर्विहंगमा ।
भेरुण्डा गरुड़ा गौडी गुडनैवेद्यवासिनी ।। १४७ ।।

जातमात्रहरा जाता जातगम्या सुजातिका ।
कालिन्दी कालतनया कलाषोडशिका तथा ।। १४८ ।।

दशमी विजयानाम राज्ञां वै जयदायिनी ।
युद्धश्रीर्विजयानाम युद्धांगणनिवासिनी ।। १४९ ।।

मांसरक्तासना चण्डी प्रचण्डा शिववल्लभा ।
शिवदा मथुरावंती कांची द्वारावती तथा ।। १५० ।।

सरित्पतिप्रिया शुद्धा गंगा सागरसंगमा ।
प्रद्युम्नपूजिता चंचुचन्द्रिका चण्डसुन्दरी ।। १५१ ।।

चंपाचम्पकपुष्पाग्रा चम्पकाभा सुचैलिका ।
चंचत्तरंगा सर्वाघा सर्वब्राह्मणपूजिता ।। १५२ ।।

ब्राह्मणी ब्रह्मणाकारा ब्राह्मणैः शुभसंवृता ।
यज्ञोपवीतिनी विप्रा कुमारी बृहदानना ।। १५३ ।।

बृहस्पतिप्रपूज्या च गुरुगीर्गुरुतत्परा ।
गुरुप्रीतिर्गुरोर्विद्या गुरुपूजनतत्परा ।। १५४ ।।

गुर्विणी गुरुगम्या च गयासुरविनाशिनी ।
पंचकोशी पंचहीना पंचमी पंचसुन्दरी ।। १५५ ।।

पंचेषु पंचनिलया पंचास्या पंचमालिका ।
पंचपाण्डवमाता च कुन्ती कुन्तधराकरा ।। १५६ ।।

तथा कुन्तलशोभाढ्या प्रथमाऽप्रमथा तथा ।
स्वतंत्रकर्त्री कार्य्यघ्नी द्वितीया कर्मसंस्थिता ।। १५७ ।।

तृतीया करणे गम्या सम्प्रदाने चतुर्थिका ।
अपादाने पंचमी च तथा सम्बन्धषष्ठिका ।। १५८ ।।

पारिजाततटापारा, कामधेनु, विहंगमा, भेरुण्डा, गरुड़ा, गौड़ी, गुडनैवेद्य-वासिनी ।। १४७ ।।

जातमात्रहरा, जाता, जातगम्या, सुजातिका, कालिन्दी, कालतनया; कला-षोडशिका ।। १४८ ।।

विजयादशमी, राजाओं को जय देने वाली, युद्ध में विजयश्री देने वाली, समरांगण में निवास करने वाली ।। १४९ ।।

मांसरक्तासना, चण्डी, प्रचण्डा, शिवबल्लभा, शिवदा, मथुरा, अवंती, कांची, द्वारावती ।। १५० ।।

सरित्पतिप्रिया (समुद्रप्रिया), शुद्धा, गंगा, सागरसंगमा, प्रद्युम्नपूजिता, चञ्चुचन्द्रिका, चण्डसुन्दरी ।। १५१ ।।

चम्पा, चम्पकपुष्पाग्रा, चम्पकाभा, सुचैलिका, चंचत्तरंगा, सर्वाधा, सर्वब्राह्मण-पूजिता ।। १५२ ।।

ब्राह्मणी, ब्रह्मणाकारा, ब्राह्मणों द्वारा शुभ संवृता, यज्ञोपवीतिनी, विप्रा, कुमारी, बृहदानना ।। १५३ ।।

बृहस्पतिप्रपूज्या, गुरुगीः, गुरुतत्परा, गुरुप्रीति, गुरोर्विद्या, गुरुपूजनत-त्परा ।। १५४ ।।

गुर्विणी, गुरुगम्या, गयासुरविनाशिनी, पंचकोशी, पंचहीना, पंचमी, पंच-सुन्दरी ।। १५५ ।।

पंचेषु, पंचनिलया, पंचास्या, पंचमालिका, पंचपाण्डवमाता, कुन्ती, कुन्तधरा, करा ।। १५६ ।।

कुन्तलशोभाढ्या, प्रमथा, अप्रमथा, स्वतंत्रकर्त्री, कार्य्यघ्नी, द्वितीया, कर्म-संस्थिता ।। १५७ ।।

करण में तृतीया रूप, सम्प्रदान में चतुर्थी रूप, अपादान में पंचमी रूप, सम्बन्ध में षष्ठी रूप ।। १५८ ।।

सप्तम्यधिकरणाख्या विभक्तिवरदातुरा।
प्रतिबन्धस्य जननी औषधी वैद्यजीविनी॥ १५९॥

हरीतकी च शुंठी च कणा हंसपदी तथा।
हुसेनी हुंकृतिर्हुंवा गौरार्या वृषभात्मिका॥ १६०॥

गोस्तनी निम्नगा निम्बा नारदादिभिरर्चिता।
रेणुका रेणुतनया रजोनाशनतत्परा॥ १६१॥

पापराशिहरा मंत्री तथा नीरजशोभना।
जया रिक्ता सुषेणा च केदारपथगामिनो॥ १६२॥

जलयंत्राऽमरीकन्दा कन्दमूलफलाशिनी।
पितृमाता पितृपूज्या पितॄणां स्वर्गदायिनी॥ १६३॥

भगीरथकृपासिन्धुर्भवानी भवनाशिनी।
सागरस्वर्गदा चैव सर्वसंसारगामिनी॥ १६४॥

ईश्वर उवाच—

नाम्नां सहस्रमाख्यातं गंगायाः सर्वकामदम्।
यस्तु वै पठते नित्यं युक्तिभागी भवेन्नरः॥ १६५॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भगीरथसमं द्रुतम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां वाचस्पतिसमो भवेत्॥ १६६॥

श्राद्धे शृणोति यो भक्त्या पठते वै समाहितः।
दुर्गता अपि पितरो मुक्ति गच्छन्त्यनामयाः॥ १६७॥

तथा दशहरायां हि गंगामध्ये स्थितः पुमान्।
पठते प्रत्यहं देवि तस्य मुक्तिर्न संशयः॥ १६८॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने गंगावतरणे
श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रं नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः।

अधिकरण में सप्तमी रूप, विभक्तिवरदा, आतुरा, प्रतिबन्धजननी, औषधि, वैद्यजीविनी ॥ १५९ ॥

हरीतकी, शुंठी, कणा, हंसपदी, हुसेनी, हुंकृति, हुंवा, गौरा, आर्या, वृषभात्मिका ॥ १६० ॥

गोस्तनी, निम्नगा, निम्बा, नारद आदि ऋषियों द्वारा पूजित, रेणुका, रेणुतनया, रजोनाशनतत्परा ॥ १६१ ॥

पापराशिहरा, मंत्री, नीरजशोभना, जया, रिक्ता, सुषेणा, केदारपथ-गामिनी ॥ १६२ ॥

जलयन्त्रा, अमरीकन्दा, कन्दमूलफलाशिनी, पितृमाता, पितृपूज्या, पितरों को स्वर्ग देने वाली ॥ १६३ ॥

भगीरथकृपा, सिन्धु, भवानी, भवनाशिनी, सगर-पुत्रों को स्वर्ग देने वाली, सर्वसंसारगामिनी ॥ १६४ ॥

ईश्वर ने कहा—

समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला, गंगा का सहस्रनाम स्तोत्र वर्णित किया गया। जो इस स्तोत्र का पाठ नित्य करता है, वह नर मुक्ति प्राप्त करता है ॥ १६५ ॥

पुत्र को चाहने वाला व्यक्ति अतिशीघ्र भगीरथ के समान पुत्र प्राप्त करता है। विद्या को चाहने वाला व्यक्ति विद्या को प्राप्त करके बृहस्पति के समान होता है ॥ १६६ ॥

जो भक्तिपूर्वक स्तोत्र को श्राद्ध में पढ़ते हैं तथा सुनते हैं, दुर्गति में गये भी उनके पितर मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १६७ ॥

दशहरा के दिन गंगा जल में स्थित होकर जो पुरुष इस स्तोत्र को पढ़ता है, हे देवि ! उसकी मुक्ति में कोई संशय नहीं रहता ॥ १६८ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भगीरथोपाख्यान में गंगा
अवतरण में श्रीगंगा सहस्रनामस्तोत्र नामक
अड़तीसवां अध्याय पूरा हुआ।

एकोनचत्त्वारिंशोऽध्यायः

श्रीगंगा भूलोके स्थास्यतीत्याकर्ण्य नागराजेन तां स्वलोकनयनाय प्रार्थनं, कलियुगस्य द्वितीये चरणे समागमिष्यामीति गंगाया उत्तरं, गंगायाः दशधाराणामाख्यानम्

ईश्वर उवाच—

इति स्तुता महादेवि गंगा परमपाविनी।
राज्ञा भगीरथेनाशु प्रत्यक्षं प्राह जाह्नवी ॥ १ ॥

श्रीगंगोवाच—

तुष्टास्मि सततं वत्स तपसा तव भूपते।
इदं यद्वै त्वयाख्यातं नाम्नां साहस्रमुत्तमम् ॥ २ ॥

पुरातनं पुरारातिगीतं सर्वोत्तमोत्तमम्।
मत्प्रसादात्त्वया ज्ञातं गुह्याद् गुह्यतरं परम् ॥ ३ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन दुर्ल्लभं सार्वभौमकम्।
प्रसन्नास्मितरां राजन् स्तोत्राख्यानेन भूपते ॥ ४ ॥

वरं वरय भद्रं ते वरार्होऽसि भगीरथ।
इदं वै मामकं रूपं न दृष्टं केनचित्पुरा ॥ ५ ॥

अतो धन्योऽसि सौरेऽस्मिन्वंशे मुनिजनाश्रये।
यस्य वै दर्शनं जाता अहं ब्रह्मकलेवरा ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा जाह्नवी देवी दर्शयामास स्वं वपुः।
त्रैलोक्यदुर्ल्लभं देहं क्वणत्कांचिगुणान्वितम् ॥ ७ ॥

अध्याय ३६

श्री गंगा भूलोक में रहेगी, यह सुनकर नागराज द्वारा उनको अपने लोक में ले जाने की प्रार्थना करना, मैं कलियुग के द्वितीय चरण में आऊँगी, गंगा द्वारा यह उत्तर देना, गंगा की दस धाराओं का आख्यान

ईश्वर ने कहा—

हे महादेवि ! परमपाविनी गंगा की भगीरथ द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर वह जाह्नवी प्रत्यक्ष होकर राजा भगीरथ से कहने लगी ॥ १ ॥

श्रीगंगा ने कहा—

हे भूपते ! वत्स ! तेरे तप के द्वारा मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गई हूँ । यह तुम्हारे द्वारा गाया गया गंगासहस्रनाम स्तोत्र अति उत्तम है ॥ २ ॥

यह सर्वोत्तमोत्तम पुरातन स्तोत्र शिवजी द्वारा गाया गया था । यह परम गोपनीय स्तोत्र मेरे प्रसाद से तुझे ज्ञात हुआ है ॥ ३ ॥

हे राजन् ! इस दुर्ल्लभ, सार्वभौमत्व को प्रदान करने वाले, गोपनीय स्तोत्र के पाठ से मैं, हे भूपते ! अति प्रसन्न हुई हूँ ॥ ४ ॥

हे भगीरथ ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर मांगने योग्य हो, अतः वर मांगो । मेरा यह रूप पहले किसी ने नहीं देखा ॥ ५ ॥

अतएव आप धन्य हैं । मुनिजनों के आश्रयभूत सूर्यबंश में उत्पन्न हुये जिसको मुझ ब्रह्मरूप गंगा के दर्शन का लाभ हुआ है ॥ ६ ॥

ईश्वर ने कहा—

यह कहकर गंगा देवी ने तीनों लोकों में दुर्लभ अपने स्वरूप को दिखाया । इसमें कांची की डोरी बज रही थी ॥ ७ ॥

कर्णालम्बिततताटंकं श्वेतछत्रोपशोभितम् ।
इन्द्रादिभिर्लोकपालैर्वीज्यमानं सुचामरैः ॥ ८ ॥

अनेकस्त्रीपरिवृतां स्वर्णसिंहासने स्थिताम् ।
दृष्ट्वा गंगां महादेवीं जगाद वरमुत्तमम् ॥ ९ ॥

भगीरथ उवाच—

कृपां विधेहि दासेऽस्मिन्मयि दुःखसमाकुले ।
न गन्तव्यं त्वया देवि पातालनिलये शुभे ॥ १० ॥

विना मुक्तिं प्रेषयित्वा मत्पितॄन्कोपदग्धकान् ।
त्वया समग्रभावेन स्थेयं भारतवर्षके ॥ ११ ॥

श्रीगंगोवाच—

भगीरथ महाभाग एवमेव भविष्यति ।
यावच्चन्द्रग्रहेशाद्याः[1] स्थास्यंत्यंबरमण्डले ॥ १२ ॥

तावत्कीर्तिर्महाराज भविता ते नृलोकके ।
नामापि च तव श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १३ ॥

कलेर्द्वितीयपादे तु गमिष्यामि पुनस्तले ।
गच्छ राजन्महीपाल साधु साधु न संशयः ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच—

एतस्मिन्नन्तरे नागास्तद्वरं सहसा प्रिये ।
ऊचुर्वासुकये सर्वे वरदानादिकं तथा ॥ १५ ॥

स श्रुत्वा नागवचनं प्रमथाधिपपूजिते ।
सहस्रफणशोभाग्रे गंगाया निकटे ययौ ॥ १६ ॥

निर्दहन् विषज्वालाभिः पर्वतान् सरितोऽम्बुदान् ।
वृक्षान् गुल्मलतापुंजान्वनानि सहसा ततः ॥ १७ ॥

---

१. "यावच्चन्द्र........प्रमुच्यते" पाठ इसमें नहीं है.

वह कानों में लटकते ताटंकों तथा श्वेत छत्र से शोभित थी। इन्द्र आदि लोकपाल उस पर सुन्दर चामर डुला रहे थे ॥ ८ ॥

अनेक स्त्रियों से घिरी हुई, स्वर्णसिंहासन पर आसीन गंगा महादेवी को देख कर भगीरथ ने अपने उत्तम वर के लिए गंगा जी से कहा ॥ ६ ॥

भगीरथ ने कहा—

दुःख से पीड़ित हुये मुझ दास भगीरथ पर कृपा कीजिए। हे देवि ! शुभे ! तुम पाताल लोक में मत जाओ ॥ १० ॥

कपिल मुनि की क्रोध-अग्नि से भस्म हुये मेरे पितरों को मोक्ष दिए बिना पाताल लोक मत जाओ। समग्र भाव से इस भारतवर्ष में तुम स्वयं स्थित रहो ॥ ११ ॥

गंगा ने कहा—

हे महाभाग ! भगीरथ ! भविष्य में ऐसा ही होगा। जब तक कि आकाश में चन्द्र, सूर्य (ग्रहेश) आदि स्थित रहेंगे··· ॥ १२ ॥

हे महाराज ! मृत्युलोक में तुम्हारा यश विद्यमान रहेगा। तुम्हारा नाम सुन कर भी मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जायगा ॥ १३ ॥

मैं कलियुग के द्वितीय चरण में पाताल लोक में चली जाऊँगी। हे राजन् ! महीपाल ! आप परम सज्जन हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। आप जाओ ॥ १४ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे प्रिये ! इसी समय नागों ने सहसा इस वरदान के विषय में वासुकि नाग से कहा ॥ १५ ॥

गणाधिपों द्वारा पूजित हे पार्वति ! इस नाग वचन को सुनकर उस वासुकि ने आगे हजारों फणों से सुशोभित होकर गंगा के निकट प्रस्थान किया ॥ १६ ॥

वह अपनी विष ज्वाला से सहसा पर्वतों, नदियों, मेघों, वृक्षों, गुल्मों, लता-पुन्जों और वनों को भस्म कर रहा था ॥ १७ ॥

अनेकशतसाहस्रसर्पनागगणैर्वृतः ।
दृष्ट्वा भगीरथो राजा तादृशोपद्रवं प्रिये ॥ १८ ॥

अस्तौसीत्सहसा शेषं नागानामधिपं तथा ।
प्रणामाञ्च्छतशश्चक्रे नारायणपरायणः ॥ १९ ॥

बहुधा संस्तुतो राज्ञा शेषः श्रीविष्णुसंज्ञकः ।
प्रसन्नश्च यथावत्तु त्यक्त्वा तं सागरात्मजम् ॥ २० ॥

आजहार तदा गंगां पातालनिलये ययौ ।
एतस्मिन्समये गंगा प्रोवाच शतशीर्षकम् ॥ २१ ॥

श्रीगंगोवाच—

विष्णुर्जिष्णुर्वषट्कारो दितिजो दैत्यसूदनः ।
फणासहस्र बिलसद् भूमंडल अहस्करः ॥ २२ ॥

सर्पराजो विषी वैद्यो भानुर्भानुसहस्रधृक् ।
रजताद्रिसमाकारोऽनंतोऽनंतशिराः प्रभुः ॥ २३ ॥

ईश्वर उवाच —

षोडशैतानि नामानि सर्प्पराजस्य यः पठेत् ।
विषग्रस्तो नागदष्टो मुच्यते सहसा विषात् ॥ २४ ॥

सर्पं दृष्ट्वापि नामानि सर्प्पराजस्य यः पठेत् ।
विलीयन्ते क्षणादेव दर्शनात्तस्य भोगिनः ॥ २५ ॥

इति स्तुतो गंगायाऽसौ शेषः सौभाग्यदायकः ।
उवाचार्द्धपथि प्राणे किमर्थं संस्तुतोऽस्म्यहम् ॥ २६ ॥

इत्युक्ता तेन सा गंगा प्रोवाच विनयालसम् ।
भगीरथेन सततं कैलासादेव वासुके ॥ २७ ॥

नियंत्रितास्मि भूमौ हि पितॄणां मुक्तिकारणात् ।
साम्प्रतं तदवश्यं वै कर्त्तव्यं भगवन्मया ॥ २८ ॥

चरमोऽस्मिन्युगे भूप आगमिष्यामि ते स्थले ।
इदानीं मुञ्च मे शीघ्रं समुद्रे मे मतिर्गतिः ॥ २९ ॥

वह अनेक सैंकड़ों-सहस्रों सर्पों और नागों से घिरा हुआ था। हे प्रिये! इस उपद्रव को जब राजा भगीरथ ने देखा ॥ १८ ॥

तब सहसा उस भगीरथ ने नागों के अधिपति शेषनाग की स्तुति की तथा नारायण में मन लगा कर सैंकड़ों बार प्रणाम किया ॥ १९ ॥

राजा ने श्री विष्णु संज्ञक शेषनाग की अनेक प्रकार से स्तुति की। शेषनाग ने स्तुति से प्रसन्न होकर उस राजा भगीरथ को छोड़ कर···॥ २० ॥

तथा गंगा को लेकर वह पाताललोक में चला गया। इसी समय गंगा ने शेषनाग से कहा ॥ २१ ॥

गंगा ने कहा—

तुम विष्णु, जिष्णु, वषट्कार, दितिज, दैत्यसूदन, सहस्रफण, बिल में रहने वाले, भूमण्डल के सूर्य ॥ २२ ॥

सर्पराज, विषी, वैद्यों, भानु, सहस्रभानुधारी, रजताद्रिसमाकार, अनन्त, अनन्तशिरा और प्रभु (१६ नाम शेषनाग के हैं) हो ॥ २३ ॥

शिव ने कहा—

सर्पराज के इन सोलह नामों को जो पढ़ता है, वह नाग (सर्प) के डसने के विष से शीघ्र मुक्ति पाता है ॥ २४ ॥

सर्प को देखकर भी सर्पराज के नामों का जो पाठ करता है, उसका दर्शन करते ही सर्प क्षण भर में लोप हो जाते हैं ॥ २५ ॥

इस प्रकार गंगा द्वारा स्तुति किए जाने पर सौभाग्यों को देने वाले शेषनाग ने आधे मार्ग में ही गंगा जी से पूछा कि किसलिए आपने मेरी स्तुति की है ॥ २६ ॥

इस प्रकार उनसे कहे जाने पर गंगा ने विनयपूर्वक कहा कि हे वासुके! राजा भगीरथ के सतत प्रयास कैलास से···॥ २७ ॥

अपने पितरों की मुक्ति के लिए भूमि पर मुझे लाये हैं। हे भगवन्! इस समय मुझे अवश्य ही भगीरथ का कार्य करना है ॥ २८ ॥

हे राजन्! इस युग के अन्त में मैं आपके निवास स्थल में आऊँगी। इस समय मुझे शीघ्र छोड़ दो। मेरा विचार समुद्र में जाने का है ॥ २९ ॥

ओ३मित्युक्त्वा सर्पराजस्त्यक्त्वा तद्ब्रह्मणो वपुः ।
प्रणम्य च परिक्रम्य ययौ निलये स्वके ॥ ३० ॥

अद्यापि तत्प्रदेशे हि विषज्वालाः सहस्रशः ।
जायन्ते सर्पराजस्य दह्यन्तेऽनेकदेहिनः ॥ ३१ ॥

चतुर्योजनविस्तीर्णे स्थाने तस्मिन् महेश्वरि ।
न सन्ति देवगन्धर्वा न मृगादिकजन्तवः ॥ ३२ ॥

सरोवरं तत्र रम्यं श्यामाम्बुपरिपूरितम् ।
तस्यैव दक्षिणे भागे मल्लिंगं सर्वदुर्लभम् ॥ ३३ ॥

सोऽपि राजा महाबाहुर्दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ।
संस्तुवन् जाह्नवीं देवीं विचचार बने तदा ॥ ३४ ॥

तस्य संचरतो देवि कस्मिंश्चिद्पर्वते वरे ।
कन्यायुग्मं महाश्चर्य्यरूपं तत्र व्यदृश्यत ॥ ३५ ॥

नानालंकारसंयुक्तं मुक्तामणिविभूषितम् ।
सितासितशुभांगं च चलत्कुण्डलशोभितम् ॥ ३६ ॥

पप्रच्छ राजा कन्ये ते के युवां निर्जने वने ।
अहं तु सुखसंत्यक्तो व्रजामि निर्जने वने ॥ ३७ ॥

भगीरथोऽस्मि हे कन्ये युवाभ्यां कुत्र गम्यते ।
इति तद्देवि तं श्रुत्वा सिता प्रोवाच कन्यका ॥ ३८ ॥

गोप्यमस्ति न मे रूपं गंगाऽस्मि हि भगीरथ ।
इयं या त्वसिता देवी सूर्यस्य तनया शुभा ॥ ३९ ॥

यमुनेति समाख्याता सर्वकल्मषनाशिनी ।
दशधाहं महाराज निःसरामि हिमालयात् ॥ ४० ॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठतरा धारा त्वया सह गमिष्यति ।
पुनरन्यास्तु या धाराः संगमेष्यन्ति मे पुनः ॥ ४१ ॥

ऐसा ही हो, यह कहकर वे सर्पराज ब्रह्म रूप गंगा को छोड़कर उन्हें प्रणाम करके और उनकी परिक्रमा करके अपने स्थान को चले गये ॥ ३० ॥

आज भी उस प्रदेश में सर्पराज की हजारों विष की लपटें उत्पन्न होती हैं और उनसे अनेक देहधारी भस्म होते हैं ॥ ३१ ॥

हे महेश्वरि ! उस चार योजन विस्तृत स्थान में देव-गन्धर्व एवं पशु-पक्षी आदि जन्तु नहीं बसते ॥ ३२ ॥

वहाँ श्याम जल से परिपूर्ण एक सुरम्य सरोवर है। उसके दक्षिण भाग में अतिदुर्लभ मेरा लिंग विराजमान है ॥ ३३ ॥

उस राजा भगीरथ ने उस परम अद्‌भुत सरोवर को देखा। उस बन में गंगा की स्तुति करते हुए उस राजा ने वहाँ विचरण किया ॥ ३४ ॥

हे देवि ! उस बन में विचरते हुए उस राजा ने किसी पर्वत पर दो कन्याओं को देखा, जिनका रूप महान् आश्चर्य को प्रकट करने वाला था ॥ ३५ ॥

वे कन्यायें अनेक अलंकारों से युक्त थीं, मोती एवं मणियों से विभूषित थीं, उनके शुभ अंग श्वेत और श्याम थे, वे हिलते हुये कुण्डलों से सुशोभित थीं ॥ ३६ ॥

राजा ने उन कन्याओं से पूछा कि तुम इस निर्जन बन में कौन हो ? मैं तो सुखों को छोड़कर निर्जन बन में विचरण कर रहा हूँ ॥ ३७ ॥

मैं भगीरथ हूँ। हे कन्याओ ! तुम कहाँ जा रही हो ? इस प्रकार भगीरथ के वचन सुनकर गौर वर्ण की कन्या ने कहा ॥ ३८ ॥

हे भगीरथ ! मेरा रूप तुम से गोपनीय नहीं है। मैं गंगा हूँ और यह श्याम रंगवाली कन्या सूर्य की कन्या है ॥ ३९ ॥

यमुना नाम वाली यह सब पापों को शमन करने वाली प्रसिद्ध है। हे महाराज ! मैं दस धाराओं में विभक्त होकर हिमालय से निकली हूँ ॥ ४० ॥

सबसे बड़ी श्रेष्ठ धारा आपके साथ जावेगी। इसके बाद मेरी जो अन्य नौ धारायें हैं, वे पुनः उसमें मिल जायेंगी ॥ ४१ ॥

नाना नाम्न्यो महाराज भविष्यन्ति महीतले ।
दर्शनात्स्पर्शनात्पुण्या यतो मे द्रवसम्भवाः ॥
इदं गंगोत्तरं नाम तीर्थराड्ढि भगीरथ ॥ ४२ ॥

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा तं महीपाल गंगा परमपाविनी ।
जाता प्रवाहरूपा सा तरंगभंगिचंचला ॥ ४३ ॥

गंगोत्तरं समाख्यातं दक्षिणे मुनिसेवितम् ।
तद्वामे याऽसिता देवी यमुना सा प्रकीर्त्तिता ॥ ४४ ॥

यामुनोत्तरमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
इति तीर्थद्वयं यस्तु प्रातःकाले च संस्मरेत् ॥ ४५ ॥

दुःखानि तस्य नश्यन्ति यथा राज्ञो महेश्वरि ।
नीत्वा तां तु शुभां धारां गंगाख्यां पापनाशिनीम् ॥ ४६ ॥

निर्ययौ स्वपितृस्थाने महाराजो भगीरथः ।
अतिक्रम्याऽनेकदेशान् समुद्रान्तं महायशाः ॥ ४७ ॥

पूर्वाशां सागरे गंगा मिलिता सा सहस्रधा ।
तीर्थं पुण्यतरं तद्वै गंगासागरसगमम् ॥ ४८ ॥

यत्र कुत्रापि देवेशि स्मरणान्मुक्तिदायकम् ।
तस्यापि पितरो मुक्तिं प्राप्नुयुश्च सुदुर्लभाम् ॥ ४९ ॥

इति ते कथितं देवि गंगायाश्चावतारणम् ।
भगीरथोपाख्यानं च महापातकनाशनम् ॥ ५० ॥

इदं परममाख्यानं शृणुते भक्तितत्परः ।
पठेद् वापि महादेवि स नरो मुक्तिभाग्भवेत् ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने
श्रीगंगावतरणं नाम ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

हे महाराज ! भूमण्डल पर उनके अनेक नाम होंगे। मेरे जल के दर्शन और स्पर्श करने से पुण्यों का लाभ होता है। हे भगीरथ ! यह गंगोत्तरी नाम का तीर्थराज है ॥ ४२ ॥

शिव ने कहा—

परमपाविनी गंगा राजा भगीरथ से यह कहने के बाद चंचल भंगिमाओं वाली तरंगों से व्याप्त हो प्रवाह रूप हो गयीं ॥ ४३ ॥

मुनियों द्वारा सेवित दक्षिण में गंगोत्तरी नाम का तीर्थ विख्यात है। उसके वाम भाग में श्यास वर्णा देवी यमुना नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ४४ ॥

यमुनोत्तरी नाम का तीर्थ सब सिद्धियों को देने वाला है। इन दोनों तीर्थों का जो प्रातःकाल में स्मरण करता है ॥ ४५ ॥

हे महेश्वरि ! राजा भगीरथ के समान उनके सब दुःख नष्ट हो जाते हैं। पापनाशिनी गंगा की उस शुभ धारा को लेकर···॥ ४६ ॥

महायशस्वी महाराज भगीरथ अनेक देशों को लांघकर समुद्र के समीप अपने पितरों के स्थान पर गये ॥ ४७ ॥

वह गंगा अपनी सहस्र धाराओं से पूर्व दिशा में समुद्र में जाकर मिल गई। वह गंगासागर संगम तीर्थ निश्चय से पुण्यतम है ॥ ४८ ॥

हे देवेशि ! जहाँ कहीं भी कोई मनुष्य उसका स्मरण करता है, उसे मुक्ति का लाभ होना है। उसके पितर भी दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥ ४९ ॥

इस प्रकार हे देवि ! मैंने गंगा का अवतरण आपसे कहा है। यह भगीरथ-उपाख्यान महापापों का बिनाश करने वाला है ॥ ५० ॥

जो इसको भक्ति में तत्पर होकर सुनता है, अथवा पढ़ता है, हे महादेवि ! वह नर भी मुक्ति का भागी होता है ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भगीरथोपाख्यान में
श्री गंगा-अवतरण नाम का उनचालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

चत्वारिंशोऽध्यायः

गंगायाः दश धाराणां वर्णनम्

वसिष्ठ उवाच—

इदं च परमाख्यानं श्रुत्वा देवी तु पार्वती ।
उवाच भक्तिसंपन्ना भर्त्तारं परमेश्वरम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच—

देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहतत्पर ।
गंगाया दशधारास्तु कथिता यास्त्वयाद्य मे ॥ २ ॥

नामानि चैव माहात्म्यं वद मे भूतभावन ।
को वै पुण्यतमो देशो यत्र धारा गतास्तु ताः ॥ ३ ॥

माहात्म्यं विस्तराद्ब्रूहि श्रोतुकामास्मि साम्प्रतम् ।
कुत्र ता मिलिता भूयो ब्रह्मदेहसमुद्भवाः ॥ ४ ॥

स्थानानां च तथा तेषां माहात्म्यं सुतरां वद ।
भक्ताऽस्मि तव देवेश प्राणात्प्रियतरो ह्यसि ॥ ५ ॥

गोप्यं नैव स्वभक्तेषु कुर्वन्ति सततं नराः ।
ईश्वर त्वं जगत्कर्ता जगद्भर्ता त्वमेव हि ॥ ६ ॥

त्वय्येव सर्वं देवेश प्रोतमेतज्जगत्रयम् ।
के देशास्ते यत्र गंगा दशधा वद विस्तरात् ॥ ७ ॥

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि वरारोहे यत्पृष्टोऽहं त्वयानघे ।
अवाच्यमपि वक्ष्यामि नोक्तं कस्यापि यत्पुरा ॥ ८ ॥

अध्याय ४०

गंगा की दस धाराओं का वर्णन

बसिष्ठ ने कहा—

इस परम आख्यान को पार्वती देवी ने जब सुना तब वह भक्तियुक्त होकर अपने पति परमेश्वर शंकर से कहने लगीं ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा—

हे देवताओं में श्रेष्ठ ! जगत्पति ! भक्तों पर दया करने वाले ! आपने मेरे से गंगा की दस धाराओं का जो आज वर्णन किया ॥ २ ॥

हे भूतभावन ! उनके नाम और माहात्म्य को कहो। वह कौन देश है, जहाँ से वे पुण्य धारायें निर्गत हुई हैं ? ॥ ३ ॥

आप उनका माहात्म्य विस्तार से कहिये। मेरी इस समय सुनने की इच्छा है। वे धारायें ब्रह्मदेह से उत्पन्न होकर कहाँ पुनः मिली हैं ॥ ४ ॥

उनके स्थानों का तथा माहात्म्य का सुतराँ वर्णन कीजिये। हे देवेश ! मैं आपकी भक्त हूँ और आप मुझे प्राणों में भी अधिक प्रिय हैं ॥ ५ ॥

महातमा अपने भक्तों से कुछ भी गुप्त नहीं रखते हैं। आप ईश्वर हैं और संसार की रचना करने वाले तथा पालन करने वाले भी आप ही हैं ॥ ६ ॥

हे देवेश ! तुम्हारे अन्दर ही तीनों लोक ओतप्रोत हो रहे हैं। वे कौन देश हैं, जहाँ गंगा जी दस धाराओं में विभक्त हैं ? इसे विस्तार से बोलिए ॥ ७ ॥

ईश्वर ने कहा—

दे देवि ! वरारोहे ! अनघे ! सुनो। तुमने जो मुझसे पूछा है, वह अत्यन्त गोपनीय होते हुए भी मैं तुमसे कहता हूँ। जिसे मैंने अभी किसी से नहीं कहा ॥ ८ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन रहस्यं परमाद्भुतम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण हत्यानां कोटयस्तथा ।। ९ ।।

नश्यन्ति देवदेवेशि यथाग्नेस्तूलराशयः ।
श्रुणु पूर्वं यथा देवि पाण्डवा देवतांशजाः ।। १० ।।

गोत्रहत्यापराभूतास्तथा गुरुवधार्दिताः ।
पांडोः पुत्रा महात्मानो विख्यातबलविक्रमाः ।। ११ ।।

हत्वा द्रोणादिकान् सर्वान्हत्यया परिपीडिताः ।
सन्तप्तहृदयाः सर्वे शोकेन च समाकुलाः ।। १२ ।।

भ्रष्टसर्वक्रियाश्चैव व्यासं वै शरणं ययुः ।
व्यासमूचुर्महात्मानं कल्मषाविष्टमानसाः ।। १३ ।।

पांडवा ऊचुः

भगवन्व्यास ते सर्वे वयं त्वच्छरणागताः ।।
पापात्मानोऽनिशं ब्रह्मन् कथं मुक्ति व्रजामहे ।। १४ ।।

गोत्रहत्यासमाविष्टास्तथा गुरुवधार्दिताः ।
त्वमेव शरणं नो वै आज्ञापय यथा स्फुटम् ।। १५ ।।

केन वै कर्म्मणा ब्रह्मन् यास्यामो गतिमुत्तमाम् ।
तद्ब्रूहि कृपयाविष्टो नप्तारस्ते यतो वयम् ।। १६ ।।

व्यास उवाच—

शृणुध्वं पांडवाः सर्वे हन्तारो गोत्रिणां तथा ।
सर्वस्य निष्कृतिर्दृष्टा न हन्तुर्गोत्रिणां क्वचित् ।। १७ ।।

विना केदारभवनं तत्र गच्छत साम्प्रतम् ।
यत्र ब्रह्मादयो देवाः शिवदर्शनलालसाः ।। १८ ।।

तपोनिष्ठाः कर्मपूतास्तपन्ति तप उत्तमम् ।
यत्र गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा नानाधारात्मिकाऽस्ति वै ।। १९ ।।

यत्रेश्वरो महादेवो वर्त्तते ह्य मया सह ।
गणैश्च शतशो भूपा प्रमथाद्यैर्महाभटैः ।। २० ।।

यह परम अद्‌भुत रहस्य है । इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये । इसके मात्र दर्शन करने से करोड़ों हत्याओं के पाप···॥ ६ ॥

हे देव देवेशि ! अग्नि से कपास के समान भस्म हो जाते हैं । हे देवि ! सुनो ! पहले देवताओं के अंश से पाण्डव उत्पन्न हुये थे ॥ १० ॥

प्रसिद्ध बल पराक्रम वाले वे महात्मा पाण्डु-पुत्र गोत्र हत्या के पाप से पराभूत हुये और गुरुजनों के वध के पाप से पीड़ित हुये ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्य आदि सब गुरुजनों की हत्या करके इस हत्या के पाप से परिपीड़ित एवं सन्तप्त हृदय होकर वे सब शोक से व्याकुल हो गये ॥ १२ ॥

उनकी सभी क्रियायें भ्रष्ट हो गईं । वे व्यास जी की शरण में गए । पाप से मलिन मन वाले वे महात्मा व्यास से कहने लगे ॥ १३ ॥

पांडवों ने कहा—

हे भगवन् ! व्यास ! हम सब आपकी शरण में आये हैं । हे ब्रह्मन् ! निरन्तर पाप के आचरण करने वाले हमें मुक्ति का लाभ किस प्रकार हो सकता है ॥ १४ ॥

गोत्रहत्या के पाप से समाविष्ट तथा गुरुओं के वध के पाप से पीड़ित हम आपकी शरण में आये हैं । आप हमें इस विषय में स्पष्ट आज्ञा दीजिये ॥ १५ ॥

हे ब्रह्मन् ! किस कर्मानुष्ठान से हम उत्तम गति को पा सकते हैं, कृपा करके आप यह बताइये । क्योंकि हम आपके ही नाती हैं ॥ १६ ॥

व्यास ने कहा—

गोत्र की हत्या करने वाले हे पांडवो ! सुनो । सब पापों का प्रायश्चित्त हमने देखा है किन्तु गोत्र हत्या का प्रायश्चित्त नहीं देखा ॥ १७ ॥

बिना केदारनाथ के दर्शन के गोत्र हत्या का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता । अतः अब आप वहीं जाओ, जहाँ शिव के दर्शन के इच्छुक, तपोनिष्ठ एवं पवित्र कर्म करने वाले ब्रह्मा आदि देवता उत्तम तप करते हैं, जहाँ नदियों में श्रेष्ठ गंगा नदी अनेक धाराओं में बहती हैं ॥ १८-१९ ॥

जहाँ शंकर भगवान् पार्वती देवी के साथ निवास करते हैं । हे पाण्डवो ! जहाँ प्रमथ आदि महाभट सैकड़ों गणों सहित रहते हैं ॥ २० ॥

यत्र देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपुंगवाः ।
वृश्चिकार्द्धगते सूर्ये प्रत्यक्षं क्रीडयन्ति हि ।। २१ ।।

नानावाद्यानि वाद्यंते श्रूयन्ते वेदनिःस्वनाः ।
यत्र देशे मृतो जंतुः शिव एव न संशयः ।। २२ ।।

तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ।
अनेकतीर्थसंयुक्तः स्मृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।। २३ ।।

गच्छध्वं त्रिदशस्थानं महापथसमीरितम् ।
एतदेव परं स्थानं ब्रह्महत्यानिवारणम् ।। २४ ।।

ईश्वर उवाच—

इति व्यासवचः श्रुत्वा पांडवा हृष्टमानसाः ।
प्रणम्य तं परिक्रम्य ययुः कैलासपर्वते ।। २५ ।।

तत्रैव निवसन्तो वै ययुः परमिकां गतिम् ।
यस्य तीर्थस्य सेवायाः शुद्धा जाता महौजसः ।। २६ ।।

इति तत्परमं स्थानं देवानामपि दुर्ल्लभम् ।
पञ्चाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनविस्तृतम् ।। २७ ।।

इदं वै स्वर्गगमनं न पृथ्वीं तामहो विभो ।
श्रीगंगाद्वारमर्यादं श्वेतांतं वरवर्णिनि ।। २८ ।।

तमसातटतः पूर्वमर्वाग्बौद्धाचलं शुभम् ।
केदारमण्डलं ख्यातं भूम्यास्तदिभन्नकं स्थलम् ।। २९ ।।

वात्सल्यात्तव देवेशि कथितो देश उत्तमः ।
तिर्यग्योनिगतो वापि मृतः शिवपुरे वसेत् ।। ३० ।।

अनेकतीर्थसंयुक्तं नानापुण्यवनैर्युतम् ।
अनेकशतसाहस्रशिवलिंगविराजितम् ।। ३१ ।।

नानानदीनदाकीर्णं नदीसंगमशोभितम् ।
नानाक्षेत्रैः पुण्यतमं नानापीठसुयंत्रितम् ।। ३२ ।।

जहाँ देवता, गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षस निवास करते हैं। ये मार्गशीर्ष महीने के पन्द्रह दिन बीतने पर प्रत्यक्ष होकर क्रीड़ा करते हैं ॥ २१ ॥

उस समय अनेक बाजों और वेदों की ध्वनियाँ सुनायी पड़ती हैं। जिस देश में मरने से प्राणी निःसन्देह साक्षात् शिव ही हो जाता है ॥ २२ ॥

उस क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने की क्षमता किसकी हो सकती है ? अनेक तीर्थों से घिरे इस केदार क्षेत्र के स्मरण से मोक्ष प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

अतः आप उस देव स्थान को जाओ जिसे मोक्ष के लिए महापथ कहा गया है। यही एक ऐसा परम उत्तम स्थान है, जहाँ प्रवेश करने से ब्रह्महत्या का निवारण हो सकता है ॥ २४ ॥

ईश्वर ने कहा —

व्यास के इन वचनों को सुनकर पांडवों का मन अति प्रसन्न हुआ। व्यास को प्रणाम कर तथा उनकी परिक्रमा कर वे पाण्डव कैलाश पर्वत पर गये ॥ २५ ॥

कैलाश में निवास करते हुये वे परमगति को प्राप्त हुये। इसी तीर्थ के सेवन से वे महातेजस्वी शुद्ध हो गये ॥ २६ ॥

इस प्रकार वह परम स्थान (कैलाश) देवताओं को भी दुर्लभ है। हे विभो ! पचास योजन चौड़ा और तीस योजन लम्बा यह क्षेत्र है ॥ २७ ॥

निश्चय से यह पृथ्वी नहीं, स्वर्ग का लाभ करने वाला है। हे पार्वति ! गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर श्वेत पर्वत तक है ॥ २८ ॥

और तमसा नदी के तट से पूर्व में तथा बौद्धाचल से पश्चिम दिशा में शुभ देने वाला केदार मण्डल विख्यात है। वह भूमि से भिन्न ही स्थल है ॥ २९ ॥

हे देवि ! आपके प्रति प्रेम के कारण मैंने उस उत्तम देश का वर्णन किया है। पशु-पक्षी आदि योनियों को प्राप्त होकर भी प्राणी केदार में मृत होने पर पर शिव-लोक को जाते हैं ॥ ३० ॥

यह प्रदेश अनेक तीर्थों से संयुक्त है और अनेक पुण्य वनों से सम्पन्न है। सैंकड़ों हजारों शिवलिंग यहां विराजमान हैं ॥ ३१ ॥

अनेक नदियों तथा नालों से आकीर्ण है और नदियों के संगमों से शोभित है। अनेक क्षेत्रों से पुण्यतम है और अनेक सिद्ध पीठों से सुयंत्रित है ॥ ३२ ॥

काश्यादीनि च तीर्थानि गदितानि बहूनि वै ।
तानि सर्वाणि सेवन्ते मूर्त्तिमन्तस्तपःस्थिताः ।। ३३ ।।

तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे धारास्ताः गदितास्तु याः ।
नामतः शृणु ताः सर्वाः पुण्याः पापप्रणाशनाः ।। ३४ ।।

मधुवर्णा तु या धारा मधुगंगा तु सा स्मृता ।
या वै क्षीरवहा धारा क्षीरगंगा द्वितीयका ।। ३५ ।।

मध्यमा या श्वेतवर्णा स्वर्गद्वारा प्रकीर्तिता ।
महाजलौघा सुश्रोणि धारा मन्दाकिनी मता ।। ३६ ।।

केदारनिलयाख्याता गंगा केदारसंज्ञका ।
निःसृता गंगया देवि पूर्वं शेषगृहीतया ।। ३७ ।।

यासु स्नात्वा वरारोहे शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
कामतोऽकामतो वापि भक्त्याऽभक्त्यापि पार्वति ।। ३८ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे गंगायाः दशधारावर्णनं नाम
चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।। ४० ।।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

व्याधाख्यानोपलक्षयेण केदारक्षेत्रस्य माहात्म्यस्य वर्णनम्

पार्वत्युवाच—

कथयस्व महादेव विस्तरान्मम क्षेत्रकम् ।
केदारं नाम यत्प्रोक्तं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।। १ ।।

कानि कानि च तीर्थानि वर्त्तंते तत्र नायक ।
किं पुण्यं किं फलं चात्र स्नानदानैर्महेश्वर ।। २ ।।

कथमेतन्महज्जातं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
एतत्सर्वं महादेव प्रियायै कथय प्रभो ।। ३ ।।

काशी आदि अनेक तीर्थ जो वर्णित किये गये हैं। वे सब मानों मूर्तिमान् हुये तपस्या में स्थित हो उस क्षेत्र की सेवा करते हैं ॥ ३३ ॥

उसी महाक्षेत्र में पूर्व कथित धारायें विद्यमान हैं। पापों की नाशक परमपावन उन धाराओं के नामों को सुनो ॥ ३४ ॥

मधु के समान वर्ण वाली धारा का नाम मधुगंगा है। जो क्षीर के समान वर्ण वाली धारा है, वह दूसरी धारा क्षीर गंगा के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ३५ ॥

जो मध्यम धारा है वह श्वेतवर्णा स्वर्ग द्वारा कहलाती है। हे सुश्रोणि ! बहुत अधिक जल के प्रवाह वाली धारा मन्दाकिनी है ॥ ३६ ॥

केदारनाथ में बहने वाली धारा केदारगंगा है। हे देवि ! पहले जब गंगा का शेषनाग ने अपहरण कर लिया था, उस समय ये सब धारायें उन्हीं में से निकलीं ॥ ३७ ॥

हे सुन्दरि ! इनमें स्नान करने से शिव का सान्निध्य मिलता है। हे पार्वति ! चाहे कोई इच्छा से अथवा अनिच्छा से, भक्ति से अथवा बिना भक्ति के स्नान करता है, उसे अवश्य शिव का सान्निध्य प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में गङ्गा की दस धाराओं का बर्णन नाम का चालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ४१

व्याध की कथा के उपलक्ष्य से केदारक्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन

पार्वती ने कहा—

हे देव ! स्वर्ग एवं मोक्ष को देने वाले जिस केदारक्षेत्र को आपने मुझसे कहा है, उसका सविस्तार वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

हे नायक महेश्वर ! उस केदारक्षेत्र में कौन-कौन तीर्थ विद्यमान हैं और उन तीर्थों में स्नान और दान करने से किस पुण्य और किस फल की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

यह तीर्थ किस कारण सब तीर्थों से बड़ा तथा उत्तमोत्तम हुआ है। हे महादेव ! प्रभो ! इस सारे वृत्तान्त को मुझ अपनी प्रिया से बोलो ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच—

इदं क्षेत्रं तु यत्प्रोक्तं मया देवि तवाधुना।
न त्यजामि कदाचिद्वै त्वत्तः प्रियतरं प्रिये ॥ ४ ॥

पुरातनो यथाऽहं वै तथा स्थानमिदं किल।
यदा सृष्टिक्रियायां च मया वै ब्रह्ममूर्तिना ॥ ५ ॥

स्थितमत्रैव सततं परब्रह्मजिगीषया।
तदादिकमिदं स्थानं देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥ ६ ॥

नन्दिभृंग्यादयः सर्वे द्वारदेशे प्रतिष्ठिताः।
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे न जानन्ति मम स्थलम् ॥ ७ ॥

यया त्वया तत्र देशे क्रीडितं विस्मृतं किल।
इदमेव महत्स्थानं सुगोप्यं सर्वजन्तुषु ॥ ८ ॥

मृतो यत्र महादेवि शिव एव न संशयः।
धन्यास्ते पुरुषा लोके पुण्यात्मानो महेश्वरि ॥ ९ ॥

ये वदन्त्यपि केदारं गमिष्याम इति क्वचित्।
पितर[1] स्तस्य देवेशि त्रिशतं कुलसंयुता ॥ १० ॥

गच्छन्ति शिवलोके तु सत्यं सत्यं न संशयः।
यथा सतीनां त्वं चैव देवानां च यथा हरिः ॥ ११ ॥

सरसां सागरो यद्वत्सरितां जाह्नवी तथा।
पर्वतानां यथाऽयं वै योगीनां याज्ञवल्क्यकः ॥ १२ ॥

भक्तानां च यथा देवि नारदो भक्त ईरितः।
शिलानां च यथा शालग्रामशिला तु वैष्णवी ॥ १३ ॥

अरण्यानां यथा प्रोक्तं बदर्य्यारण्यसंज्ञितम्।
धेनूनां च यथा कामधेनुर्वै परिकीर्तिता ॥ १४ ॥

मनुष्याणां यथा विप्रो विप्राणां ज्ञानदो यथा।
स्त्रीणां पतिव्रता यद्वत्प्रियाणां पुत्र एव च ॥ १५ ॥

---

१. देवेशि पितरस्तेषां।

शिव ने कहा—

हे देवि ! केदार नामक जिस क्षेत्र का वर्णन मैंने अभी तुम से किया है, उसे मैं कभी नहीं छोड़ता हूँ । वह क्षेत्र मुझे तुम से भी अधिक प्रिय है ॥ ४ ॥

यह निश्चित है कि जैसे मैं प्राचीन हूँ, उसी प्रकार यह स्थान भी प्राचीन है । जब सृष्टि को रचने के लिए मैंने ब्रह्मा के स्वरूप को धारण किया था ॥ ५ ॥

और इसी स्थान पर परम ब्रह्म को जानने की इच्छा से स्थित रहा था, उसी समय से यह स्थान विद्यमान है । यह देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ६ ॥

जहाँ नन्दी, भृंगी आदि गण सभी द्वारदेश में प्रतिष्ठित रहते हैं । मेरे इस स्थान को ब्रह्मा आदि सब देवता भी नहीं जानते ॥ ७ ॥

जहाँ कि तुमने मेरे साथ क्रीड़ा की थी, तुम उस क्षेत्र को कैसे भूल गई हो । इस महान् स्थान को सभी प्राणियों से गुप्त रखना चाहिए ॥ ८ ॥

हे महादेवि ! इस केदारक्षेत्र में मरने से मनुष्य निःसन्देह शिवरूप हो जाता है । हे महेश्वरि ! संसार में वे पुण्य आत्मायें धन्य हैं ॥ ९ ॥

जो कहते हैं कि मैं कभी उस केदारनाथ की यात्रा करूँगा । हे देवि ! उनके तीन सौ कुल के पितर ॥ १० ॥

शिवलोक में जाते हैं, यह सत्य है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । पतिव्रताओं में जैसे तुम श्रेष्ठ हो और देवताओं में जैसे विष्णु श्रेष्ठ हैं ॥ ११ ॥

जलाशयों में जैसे समुद्र, नदियों में जैसे गंगा, पर्वतों में जैसे कैलास पर्वत, योगियों में जैसे याज्ञवल्क्य श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

हे देवि ! भक्तों में जैसे नारद मुनि और शिलाओं में वैष्णवी शालग्रामशिला श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ १३ ॥

अरण्यों में जिस प्रकार बदरीवन, धेनुओं में जैसे कामधेनु श्रेष्ठ कही गई है ॥ १४ ॥

मनुष्यों में ब्राह्मण तथा ब्राह्मणों में ज्ञान देने वाला, स्त्रियों में पतिव्रता, प्रिय लगने वालों में पुत्र श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

पदार्थानां यथा स्वर्णं मुनीनां च यथा शुकः ।
सर्वज्ञानां यथा व्यासो देशानामयमेव च ।। १६ ।।

नराणां च यथा राजा सुराणां वासवस्तथा ।
वसूनां धनदो यद्वत्पुरीणां मामकी यथा ।। १७ ।।

रम्भा चाप्सरसां यद्वद् गन्धर्वाणां च तुंबुरुः ।
क्षेत्राणां च तथा प्रोक्तं क्षेत्रं केदारसंज्ञितम् ।। १८ ।।

शृणु देवि पुरा वृत्तं व्याधस्यैकस्य तच्छृणु ।
मृगहन्ताऽवसद्व्याधो ग्रामान्ते विकरालकः ।। १६ ।।

मृगमांसाशनो नित्यं विक्रेता सर्ववस्तुनः ।
एकदा स महान् व्याधो मृगान् हन्तुं गतो वने ।। २० ।।

हतास्तत्र[1] बने देवि मृगाश्च बहवस्तथा ।
एवं हनन्मृगान्व्याधो ययौ केदारतीर्थके ।। २१ ।।

गच्छतस्तस्य देवेशि वने मुनिगणान्विते ।
व्यदृश्यत मुनिश्रेष्ठो नारदो विचरन् गिरौ ।। २२ ।।

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि व्याधो वै हृष्टमानसः ।
योऽयं गच्छति स्वर्णात्मा दिव्यरूपधरो मृगः ।। २३ ।।

एनं हत्वा स्वर्णमयं[2] मृग[3] स्वर्णमयो भवे ।
इति वै चिन्तयित्वा तु व्याधः परमविस्मितः ।। २४ ।।

धनुः सज्जं चकाराशु बाणं सन्धाय कार्मुके ।।
यावन्निहन्ति तमृषि तावदस्तं गतो रविः ।। २५ ।।

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा व्याधोऽतिविस्मितः ।
यावद् गच्छति चाग्रे तु ददर्श दर्दुरं बिले ।। २६ ।।

सर्प्पेण ग्रस्यमानं वै महाकायेन सत्वरम् ।
यावद्ग्रसति मंडूकं सर्पः कालात्मको ह्ययम् ।। २७ ।।

---

१. महादेवि । २. मृग । ३. ह्ययं ।

पदार्थों में जैसे सुवर्ण, मुनियों में जैसे शुकदेव मुनि और सर्वज्ञों में जैसे व्यास श्रेष्ठ हैं, वैसे ही प्रदेशों में यह प्रदेश श्रेष्ठ है ।। १६ ।।

नरों में जैसे राजा, देवताओं में इन्द्र, वसुओं में कुबेर और पुरियों में मेरी काशीपुरी श्रेष्ठ है ।। १७ ।।

अप्सराओं में रम्भा और गन्धर्वों में तुम्बुरु सर्वश्रेष्ठ है, इसी प्रकार क्षेत्रों में केदार नामक क्षेत्र सब क्षेत्रों से उत्तम है ।। १८ ।।

हे देवि ! सुनो । मैं एक व्याध और मृग का पुराना वृतांत आपसे कहता हूँ । एक अति भयानक मृगों को मारने वाला व्याध एक गांव में निवास करता था ।। १९ ।।

वह व्याध नित्य मृग मांस का भक्षण करता था तथा सभी वस्तुओं का विक्रय करता था । एक समय वह व्याध मृगों को मारने के लिए वन में गया ।। २० ।।

हे महादेवि ! उस वन में व्याध ने अनेक मृगों का वध किया । इस प्रकार मृगों को मारते हुये वह व्याध केदार तीर्थ में जा पहुँचा ।। २१ ।।

हे देवेशि ! वह व्याध उन मुनिगणों से समलंकृत वन में जब जा ही रहा था कि उसने पर्वत पर मुनियों में श्रेष्ठ नारद मुनि को घूमते हुये देखा ।। २२ ।।

इस बीच उसको देखकर व्याध का मन अति प्रसन्न हुआ । व्याध ने समझा कि यह घूमने वाला सुनहरे वर्ण का दिव्य रूप धारण करने वाला मृग घूम रहा है ।। २३ ।।

इस सोने के मृग को मारकर मैं सोने से परिपूर्ण हो जाऊँगा । यह सोचकर वह व्याध परम विस्मित हो रहा था ।। २४ ।।

उसने शीघ्र धनुष तैयार कर उस पर बाण सन्धान किया । जब तक कि उस ऋषि को बाण से मारना चाहा, तभी भगवान् सूर्य अस्त हो गये ।। २५ ।।

इस परम आश्चर्यकारी घटना को देखकर वह व्याध अति विस्मित हुआ । आगे जाने पर उसने एक बिल में एक मैंढक को देखा ।। २६ ।।

एक विशालकाय सर्प उसको ग्रस रहा था । उस मैंढक को जब तक काल रूप यह सर्प ग्रसने वाला था ।। २७ ।।

तावद् बभूव मंडूको नागयज्ञोपवतीकः ।
अर्द्धचन्द्रधरः शोर्षे जटाटव्या विराजितः ।। २८ ।।

कैलासाद्रिस माभासो नृत्यद्गणविराजितः ।
त्रिशूली नीलकण्ठो वै हस्तिचर्माम्बरो विभुः ।। २९ ।।

इति तत्परमाश्चर्य्यं दृष्ट्वा वै व्याधपूरुषः ।
किमेतद् वै कथं जाता मंडूकःसर्पवेष्टितः ।। ३० ।।

रूपं कस्मादिदं जातं मंडूकस्यान्यदेहकः ।
किं वा स्वप्नमहं मन्ये जाग्रतो मे कथं भवेत् ।। ३१ ।।

भ्रमो मे हि कथं जातः स्वस्थोऽस्मि यत एव हि ।
अथ चेद कथंचिद्वै भूतोपद्रवकं किमु ।। ३२ ।।

सन्निकर्षमृतिर्मेऽद्य वर्त्तते विकृतिर्यतः ।
किं करोमि क्व गच्छामि वनेऽस्मिन्भूतसेविते ।। ३३ ।।

के[1] मे रक्षामिदानीं हि करिष्यन्ति महावने ।
पश्यतो मे हि मण्डूको विकृतिं वै कथं गतः ।। ३४ ।।

इति चिन्तासमाविष्टमना व्याधो हि तत्क्षणात् ।
पलायनपरो जातो महेशि वनतो यदा ।। ३५ ।।

तावद्ददर्श व्याघ्रेण हन्यमानं मृगं किल ।
पुष्टांगं सुन्दरांगं च महाव्याधो भयातुरः ।। ३६ ।।

तमेव हन्यमानं च मृगं वै शिवरूपिणम् ।
पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं च व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।। ३७ ।।

हंता यो देवदेवेशि मृगराट् स सपदि हतः ।
व्याधेनानेन केनापि बलीवर्दो बभूव ह ।। ३८ ।।

---

१. को ।

तभी वह मैंढक सर्परूप यज्ञोपवीत को धारण करने वाला हो गया। उसने सिर पर अर्द्धचन्द्र को धारण किया और वहाँ जटा रूपी वन शोभित होने लगा ॥ २८ ॥

कैलास पर्वत के समान कान्तिमान्, नृत्य करते हुये गणों से शोभायमान, गज-चर्म को धारण करता हुआ वह त्रिशूल को हाथ में लिए नीलकण्ठ महादेव स्वरूप हो गया ॥ २६ ॥

यह देखकर वह व्याध पुरुष परम विस्मित हो गया। उसने सोचा कि किस प्रकार यह मण्डूक सर्प से वेष्टित हुआ है ॥ ३० ॥

इस मण्डूक की देह इस रूप में कैसे परिवर्तित हो गई है। क्या मैं इसे स्वप्न मानूं, किन्तु मैं तो जागृत अवस्था में हूँ। यह स्वप्न कैसे हो सकता है ॥ ३१ ॥

मुझे इस विषय में भ्रम भी कैसे हो सकता है, क्योंकि मैं स्वस्थ अवस्था में हूँ। क्या यह भूतों का उपद्रव है ? ॥ ३२ ॥

इस समय मृत्यु मेरे निकट आ गई है, क्योंकि मुझे यह विकार हो रहा है। इस भूतों से सेवित वन में मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? ॥ ३३ ॥

इस महान् वन में इस समय कोन मेरी रक्षा करेंगे ? मेरे देखते-देखते यह मैंढक इस विकार को कैसे प्राप्त हो गया ॥ ३४ ॥

हे महेश्वरि ! इस प्रकार चिन्तित हुआ वह व्याध तत्काल जब उस वन से भागने के लिए तैयार हुआ ॥ ३५ ॥

तभी उसने देखा कि एक सुन्दर पुष्ट शरीर वाला मृग एक व्यांघ्र के द्वारा मारा जा रहा है। इससे वह व्याध भय से आतुर हो गया है ॥ ३६ ॥

व्याघ्र द्वारा मारे गये उस मृग ने नाग रूप यज्ञोपवीत को धारण किया। वह तीन आँख तथा पांच मुखों वाला शिव रूप हो गया ॥ ३७ ॥

हे देवेशि ! इस व्याध ने देखा कि मृग को मारने वाला वह शेर (व्याघ्र) भी किसी व्याध के द्वारा मारा जाकर सहसा बैल हो गया ॥ ३८ ॥

आरुरोह वृषे तस्मिन् स वै पूर्वहतो मृगः ।
शिवरूपधरः साक्षात्पश्यतस्तस्य सुन्दरि ॥ ३९ ॥

इति तत्र पराश्चर्यं दृष्ट्वा व्याधोऽतिविस्मितः ।
चिन्तयामास बहुशः किमिदं किमिदं त्वहो ॥ ४० ॥

पुलकांकितसर्वांगो विस्मयाविष्टमानसः ।
पुनर्ददर्श देवेशि तमेव नारदं मुनिम् ॥ ४१ ॥

तं दृष्ट्वा मनुजाकारं वने तस्मिन्भयावहे ।
श्रुत्वा तु तन्मुखाद्वृत्तं तत्रत्यं मम बल्लभे ॥ ४२ ॥

व्याधः साधुरसाधुश्च वनं साधु परं महत् ।
इति श्रुत्वा तु स व्याधो बभाषे नारदं मुनिम् ॥ ४३ ॥

कथं साधुरहं ब्रह्मन्नसाधुश्च कथं वनम् ।
साधुसाध्विति यत्प्रोक्तं त्वया किं तद् वदस्व मे ॥ ४४ ॥

व्याधेरितं तु तच्छ्रुत्वा विहस्य नारदोऽब्रवीत् ।
धन्योऽसि लुब्धकश्रेष्ठ यत्त्वया तीर्थमुत्तमम् ॥ ४५ ॥

आगतं तादृशं चैव दृष्टं वै शुभदर्शनम् ।
तस्मादुक्तं च मे साधुस्त्वमसाधुश्च मच्छृणुः[1] ॥ ४६ ॥

यस्मादिदं त्वया व्याध ज्ञातं नेति शुभं परम् ।
यस्य माहात्म्यतः शीघ्रं तिर्य्यग्योनिगतो ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

अवाप्य शिवतां चैव पश्यतस्ते क्षणात्तथा ।
इति तत्परमाश्चर्यं रूपं तद् वचनं प्रिये ॥ ४८ ॥

श्रुत्वा व्याधो महाभागः प्रणनाम भुवि क्षणात् ।
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि मुने त्वद्दर्शनादहम् ॥ ४९ ॥

योऽहं तव मुखाम्भोजनिःसृतं सुकथामृतम् ।
पिबामि मुनिशार्दूल त्राहि मां भवसागरात् ॥ ५० ॥

---

१. तच्छृणु ।

वह पहले मारा गया मृग साक्षात् शिव रूप धारण कर उस बैल पर आरूढ़ हो गया। हे सुन्दरि ! यह सब उस व्याध के देखते-देखते हुआ ॥ ३९ ॥

इस प्रकार उस स्थान पर इस परम आश्चर्य को देखकर व्याध अति विस्मित हो गया। वह बहुधा सोचने लगा कि अहो, यह क्या हो गया है, यह क्या हो गया है ? ॥ ४० ॥

आश्चर्य से भरे मन वाले उस व्याध के शरीर के सब अंग पुलकित हो उठे। हे देवेशि ! फिर उसने उन्हीं नारद मुनि को देखा ॥ ४१ ॥

हे मेरी प्रिये ! व्याध ने उस भयानक वन में मनुष्य के आकार के उस नारद मुनि को देखा और उसके मुख से वहां के वृत्तान्त को सुना ॥ ४२ ॥

हे व्याध ! तुम साधु भी और असाधु भी हो। यह परम महान् वन साधु है। यह सुनकर उस व्याध ने नारद मुनि को कहा···॥ ४३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैं साधु तथा असाधु दोनों कैसे हूँ ? यह वन साधु क्यों है ? आपने जो साधु और असाधु कहा है, इसका क्या कारण है ? आप इसे मुझ से कहिए ॥ ४४ ॥

व्याध के कहे गये इन वचनों को सुनकर नारद मुनि ने हंसकर कहा। हे श्रेष्ठ व्याध ! तू धन्य है, जो इस उत्तम तीर्थ में ॥ ४५ ॥

आया है और इस उत्तम तीर्थ के शुभ दर्शन किये हैं। इसी कारण मैंने साधु शब्द से तुमको उच्चारित किया और असाधु के विषय में तुम सुनो ॥ ४६ ॥

क्योंकि हे व्याध ! तुमको इस शुभ परम तीर्थ का ज्ञान नहीं हुआ है, जिसके माहात्म्य से शीघ्र कीट-पतंग आदि योनियों में उत्पन्न हुआ जीव भी ॥ ४७ ॥

क्षणभर में ही तुम्हारे देखते-देखते शिव रूप हो गया है। हे प्रिये ! इस प्रकार परम आश्चर्य रूप वचनों को ॥ ४८ ॥

सुनकर उस महाभाग व्याध ने तत्काल भूमि में नतमस्तक हो मुनि को प्रणाम किया। हे मुने आपके दर्शनों से मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया हूँ ॥ ४९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! जो मैंने आपके कमलरूपी मुख से निर्गत सुन्दर कथाओं का पान किया है। हे मुनियों में श्रेष्ठ ! इस संसार रूपी समुद्र से मेरी रक्षा करो ॥ ५० ॥

पापोऽहं मुनिहंताऽहं हिंसकोऽहं दुरासदः ।
तारयेह महाभाग कथमेतादृशी गतिः ॥ ५१ ॥

भवेन्मे मुनिशार्दूल तद्वदस्व कृपान्वितः ।
उवाच नारदस्तं वै अत्रैव निवसत्विति ॥ ५२ ॥

इत्युक्त्वांतर्दधे देवि पश्यतस्तस्य वै प्रिये ।
व्याधोऽपि निवसंस्तत्र ययौ वै परमां गतिम् ॥ ५३ ॥

इति तत्क्षेत्रमाहात्म्यं नाहं वर्षशतैरपि ।
क्षमोऽस्मि वक्तुं सुश्रोणि शृण्वतोऽपि परां गतिम् ॥ ५४ ॥

तीर्थानि शृणु देवेशि गुह्यानि सुतरां प्रिये ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे व्याधवृत्तं नाम
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

केदारक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

दक्षिणस्यां शिवे देवि रेतःकुण्डमिति श्रुतम् ।
यत्पयःपानमात्रेण शिव एव न संशयः ॥ १ ॥

येन चिह्नेन तत्तीर्थं जायते शिवदायकम् ।
पारदं दृश्यते तत्र तज्जलं बुद्बुदायते ॥ २ ॥

तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति परां गतिम् ।
किं पुनर्देवदेवेशि तत्पाने नितरां शिवे ॥ ३ ॥

मन्दाकिन्यास्तु सुतटे तीर्थानि शृणु पार्वति ।
तस्मादेव महातीर्थादधोदेशे शुभप्रदम् ॥ ४ ॥

मुनि को मारने के लिए उद्यत हुआ, मैं पापी हूँ, हिंसक हूँ और दुष्ट हूँ। हे महाभाग ! मेरा उद्धार करो, मेरी शुभ गति किस प्रकार होगी ॥ ५१ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! कृपा करके मुझे बताइए। नारद जी ने कहा कि तुम यहां ही निवास करो ॥ ५२ ॥

हे देवि ! प्रिये ! यह कहकर उस व्याध के देखते-देखते नारद मुनि अन्तर्धान हो गये। व्याध ने उस स्थान में निवास कर परम गति को प्राप्त किया ॥ ५३ ॥

इस प्रकार इस क्षेत्र के माहात्म्य को मैं सैंकड़ों वर्षों तक भी वर्णित कर सकने में समर्थ नहीं हूँ। हे देवि ! इस क्षेत्र के माहात्म्य को सुनने वाले भी परम गति को प्राप्त करते हैं ॥ ५४ ॥

हे देवेशि ! प्रिये ! मैं अब उन तीर्थों का वर्णन करता हूँ जो अति गुप्त हैं। आप सुनो ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में व्याधचरित
नाम का इकतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ४२

केदारक्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन

शिव ने कहा—

हे देवि ! पार्वति ! दक्षिण दिशा में रेतःकुण्ड है, ऐसा सुना गया है। इसके जल के पीने मात्र से ही शिवत्व प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १ ॥

जिस चिह्न से वह तीर्थ शिवत्व को देने वाला माना गया है जिससे कि उसके जल में पारद दिखाई देता है और बुद्बुद् होते हुए दृष्टिगत होते हैं ॥ २ ॥

उसके केवल दर्शन मात्र से मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है, हे शिवे, देवेशि ! तो उसके जलपान करने से तो अवश्य ही परम गति का लाभ होगा ही ॥ ३ ॥

मन्दाकिनी नदी के तट पर जो तीर्थ विद्यमान हैं, हे पार्वति ! अब उनको सुनो। उसी महातीर्थ के अधोभाग में कल्याण देने वाला ॥ ४ ॥

शिवकुण्डमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ।
यत्रोपोष्य सप्तरात्रं प्राणान्वै संत्यजेद् बुन्धः ।।
कपिलं[1] शिवलिंग वै वर्तते मोक्षदायकम् ।। ५ ।।

शिवसायुज्यतामेति यतो धारा विनिस्सृताः ।
तदूर्ध्वं[2] भृगुतुंगं वै पापिनामपि मुक्तिदम् ।। ६ ।।

गोघ्नः कृतघ्नो विप्रघ्नो योऽपि विश्वासघातकः ।
श्रीशिलायां तपेद्यस्तु भृगुतुंगान्महोन्नतान् ।। ७ ।।

प्राणांस्त्यजति देवेशि स परब्रह्मतामियात् ।। ८ ।।

तस्मात्तीर्थादूर्ध्वभागे योजनद्वयसंमितम् ।
रक्तवर्णं जलं तत्र बुद्बुदाकारनिःसृतम् ।। ९ ।।

इदं जलं परं गोप्यं न वदेद्दुष्टजन्तुषु ।
यस्य स्पर्शेन सर्वेऽपि धातवः स्वर्णतां प्रिये ।। १० ।।

यान्ति लोहादयो देवि सत्यं सत्यं न संशयः ।
इदं हिरण्यगर्भाख्यं तीर्थं परमदुर्लभम् ।।
यस्य दर्शनमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।। ११ ।।

तस्मादुत्तरतो देवि स्फाटिकं लिंगमुत्तमम् ।
यस्य वै पूजनात्सद्यः शिव एव भवेन्नरः ।। १२ ।।

तस्मात्सर्वपदे पूर्वं वह्नितीर्थमिति स्मृतम् ।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि गदतो मे श्रृणु प्रिये ।। १३ ।।

हिमान्तर्गलितं तद्वै जलं वह्निमयं प्रिये ।
पूजनं तस्य कर्त्तव्यं घृताक्ताहुतिभिस्तथा ।। १४ ।।

संतृप्तो जायते वह्निर्वरमिह प्रयच्छति ।
तत्र उत्तरतो देवि आश्चर्यं परमं शिवे ।। १५ ।।

---

१. 'कपिलं मोक्षदायकम्' पाठ इसमें नहीं हैं । २ तदग्रे।

शिवलोक को दिलाने वाला शिवकुण्ड विख्यात है। कपिल नामक शिवलिंग यहाँ मोक्ष को देने वाला विद्यमान है ॥ ५ ॥

जो विद्वान् उस तीर्थ में सात रात्रि तक उपवास करने के बाद प्राणों का त्याग करता है वह शिव का सान्निध्य प्राप्त करता है। जहाँ से धाराओं का उद्‌गम हुआ है ॥ ६ ॥

उस स्थान से आगे भृगुतुंग नामक तीर्थ जो पापियों को मुक्ति प्रदान करने वाला है। गो हत्या करने वाला भी जो मनुष्य कृतघ्न, ब्रह्म-हत्या करने वाला विश्वासघातक ॥ ७ ॥

अति उन्नत भृगुतुंग से श्रीशिला में तपस्या करता है अथवा प्राणों का त्याग करता है वह परब्रह्म स्वरूप का लाभ प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

उस तीर्थ से दो योजन दूर ऊपर के भाग में लाल वर्ण का जल बुद्‌बुद् करता हुआ निकलता है ॥ ९ ॥

यह जल अति गुप्त है। इसे किसी दुष्ट से नहीं कहना चाहिए। हे प्रिये ! जिसके स्पर्श से अन्य सब धातुयें भी सुवर्ण बन जाती हैं ॥ १० ॥

हे देवि ! निःसन्देह यह सत्य है कि लोहा आदि धातुयें भी इस जल के स्पर्श से सुवर्ण हो जाती हैं। यह परम दुर्लभ तीर्थ हिरण्यगर्भ नाम से विख्यात है, जिसके मात्र दर्शन करने से नर नारायण का स्वरूप प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

हे देवि ! उससे उत्तर में एक उत्तम स्फटिक लिंग है। जिसके पूजन से शीघ्र ही शिव रूप की प्राप्ति होती है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥

उसके पूर्व भाग में सात कदम पर बह्नितीर्थ है। उसके चिह्नों को मैं कहता हूँ। हे प्रिये ! आप सुनो ॥ १३ ॥

हे प्रिये ! हिमालय से निर्गत जल इस तीर्थ में अग्नि के समान उष्ण है। इसका घी की आहुतियों से पूजन करना चाहिए ॥ १४ ॥

इससे अग्नि तृप्त हो जाती है और वह मनोभिलषित वर को देती है। उसके उत्तर में, हे देवि ! शिवे ! परम आश्चर्यकारी घटना होती है ॥ १५ ॥

शैलाग्रशिखरात्तत्र जलं पतति भूतले ।
तज्जलस्य कणा देवि मुक्ताश्चैव भवन्ति हि ॥ १६ ॥

तत्रैव भीमसेनेन पूजितोऽहं च मौक्तिकैः ।
मुक्ताविद्रुमजालानां हर्म्याणां च परम्परा ॥ १७ ॥

तेषु हर्म्येषु देवेशि गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
गायन्ति परमीशानं हर्षेण परिपूरिताः ॥ १८ ॥

तत्र यान्ति महादेवि पुण्यात्मानो महाधियः ।
ततः परं महान्पन्था यत्र गत्वा न शोचति ॥ १९ ॥

तस्मिन्महापथे देवि घृतपायसकर्द्दमाः ।
स्वर्णभूमी रत्नमयी स्वर्णपक्ष्युपशोभिता ॥ २० ॥

वृक्षाः स्वर्णमयास्तत्र प्रवाललतिकावृताः ।
अनेके च महागृध्राः पन्नगाशनतेजसः ॥ २१ ॥

योजनायामविस्तारा महाव्यालाश्च सर्वशः ।
सप्तप्राकारसंयुक्तं मम धाम महेश्वरि ॥ २२ ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवि मां हि सेवन्ति नित्यशः ।
महाभैरवहस्तस्थदण्डेन कृतशासनाः ॥ २३ ॥

भूतवेतालप्रेताश्च कूष्माण्डा जृम्भकास्तथा ।
नंदीभृंग्यादयश्चैव क्रीडन्ति सुखसम्वृताः ॥ २४ ॥

अहं महापथे नित्यं संस्थितो मम वल्लभे ।
अस्मात्स्थानात्प्रियतरं नास्ति देवेशि मे क्वचित् ॥ २५ ॥

यः कश्मिन्मानवो भक्त्या एवं वदति नित्यशः ।
महापथं गमिष्यामि प्राणांस्त्यक्ष्यामि तत्र वै ॥ २६ ॥

सोऽपि मे देवदेवेशि प्रियात्प्रियतरोऽस्ति वै ।
किं पुनर्मानवो लोके सर्वसंगविवर्जितः ॥ २७ ॥

हे देवि ! पर्वत के शिखर से वहां जो जल भूमि पर गिरता है उसके कण से मोती बन जाते हैं ॥ १६ ॥

इसी तीर्थ में भीमसेन ने मोतियों से मेरी पूजा की थी। यहाँ मोती और मूंगों से निर्मित महलों की श्रेणियाँ विद्यमान हैं ॥ १७ ॥

हे देवेशि ! उन मोतियों के द्वारा निर्मित भवनों में गन्धर्व तथा अप्सरायें हर्ष से भरकर परम शिव का भजन करती हैं ॥ १८ ॥

हे महादेवि ! वहाँ पुण्यात्मा महापुरुष ही जा सकते हैं। उससे आगे महापथ है जहाँ जाकर शोक नहीं रहता ॥ १९ ॥

हे देवि ! उस महापथ में घी और दूध की कीचड़ है। वहां की भूमि सुवर्ण-मयी और रत्नमयी है। वह सुनहरे पक्षियों से सुशोभित है ॥ २० ॥

वहाँ सोने के वृक्ष हैं। उनके ऊपर मूंगों की बल्लरियां फैली हुई हैं। वहाँ अनेक महाकाय गीध हैं। वे गरुड़ के समान तेजस्वी हैं ॥ २१ ॥

एक-एक योजन लम्बे बड़े-बड़े सांप वहाँ विद्यमान हैं। हे महेश्वरि ! यहां ही सात परकोटों से युक्त मेरा अपना धाम है ॥ २२ ॥

हे देवि ! जहाँ ब्रह्मा आदि देवता नित्य मेरी सेवा करते हैं। महाभैरव भी दण्ड हाथ में लेकर वहां शासन करते हैं ॥ २३ ॥

वहाँ भूत, बेताल, प्रेत, कूष्माण्ड, जृम्भक, नन्दी, भृङ्गी आदि गण सुख से क्रीड़ा करते हैं ॥ २४ ॥

हे मेरी प्रिये ! उस महापथ में मैं हमेशा उपस्थित रहता हूँ। हे देवेशि ! इस स्थान से अधिक प्रिय मुझे अन्य कोई स्थान नहीं है ॥ २५ ॥

जो कोई मानव नित्य भक्ति से यह कहता है कि मैं महापथ को जाऊँगा और वहां प्राणों का त्याग करूँगा ॥ २६ ॥

हे देवेशि ! वह भी मुझे अत्यन्त प्रिय है, फिर उस मनुष्य के लिए तो कहना ही क्या है, जो सांसारिक संसर्गों से दूर है ॥ २७ ॥

मां न्यस्य हृदि च स्वीये गच्छेद्वै मम मन्दिरे ।
स्वर्गारोहगिरेर्मूर्ध्नि स्थानं मे परमं महत् ॥ २८ ॥

अयं तीर्थमयः शैलो यत्राहं संस्थितः सदा ।
दर्शनादेव पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ २९ ॥

नश्यन्ते किमु देवेशि पूजनात्स्पर्शनात्तथा ॥ ३० ॥

माध्वी[1] गंगा तु या धारा मन्दाकिन्यास्तु संगमे ।
शिवप्रदं महातीर्थं क्रौंचहर्तुः प्रकीर्तितम् ॥ ३१ ॥

यत्र स्नात्वा वरारोहे कैलासनिलये वसेत् ।
क्षीरगंगा तु या धारा मन्दाकिन्यां[2] तु संगता ॥ ३२ ॥

ब्राह्मं वै परमं तीर्थं यत्र स्नात्वा गणो भवेत् ।
तस्माद्दक्षिणतो देवि यज्जलं बुद्बुदायते ॥ ३३ ॥

सामुद्रं तज्जलं प्रोक्तं स्पर्शनाच्छिवदायकम् ।
मत्तो यो वामभागेऽस्ति शैलः परमसुन्दरः ॥ ३४ ॥

पौरन्दरः समाख्यातो यत्र मामिन्द्र ईश्वरी ।
समारराध पूर्वं वै स्वस्य च स्थितिहेतवे ॥ ३५ ॥

तत्रैव ये परं लिंगं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ।
मत्स्थानाद्दण्डदशके हंसकुण्डमिति स्मृतम् ॥ ३६ ॥

यत्र ब्रह्मा महादेवि हंसो भूत्वा समाययौ ।
रेतः पानं तु कृतवान् गणैः संधर्षितस्तथा ॥ ३७ ॥

तद्धंसकुण्डमाख्यातं पितृणां मुक्तिदायकम् ।
पितृणां श्राद्धकर्त्तारो गच्छेयुः परमं पदम् ॥ ३८ ॥

नरकस्थास्तु पितरो जन्मजन्मसमुद्भवाः ।
त्रिशूलिनो महादेवाश्चन्द्रार्द्धकृतशेखराः ॥ ३९ ॥

---

१. क्षीर । २. सु ।

और मुझको हृदय में निहित करके मेरे उस मन्दिर में जाता है। स्वर्गारोहण पर्वत के शिखर पर मेरा परमोत्तम स्थान है ।। २८ ।।

यह तीर्थमय पर्वत है जहाँ मैं हमेशा स्थित रहता हूँ। इसके दर्शन मात्र से ही ब्रह्महत्या के समान पापों का ।। २६ ।।

नाश हो जाता है। हे देवेशि ! पूजन और स्पर्श करने से तो कहना ही क्या है ।। ३० ।।

जहाँ मधुगंगा का मन्दाकिनी में संगम होता है, वहाँ शिवत्व को देने वाला क्रोञ्च का हरण करने वाले कार्तिकेय का महातीर्थ वर्णित किया गया है ।। ३१ ।।

हे देवि ! इस तीर्थ में स्नान करने से कैलास में निवास मिलता है। क्षीर-गंगा धारा का मन्दाकिनी में जहाँ संगम है ।। ३२ ।।

उसे ब्राह्म नामक परम तीर्थ कहा गया है। इसमें स्नान करने से साक्षात् शिवगण का रूप मिलता है। हे देवि ! उसके दक्षिण में जल बुद्बुदाकार रूप में विद्यमान है ।। ३३ ।।

वह सामुद्र जल है, वह स्पर्शमात्र से शिवत्व को देने वाला है। हमारे जो वामभाग में सुन्दर पर्वत है ।। ३४ ।।

उसे पौरन्दर पर्वत कहते हैं। हे ईश्वरि ! जहाँ इन्द्र ने मेरी अपनी स्थिति की रक्षा के लिए पहले आराधना की थी ।। ३५ ।।

वहाँ दर्शन से ही मोक्ष देने वाला मेरा परमोत्ततम लिंग है। हे महादेवि ! मेरे स्थान से दस दण्ड दूरी पर हंसकुण्ड विख्यात है ।। ३६ ।।

जहाँ ब्रह्मा हंस रूप धारण करके आये थे। मेरे गणों द्वारा घर्षित किये जाने पर उन्होंने वीर्य का पान किया था ।। ३७ ।।

वह स्थान हंसकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यह तीर्थ पितरों को मुक्ति देने वाला है। जो इस स्थान में पितरों के श्राद्ध करते हैं वे परम पद को जाते हैं ।। ३८ ।।

अनेक जन्मों से नरक में स्थित पितर भी त्रिशूल को धारण कर मस्तक पर अर्धचन्द्रमा को धारण किये हुये ।। ३६ ।।

वृषस्कंधस्थिताः सर्वे व्यालयज्ञोपवीतिनः ।
भस्मांगरागसहिताः क्रीडेयुर्वै मया सह ॥ ४० ॥

इति तद्धंसकुण्डस्य माहात्म्यं वरवर्णिनि ।
यस्माज्जलमयी भूमिः पदन्याससुकम्पिता ॥ ४१ ॥

केदारक्षेत्रमाख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।
दृष्ट्वा केदारनाथं मां पीत्वा रेताजलं मम ॥ ४२ ॥

शिवलिंगं प्रजायेत हृदि तस्य महेश्वरी ।
यस्मिन्कस्मिन्नपि शिवे काले वै यत्र कुत्रचित् ।
मृतः शिवपुरे याति पापी चापि शुभस्तथा ॥ ४३ ॥

यत्र देशे तु यो मर्त्यः केदारेश्वरदर्शने ।
इत्युद्दिश्य मृतो देवि शिवो भवति मानवः ॥ ४४ ॥

शिवस्थानमिदं प्रोक्तमाविष्णुस्थानतः शुभम् ।
भीमसेनशिलं देवि पर्यङ्कं मम कीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥

त्रिगव्यूतौ मम स्थानाद्दक्षिणे शृणु तीर्थकम् ।
गौरीतीर्थमिदं ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४६ ॥

यत्र त्वया महेशानि मंदाकिन्यास्तटे पुरा ।
ऋतुस्नानं कृतं तद्वै गौरीतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ४७ ॥

महासेनस्य उत्पत्त्यै विस्मृतं किं त्वयानघे ।
तस्माच्चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ॥ ४८ ॥

कटूष्णं तु जलं तत्र सिन्दूराभा तु मृत्तिका ।
तत्स्थानं देवदेवेशि न त्यजामि कदाचन ॥ ४९ ॥

तत्र गौरीश्वरत्वेन ख्यातोऽहं शिवलोकदः ।
स्नानं करोति यस्तत्र मृत्तिकां शिरसा वहेत् ॥ ५० ॥

स वै मम प्रियतरो यथा त्वंमम वल्लभा ।
अत्र यद्वै कृतं कर्म्म तद्वै कोटिगुणं भवेत् ॥ ५१ ॥

बैल पर आरुढ़ हो, सर्पों के यज्ञोपवीतों को धारण कर भस्म की अंगराग धारण करके, मेरे साथ क्रीड़ा करते हैं ।। ४० ।।

हे सुन्दरि ! उस हंसकुण्ड का यही माहात्म्य है । यहाँ भूमि में जल ही जल दिखाई देता है, पैर रखने पर ही यह भूमि कांपने लगती है ।। ४१ ।।

यह तीर्थों में उत्तम तीर्थ केदारक्षेत्र विख्यात है । हे महेश्वरि ! मेरे केदार स्वरूप के दर्शन करने से तथा रेत-जल को पीने से ।। ४२ ।।

उसके हृदय में शिवलिंग उत्पन्न हो जाता है । हे शिवे ! वह चाहे पुण्यात्मा हो चाहे पापी हो, किसी भी समय में चाहे कहीं भी अपना शरीर का त्याग करता है, वह मरने के बाद शिवपुर में प्रवेश करता है ।। ४३ ।।

हे देवि ! उस प्रदेश में केदारेश्वर के दर्शन के उद्देश्य से जो प्राण त्याग करता है, वह मनुष्य शिव रूप हो जाता है ।। ४४ ।।

विष्णु भगवान् के स्थान से भी अधिक शुभ देने वाला यह शिव स्थान है । हे देवि ! यहाँ भीमसेन शिला मेरी शय्या कही गई है ।। ४५ ।।

हमारे स्थान से तीन गव्यूति (गव्यूति क्रोशद्वयम्) दक्षिण में स्थित समस्त सिद्धियों को देने वाले गौरीतीर्थ नामक तीर्थ का माहात्म्य सुनो ।। ४६ ।।

हे महेश्वरि ! पहले आपने मन्दाकिनी के तीर पर ऋतु स्नान किया था, इसलिए यह तीर्थ गौरीतीर्थ नाम से विख्यात हुआ ।। ४७ ।।

हे अनघे ! यह स्नान कार्तिकेय की उत्पत्ति के समय आपने किया था, क्या आप भूल गई हो, मैं उसके चिह्नों का वर्णन करूँगा, जिससे तुम्हें उस शुभ तीर्थ का ज्ञान होगा ।। ४८ ।।

वहाँ का जल गरम है और वहां की मिट्टी सिन्दूर के रंग की है । हे देवेशि ! उस स्थान को मैं कभी नहीं छोड़ता हूँ ।। ४९ ।।

वहाँ मैं गौरीश्वर नाम से प्रसिद्ध हूँ तथा अपने भक्तों को शिवलोक प्रदान करता हूँ । जो वहाँ स्नान करता है तथा मिट्टी को शिर पर धारण करता हैं ।। ५० ।।

वह मेरा तुम्हारे समान प्रीति का पात्र है । यहाँ जो कर्म किया जाता है उस कर्म का करोड़ों गुणा फल होता है ।। ५१ ।।

तस्माद्दक्षिणतो देवि गोरक्षाश्रमरक्षकम् ।
यत्र सिद्धो महादेवि गोरक्षो वसतेऽनिशम् ॥ ५२ ॥

तल्लिंगं तु प्रवक्ष्यामि शृणु पुण्यतमं स्थलम् ।
महातप्तजलं तत्र वर्त्तते सर्वदैव हि ॥ ५३ ॥

तत्र स्थित्वा सप्तरात्रं जपन्वै शिवमुत्तमम् ।
सिद्धो भवति देवेशि यथा गोरक्ष उत्तमः ॥ ५४ ॥

तस्मिन्नेव महाशैले चतस्रो निम्नगाः स्मृताः ।
देविका भद्रदा शुभ्रा मातंगीति समाहृताः ॥ ५५ ॥

देविकायां नरः सप्तरात्रं मिथ्यादिवर्जितः ।
जपन् षडक्षरं देवि पश्यते स्पर्शमौक्तिकम्[1] ॥ ५६ ॥

यस्य स्पर्शाद्धातुवस्तु स्वर्णतां यात्यसंशयम् ।
तथान्यासु महादेवि स्नात्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

गौरीतीर्थादूर्ध्वभागे पर्वते सौम्यदिक्स्थिते ।
चीरवासा भैरवस्तु क्षेत्रं रक्षति मामकम् ॥ ५८ ॥

तस्मै चीरादिकं दत्वा सर्वं पुण्यं लभेन्नरः ।
अन्यथा तत्फलं सर्वं हरते भैरवः शिवः ॥ ५९ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पूज्य भैरवं विशेत् ।
तस्मिन्नेव महाशैले काली वसति दुःसहा ॥ ६० ॥

तां नमस्कृत्य गच्छेत पर्य्यंके मामके शिवे ॥ ६१ ॥

गौरीतीर्थापरे भागे क्रोशे परमदुर्ल्लभम् ।
वैनायकं तथा द्वारं द्वास्थत्वे[2] संस्थितः शिवे ॥ ६२ ॥

गणेशस्तावकः पुत्र अंगरागेण यः कृतः ।
स्थापितो द्वारि देवेशि त्वया च स्नाप्यमानया ॥ ६३ ॥

---

१. मोक्षभागी भवेन्नरः । २. संस्थित्वे ।

उसके दक्षिण में हे देवि ! गोरक्ष का आश्रम है । इस स्थान में हे देवि ! नित्य सिद्ध गोरक्ष निवास करते हैं ।। ५२ ।।

अब उस लिंग तथा पुण्यतम स्थल को कहता हूँ, तुम सुनो ! वहाँ अति उष्ण जल हमेशा विद्यमान रहता है ।। ५३ ।।

उस स्थान में स्थित होकर सात रात तक जो उत्तम शिव का जप करता है, उसको गोरक्ष के समान सिद्धि होती है ।। ५४ ।।

उस महाशैल पर चार नदियां वर्णित हैं । इनके नाम—१. देविका, २. भद्रदा, ३. शुभ्रा, ४. मातंगी ।। ५५ ।।

हे देवि ! देविका नदी में जो मनुष्य सात रात तक मिथ्या आदि दुष्कर्मों को छोड़कर स्पर्श मौक्तिक का दर्शन करता है, मोक्ष षडक्षर मंत्र का जप करता है, वह (ओं नमः शिवाय) षडक्षर मन्त्र मोक्ष को प्राप्त करता है) ।। ५६ ।।

इसके जल में जिन धातुओं का स्पर्श होता है, वे धातुयें निःसन्देह सुवर्ण बन जाती हैं । हे देवि ! तथा अन्य नदियों में स्नान करने से भी सिद्धि प्राप्त होती है ।। ५७ ।।

गौरीतीर्थ के ऊपर के भाग में उत्तर दिशा मे स्थित पर्वत में चीरवासा नामक भैरव मेरे क्षेत्र की रक्षा करता है ।। ५८ ।।

उसके निमित्त चीर वस्त्र देकर मनुष्य अनेक पुण्यों का लाभ प्राप्त करते हैं । अन्यथा भैरव शिव उस समस्त फल का अपहरण कर लेते हैं ।। ५९ ।।

इसलिए यत्न से भैरव की पूजा करके उस क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए । उसी महापर्वत के ऊपर दुःसह काली निवास करती है ।। ६० ।।

हे शिवे ! काली को नमस्कार करके मेरे शयन स्थान को जावे ।। ६१ ।।

गौरीतीर्थ के दूसरे भाग में एक कोस की दूरी पर परम दुर्लभ वैनायक तीर्थ है । हे शिवे ! यहाँ वैनायक गणेश स्थित द्वार भाग में है ।। ६२ ।।

हे देवेशि ! जिस अपने पुत्र गणेश को तुमने अपने अंगराग से उत्पन्न किया था और स्नान करते समय उसे द्वार पर नियुक्त किया था ।। ६३ ।।

मया यस्य शिरश्छिन्नं पतितं शिवक्षेत्रके।
प्रसन्नेन यया देवि पुनः कारिवरं शिरः।
संयोजितं तदङ्गे तु ततो गजमुखोऽभवत्॥ ६४॥

सम्पूज्य तं गणेशं तु नानानैवेद्यद्रव्यकैः।
गच्छेन्मम महास्थाने यत्र गत्वा शिवो भवेत्॥ ६५॥

कालिकेति समाख्याता नदी गंगांगसम्भवा।
वासुकिप्रमुखा नागा यां हि सेवंति नित्यशः॥ ६६॥

शेषेश्वरो महादेवो यत्रास्ति हि सरोवरे।
उच्छलन्ति महानागा भस्मीकुर्वन्ति तत्स्थलम्॥ ६७॥

क्रुद्धा भवन्ति हि यदा नान्यदा ते महाविषाः।
तन्मूले कालिका देवि वर्तते तेन कालिकाः॥ ६८॥

मन्दाकिन्यास्त्रिविक्रम्याः संगमोऽतीवपुण्यदः।
यत्र तिष्ठामि कालीशनाम्ना स्वस्थानदो[2] ह्यलम्॥ ६९॥

इति ते कथितं देवि केदारेश्वरक्षेत्रकम्।
श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वा श्रुत्वोक्त्वा च लभेच्छिवम्॥ ७०॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे केदारक्षेत्रमाहात्म्यं नाम
द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायणाश्रमतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

अथान्यत्तु प्रवक्ष्यामि क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम्।
केदारमण्डले एव यत्र गत्वा हरिर्भवेत्॥ १॥

---

१. पतते। २. ह्ययम्।

मैंने जिसका शिर छेदन किया था तथा वह शिव क्षेत्र में गिरा था। हे देवि ? प्रसन्न होकर मैंने उस पर हाथी का सिर लगा दिया था, जिस कारण गणेश का मुख हाथी हो गया ॥ ६४ ॥

उस गणेश की नाना नैवेद्यों से जो पूजन करते हैं वे मेरे स्थान में जाकर शिव स्वरूप हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

वहाँ गंगा जी के अग से उत्पन्न हुई नदी का नाम कालिका है, जिसकी वासुकि आदि प्रमुख नाग नित्य सेवा करते हैं ॥ ६६ ॥

उस सरोवर में शेषेश्वर नाम के महादेव विद्यमान रहते हैं। बड़े-बड़े नाग वहाँ उछलते रहते हैं तथा उस स्थल को भस्म करते रहते हैं ॥ ६७ ॥

महाविषैले वे सर्प जब क्रुद्ध होते हैं, तभी ऐसा करते हैं अन्यथा नहीं। उसके मूल में कालिका देवी निवास करती है, अतः वे कालिक कहलाते हैं ॥ ६८ ॥

मन्दाकिनी और त्रिविक्रमी (कालिका) का संगम अतिपुण्य देने वाला है, जहाँ अपने स्थान को देने वाला मैं कालीश नाम से उपस्थित रहता हूँ ॥ ६९ ॥

इस प्रकार हे देवि ! मैंने आपसे केदारेश्वर क्षेत्र को वर्णित किया है। एक श्लोक अथवा आधा श्लोक भी इस पाठ को कोई सुनता है अथवा कहता है तो वह साक्षात् शिव को प्राप्त करता है ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में केदारक्षेत्र
माहात्म्य नाम का बयालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ४३

नारायण आश्रम तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

अब मैं अन्य उत्तम क्षेत्र का वर्णन करूँगा जो केदार मण्डल में ही विद्यमान है, जहाँ जाकर मानव हरिरूप हो जाता है ॥ १ ॥

त्रिविक्रमातटे पश्चान्नारायणसुतीर्थकम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण हरिभक्तिः प्रवर्द्धते ।। २ ।।

त्रिविक्रमतटादूर्ध्वं सार्द्धक्रोशे महत्फलम् ।
नारायणक्षेत्रमिति तस्मिन्वै यज्ञपर्वते ।। ३ ।।

यत्र ब्रह्मादयो देवा हरिपूजनमानसाः ।
यजयामासुरपि तं नैवेद्यैर्हवनैस्तथा ।। ४ ।।

तल्लिगं तु प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
नित्यं तत्र स्थितो वह्निर्दृश्यते मुक्तिदो महान् ।। ५ ।।

विवाहस्थानमेतद्वै गौरीशंकरयोर्शुभम् ।
तत आरभ्य वसते नित्यमत्र धनंजयः ।। ६ ।।

उपोष्य दशरात्रं तु पापैः कोटिभिरावृतः ।
प्राणांस्त्यजति पूतात्मा वैकुण्ठनिलये वसेत् ।। ७ ।।

सरस्वतीति विख्याता धारा परमपाविनी ।
श्रीविष्णोर्नाभितस्तत्र आयाति दुरितापहा ।। ८ ।।

नमो नारायणेत्युक्त्वा मंत्रपूतं जलं पिवेत् ।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।। ९ ।।

सकृदाचम्य देवेशि नारायणविनिःसृतम् ।
जल सारस्वतं देवि किं तेन न कृतं भवेत् ।। १० ।।

धन्या लोके नरा ये तु नारायणसमीपके ।
जलं पिवन्ति तेषां वै दशपूर्वा दशापरे ।
तृप्ता यांति परं स्थानं पितरो हृष्टमानसाः ।। ११ ।।

तस्मिन्नग्नौ तु ये मर्त्या एकामप्याहुतिं ददुः ।
ते सर्वे मुक्तिमापन्नाः पुनरावृत्तिदुर्ल्लभाः ।। १२ ।।

हवनं कारयेत्तत्र नारायणसुमंत्रतः ।
धन्यो भवति लोकेषु नरः पापविवर्जितः ।। १३ ।।

त्रिविक्रमा नदी के तट पर उसके बाद एक नारायण नाम का सुन्दर तीर्थ (त्रियुगीनारायण) हैं, जिसके दर्शन मात्र से हरिभक्ति में वृद्धि होती है ।। २ ।

त्रिविक्रमा तट के ऊपर डेढ़ कोस में महान् फलों को देने वाला उस यज्ञपर्वत के ऊपर नारायण नाम का क्षेत्र है ।। ३ ।।

जहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं ने हरि पूजन में निरत हो नैवेद्य तथा होम के द्वारा उनका यजन किया था ।। ४ ।।

उस लिंग को मैं अब कहता हूँ, जिसके ज्ञान से अमृत (मोक्ष) का लाभ होता है । वहाँ मोक्ष को देने वाली महान् अग्नि नित्य स्थित दिखाई देती है ।। ५ ।।

पार्वती और शकर का यह शुभ विवाह स्थल है । उसी दिन से यहाँ अग्नि देव नित्य निवास करते हैं ।। ६ ।।

जो मानव इस तीर्थ में दशरात्रि पर्यन्त उपासना करके प्राणों को त्यागता है, वह चाहे करोड़ों पापों से आवृत हो, पवित्र आत्मा होकर बैकुण्ठलोक में वास करता है ।। ७ ।।

वहाँ जो परमपाविनी धारा है, वह सरस्वती नाम से विख्यात है । पापों की नाशक यह धारा विष्णु की नाभि से निकल कर आती है ।। ८ ।।

"ओम् नमो नारायणाय" इस मंत्र का उच्चारण करके जो मानव सरस्वती नदी के मन्त्रपूत जल का पान करता है, उसका करोड़ों कल्प तक भी पुनः जन्म नहीं होता ।। ९ ।।

हे देवेशि ! नारायण की नाभि से निकली हुई इस सरस्वती नदी के जल का एक बार भी जो कोई पान करता है, हे देवि ! उसने क्या-क्या शुभ कर्म नहीं किये, अर्थात् उसने सभी शुभ कर्मों को कर लिया है ।। १० ।।

वे लोग धन्य हैं जो नारायण आश्रम के समीप रहने वाली सरस्वती नदी का जल पीते हैं । उनके दस पीढ़ी पहले तथा दश पीढ़ी बाद के पितर तृप्त होकर परम प्रसन्न हो भगवान् के स्थान में प्रवेश करते हैं ।। ११ ।।

उस अग्नि में जो मनुष्य एकबार भी आहुति देते हैं, वे सब मोक्ष का लाभ करते हैं । उनकी इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती है ।। १२ ।।

उस नारायण आश्रम में जो लोग "ओं नमो नारायणाय स्वाहा" इस मंत्र से हवन करते हैं वे पाप रहित होकर लोक में सौभ्याग्यशाली होते हैं ।। १३ ।।

भस्मनो धारणंकृत्वा सर्वदेवमयो भवेत् ।
माहात्म्यं भस्मनः केन शक्यते मम बल्लभे ।। १४ ।।

तद्भस्मधारिणं दृष्ट्वा पापं वर्षकृतं दहेत् ।
तत्रैव ब्रह्मकुण्डाख्यं तीर्थं परमदुर्ल्लभम्[1] ।। १५ ।।

स्नात्वा यत्र वरारोहे ब्रह्मलोकगतिर्भवेत् ।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि तज्जलं पीतवर्णकम् ।। १६ ।।

तत्र चाल्पतरा नागाः स्थापिता भीतिदाः प्रिये ।
न दंशंति च ते नागा भीतिकारणमेव ते ।। १७ ।।

ब्रह्मणः पूजनं कृत्वा स्नायात्तत्र शुभास्पदे ।। १८ ।।

तस्य वै दक्षिणे भागे विष्णुतीर्थमिति स्मृतम् ।
यत्र स्नात्वा वरारोहे विष्णुसायुज्पमाप्नुयात् ।। १६ ।।

तत्र सारस्वते कुण्डे स्नात्वा पापक्षयो भवेत् ।
प्रदक्षिणं[2] हरेः कृत्वा अश्वमेधफलं लभेत् ।। २० ।।

दृष्ट्वा नारायणं देवं स गच्छेच्छिवमन्दिरे[3] ।
कल्पकोटिशतं देवि नरो मम पुरे[4] वसेत् ।। २१ ।।

तत्र[5] त्रिविक्रमातीरे ख्यातं जलमयपत्तनम् ।
यत्र गत्वा महादेवि पूजितोऽहं जले शिवः ।। २२ ।।

तत्र वै मम लिंगं वै जलेश्वर इति स्मृतः ।
यद्दर्शनान्नरो याति शिवलोके न संशयः ।। २३ ।।

तदादीदं महादेवि ज्ञातं जलमयपत्तनम् ।
पुण्यान्येव जलान्यत्र योजनायामविस्तृते ।। २४ ।।

---

१. पुण्यदम् । २. णां । ३. मन्दिरम् । ४. पुरे ।
५. "तत्र ····· ज्ञातं जलमयपत्तनम्" पाठ इसमें नहीं है ।

भस्म को धारण करने से मानव सर्व देवमय हो जाता है। हे प्रिये ! उस भस्म के महत्त्व का वर्णन करने में कौन समर्थ है ॥ १४ ॥

उस भस्म धारी को देखकर वर्ष भर के किये पाप जल जाते हैं। वहां ही परम पुण्यों को देने वाला ब्रह्मकुण्ड नामक तीर्थ विख्यात है ॥ १५ ॥

हे सुमुखि ! इस तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्मलोक की गति प्राप्त होती है। मैं उस तीर्थ के चिह्न का वर्णन करूँगा। वहां का जल पीले रंग का है ॥ १६ ॥

हे प्रिये ! अत्यन्त भय को देने वाले कुछ नाग भी वहां स्थापित किए गए हैं। वे किसी को डसते नहीं हैं, केवल भय देने के लिए ही वे वहाँ स्थित हैं ॥ १७ ॥

ब्रह्मा की पूजा करके उस तीर्थ में स्नान करना शुभ को देने वाला है ॥ १८ ॥

उसके दक्षिण भाग में विष्णुतीर्थ नाम का तीर्थ है जिसमें स्नान करने से हे प्रिये ! विष्णु का सायुज्य मिलता है ॥ १९ ॥

वहाँ सारस्वतकुण्ड में स्नान करने से पापों का विनाश हो जाता है। यहाँ भगवान् की परिक्रमा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ २० ॥

हे देवि ! जो वहां नारायण भगवान् का दर्शन करके शिव मन्दिर में जाता है, वह करोड़ों कल्प तक मेरे नगर में निवास करता है ॥ २१ ॥

वहाँ त्रिविक्रमा नदी के तट पर एक जलमय नगर प्रसिद्ध है। हे महादेवि ! वहां जाकर जल में मुझ शिव की पूजा की जाती है ॥ २२ ॥

वहाँ मेरा लिंग जलेश्वर नाम से जाना जाता है। इसका दर्शन करने से मनुष्य निस्सन्देह शिवलोक में जाता है ॥ २३ ॥

हे महादेवि ! तब से लेकर यह जलमय नगर विद्यमान है। एक योजन (चार कोश) विस्तृत इस नगर में पुण्य जल हैं ॥ २४ ॥

अत्र स्थित्वा सप्तरात्रं जपन्वै ध्यानतत्परः।
सिद्धो भवति पूतात्मा यथाऽहं ममवल्लभे ॥ २५ ॥

तत्रैव च नदी रम्या सर्वपापप्रशोषिणी[1]।
दक्षिणे हरिदानाम्ना स्नात्वाऽनन्तफलप्रदा ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नारायणाश्रममाहात्म्यं नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भिल्लाङ्गणक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर[2] उवाच—

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षेत्राणामुत्तमोत्तमम्।
भिल्लक्षेत्रमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥

यत्राऽहं भिल्लरूपेण क्रीडितोऽस्मि त्वया सह।
भिल्लांगणमिति[3] ख्यातः पर्वतोऽतीव सुन्दरः ॥ २ ॥

तस्माद्वै पर्वताद्रम्या गंगाधारा विनिःसृता।
भिल्लांगणेति विख्याता महापापविनाशिनी ॥ ३ ॥

तत्रैव मम लिंगं वै भिल्लेश्वर इतीरितम्।
तस्य वै पूजनान्मर्त्यो दर्शनात्स्मरणात्तथा ॥ ४ ॥

महापातककोटिस्थो नरः शुद्धो भवेच्छिवे।
चिह्नं क्षेत्रस्य वक्ष्यामि शृणु देवि मम प्रिये ॥ ५ ॥

भिल्लरूपी महादेवः कालकम्बलवस्त्रकः।
वर्तते मध्यरात्रे तु नानाभिल्लगणैर्वृतः ॥ ६ ॥

---

१. प्रशोधिनी। २. श्रीश्वर। ३. इति।

हे मेरी प्रिये ! यहाँ बैठकर ध्यान में तल्लीन हो सात रात तक जो जप करता है, वह मेरे समान ही सिद्ध हो जाता है ।। २५ ।।

उसी के दक्षिण भाग में समस्त पाप समूह को नाश करने वाली सुरम्य हरिदा नाम की नदी विद्यमान है, जिसमें स्नान करने से अनन्त फलों की प्राप्ति होती है ।। २६ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नारायण आश्रम माहात्म्य नाम का तैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ४४

भिल्लाङ्गण क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

अब अन्य उत्तमोत्तम क्षेत्र का वर्णन करूँगा जो सब पापों को नाश करने वाला भिल्लक्षेत्र नाम से विख्यात है ।। १ ।।

जहां मैंने भिल्ल रूप धारण करके तुम्हारे साथ क्रीड़ा की थी । वह परम सुन्दर पर्वत भिल्लाङ्गण नाम से ख्यात है ।। २ ।।

उसी पर्वत से एक सुरम्य गंगा की धारा विनिर्गत होती है, जो महान् पापों को नाश करने वाली भिल्लाङ्गणा नाम से विख्यात है ।। ३ ।।

वहाँ ही मेरा भिल्लेश्वर नाम का लिंग स्थित है । उसके पूजन, दर्शन और स्मरण से मर्त्यलोक में···।। ४ ।।

हे शिवे ! करोड़ों महापातकों को करने वाला मानव भी शुद्ध हो जाता है, उस क्षेत्र के चिह्नों का मैं वर्णन करता हूँ । हे मेरी प्रिये ! देवि ! तुम सुनो ।। ५ ।।

काले कम्बल को धारण करके भिल्लरूपी महादेव अनेक भिल्लगणों से घिरे होकर मध्यरात्रि में वहाँ विद्यमान रहते हैं ।। ६ ।।

वादित्राणां च शब्दाश्च श्रूयन्ते भिल्लशब्दिताः ।
भंभाभंतेति सततं तथा दुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ ७ ॥

नानारूपधरा भिल्ला विचरन्ति तदंगणे ।
भिल्लांगणोद्भवायां तु स्नाति रुद्रकलेवरः ॥ ८ ॥

अतिगुह्यतमं पीठं पुराणेषु च गोपितम् ।
त्यक्ताहारविहारश्च जपेद्यो दशरात्रकम् ॥ ९ ॥

अरिवर्णोऽपि मंत्रश्च सिद्धो भवति निश्चितम् ।
नित्यं नाथादयः सिद्धा अत्रैव जपतत्पराः ॥ १० ॥

सिद्धिं प्राप्ताः पुरा देवि मादृशास्ते न संशयः ।
कामेश्वरीं महादेवीं पूजयेद् भक्तितत्परः ।
दशाश्वमेधयज्ञीयं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ११ ॥

देव्या वै दक्षिणे भागे शिवलिंगं महत्तरम् ।
यस्य सन्दर्शनादेव शिवभक्तो भवेन्नरः ॥ १२ ॥

तदूर्द्ध्वं क्रोशखण्डार्द्धे नदी सुरसुता मता ।
यत्र पूर्वं मया देवि धृतं भस्म शुभं प्रिये ॥ १३ ॥

तद्भस्मधारणार्थाय वासवाद्या दिवौकसः ।
आजग्मुस्तन्नदीतीरे कन्यां त्वेनां समादधुः ॥ १४ ॥

तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या बाजपेयफलं लभेत् ।
तस्या वै दक्षिणे भागे शिला मातलिका मता ॥ १५ ॥

स्पर्शं कृत्वा शिलायां तु[1] इन्द्रस्य नगरे वसेत् ।
भिल्लांगणं महाक्षेत्रं स्मृत्वा पापक्षयो भवेत् ॥ १६ ॥

पंचयोजनविस्तीर्णं चतुर्योजनमायतम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं तद्दृष्ट्वा शिवतां व्रजेत् ॥ १७ ॥

एतत्क्षेत्रस्य यो मर्त्यो दक्षिणं चैव गच्छति ।
सप्तद्वीपवती तेन पुण्या प्रादक्षिणीकृता ॥ १८ ॥

---

१. यास्तु ।

भिल्लों द्वारा बजाये गये वाद्यों के भम्-भम् शब्द और दुन्दुभियों के शब्द सतत सुने जाते हैं ।। ७ ।।

उनके आंगन में अनेक रूप धारण कर भिल्ल विचरण करते हैं। भिल्लांगणा नदी में स्नान करने से मनुष्य शिवरूप हो जाता है ।। ८ ।।

यह अति गुप्त रखने योग्य पीठ है और पुराणों में भी इसे गुप्त ही रखा गया है। जो भोजन और विहार का परित्याग करके दश रात्रि तक यहां जप करता है ।। ९ ।।

तो उसका अरिवर्ण मंत्र भी निःसन्देह सिद्ध हो जाता है। नाथ आदि सिद्धों ने यहाँ ही नित्य जप में तत्पर रहकर···।। १० ।।

हे देवि ! पहले सिद्ध जनों ने मेरे समान सिद्धि को प्राप्त किया था। जो कामेश्वरी महादेवी का भक्तियुक्त हो पूजन करता है, वह मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ।। ११ ।।

कामेश्वरी देवी के दक्षिण भाग में एक वृद्ध शिवलिंग है जिसके मात्र दर्शन करने से ही मानव शिवभक्त हो जाता है ।। १२ ।।

उसके ऊपर के भाग में आधा कोश की दूरी पर एक सुरसुता नाम की नदी है, जहाँ पहले मैंने, हे देवि ! प्रिये ! शुभ भस्म को धारण किया था ।। १३ ।।

उस भस्म को धारण करने के लिए वासव आदि देवता उस नदी के तट पर आते हैं और उस नदी को कन्या भाव से मानते हैं ।। १४ ।।

सुरसुता नदी में भक्तिपूर्वक स्नान करके वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। उसके दक्षिण भाग में एक मातलिका नाम की शिला विद्यमान है ।। १५ ।।

उस शिला के स्पर्श करने मात्र से मनुष्य इन्द्रलोक में निवास करता है। भिल्लांगण नामक महाक्षेत्र का स्मरण करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।। १६ ।।

वह क्षेत्र पांच योजन (बीस कोश) लम्बा तथा चार योजन (सोलह कोश) चौड़ा है। परम पवित्र यह क्षेत्र सब पापों को हरण करने वाला है। इस क्षेत्र के दर्शन करने से शिवत्व प्राप्त होता है ।। १७ ।।

जो मनुष्य इस क्षेत्र की परिक्रमा करता है उसको सात द्वीप वाली पृथ्वी की परिक्रमा करने का फल प्राप्त होता है ।। १८ ।।

अस्मिन् यत् क्रियते कर्म तदन्तगुणं भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन्पापं समाचरेत् ।। १९ ।।

पुण्यमेव प्रकर्तव्यं स्वस्य वै भूतिमिच्छता ।
नानामणिगणा यत्र तथा स्वर्णाकराणि च ।
वर्त्तंते यत्प्रदेशे तु तदन्यः कोऽस्ति भूतले ।। २० ।।

अनेकानि च लिंगानि नदीधाराशतानि च ।
पुण्यप्रदानि पुण्यानि विस्तरात्[1] केन कथ्यते ।। २१ ।।

शिवलोकप्रदान्येव पयांस्यत्र महेश्वरि ।
दर्शनात्पूजनात् ध्यानाच्छिवलिंगान्यनेकशः ।
शिवलोकप्रदान्येव सत्यं सत्यं न संशयः ।। २२ ।।

अनेकानि प्रयागानि नदीनां संगमानि च ।
भिल्लांगणोद्भवायां तु गंगाधारा महत्तरा ।। २३ ।।

तस्याः संदर्शनादेव नरः पापैः प्रमुच्यते ।
इति ते कथिता देवि षष्ठी धारा मया शुभा ।। २४ ।।

यत्पयःपानमात्रेण शिवो भवति निश्चितम् ।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय माहात्म्यं भुवि दुर्ल्लभम् ।
भिल्लांगणस्य सुश्रोणि शृणुयादपि निष्कलिः ।। २५ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भिल्लांगणमाहात्म्यं
नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

---

१. कथ्यन्ते नैव विस्तरात् ।

इसमें जो कर्म किये जाते हैं उनका फल अनन्त गुण हो जाता है, अतः यहाँ ऐसे प्रयत्न करने चाहिए कि कोई पाप न बन पड़े ॥ १९ ॥

अपने ऐश्वर्य को चाहने वाले मनुष्य को इस क्षेत्र में पुण्य ही करना चाहिये। वहाँ अनेक मणिगण तथा सुवर्ण के आकर विद्यमान हैं। उस प्रदेश से बड़ा भूमण्डल में कौन प्रदेश हो सकता है ॥ २० ॥

वहां अनेक शिवलिंग और सैंकड़ों नदियों की धारायें विद्यमान हैं और पुण्य को देने वाले इन पुण्यों का विस्तार से वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ २१ ॥

हे महेश्वरि ! यहाँ के समस्त जल शिव लोक को प्रदान करने वाले हैं। यहां अनेक शिवलिंग दर्शन, पूजन और ध्यान करने से शिव लोक को देने वाले हैं यह पूर्ण सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥

यहां अनेक प्रयाग और नदियों के संगम विद्यमान हैं, भिल्लांगण क्षेत्र से उत्पन्न यहां एक महती गंगा की धारा विद्यमान है ॥ २३ ॥

उस गंगा की धारा के दर्शन मात्र से मानव सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार हे देवि ! मेरे द्वारा गंगा की छठी शुभ धारा को वर्णित किया गया है ॥ २४ ॥

जिसके पीने मात्र से मानव निःसन्देह शिव हो जाता है। जो भूमि में दुर्लभ इस भिल्लांगण क्षेत्र के माहात्म्य का प्रातः उठकर पाठ करते हैं तथा सुनते हैं। हे सुन्दरि ! वे पापों से रहित हो जाते हैं ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भिल्लांगण-माहात्म्य
नाम का चवालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

पंचचत्वारिंशोऽध्यायः

बगलाक्षेत्रमाहात्म्यवर्णते नानादेवदेव्यायतननिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं परमसुन्दरम् ।
यच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

तस्य दक्षिणपार्श्वे वै बगलाक्षेत्रमुत्तमम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं चतुरर्द्धं[1] सुविस्तृतम् ॥ २ ॥

तत्पीठं परमं देवि मया नैव प्रकाशितम् ।
त्वत्प्रियत्वादिदानीं हि गदितं ते सुदुर्लभम् ॥ ३ ॥

नानातीर्थसंमायुक्तं नानालिंगविराजितम् ।
यस्य सन्दर्शनादेव नरो देवीपुरं[2] वसेत् ॥ ४ ॥

बगला तु महादेवी सर्वतंत्रेषु विश्रुता ।
ब्रह्मास्त्रविद्या विख्याता शत्रुस्तम्भनकारिणी ॥ ५ ॥

यस्याः स्मरणमात्रेण शत्रुः पंगुर्भवेद् ध्रुवम् ।
तत्स्थानं तु मया प्रोक्तं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ६ ॥

सप्तरात्रं निराहारो जपन्वै बगलामनु ।
सिद्धिं प्राप्नोति विपुलां खेचरीं मम बल्लभे ॥ ७ ॥

बलिदानादिभिर्यस्तु बगलां तु समर्चति ।
तस्य पुण्यफलं देवि कृत्स्नशः कथ्यते श्रृणु ॥ ८ ॥

सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं प्राप्नुयान्मर्त्यो बगलायास्तु दर्शनात् ॥ ९ ॥

---

१. चतुर्द्धा । २. पुरे ।

अध्याय ४५

बगला क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने में अनेक देवों और देवियों के मन्दिरों का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

अब मैं एक अन्य परम सुन्दर क्षेत्र का वर्णन करूँगा। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसके माहात्म्य सुनते हैं उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

उसके दक्षिण भाग में अतिशय उत्तम बगला नाम का क्षेत्र है। वह चारों ओर से अति विस्तृत चार योजन लम्बा-चौड़ा है ॥ २ ॥

हे देवि ! उस परम पीठ को मैंने अभी किसी से प्रकाशित नहीं किया। तुम मेरी अति प्रिय हो, इसलिए इस समय उस दुर्लभ पीठ को आपसे कहा है ॥ ३ ॥

वह पीठ अनेक तीर्थों से युक्त है तथा अनेक लिंगों से अलंकृत है। इसके दर्शन करने से ही मनुष्य देवीपुर में निवास करता है ॥ ४ ॥

वहां बगला नाम की देवी सभी तन्त्रों में प्रसिद्ध है, शत्रुओं को स्तम्भित करने वाली वह देवी ब्रह्मास्त्र विद्या के रूप में प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥

जिसके स्मरण मात्र से शीघ्र ही शत्रु पंगु हो जाता है। उस स्थान को मैंने समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला वर्णित किया है ॥ ६ ॥

हे मेरी प्रिये ! सात रात्रि तक निराहार रहकर जो मानव बगला देवी का जप करता है, वह खेचरी सिद्धि का विपुल लाभ प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

जो मनुष्य बलिदान आदि से बगला का पूजन करते हैं, हे देवि ! मैं उसके पुण्य फल का वर्णन करता हूँ। तुम सुनो ॥ ८ ॥

सब यज्ञों के द्वारा जो फल प्राप्त होता है तथा सब तीर्थों की यात्रा के द्वारा जो फल मिलता है, वह फल मनुष्य बगला देवी के दर्शन से प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

देव्या वै दक्षिणे भागे धारा पुण्यप्रमोदिनी ।
तस्या वै उत्तरे तीरे विष्णुमूर्तिश्चतुर्भुजा ।। १० ।।

स्नात्वा पुण्यप्रमोदिन्यां दृष्ट्वा विष्णुं सनातनम् ।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो न कृतं किं न तेन वै ।। ११ ।।

ततो दक्षिणदिग्भागे गव्यूतौ श्रृणु विस्मयम् ।
त्रिशीर्षा तु महादेवि देवी वै वर्त्तते शिवे ।। १२ ।।

नित्यं तत्र महासिंहो गर्जंस्तिष्ठति चासकृत् ।
नानानार्य्यः श्यामदेहास्तथा श्यामाम्बराः प्रिये ।। १३ ।।

तथा करालवदना विचरन्ति तया सह ।
वादित्राणि च वाद्यंते झणंकाररवास्तथा ।। १४ ।।

तेन शब्देन यस्तत्र त्रस्तो भवति मानवः ।
म्रियते स न सन्देहो दूयते क्षणतस्तथा ।। १५ ।।

धैर्यवान्मंत्रसंयुक्तो जापकः शिवतत्परः ।
परनिन्दापरो यो न परस्त्रीषु पराङ्मुखः ।। १६ ।।

न तस्य भयलेशोऽस्ति तिष्ठतस्तत्र पीठके ।
शीघ्रं वै लभते सिद्धिं यथा गोरक्षकादयः ।। १७ ।।

तत्र कुण्डं समाख्यातं वैष्णवं पापिदुर्ल्लभम् ।
यत्र स्नानेन तपसा मदर्थं पापदुल्लभम् ।। १८ ।।

यत्र स्वर्णं वरारोहे कोटीनां दश पंच च ।
वर्त्तते भूतले न्यस्तं कुबेरेण महात्मना ।। १९ ।।

ताम्रवर्णीति विख्याता सरितां सरिदुत्तमा ।
वामभागे महादेवि सर्वकामफलप्रदा ।। २० ।।

प्रोक्तानि तव तीर्थानि समासेन मयाऽत्र वै ।
विशेषेण समाख्यातुं नोत्सहे शतवर्षकैः ।। २१ ।।

वगला देवी के दक्षिण भाग में पुण्य को प्रमुदित करने वाली एक धारा विद्यमान है। उसके उत्तर तट पर विष्णु भगवान् की चतुर्भुज मूर्ति स्थित है ॥ १० ॥

उस पुण्य प्रमोदिनी धारा में स्नान करने से तथा सनातन विष्णु भगवान् के दर्शन करने से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। इस कर्म को करने से उसने कौनसा शुभ कर्म नहीं कर लिया है? (अतः सब शुभ कर्मों का यह स्नान और दर्शन देने वाला है) ॥ ११ ॥

हे शिवे! महादेवि! उसके दक्षिण दिशा में एक गव्यूति (दो कोस) की दूरी पर परम विस्मय को देने वाली त्रिशीर्षा नाम की देवी विद्यमान है ॥ १२ ॥

एक बड़ा सिंह वहां नित्य निरन्तर गर्जना करता हुआ स्थित रहता है। हे प्रिये! अनेक श्याम शरीर की नारियाँ काले वस्त्र पहनकर वहां विद्यमान रहती हैं ॥ १३ ॥

वे कराल मुख वाली देवियां देवी के साथ वहां विचरती रहती हैं तथा झन-झन शब्द करने वाले वाद्यों को भी वे वजाती रहती हैं ॥ १४ ॥

उस शब्द से जो मनुष्य भयभीत हो जाता है, उसकी मृत्यु हो जाती है, मूर्च्छित तो वह उसी क्षण में हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥

जो मनुष्य धैर्य धारण करके शिव के मन्त्र जप में निरत रहता है, परनिन्दा नहीं करता और परस्त्री गमन से अलग रहता है...॥ १६ ॥

उसको उस सिद्ध पीठ में लेशमात्र भी भय नहीं रहता है। वह गोरक्षक आदियों के समान शीघ्र सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

पापियों को दुर्लभ वहां वैष्णव नाम का कुण्ड विख्यात है। यहां स्नान और तपस्या करके वह पापियों को दुर्लभ मुझ को प्राप्त करता है ॥ १८ ॥

हे सुन्दर जघनों वाली! यहां महात्मा कुबेर द्वारा भूमि में रखा हुआ पन्द्रह करोड़ सुवर्ण है ॥ १९ ॥

वाम भाग में नदियों में उत्तम ताम्रवर्णी नाम की नदी यहां विख्यात है। हे महादेवि! वह नदी सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली है ॥ २० ॥

यहाँ मैंने सब तीर्थों का वर्णन संक्षेप से आपसे किया है। उनका विशेष वर्णन करने में मैं सैकड़ों वर्षों तक भी साहस नहीं कर सकता ॥ २१ ॥

इति ते बगलाक्षेत्रं पापराशिदवं मया।
प्रोक्तं त्वत्प्रियहेतुत्वात्सर्वत्र भुवि गोपितम्॥ २२॥

न वदेत्पिशुनायेदं न भक्तिरहिताय च।
पठेद्विद्वत्सु मंत्रज्ञो ब्राह्मणानां सभासु च॥ २३॥

य इदं श्रावयेद्विद्वान्पठेद्वापि[1] स्वयं क्वचित्।
शृणुयादपि यो मर्त्यो न वै यमपुरे वसेत्॥ २४॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे तीर्थमाहात्म्ये बगलाक्षेत्र-
माहात्म्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

शाकम्भरी-क्षेत्र-माहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

अथान्यदस्ति देवेशि पीठं प्रत्ययकारकम्।
शाकम्भरी यत्र जाता मुनीनां त्राणकारणात्॥ १॥

तत्पीठं परमं प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
गत्वा शाकम्भरीपीठे नत्वा शाकम्भरीं तथा॥ २॥

दशाश्वमेधयज्ञीयं फलं प्राप्नोति मानवः।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन सुन्दरि॥ ३॥

शाकवृक्षो महानेको वर्त्तते तत्र सुन्दरि।
तत्रायाति तदा सिंहो देव्या वै प्रियकारणात्॥ ४॥

तत्रैको वसते नाग एलापर्णेति विश्रुतः।
श्यामो बृहच्छिरास्तत्र तत्फणाविलसन्मणिः॥ ५॥

---

१. पठेद्वा पाठयेदपि।

इस प्रकार मैंने पापराशियों को जला देने वाले बगला क्षेत्र का वर्णन किया है। यद्यपि यह बगला क्षेत्र पृथ्वी में सबसे गुप्त है, तथापि तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण मैंने इस क्षेत्र का वर्णन किया है ॥ २२ ॥

पशुता रखने वाले तथा भक्ति-हीन मनुष्य से इसका वर्णन नहीं करना चाहिए। मन्त्रों को जानने वाला विद्वान् इसका वर्णन विद्वानों के समक्ष और ब्राह्मणों की सभाओं में करे ॥ २३ ॥

जो विद्वान् इसको सुनाता है, पढ़ता है, पढ़ाता है एवं सुनता है, वह यमपुर में निवास नहीं करता है ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में तीर्थमाहात्म्य में बगलाक्षेत्र माहात्म्य नाम का पैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ४६

शाकम्भरी क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा —

हे देवेशि ! ज्ञान देने वाला एक अन्य पीठ है, जहां मुनियों की रक्षा करने के लिए शाकम्भरी देवी अवतरित हुई थीं ॥ १ ॥

उस परम पीठ को सब पापों का नाश करने वाला कहा गया है। शाकम्भरी सिद्ध पीठ में जाकर तथा शाकम्भरी को प्रणाम करके…॥ २ ॥

मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं। हे सुन्दरि ! मैं उस पीठ के चिह्नों का वर्णन करता हूँ, तुम तत्त्व से श्रवण करो ॥ ३ ॥

हे सुन्दरि ! वहां एक वृद्ध शाक (सागौन) का वृक्ष है। देवी के प्रति स्नेह के कारण वहां एक शेर आता है ॥ ४ ॥

वहां एक एलापर्ण नाम का विख्यात नाग बसता है। श्यामवर्ण उस नाग का सिर बड़ा है तथा उसके फण में मणि शोभायमान है ॥ ५ ॥

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि विस्मयं परमं महत् ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां कार्तिके मासि सुव्रते ।। ६ ।।

शंकरे पर्वते तत्र दीपानां ततिरुज्वला ।
संदीपयति तद्देशं देव्याः पीठे परे तव ।। ७ ।।

सुरनार्य्यो नृत्यमाना दीपान् संगृह्य पार्वति ।
आयान्ति देवि ते पार्श्वे किंकिणीक्वणितैर्युताः ।। ८ ।।

देव्या वै दक्षिणे भागे लिंगं मारकतं मम ।
फणी वसति संछाद्य लिंगं परमपुण्यदम् ।। ९ ।।

तस्य वै वामभागे तु नदी वै नंदिनी मता ।
तस्यां नद्यां सकृत्स्नात्वा लभते वै परां गतिम् ।। १० ।।

भैरवस्तत्प्रदेशे वै रुरुनामेति विश्रुतः ।
घंटाशतसमायुक्तो नत्वा तं संविशेत्ततः ।। ११।।

तस्य वै वामभागे तु शुक्रस्याश्रममण्डलम् ।
नानाविधानि लिंगानि मम सन्ति महेश्वरि ।। १२ ।।

योजने पर्वते रम्ये[1] शौक्रे परमके शुभे ।
ताम्रादिधातवस्तत्र वर्त्तन्ते निश्चितं प्रिये ।। १३ ।।

लक्षणं ते प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ।
शर्करास्ताम्रवर्णाश्च तथा स्वर्णाः क्वचित्तथा ।। १४ ।।

द्वियोजनं समाकीर्णं योजनत्रयमायतम् ।
नानातीर्थसमायुक्तं पीठं शाकम्भरं तव ।। १५ ।।

गुह्याद् गुह्यतरं क्षेत्रं दर्शनात् पापनाशकम् ।
यत्र स्थित्वा पंचरात्रं नियतो नियताशनः ।। १६ ।।

---

१. शाक्रे ।

अन्य भी एक परमविस्मय कारक स्थान का मैं आपसे वर्णन करता हूँ। हे सुव्रते ! कार्तिक के महीने की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन···॥ ६ ॥

वहां शंकर पर्वत के ऊपर उज्ज्वल दीपों की पंक्ति जलती है। वह देश तुझ देवी का पीठ परम पीठ है ॥ ७ ॥

हे देवि पार्वति ! देवताओं की नारियां दीपकों को हाथ में लेकर नाचती हुई किंकिणियों का शब्द करती हुई तुम्हारे पास आती हैं ॥ ८ ॥

देवी के दक्षिण भाग में मरकत मणियों के द्वारा निर्मित मेरा लिंग है। उस परम पुण्य देने वाले लिंग को फणधारी सर्प आच्छादित करके अधिष्ठित रहता है ॥ ९ ॥

उसके बायें भाग में नन्दिनी नाम की नदी विद्यमान है। उस नदी में एकबार स्नान करने से मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है ॥ १० ॥

उस प्रदेश में रुरु नाम का भैरव विख्यात है। सैकड़ों घण्टों से वह युक्त है। उन्हें प्रणाम करके वहां प्रवेश करना चाहिए ॥ ११ ॥

उसके वाम भाग में शुक्र का आश्रम है। हे महेश्वरि ! वहां मेरे अनेक प्रकार के लिंग हैं ॥ १२ ॥

उससे एक योजन दूर परम शुभ को देने वाला सुरम्य शौक्र पर्वत है। हे प्रिये ! वहां ताम्र आदि धातुयें निश्चित ही विद्यमान हैं ॥ १३ ॥

मैं आपसे उसके लक्षणों का वर्णन करता हूँ, जिससे तुम्हें उसका ज्ञान हो जायेगा। वहां की रेत कहीं ताम्रवर्ण की है तथा कहीं सुनहरी है ॥ १४ ॥

दो योजन लम्बा तथा तीन योजन चौड़ा अनेक तीर्थों से युक्त तुम्हारा शाकम्भर नाम का पीठ है ॥ १५ ॥

अति गुप्त यह क्षेत्र दर्शन करने से पापों को नाश करने वाला है। जो यहां पांच रात्रि तक इन्द्रियों को नियन्त्रित करके और भोजन को नियत करके ···॥ १६ ॥

प्राप्नोति विपुलां सिद्धि जपन्वै जगदम्बिकाम् ।
इति तत्परमं क्षेत्रं कथितं ते मयानघे ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे शाकम्भरीक्षेत्रमाहात्म्य-
वर्णतं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय:

सप्तचत्वारिंशोऽध्याय:

पञ्चकेदारवर्णने मध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीपार्वत्युवाच—
देवाधिदेव सर्वज्ञ सर्वकर्त्तः प्रभो शिव ।
कथितानि त्वया देव क्षेत्राणि स्वर्गदानि तु ॥ १ ॥

श्रुतं केदारभवनं क्षेत्राणामुत्तमोत्तमम् ।
शिवक्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रवणे मतिरस्ति मे ॥ २ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
यत्र गत्वाऽपि पितरः स्वर्गच्छन्ति महाबलाः ॥ ३ ॥

घोरे कलियुगे देव नराः पुण्यविर्वजिताः ।
कथं तेषां गतिर्देव भविष्यति घृणा मम ॥ ४ ॥

केन वै कर्म्मणादेव ब्रह्महत्यादिसंयुतः ।
सन्तरेद्देवदेवेश संसारार्णवविस्तरम् ॥ ५ ॥

ईश्वर उवाच—
श्रृणु देवि वरारोहे कथयामि तवानघे ।
येन वै कर्म्मणा देवि प्राप्नुयुः[1] परमां गतिम् ॥ ६ ॥

मम क्षेत्राणि पंचैव भक्तप्रीतिकराणि वै ।
केदारं मध्यमं तुंगं तथा रुद्रालयं प्रियम् ।
कल्पकं च महादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७ ॥

---

१. प्राप्नुयात् ।

जगदम्बिका का जप करता है, वह अनेक सिद्धियों को प्राप्त करता है। हे अनघे ! इस प्रकार मैंने उस परम क्षेत्र का वर्णन आपसे किया ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में शाकम्भरी क्षेत्र माहात्म्य वर्णन नाम का छियालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ४७

पञ्चकेदारों के वर्णन के प्रसङ्ग में मध्यमेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

श्री पार्वती ने कहा—

हे देवाधिदेव ! शिव ! प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, सबको रचने वाले हैं। आपने स्वर्ग देने वाले क्षेत्रों का मेरे समक्ष वर्णन किया है ॥ १ ॥

मैंने उत्तमोत्तम क्षेत्र केदारक्षेत्र के माहात्म्य को सुना। अब मेरी इच्छा है कि मैं शिवक्षेत्र के माहात्म्य को सुनूं ॥ २ ॥

जिस क्षेत्र के दर्शन मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाते हैं, जहां की यात्रा करने पर महाबली पितृगण स्वर्ग लोक को जाते हैं ॥ ३ ॥

हे देव ! घोर कलियुग में लोग पुण्य रहित हो जायेंगे, अतः उनको सद्गति कैसे मिलेगी ? इस विषय में मेरा मन अति करुणामय हो रहा है ॥ ४ ॥

हे देव ! देवदेवेश ! किस कर्म के करने से ब्रह्महत्या आदि महापातकों को करने वाला भी इस संसार रूपी समुद्र से पार पा सकता है ॥ ५ ॥

ईश्वर ने कहा —

हे देवि, सुन्दरि ! पापरहिते ! मैं आप से कहता हूँ, तुम सुनो। जिस कर्म के करने से महापापियों को भी परमगति का लाभ होता है ॥ ६ ॥

भक्तों को प्रीति प्रदान करने वाले मेरे पांच क्षेत्र हैं—१. केदारक्षेत्र, २. मध्यम क्षेत्र, ३. तुंगक्षेत्र, ४. रुद्रालयक्षेत्र और ५. कल्पकक्षेत्र। हे महादेवि ! ये क्षेत्र सब पापों को नष्ट करने वाले हैं ॥ ७ ॥

कथितं तें महाभागे केदारेश्वरमण्डलम् ।
अन्यान्यपि शृणु प्राज्ञे धन्या ते मतिरीदृशी ।। ८ ।।

कथितं ते मया यत्तु केदारभवनं प्रिये ।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे योजनत्रयसम्मिते ।।९ ।।

मध्यमेश्वरक्षेत्रं हि गोपितं भुवनत्रये ।
तस्य वै दर्शनान्मर्त्यो नाकपृष्ठे वसेत् सदा ।। १० ।।

शृणु देवि पुरा वृत्तं यथाऽत्रत्यं सुपुण्यदम् ।। ११ ।।

गौडदेशे वसन्विप्रो वेदवेदांगपारगः ।
रूपवान् गुणवान्दांतः पुण्यकर्म्मसु निष्ठितः ।। १२ ।।

एकदा स महाभागो मध्यमेश्वरदर्शने ।
मतिं चकार धन्यो वै पितृणां तारणाय वै ।। १३ ।।

निर्विघ्नार्थं च यात्रायां सम्पूज्यादौग णेश्वरम् ।
त्रीन्ब्राह्मणान्पूजयित्वा शैवान्पाशुपतव्रतान् ।। १४ ।।

निर्ययौ स्वगृहात्तूर्णं शिवसंन्यस्तमानसः ।
जपन्वै परमं देवं धृत्युत्साहयुतो ह्यलम् ।। १५ ।।

आगत्य सहसा क्षेत्रे गंगाद्वारे महामतिः ।
तत्र स्नात्वा विधानेन ब्राह्मणाश्चैव तर्पिताः ।। १६ ।।

गंगाजलं समाहृत्य ततः केदारमण्डले ।
प्रपश्य नानातीर्थानि कुब्जाम्रप्रमुखानि तु ।। १७ ।।

दृष्ट्वा श्रीभरतं देवं वसिष्ठाश्रममाययौ ।
दृष्ट्वा भागीरथीं गंगामलकनन्दासमन्विताम् ।। १८ ।।

प्रणनाम महाप्राज्ञो भुवि भक्तिसमन्वितः ।
देवतीर्थे तथा स्नात्वा दृष्ट्वा रामं रमापतिम् ।। १९ ।।

हे महाभाग्यशालिनि ! मैंने केदारेश्वर क्षेत्र का आपसे वर्णन किया है। अब मैं अन्य पवित्र क्षेत्रों का वर्णन आपसे करूंगा। हे प्राज्ञे ! आपकी परोपकारिणी बुद्धि है अतः तुम सुनो ॥ ८ ॥

हे प्रिये ! मैंने जो केदार क्षेत्र का वर्णन आपसे किया है, उसी से दक्षिण दिशा में तीन योजन (बारह कोस) की दूरी पर ॥ ९ ॥

तीनों लोकों में अति गुप्त मध्यमेश्वर क्षेत्र है। उसके दर्शन मात्र से मनुष्य हमेशा स्वर्गलोक में निवास करता है ॥ १० ॥

हे देवि ! परम पुण्य को देने वाले यहां के पूर्ववृतान्त को मैं तुमसे कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ११ ॥

गौड़ देश में वेदों और वेदांगों में निपुण एक ब्राह्मण निवास करता था। वह रूपवान् तथा गुणवान था, और इन्द्रियों का निग्रह करने वाला वह ब्राह्मण पुण्य कर्म में निरत रहने वाला था ॥ १२ ॥

एक दिन उस महाभाग परम यशस्वी ब्राह्मण ने अपने पितरों के उद्धार के लिए मध्यमेश्वर के दर्शन करने का विचार किया ॥ १३ ॥

यात्रा को निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिए उसने यात्रा के समय सर्व-प्रथम गणेश की पूजा करके पाशुपत व्रत को धारण करने वाले तीन शैव ब्राह्मणों की पूजा की ॥ १४ ॥

अपने मन में शिव का ध्यान करते हुये वह ब्राह्मण शीघ्र ही अपने घर से चल दिया। धैर्य तथा उत्साह से सम्पन्न होकर वह परम देव शिव का जप करने लगा ॥ १५ ॥

वह महामतिशाली ब्राह्मण सहसा गंगाद्वार क्षेत्र में आया। यहां गंगा-स्नान कर उसने विधिपूर्वक ब्राह्मणों को तृप्त किया ॥ १६ ॥

तदन्तर उसने गंगा जल को लेकर केदारमण्डल में कुब्जाम्र आदि अनेक तीर्थों का दर्शन किया ॥ १७ ॥

भरत जी के दर्शन करके वह वसिष्ठ मुनि के आश्रम में आया वहां उसने अलकनन्दा से समन्वित भागीरथी गंगा का दर्शन किया ॥ १८ ॥

महामतिमान् उस ब्राह्मण ने भक्ति से समन्वित होकर देव प्रयाग तीर्थ में स्नान करके साक्षात् रमापति रामचन्द्र जी के दर्शन किये ॥ १९ ॥

ततः श्रीक्षेत्रके पुण्येऽलकनन्दातटे शुभे ।
तत्रत्येयु च क्षेत्रेषु भक्त्या स्नात्वा महेश्वरि ॥ २० ॥

गतोऽन्येषु च तीर्थेषु शिवभक्तिप्रदेषु च ।
मन्दाकिन्यास्तटे रम्ये नानामुनिजनाश्रमे ॥ २१ ॥

अगस्त्यादीन्महाभागान्नत्वा विप्रो नलाश्रये ।
राजराजेश्वरीं देवीं नत्वा सम्पूज्य यत्नतः ॥ २२ ॥

कालीं चैव नमस्कृत्य सरस्वत्यास्तटे शुभे ।
ययौ तत्क्षेत्रके पुण्ये विषमे पददुर्गमे ॥ २३ ॥

अनेकतीर्थसंस्पातो ययौ तत्क्षेत्रके शुचिः ।
अशुचिर्योभिगच्छेत तत्क्षेत्रे मध्यमेश्वरे ॥ २४ ॥

अकस्माद्वृष्टिपातो वै करकाहिमसंयुताः[1] ।
वज्रपातादिकं चैव जायते नैव संशयः ॥ २५ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
संगच्छेन्मध्यमं धाम मम चैव महेश्वरि ॥ २६ ॥

सोऽपि तत्र गतो देवि निराहारो दिनत्रयम् ।
जागरं कृतवांस्तत्र मध्मेश्वरसन्निधौ ॥ २७ ॥

ततश्चतुर्थदिवसे प्रातरुत्थाय चासनात् ।
शिवं नत्वा महेशानं भक्तितः परमेश्वरम् ॥ २८ ॥

ततः सरस्वतीतीरे स्नात्वा चैव यथाविधि ।
पितॄन्सम्पूज्य विधिवत् पितॄन् सन्तर्प्य चोदकैः ॥ २९ ॥

[2]पितॄन् संपूज्य विधिवत् ऋषिकुण्डे समाययौ ।
तत्रापि विधिवत् स्नात्वा शिवकुण्डे ययौ ततः ॥ ३० ॥

---

१. संयुतः ।
२. पितॄन् ''''चोकर्के'' पाठ इसमें नहीं है ।

उसके बाद वह अलकनन्दा के तट पर स्थित शुभ देने वाले पवित्र श्रीक्षेत्र में गया। हे महेश्वरि ! वहां उपस्थित पवित्र तीर्थों में उसने भक्तिपूर्वक स्नान किया ॥ २० ॥

और वह उसके बाद अन्य उन तीर्थों में गया, जो शिवभक्ति को देने वाले थे। मन्दाकिनी नदी के सुरम्य तट पर अनेक मुनियों के आश्रम थे ॥ २१ ॥

अगस्त्य आदि महाभाग्यशाली मुनियों को प्रणाम करके उस ब्राह्मण ने नलाश्रम में जाकर राजराजेश्वरी देवी को प्रणाम करके विधिवत् पूजन किया ॥ २२ ॥

और सरस्वती के पुण्य तट पर काली देवी को नमस्कार कर उस ब्राह्मण ने उस क्षेत्र के विषम तथा पैदल न चलने लायक बड़े दुर्गम क्षेत्रों में प्रवेश किया ॥ २३ ॥

अनेक तीर्थों में स्नान करके पवित्र होकर वह इस मध्यमेश्वर क्षेत्र में गया। यदि कोई व्यक्ति अपवित्र होते हुये इस मध्यमेश्वर क्षेत्र में प्रवेश करता है···॥ २४ ॥

तो अचानक वृष्टि होने लगती है, ओले और बर्फ गिरते हैं तथा वज्रपात आदि होने लगते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥

हे महेश्वरि ! इसलिए सभी प्रयत्नों से शुद्ध समाहित होकर यात्री को मेरे मध्यम धाम में जाना चाहिए ॥ २६ ॥

हे देवि ! इस प्रकार शुद्ध होकर उसने भी उस मध्यमेश्वर क्षेत्र में जाकर तीन दिन तक निराहार रहकर मध्यमेश्वर के समक्ष वहां जागरण किया ॥ २७ ॥

उसके बाद चौथे दिन प्रातः आसन से उठकर उसने महेशान, परमेश्वर शिव को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ २८ ॥

उसके बाद उसने सरस्वती के तट पर स्नान करके यथाविधि पितरों की पूजा की तथा जल तर्पण से पितरों को तृप्त किया ॥ २९ ॥

पितरों का विधि के अनुसार पूजन करके वह ऋषिकुण्ड में आया। वहां भी विधिपूर्वक स्नान करके वह तदनन्तर शिवकुण्ड में गया ॥ ३० ॥

तत्रापि विधिना स्नात्वा पितॄन् सन्तर्प्य चोदकैः ।
नमस्कृत्वा च तत्क्षेत्रं परिक्रम्य शिवं पुनः ।
सम्पूज्य विविधैर्द्रव्यैर्नारिकेलादिभिस्तथा ।। ३१ ।।

तत्रत्यानथ सम्पूज्य यथाशक्त्या हि ब्राह्मणान् ।
आययौ भक्तिसम्पन्नो दृष्ट्वा दर्शनमद्भुतम् ।। ३२ ।।

अथास्मिन्नेव मार्गे हि ददर्श ब्रह्मराक्षसम् ।
ऊरुस्रवद्गलत्पूर्वक्रृमिविष्ठाशताकुलम् ।। ३३ ।।

महोन्नतं महाश्यामं वृहद्दंष्ट्राकरालकम् ।
हाहाकाररवं विप्रो दृष्ट्वा तं भयविह्वलः ।। ३४ ।।

न गन्तुं न तथा स्नातुं न शक्नोति स्म पार्वति ।
चिन्तयामास बहुशो भयविह्वललोचनः ।। ३५ ।।

केन पापेन दृष्टोऽसौ विकरालो भयंकरः ।
मामेकं रहसि प्राप्तं भक्षयिष्यति साम्प्रतम् ।। ३६ ।।

किं करोमि क्व गच्छामि कथमस्मात्प्रमुच्यते ।
हा तात मातरित्येव चिन्तया स परिप्लुतः ।। ३७ ।।

तं विप्रं राक्षसो दृष्ट्वा नष्टमोहोऽभवत्क्षणात् ।
पापस्य च चतुर्थांशो नष्टस्तद्दर्शनात्प्रिये ।। ३८ ।।

उवाच भयसंविग्नं ब्राह्मणं पथिसंस्थितम् ।। ३९ ।।

नत्वा भक्तिसमायुक्तो विकास्य वदनं मुहुः ।। ४० ।।

ब्रह्मराक्षस उवाच –

भो भो ब्रह्मन्महापुण्य मा भैषीर्मम निश्चितम् ।
गतो मोहभरो मेऽद्य दर्शनात्ते महेश्वर ।। ४१ ।।

वहां भी विधिपूर्वक स्नान करके और जलों द्वारा पितरों को तृप्त करके और उस क्षेत्र को नमस्कार करके तथा पुनः शिव जी की परिक्रमा करके नारिकेल आदि विविध द्रव्यों से शंकर का पूजन किया ।। ३१ ।।

इसके बाद उसने यथाशक्ति वहां ब्राह्मणों की पूजा की । अद्‌भुत दर्शन करने के बाद भक्ति में परिपूर्ण वह ब्राह्मण लौट आया ।। ३२ ।।

जब वह ब्राह्मण वापिस आ रहा था तो उसने मार्ग में एक ब्रह्म राक्षस को देखा । उसकी बहती तथा गली हुई जंघाओं से असंख्य क्रिमियां निकल रही थीं और विष्ठा से उसका देह संलग्न था ।। ३३ ।।

उसका आकार बहुत बड़ा था, रंग अत्यधिक श्याम था, और उसकी दाढ़ें बहुत बड़ी एवं भयानक थी । वह हाहाकार कर रहा था । ऐसे राक्षस को जब ब्राह्मण ने देखा तो वह भय से संत्रस्त हो गया ।। ३४ ।।

हे पार्वति ! उस ब्राह्मण की वहां से न तो जाने की और ना ही स्नान करने की सामर्थ्य रही । उसकी आँखे भय से विह्वल हो गईं तथा वह अति चिन्ता करने लगा ।। ३५ ।।

किस पाप के कारण विकराल इस भयंकर राक्षस के दर्शन हुये । मैं यहां पर अकेला हूँ अतः यह इस समय मुझे खा लेगा ।। ३६ ।।

क्या करूँ, कहां जाऊँ, कैसे इससे छूटूंगा । हाय पिता, हाय माता, इस प्रकार कहता हुआ वह चिन्ता करने लगा ।। ३७ ।।

उस ब्राह्मण के दर्शन करने से उस राक्षस का उसी क्षण अज्ञान नष्ट हो गया । हे प्रिये ! ब्राह्मण के दर्शन से उस राक्षस का चतुर्थांश पाप भी नष्ट हो गया ।। ३८ ।।

मार्ग में स्थित भय से संत्रस्त उस ब्राह्मण को नमस्कार करके भक्ति युक्त होकर और मुख को विकसित करके उस ब्रह्मराक्षस ने कहा···।। ३९-४० ।।

ब्रह्मराक्षस ने कहा—

हे महापुण्यशाली ब्राह्मण ! तुम मेरे से भय मत करो । हे महेश्वर ! निश्चित ही आपके दर्शन से मेरा अज्ञान आज नष्ट हो गया ।। ४१ ।।

गतं मे पातकं देव दर्शनादेव ते परम्।
भाषणादपि पापानि नष्टानि सुतरां तथा ॥ ४२ ॥

यास्यामि शिवलोकेऽहं त्वत्प्रसादान्न संशयः।
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि निष्कृतिर्मे परागता ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच—
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सामपूर्वं यशस्विनि।
सहसा विगतत्रासः समभाषत तं ततः ॥ ४४ ॥

ब्राह्मण उवाच—
कस्त्वं करालवदनो वनेऽस्मिन्पापिदुर्ल्लभे।
केन पापेन ते जाता गतिरेतादृशी वद ॥ ४५ ॥

किमाहारोऽसि दुर्वृत्त किमाचारोऽसि किं तव।
पापं वाऽद्य कथं चैव गतं राक्षस दर्शनात् ॥ ४६ ॥

विस्तराद् ब्रूहि वृत्तान्तं स्वीयं पापसमुद्भवम्।
येन वा पूयसंक्लिन्नं जातं ते रूपमीदृशम् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मराक्षस उवाच—
शृणु देव प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तं मम प्रभो।
पुराऽभवमहं विप्रो वेदवेदांगपारगः ॥ ४८ ॥

वृद्धया जीविकया युक्तो जातो वार्द्धुषिकस्तथा।
इदमेव महत्पापं जातं वै क्रयविक्रयात् ॥ ४९ ॥

स्नातं मया च तीर्थेषु यथाशक्त्या त्वया तथा।
पापेनानेन मे सर्वं नष्टं पुण्यं मया कृतम् ॥ ५० ॥

तेन पापेन मे मृत्युर्जातो वै जलमज्जनात्।
ईदृशी च ममावस्था जाता ब्राह्मणसत्तम ॥ ५१ ॥

तदिदानीं महाभाग दर्शनात्ते महात्मनः।
पंचाशद्वर्षसाहस्रा गतिर्नष्टा महामते ॥ ५२ ॥

हे देव ! आपके दर्शन से मेरे अनेक पाप चले गये हैं। मेरे बहुत से पाप आपके साथ सम्भाषण करने से विनष्ट हो गये हैं ।। ४२ ।।

मैं आपके प्रसाद से अवश्य शिव लोक में प्रवेश करूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, धन्य हो गया हूँ। मुझे परम गति का लाभ हुआ है ।। ४३ ।।

ईश्वर ने कहा—

हे यशस्विनि ! इस प्रकार उस राक्षस के शान्त विनम्र वचन सुनकर उस ब्राह्मण का भय सहसा नष्ट हो गया और उस ब्राह्मण ने राक्षस से कहा ।। ४४ ।।

ब्राह्मण बोला—

पापियों को अप्राप्य इस वन में भयानक मुख वाले तुम कौन हो ? किस पाप के कारण तुम्हारी इस प्रकार की कुगति हुई है ? ।। ४५ ।।

हे दुराचारिन् ! तुम क्या भोजन करते हो, और क्या तुम्हारा आचरण है ? हे राक्षस ! आज मेरे दर्शन से तुम्हारा पाप कैसे नष्ट हो गया है ? ।। ४६ ।।

अपने पापों की उत्पत्ति के वृत्तान्त को विस्तार से बोलो, जिससे कि पीप आदि से परिपूर्ण तुम्हारा ऐसा रूप हो गया है ।। ४७ ।।

ब्रह्मराक्षस ने कहा—

हे देव, प्रभो ! मैं कहता हूँ। तुम मेरे पूर्व वृत्तान्त को सुनो। पहले जन्म में मैं वेदवेदांगों में निपुण ब्राह्मण था ।। ४८ ।।

ब्याज खाने वाला होकर मैं अपनी आजीविका ब्याज से चलाने लगा। इस क्रय-विक्रय के महान् पाप से मेरी यह कुगति हो गई ।। ४९ ।।

तीर्थों में जाकर मैंने तुम्हारे समान यथाशक्ति स्नान किया। किन्तु इस पाप के कारण मेरे द्वारा किये गये पुण्य सब नष्ट हो गये ।। ५० ।।

उसी पाप के कारण जल में डूबकर मेरी मृत्यु हो गई। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! और मेरी यह अवस्था हो गई है ।। ५१ ।।

हे महाभाग महामते ! आप महात्मा के दर्शन से आज मेरी पचास हजार वर्ष की यह दुर्गति विनष्ट हो गई ।। ५२ ।।

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा राक्षसं देहं त्यक्त्वा दिव्यवपुः क्षणात् ।
जातस्त्रिशूलधृक् सोऽथ चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ५३ ॥

गतः कैलासनिलये पश्यतस्तस्य धीमतः ।
ब्राह्मणोऽपि पराश्चर्य्यं दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ॥ ५४ ॥

आश्चर्य्यं परमं लेभे मुखसंन्यस्तस्वांगुलिः ।
अहो तीर्थस्य महिमा यस्येयं व्युष्टिरुत्तमा ॥ ५५ ॥

चिन्तयानस्तदर्थं वै स ययौ भवने स्वके ।
उत्पाद्य बहुशः पुत्रान् कृत्वा भोगान्सुपुष्कलान् ॥ ५६ ॥

काले पंचत्वमापन्नो ब्रह्मसामुज्यमाप सः ।
इति ते कथिता देवि कथेयं पापनाशिनी ॥ ५७ ॥

महिमा मध्यमेशस्य कथितस्ते मयाऽधुना ।
मुक्तिं प्राप राक्षसोऽपि यद्यात्रिक सुदर्शनात् ॥ ५८ ॥

धन्याः कलियुगे घोरे मध्यमेश्वरदर्शनात् ।
राज्यं पुत्रानपि शिवे त्यज्य गच्छेन्महेश्वरम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मध्यमेश्वरमाहात्म्य-
वर्णने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

अष्टचत्वारिंशोऽध्याय

मध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

स्नानदानस्य माहात्म्यं कथ्यते शृणु सुन्दरि ।
अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे सरस्वत्याश्च वैभवम् ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा--

यह कह कर उसने उसी समय राक्षस देह को त्याग कर दिव्य देह को धारण कर लिया। उसके हाथ में त्रिशूल तथा उसके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र अधिष्ठित हो गया ॥ ५३ ॥

उस बुद्धिमान् ब्राह्मण के देखते-देखते वह कैलाश आश्रम को चला गया। उस परम अद्भुत वृत्तान्त को देखकर उस ब्राह्मण को भी परम आश्चर्य हुआ ॥ ५४ ॥

अपने मुख पर अंगुलि रखकर इस ब्राह्मण को परम आश्चर्य प्राप्त हुआ। अहो, तीर्थ की कितनी बड़ी महिमा है, जिसका कि यह उत्तम फल है ॥ ५५ ॥

उस वृत्तान्त को सोचते-सोचते वह ब्राह्मण अपने घर को चला गया। उसने बहुत से पुत्रों को जन्म देकर अनेक भोगों का भोग किया ॥ ५६ ॥

समय पर मृत्यु होने के बाद उस ब्राह्मण को साक्षात् ब्रह्म का सायुज्य मिला। इस प्रकार हे देवि ! मैंने इस पापनाशिनी कथा को वर्णित किया ॥ ५७ ॥

इस समय मैंने मध्यमेश्वर क्षेत्र की महिमा को तुम से कहा। जहाँ की यात्रा करने वाले यात्री के दर्शन से राक्षस को मुक्ति का लाभ हुआ ॥ ५८ ॥

हे शिवे ! घोर कलियुग में वे धन्य हैं, जो मध्यमेश्वर के दर्शन के लिये राज्य तथा पुत्रों को भी छोड़कर महेश्वर के पास जाते हैं ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मध्यमेश्वर माहात्म्य
वर्णन प्रसङ्ग में सैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ४८

मध्यमेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे सुन्दरि ! इसी क्षेत्र में स्नान और दान के माहात्म्य को तथा सरस्वती नदी के वैभव को कहता हूँ, तुम सुनो ॥ १ ॥

यस्याः दर्शनमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ।
सरस्वत्यां नरः स्नातो न च भूयोऽभिजायते ॥ २ ॥

यावत्यः कणिका देहे सरस्वत्या जलस्य वै ।
देहे लग्ना दैवयोगात्तावत्कल्पं दिवं वसेत् ॥ ३ ॥

तस्माच्च्युतः कदाचित्तु पृथिव्यां पृथिवीपतिः ।
धार्मिको मम भक्तश्च जायते मम बल्लभः ॥ ४ ॥

इतिहासं महादेवि पापघ्नं सर्वकामदम् ।
श्रृणु चित्तं समाधाय येन पापक्षयो भवेत् ॥ ५ ॥

पुराऽत्रैव महारण्ये शंबुको नाम लुब्धकः ।
चचार श्वयुतश्चैव मृगान् हन्तुमितस्ततः ॥ ६ ॥

केचिन्मृगा हतास्तेन शुना केचिन्महेश्वरि ।
मृगाणां राशयो जाता हतानां वै तथा वने ॥ ७ ॥

न वै व्याधस्य तृष्णा हि गता पूर्णमनोरथा ।
दृष्ट्वा वं तान्मृगांस्तत्र विचारं कृतवांस्तथा ॥ ८ ॥

कांश्चिद्वै प्रेषयिष्यामि दुहित्रे शुभसंस्कृतान् ।
अन्यच्च करणीयं वै विक्रीत्वा वसनादिकम् ॥ ९ ॥

नग्नास्थ्ठन्ति मे पुत्रा दाराश्च दुहितास्तथा ।
क्षुधिताश्च भविष्यन्ति कुटुम्बे मम पुत्रकाः ॥ १० ॥

एते मृगा हता ये व कथं कुरुत मे शयम् ।
अन्यत्रापि मृगान्हत्वा तदा यास्यामि गेहकम् ॥ ११ ॥

इति तृष्णासमाविष्टश्चिन्तयित्वा भृशं बहु ।
मृगान्हन्तुं ययौ देवि शुना तेन शुभस्थलम् ॥ १२ ॥

भाग्येनास्मिन्महाक्षेत्रे आययौ मृगयारतः ।
तत्र दृष्टास्तदा तेन यात्रिका दर्शनागताः ॥ १३ ॥

जिसके मात्र दर्शन से मनुष्य पापों से दूर हो जाता है। जो मनुष्य सरस्वती नदी में स्नान करते हैं, वे पुनः जन्म नहीं लेते है। अर्थात् उनका मोक्ष हो जाता है ॥ २ ॥

दैव योग से सरस्वती नदी के जितने जल-बिन्दु मनुष्य के शरीर को स्पर्श करते हैं, उतने ही कल्प पर्यन्त वह मनुष्य स्वर्ग लोक में निवास करता है ॥ ३ ॥

और जब कभी वह मनुष्य स्वर्ग से निपतित होता है, तब वह पृथिवी पर राजा होता है। वह धार्मिक मनुष्य मेरा प्रिय परम भक्त होता है ॥ ४ ॥

हे महादेवि ! यह इतिहास पापों को नाश करने वाला तथा अभीष्ट पदार्थों को देने वाला है। मन को एकाग्र करके इसे सुनो, जिससे पापों का नाश हो जावे ॥ ५ ॥

पहले इस महावन में एक शंबुक नाम का व्याध रहता था। वह कुत्ते को साथ में लेकर मृगों को मारने के लिए इधर-उधर विचरण करता रहता था ॥ ६ ॥

हे महेश्वरि ! कुछ मृगों को उस व्याध ने तथा कुछ मृगों को उसके कुत्ते ने मारा। इस प्रकार उस वन में मारे गये मृगों के ढेर हो गये ॥ ७ ॥

उन मृगों से उस व्याध की तृष्णा और मनोरथ पूर्ण नहीं हुये। उन मृगों को देखकर वह वहां पर विचार करने लगा ॥ ८ ॥

किन्हीं को ठीक प्रकार से संस्कृत करके मैं अपनी पुत्री के लिए भेज दूंगा और अन्यों को बेचकर वस्त्र आदि बना लूंगा ॥ ९ ॥

मेरे पुत्र, कन्या, पत्नी आदि सभी घर पर नंगे हैं और कुटुम्ब में मेरे पुत्र भूखे होंगे ॥ १० ॥

इतने मारे गये ये मृग भी मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकेंगे। मैं अन्यत्र जाकर और मृगों को मारकर तब घर जाऊँगा ॥ ११ ॥

इस प्रकार तृष्णा से समाविष्ट व्याध ने अनेक विचार किये। हे देवि ! तब वह व्याध अपने कुत्ते के साथ मृगों को मारने के लिए शुभ स्थान में चला गया ॥ १२ ॥

आखेट में निरत हो वह व्याध भाग्यवशात् इसी महाक्षेत्र में आया। वहां उसने दर्शन के लिए आये हुये यात्रियों के दर्शन किये ॥ १३ ॥

दर्शनं कर्त्तुमुद्युक्ताश्चरन्तश्च इतस्ततः।
कौतूहलसमाविष्टो ददर्श तत्र कौतुकम् ॥ १४ ॥

विहस्य सोऽपि देवेशि शुना सह ययौ नदीम्।
यात्रिकाचरितं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १५ ॥

सरस्वत्यास्तटे देवि स्नायमानान्ददर्श सः।
स्वयं चैवोपविष्टो हि प्रहस्य च शुभे तटे ॥ १६ ॥

तं श्वानं पातयामास सरस्वत्यम्भसि प्रिये।
श्वा च शीतसमाविष्टो व्याधस्य निकटं गतः ॥ १७ ॥

अंगानि कंपयामास ह्यम्भसा संप्लुतानि हि।
उड्डीय वै जलकणा लग्नास्तद्देहके शिवे ॥ १८ ॥

इति तत्कर्म कृत्वा व[1] मृगान् हत्वा बहूंस्ततः।
आययौ भवने स्वीये पुत्रदारसमाकुले ॥ १९ ॥

मांसभागानि कृत्वा वै यथावच्चिन्तितं पुरा।
एवमेव महाभागे पापकर्म करोति हि ॥ २० ॥

एकदा समये देवि आयुषोऽन्ते निशीथके।
स श्वा पंचत्वमापन्नो मांसाजीर्णेन सुन्दरि ॥ २१ ॥

शुनो वै मोहसम्पन्नो व्याधो शंबुकनामकः।
तत्रैव स्थितवान्यत्र म्रियमाणो हि कुक्कुरः ॥ २२ ॥

तस्यैव पश्यतो देवि प्राणांस्त्यक्त्वा कलेवरम्।
बहिर्गता मुखात्तस्य गदाविष्टस्य पार्वति ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नंतरे तत्र कैलासाच्छिवदूतकाः।
आगताः सुविमानं हि गृहीत्वा मुदितास्ततः ॥ २४ ॥

---

१. "मृगान् ···कृत्वावै" पाठ इसमें नहीं है।

दर्शन के लिए आये हुये यात्री इधर-उधर विचरण कर रहे थे। वहाँ कौतूहल में समाविष्ट हुये उसने अनेक कौतुक देखे ॥ १४ ॥

हे देवेशि ! हँसकर वह कुत्ते के साथ नदी पर गया। यात्रियों का आचरण देखकर उसका मन विस्मय में पड़ गया ॥ १५ ॥

हे देवि ! उसने सरस्वती नदी के तट पर स्नान करते हुये यात्रियों को देखा और हँसकर उस शुभ तट पर वह स्वयं उपस्थित हुआ ॥ १६ ॥

हे प्रिये ! उस कुत्ते को व्याध ने सरस्वती नदी के जल में गिरा दिया और वह कुत्ता शीत से पीड़ित होकर व्याध के समीप गया ॥ १७ ॥

हे शिवे ! जल से भीगे हुये अंगों के काँपने से उड़ते हुये जल कण उस व्याध के देह पर पड़े ॥ १८ ॥

इस प्रकार शिकार का काम करके और बहुत से मृगों को मार कर, उसके बाद वह पुत्र-पत्नी से भरे हुये अपने घर पर आ गया ॥ १९ ॥

मांस के भाग करके वह पहले के समान यथावत् चिन्तन करने लगा। उसी प्रकार हे महाभाग्यशालिनि ! वह पुनः पाप कर्म करने लगा ॥ २० ॥

हे सुन्दरि, देवि ! एक समय आयु के पूरा हो जाने पर आधी रात में वह कुत्ता अधिक मांस खाने के कारण पाचन क्रिया के रुक जाने से मर गया ॥ २१ ॥

वह शंबुक नाम का व्याध कुत्ते के मोह से व्याकुल हो वहां पर ही बैठा रहा, जहां पर वह कुत्ता मर रहा था ॥ २२ ॥

हे देवि ! पार्वति ! उस व्याध के देखते-देखते ही उस रोगी कुत्ते के प्राण शरीर को त्याग कर मुख से बाहर निकले ॥ २३ ॥

इसी समय वहां पर कैलास से प्रसन्न होते हुये शिव के दूत सुसज्जित विमान को लेकर आये ॥ २४ ॥

नानाप्सरस्समायुक्ता गंधर्वा रावणादिता:[2]।
ददर्श ताञ्च्छंबुकोऽपि जलबिन्दुसुवैभवात् ।। २५ ।।

शुनोऽगेभ्य: परोद्धता लग्ना ये जलबिन्दव: ।
स्पर्शप्रभावती देवि पापं तस्य क्षयं गतम् ।। २६ ।।

ददर्श च तदाश्चर्य्यं नीयमानं विमानके ।
शिवदूतैर्मङ्गाभागे श्वानं दिव्यवपु: स्थितम् ।। २७ ।।

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मेपशोभितम् ।
त्रिनेत्रं चन्द्रशिखरं दृष्ट्वा विस्मयमागत: ।। २८ ।।

चिन्तयामास बहुश: किमेतदिति वै पुन: ।
स्वप्नोऽथवा कथं मेऽद्य जाग्रत: किं तथा भ्रम: ।। २९ ।।

तिर्यग्योनिगत: श्वा वै कथमेतादशीं गतिम् ।
गत: केन विपाकेन समतां निर्जरैरिव ।। ३० ।।

इदं वै कारणं कोऽद्य वदिष्यति मम प्रभो ।
इति चिन्तासमाविष्टो व्याधस्त्यक्त्वा गृहं स्वकम् ।। ३१ ।।

तमेवार्थमभिज्ञातुं गतो वै निर्जने वने ।
तथा निर्वेदमापन्नो दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ।। ३२ ।।

जीर्णदेवालयेऽरण्ये स्थितो नियमपूर्वकम् ।
यदा मे कोऽपि तं हेतुं कथयिष्यति वै प्रभु: ।। ३३ ।।

भक्षयिष्ये तदा किंचिन्नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।
प्रतिज्ञाय महाव्याध इति तत्र स्थितो वने ।। ३४ ।।

एवं तस्य महाभागे वने तस्मिन्भयानके ।
वसतो हि गतं देवि दिनानां पंचकं तथा ।। ३५ ।।

---

२. रावना ।

अनेक अप्सरायें उनके साथ थीं। गन्धर्वों के वाद्यों के शब्द हो रहे थे। कुत्ते के शरीर पर पड़ी उन जल-विन्दुओं के कारण इस सुन्दर वैभव को उस शंबुक व्याध ने भी देखा ।। २५ ।।

हे देवि ! कुत्ते के अंगों से उड़ते हुये जल-बिन्दुओं का स्पर्श होने के प्रभाव से उस व्याध के पाप नष्ट हो गये ।। २६ ।।

हे महाभाग्यवति ! शिव के दूतों द्वारा विमान में दिव्य शरीर वाले उस कुत्ते को ले जाते हुये उस व्याध ने देखा और तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ ।। २७ ।।

त्रिशूल और पट्टिश को धारण किये हुये, व्याघ्र चर्म से सुशोभित, तीन नेत्रों वाले तथा चन्द्रमा के शिरोभूषण वाले उस कुत्ते को देखकर वह व्याध विस्मित हुआ ।। २८ ।।

यह क्या हुआ, इस प्रकार वह व्याध बार-बार सोचने लगा। मुझे जागते हुये स्वप्न कैसे हो सकता है, क्या यह मुझे भ्रम है ? ।। २९ ।।

पशु योनि में उत्पन्न इस कुत्ते की इस प्रकार की उत्तम गति कैसे हो गई। किस कर्म से इसने देवताओं के समान होने का लाभ प्राप्त किया ? ।। ३० ।।

हे प्रभो ! इस कारण को कौन आज मुझे कहेगा ? इस प्रकार चिन्ता में निमग्न हो उस व्याध ने अपने घर का परित्याग कर दिया ।। ३१ ।।

उस अर्थ को जानने के लिए वह व्याध निर्जन वन में चला गया। तथा उस परम अद्भुत आश्चर्य को देखकर वैराग्य को प्राप्त करके ।। ३२ ।।

वह उस जंगल में स्थित एक जीर्ण देव मन्दिर में नियमपूर्वक रहने लगा। जब मुझे कोई विज्ञपुरुष इस कारण को बतायेगा ।। ३३ ।।

तभी मैं कुछ अन्न का भोजन करूंगा अन्यथा प्राणों का त्याग कर दूंगा इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके वह महाव्याध उस वन में रहता रहा ।। ३४ ।।

हे महाभाग्यशालिनि देवि ! इस प्रकार उस भयानक वन में उसके बसते हुये पांच दिन व्यतीत हो गये ।। ३५ ।।

ततः षष्ठ्यां निशि स्वप्ने कश्चिदागत्य यात्रिकः ।
योगी कार्यटिकाकल्पो ह्यु वाच पुण्यकारणम् ॥ ३६ ॥

रे रे व्याध गतं पापं ते चापि साम्प्रतं शुचिः ।
कथं त्वया विस्मृतं हि कारितं च त्वयैव हि ॥ ३७ ॥

पुरा गतोऽसि मृगयां मध्यमेश्वरपीठके ।
एतेन च शुना साकं त्वया दृष्टाश्च यात्रिकाः ॥ ३८ ॥

स्नायमानाः सरस्वत्यां नरा दृष्टास्त्वया ततः ।
विहस्य च ततः क्षिप्रं सरस्वत्यम्भसि स्थले ॥ ३९ ॥

अभक्त्याऽपि च तस्यां वै निष्कामेनापि मज्जितम् ।
तिर्यग्योनिगतस्यापि पुनः पापं गतं किल ॥ ४० ॥

दर्शनान्मध्यमेशस्य प्रसंगेनापि शंबुक ।
गतिमेतादृशीं प्राप्तो दुर्ल्लभां योगिनामपि ॥ ४१ ॥

इति ते कथितं व्याध शुनो वै गतिकारणम् ।
प्रसंगेन त्वया तत्र मध्यमेश्वरदर्शनम् ॥ ४२ ॥

कृतं तेन त्वयाऽप्यद्य सर्वपापक्षयः कृतः ।
गच्छ तत्रैव भो व्याध मध्यमेश्वरपीठके ॥ ४३ ॥

इति तत्कथ्यमानस्य रात्रिर्जाताऽमला वने ।
प्रबुद्धः शंबुकस्तूर्णं स्वप्नं तज्ज्ञातवान्प्रिये ॥ ४४ ॥

आश्चर्य्यं परमं लेभे स्मृत्वा तच्चरितं शुभम् ।
संत्यक्तसर्वकर्मा वै गतो मध्येश्वरस्थले ॥ ४५ ॥

ततो गत्वा शिवस्यादौ पूजनं च कृतं ततः ।
ततः सर्वेषु तीर्थेषु स्नातं तेन महेश्वरि ॥ ४६ ॥

सरस्वत्यां तथा स्नात्वा उपोष्य च दिनत्रयम् ।
प्राणांस्तत्याज तत्रैव शिवसायुज्यमाप सः ॥ ४७ ॥

उसके बाद छठी रात्रि में उसके स्वप्न में कोई कार्पटिक के समान योगी यात्री आया और उसने उस पुण्य के कारणों का वर्णन किया ॥ ३६ ॥

अरे व्याध ! इस समय तेरे पाप भी विनष्ट हो गये और तू पवित्र हो गया है। क्या तू भूल गया है कि यह सब तेरे द्वारा ही तो किया गया था ॥ ३७ ॥

तुम पहले आखेट करने के लिए मध्यमेश्वर पीठ में गये थे और इस श्वान के साथ तुमने यात्रियों को देखा था ॥ ३८ ॥

सरस्वती नदी में स्नान करते हुये यात्रियों को तुमने देखा। तदनन्तर तुमने उस स्थल पर हँसकर शीघ्र सरस्वती के जल में…॥ ३९ ॥

विना भक्ति के भी और विना कामना के भी उस कुत्ते को गोता लगा दिया। अत: पशुयोनि में उत्पन्न उस श्वान के पाप निश्चित रूप से नष्ट हो गये ॥ ४० ॥

हे शंबुक ! व्याध ! प्रसंगवश मध्यमेश्वर के दर्शन करने से उस श्वान ने योगियों को भी अप्राप्य दिव्य गति को प्राप्त किया ॥ ४१ ॥

इस प्रकार हे व्याध ! उस श्वान की उत्तम गति प्राप्त करने का वर्णन मैंने आपसे किया। प्रसंगवश तुमने वहाँ मध्यमेश्वर के दर्शन किये ॥ ४२ ॥

जिससे तुम्हारे भी सब पाप आज नष्ट हो गये। हे व्याध ! तुम वहाँ ही मध्यमेश्वर पीठ में जाओ ॥ ४३ ॥

इस प्रकार कहते हुये उस वन में रात्रि व्यतीत हो गई। हे प्रिये ! शंबुक जब जागा तब शीघ्र ही उसे ज्ञात हुआ कि यह एक स्वप्न था ॥ ४४ ॥

उस शुभ चरित्र का स्मरण करके उसे परम आश्चर्य हुआ। समस्त कर्मों का त्याग करके वह व्याध मध्यमेश्वर स्थल में गया ॥ ४५ ॥

और वहां जाकर सर्वप्रथम उसने शिव का अर्चन किया। हे महेश्वरि ! उसके बाद उसने समस्त तीर्थों में स्नान किया ॥ ४६ ॥

सरस्वती नदी में स्नान करके और वहाँ पर तीन दिन का उपवास करके उस व्याध ने वहीं अपने प्राणों को त्याग दिया तथा शिव के सायुज्य को प्राप्त किया ॥ ४७ ॥

इति ते कथिता देवि व्युष्टिर्वै मध्यमेश्वरे।
स्नानस्य दर्शनस्यापि पूजनस्य मया तव ॥ ४८ ॥

य एतत्परमाख्यानं श्रृणोति श्रद्धयान्वितः।
पठेच्चापि सतां मध्ये शिवलोके महीयते ॥ ४९ ॥

स्नातं तैः सर्वतीर्थेषु दत्ता तैः सकला मही।
यैरत्र हि महापीठे स्नानं दानं जपः कृतः ॥ ५० ॥

माषमात्रमपि यत्र सुवर्णं दत्तमस्ति वै।
न स जन्मसहस्त्रेषु दारिद्र्येण प्रपीड्यते ॥ ५१ ॥

पिंडदानस्य माहात्म्यं पितॄणामत्र पार्वति।
श्रृणु पापहरं पुण्यं तथा वै जलदानतः ॥ ५२ ॥

शतवंश्याः परा पूर्वे शतवंश्या महेश्वरि।
मातृवंश्याः शतं चैव तथा श्वसुरवंशकाः ॥ ५३ ॥

तारिताः पितरस्तेन घोरात्संसारसागरात्।
यैरत्र पिंडदानाद्याः क्रियाः देवि कृताः प्रिये ॥ ५४ ॥

मध्यमेश्वरमाहात्म्यं सोपाख्यानं मया तव।
सर्वपापहरं पुण्यं कथितं शिवभक्तिदम् ॥ ५५ ॥

लोकानां प्रियकामार्थं पृष्टोऽहं च त्वया तु यत्।
प्रियाऽसि मम सुश्रोणि धर्मकामासि पार्वति ॥ ५६ ॥

मध्यमेश्वरमाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि।
भक्तितोऽभक्तितो वाऽपि शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मध्यमेश्वरमाहात्म्य
वर्णनं नाम अष्टचत्त्वारिंशोऽयायः।

इस प्रकार हे देवि ! मध्यमेश्वर में स्नान करने, दर्शन करने तथा पूजन करने के फल को मैंने तुमसे कहा है ॥ ४८ ॥

जो इस परम पवित्र कथा को श्रद्धा से सुनता है और सज्जनों के बीच में पढ़ता है, वह भी शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ॥ ४६ ॥

जिसने इस मध्यमेश्वर महापीठ में स्नान, दान और जप किया है, उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया है तथा समस्त भूमि दान दे दी है ॥ ५० ॥

जो इस मध्यमेश्वर पीठ में एक उड़द के बराबर भी सुवर्ण दान करता है, वह हजारों जन्म तक दारिद्र्य से प्रपीड़ित नहीं हो सकता है ॥ ५१ ॥

हे पार्वति ! इस मध्यमेश्वर क्षेत्र में पितरों के प्रति पिंडदान का माहात्म्य तथा जलदान का माहात्म्य भी सुनो, जो पापों का नाश करने वाला तथा पुण्यों को देने वाला है ॥ ५२ ॥

हे महेश्वरि ! अपने सौ वंश पहले के तथा सौ वंश बाद के और सौ वंश माता के तथा सौ वंश श्वसुर के वह तरा देता है ॥ ५३ ॥

हे देवि प्रिये ! जिसने यहां पिण्ड दान आदि क्रियायें कर ली हैं, वह घोर संसार रूपी सागर से उन पितरों को तरा देता है ॥ ५४ ॥

मेरे द्वारा कहा गया यह मध्यमेश्वर माहात्म्य नाम का उपाख्यान सब पापों को क्षय करने वाला, पुण्यों एवं शिव-भक्ति को देने वाला है ॥ ५५ ॥

क्योंकि तुमने लोकों की प्रिय कामनाओं के लिए मुझसे यह प्रश्न पूछा था । हे सुमुखि ! पार्वति ! तुम मेरी प्रेयसी हो तथा धर्म में रुचि रखने वाली हो ॥ ५६ ॥

जो कोई भी व्यक्ति भक्तिभाव से अथवा भक्ति से रहित होकर भी मध्यमेश्वर के माहात्म्य को पढ़ता है तथा सुनता है, वह शिवलोक को प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में
मध्यमेश्वर माहात्म्य वर्णन नाम का
अड़तालीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

ऊनपंचाशत्तमोऽध्यायः

तुङ्गेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

तुंगेश्वरं महाक्षेत्रं कथ्यमानं मया शृणु ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥

यानि तीर्थानि संत्यत्र शिवभक्तिप्रदानि वै ।
शृणु तान्यपि देवेशि समासेन हि पार्वति ॥ २ ॥

मांधातृक्षेत्रतो याम्ये योजनद्वयविस्तृतम् ।
द्वियोजनसमायातं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३ ॥

तुंगनाथं शुभक्षेत्रे पापघ्नं सर्वकामदम् ।
य द्दृष्ट्वा[1] सर्वपापेभ्यो विमुक्तो लभते शिवम् ॥ ४ ॥

भैरवं प्रथमं नत्वा सर्वकामार्थसिद्धये ।
संविशेन्मम देवेशि क्षेत्रे पुण्यजनान्विते ॥५ ॥

सम्पूज्य मम लिंगं वै तुंगनाथाख्यनामकम् ।
दुर्ल्लभं त्रिषु लोकेषु नास्ति तस्य महात्मनः ॥ ६ ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवाः सम्बद्धांजलयः सदा ।
संस्तुवन्ति महात्मानं देवदेवं महेश्वरम् ॥ ७ ॥

जलमात्रं प्रिये देवि मम लिंगे प्रयच्छति ।
यावन्त्यः कणिकास्तत्र जलस्य लिंगकोपरि ॥ ८ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ।
यो बिल्वपत्रमादाय पूजयेत्तेन वै शिवम् ॥ ९ ॥

---

१. तद्दृष्ट्वा ।

अध्याय ४६

तुङ्गेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

मेरे द्वारा अब तुंगेश्वर क्षेत्र का वर्णन किया जा रहा है, आप सुनो। इसके सुनने से समस्त पाप दूर हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १ ॥

शिव भक्ति को देने वाले जो-जो तीर्थ स्थान यहाँ विद्यमान हैं, हे देवेशि ! पार्वति ! उनको भी तुम संक्षेप में सुनो ॥ २ ॥

मांधाता क्षेत्र से दक्षिण में दो योजन लम्बा तथा दो योजन चौड़ा सब कामों को फलीभूत करने वाला ॥ ३ ॥

सब कामनाओं को देने वाला, पापों का विनाशक तुंगनाथ नाम का शुभ क्षेत्र है। उसके दर्शन करने से सब पापों से मुक्ति मिलकर शिव की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण कामनाओं के लिए सर्वप्रथम भैरव को नमस्कार करके हे देवेशि ! पुण्यात्माओं से आकीर्ण मेरे क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए ॥ ५ ॥

वहाँ तुंगनाथ नाम के मेरे लिंग का पूजन करके उस महातमा को तीनों लोकों में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती ॥ ६ ॥

जहाँ ब्रह्मा आदि हाथ जोड़कर हमेशा देवताओं में श्रेष्ठ महात्मा शिव की स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

हे देवि ! प्रिये ! जो मेरे लिंग में मात्र जल को भी प्रदान करता है, वह जितने जलकण उस लिंग के ऊपर पड़े हों ॥ ८ ॥

उतने हजार वर्ष तक शिवलोक के ऐश्वर्य को भोगता है। हे महेश्वरि ! जो विल्वपत्र लेकर उससे शिव का पूजन करता है ॥ ९ ॥

कल्पमात्रं वसेच्छैवे लोके मम महेश्वरि ।
अक्षता मम लिंगं वै धृता यावन्त एव हि ॥ १० ॥

तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके प्रतिष्ठति ।
पुष्पाणि चैव यावन्ति न्यस्तानि मम चोपरि ॥ ११ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गभाग् जायते नरः ।
धूपं दीपं च यो दद्यान्न वै पश्यति नारकान् ॥ १२ ॥

नैवेद्यं विविधं यो वै अर्पयेन्मम भक्तितः ।
कदय्र्यान्नं न वै भुंक्ते तथा जन्मसहस्रकम् ॥ १३ ॥

दक्षिणां मम यो दद्यात् सम्पूज्य भक्तितत्परः ।
न दारिद्यमवाप्नोति नरो जन्मसहस्रकम् ॥ १४ ॥

इति पूजाफलं प्रोक्तं प्रत्येकं तव भामिनि ।
येन पूजा कृता तुंगे विधिवद्भक्तितः शिवे ॥ १५ ॥

कल्पकोटि वसेच्छैवे लोके मम महेश्वरि ।
यः कश्चिन्मानवो भक्त्या प्राणांस्त्यजति तुंगके ॥ १६ ॥

यावद्दिनानि तत्क्षेत्रे कीकसानि भवन्ति हि ।
तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ १७ ॥

एतत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ।
यस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यादगम्यागमने रतः ॥ १८ ॥

कश्चिद्द्विजाधमः प्राप गतिं योगिसुदुर्ल्लभाम् ।
एतत्क्षेत्रस्य समतां न यान्ति कानिचिद् भुवि ॥ १९ ॥

पार्वत्युवाच—

कथं प्राप महादेव गतिं परमिकां द्विजः ।
कथं तेन कृतं पापमगम्यागमनं प्रभो ॥ २० ॥

कथमस्मिन्महाक्षेत्रे सम्पर्कस्तस्य चाऽभवत् ।
एतत्सर्वं समासेन कथयस्व महेश्वर ॥ २१ ॥

वह कल्प पर्यन्त मेरे शिव लोक में निवास करता है। वह जितने अक्षत मेरे लिंग पर चढ़ाता है ॥ १० ॥

उतने ही हजार वर्ष तक मेरे लोक में प्रतिष्ठित रहता है। मनुष्य जितने पुष्प मेरे ऊपर चढ़ाता है ॥ ११ ॥

उतने ही हजार वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है और जो धूप तथा दीप को मुझे देता है, वह नरकों के दर्शन नहीं करता ॥ १२ ॥

भक्तिभाव से जी मुझे अनेक नैवेद्यों को अर्पित करता है, वह हजार जन्म तक निन्दित अन्न का भोजन नहीं करता ॥ १३ ॥

भक्ति में तत्पर होकर जो पूरी पूजा करके दक्षिणा प्रदान करता है, उस नर को हजार जन्म तक दारिद्र्य प्राप्त नहीं होता ॥ १४ ॥

हे सुन्दरि प्रिये ! इस प्रकार प्रत्येक पूजा का फल मैंने आपसे वर्णित किया। हे महेश्वरि शिवे ! तुंगनाथ में भक्तियुक्त होकर जो विधिवत् पूजन करता है ॥ १५ ॥

वह करोड़ों कल्प तक मेरे शिवलोक में बसता है। जो कोई मानव भक्ति से युक्त होकर तुंग क्षेत्र में प्राणों का त्याग करता है ॥ १६ ॥

उस क्षेत्र में जितने दिनों तक उसकी अस्थियाँ विद्यमान रहती हैं, उतने सहस्र युगों तक वह शिवलोक में महिमा को प्राप्त है ॥ १७ ॥

इस क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने की क्षमता किसकी हो सकती है। इस क्षेत्र के माहात्म्य से अगम्या स्त्री से गमन करने में निरत···॥ १८ ॥

किसी अधम ब्राह्मण ने इस क्षेत्र में योगियों को भी दुर्लभ गति को प्राप्त किया था। पुण्य में इस क्षेत्र की समता पृथिवी में अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती ॥ १९ ॥

पार्वती बोली—

हे महादेव ! अधम ब्राह्मण ने किस प्रकार परम गति को प्राप्त किया ? हे प्रभो ! उसने अगम्यागमन पाप किस प्रकार किया ? ॥ २० ॥

और इस पुण्य क्षेत्र में उसका सम्पर्क कैसे हो गया ? इन सब बातों को हे भगवन् ! संक्षेप से कहो ॥ २१ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि पुरा वृत्तं समासात्कथयामि ते।
धर्मदत्त इति ख्यातो ब्राह्मणो ब्रह्मपारगः।। २२ ।।

तस्य पुत्रो बभूवाथ कर्म्मशर्मेति नामतः।
पित्राऽध्ययनयुक्तोऽपि न पपाठ सरस्वतीम्।। २३ ।।

बाल्ये वयसि दुर्वृत्तो बभूवैव स दुर्म्मतिः।
द्यूतकर्मरतो नित्यमभक्ष्यभक्षणे रतः।। २४ ।।

विटानां मध्यगो नित्यं बभूव स दुरासदः।
कालेन वयमापन्नो यौवनं च महेश्वरि।। २५ ।।

सर्वकर्मविहीनोऽसौ द्विजो वै ज्ञानदुर्बलः।
न स वेत्ति सुकर्माणि कुकर्माणि महेश्वरि।। २६ ।।

एकदा तस्य भगिनी रूपेणाप्रतिमा भुवि।
बिम्बाधरी सुकेशी च तनुमध्या मनोहरा।। २७ ।।

पूर्णचन्द्रमुखी बाला नेत्राभ्यां जितखंजना।
साऽपि दुर्वृत्तशीलाभूत् कुलटासंगगामिनी।। २८ ।।

कालेन निधनं प्राप्तो धर्मदत्तोऽपि दुःखितः।
निजेच्छया कर्मशर्मा सर्वं पित्रार्जितं वसु।। २९ ।।

दुष्टव्ययेन सर्वं हि व्ययं नीतं दुरात्मना।
शस्त्रवृत्तिर्बभूवाथ किंकराणां च किंकरः।। ३० ।।

गतो देशान्तरे देवि परित्यक्तश्च बान्धवैः।
साऽपि वेश्या बभूवाथ वेश्यानां संगमे रता।। ३१ ।।

साऽपि वै दैवयोगेन गता केन सह क्वचित्।
देशान्तरे महादेवि कुकर्मनिरताऽसती।। ३२ ।।

ईश्वर बोले—

हे देवि ! मैं एक पुराना कथानक संक्षेप से आपसे कहता हूँ, सुनो। एक ब्रह्मविद्या में पारंगत धर्मदत्त नाम का विख्यात ब्राह्मण था ।। २२ ।।

उसका कर्मशर्म्या नाम का एक पुत्र हुआ। पिता ने उसको पढ़ाने के लिए अनेक प्रयत्न किये, किन्तु उसने विद्या न पढ़ी ।। २३ ।।

वाल्यावस्था में वह दुर्मति बड़ा दुराचारी हुआ। नित्य वह जुआ खेलने तथा अभक्ष्य पदार्थों को भक्षण करने में निरत रहता था ।। २४ ।।

हे महेश्वरि ! वह दुष्ट नित्य धूर्तों के मध्य रहता था। समय पाकर वह दुराचारी यौवन-अवस्था को प्राप्त हुआ ।। २५ ।।

ज्ञानहीन वह ब्राह्मण समस्त कर्मों से हीन था। हे महेश्वरि ! उसे शुभकर्म तथा दुष्कर्मों का कोई ज्ञान नहीं था ।। २६ ।।

एक समय उसकी वहिन, जिसका रूप पृथिवी में अनुपम था, औष्ठ विम्वफल के समान लाल थे, बाल सुन्दर, कमर पतली थी और उसकी आकृति मनोहर थी ।। २७ ।।

मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान था, सुन्दर युवती थी, नेत्रों की चपलता से खंजन को भी जीतने वाली थी, वह भी व्यभिचारिणियों के साथ में रहने से दुराचारिणी हो गई ।। २८ ।।

बड़ा दुःखित हो किसी समय धर्मदत्त ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हो गया। तव पिता के द्वारा अर्जित सम्पूर्ण धन को स्वेच्छाचारिता से उस कर्मशर्मा ने ।। २९ ।।

दुराचरण में खर्च कर दिया। हे देवि ! तव वह शस्त्र के द्वारा अपनी आजीविका चलाने वाला हुआ। वह सेवकों का भी सेवक हो गया ।। ३० ।।

बन्धुओं से त्याज्य होने पर वह विदेश चला गया। वह उसकी वहिन भी वेश्याओं के साथ में रहने से वेश्या हो गई ।। ३१ ।।

दैवयोग से वह भी किसी के साथ चली गई। परदेश में जाकर हे, महादेवि ! वह व्यभिचारिणी कुकर्म करने में निरत रहने लगी ।। ३२ ।।

धर्मोऽधर्मविवेकं सा न जानाति महेश्वरि ।
भगभाग्यगतातीव पुंश्चलीनां च मुख्यका ।। ३३ ।।

कदाचिद्दैवयोगेन बहुकालेन सुन्दरि ।
तस्मिन्नेव पुरे प्राप्ता यत्रासौ कर्मशर्म्मकः ।। ३४ ।।

तया सोऽपि महादेवि रेमे वेश्यामतिस्तदा ।
एवं तौ बहुकालं वै रमन्तौ मोहसंवृतौ ।। ३५ ।।

दस्युधर्ममनुप्राप्तौ नष्टसंज्ञौ यथा पशू ।
कालेन निधनं प्राप्तः कर्म्मशर्मा महेश्वरि ।। ३६ ।।

अरण्ये निर्जने देशे व्याघ्रेण निहतो निशि ।।
एतस्मिन्नन्तरे देवि यमदूताः समागताः ।। ३७ ।।

पाशखड्गधरास्तत्र कुंताग्रन्यस्तदेहिनः ।
तस्मिन्नेव क्षणे देवि कश्चिदागत्य वायसः ।। ३८ ।।

कुणपं तु समानेतुं क्षुधितो हृष्टमानसः ।
किंचिदस्थि समानीय चंच्वग्रे गिरिकन्यके ।। ३९ ।।

ययौ कैलासनिलये दैवयोगेन तुंगके ।
अस्थिस्थं मांसमादाय भक्षयित्वा तु वायसः ।। ४० ।।

तत्याज तत्प्रदेशे हि तुंगनाथसमीपके ।
अथ तत्र कीकसे तु पतिते मम क्षेत्रके ।। ४१ ।।

तस्य तत्पातकं सर्वं क्षयं यातं तदैव हि ।
निष्पापं तं समानेतुं मम दूता गतास्ततः ।। ४२ ।।

नन्दीभृंग्यादयो देवि ये मम प्रीतिकारकाः ।
नीयमानं यमभटैः स्पृश्यमानं[1] तदैव च ।। ४३ ।।

---

१. स्पर्श्यं ।

हे महेश्वरि ! वह धर्म और अधर्म के विवेक को नहीं जानती थी। हे सुन्दरि पार्वति ! सामर्थ्यशाली भाग्य की गति को प्राप्त वह व्यभिचारिणियों में प्रमुख हो गई ॥ ३३ ॥

बहुत समय बीत जाने पर किसी समय वह दैवयोग से उसी नगर में पहुँच गई, जहाँ वह कर्मशर्मा था ॥ ३४ ॥

हे महादेवि ! उसको वेश्या समझकर कर्मशर्मा ने उसके साथ भी रमण किया। इस प्रकार अज्ञान में आवृत हो वे दोनों बहुत समय तक रमण करते रहे ॥ ३५ ॥

उसके बाद डाकुओं के धर्म में लग कर वे ज्ञानहीन पशुओं के समान हो गये। हे महेश्वरि ! किसी समय कर्मशर्मा की मृत्यु हो गई ॥ ३६ ॥

निर्जन जंगल में व्याघ्र ने रात्रि में उसे मार डाला। इसी समय हे देवि ! वहाँ पर यम के दूत आ पहुँचे ॥ ३७ ॥

जो जाल और तलवार धारण किये हुये थे तथा जिन्होंने भाले के अग्र भाग में प्राणियों को लटका रखा था। उसी समय हे देवि ! प्रसन्न मन वाला एक कौवा इसके मृतक मांस को लेने के लिए वहाँ पर पहुँचा ॥ ३८ ॥

भूख से पीड़ित कौआ प्रसन्न हुआ। शव को ले जाने के लिये, हे पर्वत पुत्रि ! वह काक अपनी चोंच में उसकी एक छोटी सी हड्डी उठाकर ॥ ३९ ॥

दैवयोग से कैलास धाम में तुंगक्षेत्र में चला गया। उस काक ने उस हड्डी पर संलग्न मांस को खाकर ॥ ४० ॥

हड्डी को तुंगनाथ के समीप उसी प्रदेश में त्याग दिया। वहाँ मेरे क्षेत्र में ॥ ४१ ॥

उसकी अस्थि पड़ने से उसके समस्त पाप उसी समय नष्ट हो गये। हे देवि ! उस निष्पाप को लेने के लिए मेरे दूत गये। तदनन्तर ॥ ४२ ॥

मेरे अतिशय प्रिय नन्दी-भृङ्गी आदि गण वहाँ गये और यम के दूतों के द्वारा पकड़कर ले जाये जाते हुये तथा स्पर्श किये जाते हुये ॥ ४३ ॥

मोचयित्वा तु तं शीघ्रं निवार्य्य यमकिंकरान्।
कैलासनिलयं प्राप्ताः सहैतेन महात्मना ॥ ४४ ॥

बहुवर्षसहस्राणि स्थित्वा वै मम सन्निधौ।
कालेन तु पुनर्जातो धर्मवान्पृथिवीपतिः ॥ ४५ ॥

इति ते कथितं देवि तुंगक्षेत्रस्य वैभवम्।
अस्थ्नो वै पातमात्रेण यत्र प्राप्तः परां गतिम् ॥ ४६ ॥

तुङ्गक्षेत्रस्य द्रष्टार एकवारेऽपि ये नराः।
मृताः क्वचित्प्रदेशेऽपि प्राप्नुयुः परमां गतिम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे तुङ्गेश्वरमाहात्म्यं
नामोन पंचाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशोऽध्यायः

आकाशगङ्गावर्णनसहितं तुङ्गक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

आकाशगंगामाहात्म्यं कथयामि समासतः।
तत्रत्यानां च तीर्थानां शृणु देवि यथातथम् ॥ १ ॥

यः कश्चिन्मानवो देवि पितॄन्सन्तर्पयेत् प्रिये।
तीरे आकाशगंगायाः पितरस्तस्य सुन्दरि ॥ २ ॥

दशपूर्वा दश परे मातृवंश्यास्तथैव च।
शिवलोके महीयंते यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३ ॥

पिंडदानं च यो मर्त्यस्तीर्थे आकाशगंगके।
पितरः कृतकृत्याः स्युस्तेन पुत्रेण सुन्दरि ॥ ४ ॥

त्रुटिमात्रं च यो दद्यात्कांचनं वै द्विजातये।
दशभारसुवर्णानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ५ ॥

उसको छुड़ाकर शीघ्र ही इन्होंने यमदूतों को रोक दिया। उस महात्मा के साथ वे मेरे गण कैलास धाम में पहुँचे ॥ ४४ ॥

उस महात्मा ने बहुत सहस्र वर्षों तक मेरे समीप निवास किया। तब किसी समय वह पुनः जन्म धारण कर धर्मातमा राजा हुआ ॥ ४५ ॥

इस प्रकार हे देवि ! तुंगक्षेत्र का माहात्म्य मैंने तुम से वर्णित किया। केवल हड्डी के तुंगक्षेत्र में पड़ने से वह पापी परम गति को प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य एक बार भी तुंगक्षेत्र का दर्शन करते हैं, उनकी मृत्यु चाहे किसी स्थान पर हो, वे परम गति को प्राप्त करते हैं ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में तुंगेश्वर-माहात्म्य
नाम का उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ५०

आकाशगङ्गा के वर्णन सहित तुङ्गक्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे देवि ! मैं अब आकाशगंगा का माहात्म्य संक्षेप में कहता हूँ और वहाँ जो तीर्थ विद्यमान हैं, उनका यथावत् वर्णन करता हूँ। सुनो ॥ १ ॥

हे सुन्दरि, देवि ! प्रिये ! जो कोई मनुष्य आकाशगंगा के तट पर पितरों का तर्पण करता है। उसके पितर···॥ २ ॥

दश पीढ़ी पहले के तथा दश पीढ़ी बाद के और मातृ-वंशज पितर जब तक प्रलय काल न आये, शिव लोक में ऐश्वर्यों का भोग करते हैं ॥ ३ ॥

हे सुन्दरि ! आकाश गंगा तीर्थ में जो मनुष्य पिण्ड दान करता है, उस पुत्र के पितर कृतकृत्य हो जाते हैं ॥ ४ ॥

और जो एक कण सोना भी ब्राह्मण के लिए इस तीर्थ में देता है, वह मानव दस भार सोने के दान के फल को प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

वितस्तिमात्रां पृथिवीं यो दद्यादत्र तीर्थके।
दशग्रामसहस्राणां दानस्य प्राप्नुयात्फलम् ।। ६ ।।

धन्योऽसौ त्रिषु लोकेषु यो दद्यात्कपिलां प्रिये।
यावत्तदंगरोमाणि तावत्कल्पं दिवं वसेत् ।। ७ ।।

यस्या जलकणेनापि देहलग्नेन सुन्दरि।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो मज्जनात्किमु पार्वति ।। ८ ।।

तुङ्गोच्चशिखरे यस्तु त्रिरुपोष्य च तिष्ठति।
प्राणांस्त्यजति देवेशि शिवो भवति निश्चितम् ।। ९ ।।

शिवस्य पश्चिमे पार्श्वे स्फटिकं लिंगमुत्तमम्।
लिंगस्य दक्षिणे पार्श्वे तीर्थं गारुडनामकम् ।। १० ।।

यत्र स्नात्वा नरो भक्त्या वैकुण्ठनिलये वसेत्।
ततः क्रोशचतुर्थांशे पश्चिमस्यां दिशि प्रिये ।। ११ ।।

नाम्ना मानसरो नाम कमलैरुपशोभितम्।
लभते शिवगेहं वै तत्रोपोष्य दिनत्रयम् ।। १२ ।।

तस्य वै उत्तरे भागे शिवोऽहं मर्कटेश्वरः।
यस्य वै दर्शनादेव नरो याति शिवालयम् ।। १३ ।।

सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैः शिवलोकमवाप्नुयात्।
ततो वै दक्षिणे भागे मृकंडाश्रमके वरे ।। १४ ।।

देवी महेश्वरी नाम्ना भक्तानां प्रीतिवर्द्धिनी।
तत्र स्थित्वा त्रिरात्रं वै मौनी नियतमानसः ।। १५ ।।

चतुर्थे दिवसे रात्रौ कौतुकं तत्र पश्यति।
यदीच्छति वरारोहे प्राप्नोत्येव न संशयः ।। १६ ।।

इति वै तीर्थवर्याणि कथितानि तवाऽनघे।
संक्षेपेण मया देवि तुंगक्षेत्रे शुभप्रदे ।। १७ ।।

इस तीर्थ में बालिश्त भर भूमि भी जो दान देता है, वह दस हजार गांवों के दान करने का फल प्राप्त करता है ।। ६ ।।

हे प्रिये ! वह तीनों लोकों में धन्य है, जो इस क्षेत्र में कपिला गाय का दान करता है । गाय के अंग में जितनी रोमों की संख्या है, वह उतने कल्प पर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास करता है ।। ७ ।।

हे पार्वति ! इसके जल कण के देह पर लग जाने मात्र से हे सुन्दरि ! मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, स्नान करने से तो कहना ही क्या है ? (उसकी सभी कामनायें पूर्ण होती हैं) ।। ८ ।।

हे देवेशि ! जो तुंगनाथ के उच्च शिखर पर तीन रात्रि तक उपवास करके बैठता है और प्राणों का त्याग करता है, वह सुनिश्चित ही शिव हो जाता है ।। ९ ।।

शिवलिंग के पश्चिम भाग में एक स्फटिक का उत्तम लिंग विद्यमान है । इस लिंग के दक्षिण भाग में गारुड़ नाम का तीर्थ है ।। १० ।।

यहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य बैकुण्ठ लोक में निवास करता है । हे प्रिये ! उस तीर्थ से चौथाई कोस दूर पश्चिम दिशा में ।। ११ ।।

कमलों से सुसज्जित मानसर नाम का तालाब है । वहां तीन दिन उपवास कर रहने से शिवलोक की प्राप्ति होती है ।। १२ ।।

उसके उत्तर भाग में मर्कटेश्वर नाम का मैं शिव हूँ, जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य शिवलोक में जाता है ।। १३ ।।

और जो इस लिंग का गन्ध-पुष्प आदि से पूजन करता है, वह शिव लोक को प्राप्त करता है । उसके दक्षिण भाग में मृकण्ड ऋषि का उत्तम आश्रम है ।। १४ ।।

वहाँ महेश्वरी नाम की देवी भक्तों की प्रीति बढ़ाने वाली है । वहाँ मन को नियन्त्रित करके, मौन धारण करके तीन रात्रि तक जो निवास करता है ।। १५ ।।

वह चौथे दिन रात्रि में वहाँ एक कौतुक को देखता है । हे सुन्दर जघनों वाली पार्वति ! यहाँ जो जिसकी इच्छा होती है, उसे प्राप्त करने में कोई सन्देह नहीं है ।। १६ ।।

हे अनघे ! इस प्रकार तीर्थों में उत्तम इस तीर्थ को मैंने तुमसे कहा है । मेरे द्वारा संक्षेप से कहे गये शुभ देने वाले तुङ्गक्षेत्र में ।। १७ ।।

तुङ्गनाथस्य माहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि ।
स सर्वेषु च तीर्थेषु गतो भवति पार्वति ।। १८ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे तुङ्गक्षेत्रमाहात्म्यं नाम
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५० ।।

एकपञ्चाशोऽध्यायः

रुद्रालयमाहात्म्यसङ्कीर्तनम्

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि तृतीयं वै ममालयम् ।
रुद्रालयमिति ख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।। १ ।।

यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशय ।
रुद्रालयं महापुण्यं नानातीर्थविभूषितम् ।। २ ।।

न त्वजामि कदाचिद्वै क्षेत्रं क्षेत्रज्ञको यथा ।
इदं गुह्यतमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।। ३ ।।

दृष्ट्वा यद्वै सकृदपि जन्मसाफल्यतां ब्रजेत् ।
धन्यास्ते त्रिषु लोकेषु मानुषीषु च योनिषु ।। ४ ।।

धर्म्मिष्ठास्तीर्थभक्ताश्च तेषु ब्राह्मणसत्तमाः ।
तेषु धन्या महेशानि वेदज्ञाः कर्मनिष्ठकाः ।। ५ ।।

तेष्वपि तव देवेशि गुरोः पीठे वसन्ति ये ।
तत्रापि ये वासुदेवशिवभेदपराङ्मुखाः ।। ६ ।।

गतिस्तेषां न वै देवि तथा कल्पशतैरपि ।
ये मयि श्रीवासुदेवे भेदबुद्धिधराः प्रिये ।। ७ ।।

हे पार्वति ! तुंगनाथ का माहात्म्य जो पढ़ता है अथवा सुनता है, उसे भी समस्त तीर्थों की यात्रा करने का फल प्राप्त होता है ।। १८ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में तुंगक्षेत्र-माहात्म्य नाम का पचासवां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ५१

रुद्रालय के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे देवि ! मेरा जो तीसरा स्थान है, मैं उसका वर्णन करता हूँ । तुम सुनो । रुद्रालय नाम का विख्यात एक तीर्थों में परम उत्तम तीर्थ है ।। १ ।।

जिसका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापों से दूर हो जाता है । महान् पवित्र रुद्रालय अनेक तीर्थों से विभूषित है और महापुण्यशाली हैं ।। २ ।।

जिस प्रकार अपने क्षेत्र को क्षेत्रज्ञ (ईश्वर) नहीं त्यागता, उसी प्रकार मैं भी कभी इस क्षेत्र को नहीं त्यागता हूँ । यह इतना गुप्त स्थान है कि देवताओं को पाना भी दुर्लभ है ।। ३ ।।

जो इस स्थान को एकवार भी देख लेता है उसका जन्म सफल हो जाता है । तीनों लोकों में वे धन्य है और मनुष्य योनि में होते हुये ।। ४ ।।

धर्मिष्ठ हैं और तीर्थों के प्रति भक्ति करने वाले हैं । उनमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मण धन्य हैं । हे महेशानि ! उनमें भी वेद को जानने वाले और कर्मनिष्ठ ब्राह्मण धन्य हैं ।। ५ ।।

हे देवेशि ! उनमें भी वे धन्य हैं, जो तुम्हारे पिता हिमालय के स्थान में निवास करते हैं । वहाँ भी वे धन्य हैं, जो भगवान् विष्णु और शिव में भेद नहीं मानते ।। ६ ।।

हे प्रिये देवि ! जो भगवान् विष्णु और मुझे भेदबुद्धि से देखते हैं, उन्हें सौ कल्प तक भी सद्गति नहीं मिलती ।। ७ ।।

तस्मान्मम च विष्णोश्च भेदबुद्धिं न कारयेत् ।
यत्राहं संस्थितो देवि तत्र विष्णुः सनातनः ।। ८ ।।

यत्र विष्णुस्तत्र शिवो वर्त्तते नित्यमेव हि ।
विष्णोर्भक्ताश्च ये देवि मम भक्ता न संशयः ।। ९ ।।

मम भक्तास्तु ये सन्ति ते विष्णोर्नैव संशयः ।
विष्णुभक्तेन देवेशि वेद्योऽहं विष्णुरेव हि ।। १० ।।

मम भक्तेन विष्णुर्वै शिवो वेद्यो न संशयः ।
द्वेषबुद्धिर्न कर्तव्या कुर्व्वंस्तु शिवहा भवेत् ।। ११ ।।

स वै धन्योऽभेदबुद्धिर्नर एव न संशयः ।
तत्रापि ये रुद्रगृहे गच्छन्ति भक्तितत्पराः ।। १२ ।।

जरामरणजन्माद्यैर्बाध्यंते नैव मानवाः ।
सर्वतीर्थमयं स्थानं यत्राहं संस्थितः पुमान् ।। १३ ।।

यस्य तीर्थस्य देवेशि दर्शनादेव पातकम् ।
शतजन्मार्जितं यद्वै सत्यमेव न संशयः ।। १४ ।।

तत्र मां विधिवत्पूज्य गन्धपुष्पादिकैः पुमान् ।
इह भोगान्वरान्प्राप्य शिवलोके महीयते ।। १५ ।।

उत्पत्तिं शृणु देवेशि क्षेत्रस्याऽस्य शुभावहाम् ।
यदारभ्य ममेदं वै प्रियं जातं महेश्वरि ।। १६ ।।

पुरा देवाः महेशानि विजिताः पृथिवीतले ।
अंधकेन हृतस्थाना विचरन्तिस्म दुःखिताः ।। १७ ।।

मामेव शरणं प्राप्ता ह्यन्धकस्य भयार्दिताः ।
गुरोस्तव महापीठे अस्मिन् रुद्रालये प्रिये ।। १८ ।।

मामेव परमं देवं स्मरन्तो हि दिवानिशम् ।
तपश्चक्रुर्महेशानि त्यक्ताहारविहारकाः ।। १९ ।।

हे देवि ! मुझमें तथा विष्णु में बुद्धि का भेद नहीं करना चाहिए। जहाँ मैं स्थित रहता हूँ, वहाँ ही सनातन विष्णु भीं विद्यमान रहते हैं ॥ ८ ॥

और जहाँ विष्णु भगवान् स्थित रहते हैं, वहाँ ही शिव भी विद्यमान रहते हैं। हे देवि ! विष्णु भगवान् के भक्त मेरे भक्त हैं ॥ ९ ॥

और मेरे भक्त विष्णु के भक्त हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे देवेशि ! विष्णु के भक्त को जानना चाहिये कि मैं विष्णु ही हूँ ॥ १० ॥

और मेरे भक्त विष्णु को शिव मानते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसमें द्वेषबुद्धि करने वाला अपने कल्याणों का नाश कर देता है ॥ ११ ॥

वही पुरुष धन्य है जो शिव और विष्णु को एक ही देखता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनमें भी जो भक्ति में तत्पर होकर रुद्रालय में जाते हैं ॥ १२ ॥

वे मानव वृद्धावस्था, जन्म, मरण आदि दोषों से पीड़ित नहीं होते। जहाँ मैं पुरुष स्थित रहता हूँ, वही स्थान सर्वतीर्थमय समझना चाहिए ॥ १३ ॥

इस तीर्थ के दर्शन से सौ जन्मों से अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं। यह सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥

जो पुरुष वहाँ मेरी विधिपूर्वक गन्ध-पुष्प आदि से पूजन करता है, वह इस लोक में अनेक श्रेष्ठ भोगों को प्राप्त कर, अन्त में शिवलोक में महिमा को प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

हे पार्वति ! इस क्षेत्र की शुभ देने वाली उत्पत्ति को तुम सुनो ! हे देवेशि ! जब से यह क्षेत्र मुझे प्रिय हुआ है ॥ १६ ॥

हे महेशानि ! पहले एक समय की बात है। अन्धक नाम के दैत्य ने भूमण्डल में देवताओं को जीत लिया था, जिससे देवता स्थानहीन होकर दुःखित होकर भटकने लगे ॥ १७ ॥

हे प्रिये ! अन्धक दैत्य से भयभीत होकर वे देवता मेरी शरण में तुम्हारे पिता हिमालय के ऊपर इस रुद्रालय महापीठ में आये ॥ १८ ॥

हे महेशानि ! वहाँ दिन रात मेरा स्मरण करते हुये उन देवताओं ने आहार-विहार को छोड़कर तप किया ॥ १९ ॥

तुष्टुवुः प्रणताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।
मत्परा मद्भावरता मामेव शरणं गताः ॥ २० ॥

देवा ऊचुः —
नमस्तस्मै महेशाय महते ज्ञानचक्षुषे ।
निराधाराय विश्वाय प्रभवायाव्ययात्मने ॥ २१ ॥

चन्द्रसूर्य्याग्निनेत्राय पंचशीर्षाय दंडिने ।
गंगाधराय देवाय नमस्तेऽस्तु त्रिमूर्त्तये ॥ २२ ॥

नमोऽनन्तस्वरूपाय शिवेशाय महात्मने ।
कैलासगृहवासाय शितिकंठाय ते नमः ॥ २३ ॥

त्रिपुरध्वंसकर्त्रे ते वृत्रहंत्रे चिदात्मने ।
नमो निगमबोधाय नमो वेदान्तवेदिने ॥ २४ ॥

षट्शास्त्रपरिवेत्रे ते निर्मोहाय महीभृते ।
नेदिष्ठाय दविष्ठाय क्षोधिष्ठाय नमो नमः ॥ २५ ॥

हिरण्यवाहवे तुभ्यं दिशाञ्च पतये नमः ।
नमः कृत्स्नाय सत्याय सत्यज्ञानामृताय ते ॥ २६ ॥

गणेशाय महेशाय नीलकंठाय शम्भवे ।
व्युप्तकेशाय धन्याय धन्विने गदिने नमः ॥ २७ ॥

करिचर्मनिवासाय प्रमथाधिपतये नमः ।
नमः कूप्याय वट्याय फेनाय फणिधारिणे ॥ २८ ॥

उग्राय उग्ररूपाय यज्ञानां पतये नमः ।
यज्ञस्य ध्वंसकर्त्रे ते दक्षयज्ञहराय च ॥ २९ ॥

नमः पार्य्याय वार्य्याय प्रियाय प्रियहेतवे ।
कपर्द्दवरशोभाय व्यालयज्ञोपवीतिने ॥ ३० ॥

सभी ब्रह्मा आदि देवताओं ने प्रणत होकर मेरी स्तुति की। मुझ को ही परम मानकर, मेरी भावना में निरत होकर वे मेरी ही शरण में आये ॥ २० ॥

देवताओं ने कहा—

हे शिव ! आपकी आंखें ज्ञानस्वरूप हैं, अतः आपको सबसे महान् माना गया है। आप आधारहीन हैं, आप विश्वरूप हैं, आप उत्पत्ति करने वाले हैं और अव्यय हैं। अतः आपके लिए नमस्कार है ॥ २१ ॥

चन्द्र, सूर्य और अग्नि स्वरूप आपके तीन नेत्र हैं, आपके पांच सिर हैं, आप दण्ड को धारण किये हुये हैं, आप गंगा को धारण करने वाले हैं, ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव त्रिमूर्ति स्वरूप आप ही हैं अतः आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥

आपके अनन्त रूप हैं, आप पार्वती के पति हैं, महान् आत्मा आप कैलास में निवास करने वाले हैं, नीलकंठ भगवान् शंकर आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

त्रिपुरासुर का नाश करने वाले, वृत्रासुर को मारने वाले, चैतन्य स्वरूप आप वेदों के जानने वाले हैं। अतः वेदान्त ज्ञाताओं से जानने योग्य आपको नमस्कार है। २४ ॥

षट् शास्त्रों (दर्शनों) को जानने वाले, मोहरहित, पृथिवी का पालन करने वाले, आप अत्यन्त निकट एवं बहुत दूर रहने वाले हैं अतः अति सूक्ष्म आपको बार-बार नमस्कार है ॥ २५ ॥

आप हिरण्यबाहु हैं और दिशाओं के पति हैं, आप सम्पूर्ण सत्यस्वरूप हैं और सत्य ज्ञान रूपी अमृत भी हैं। अतः आपके लिए नमस्कार है ॥ २६ ॥

आप गणेश, महेश, नीलकण्ठ और समस्त लोकों के उद्भव स्थान हैं, जटाधारी आप धन्य हैं, धनुष को धारण करने वाले, गदाधारी आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥

हस्ति के चर्म में निवास करने वाले आप भूतों के अधिपति हैं। आप जल तथा फेन रूप में हैं, आप नागों को धारण करने वाले हैं, अतः आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥

आपका स्वभाव उग्र है, आप उग्र रूप हैं, यज्ञों के आप पति हैं, यज्ञ विनाशक तथा दक्षयज्ञ को हरने वाले आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥

सबसे परे, सर्वश्रेष्ठ, सबको प्रिय लगने वाले तथा प्रिय करने के कारण भी आप ही हैं। कौड़ियों की श्रेष्ठ माला से आप शोभित हैं, नाग रूपी यज्ञोपवीत को धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥ ६० ॥

देवानां चाधिदेवाय शिवाय विकरालिने।
नृमुण्डमालाशोभाय श्मशानगृहवासिने ॥ ३१ ॥

पार्वतीपतये तुभ्यं नमस्ते शतशो नमः।
अनादिने अनन्ताय निर्मध्याय नमो नमः ॥ ३२ ॥

इति स्तोत्रं मामकं वै ख्यातं पापप्रणाशनम्।
प्रातः प्रातः पठेद्यस्तु शिव एव न संशयः ॥ ३३ ॥

स्तुतोऽहं देवि देवैस्तु प्रत्यक्षमब्रुवं वचः।
वरं वृणीध्वं त्रिदशाः सन्तुष्टो वः सुरोत्तमाः ॥ ३४ ॥

वचः श्रुत्वा मामकं ते प्रहृष्टमनसः शिवे।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे कांक्षंतो वरमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

देवा ऊचुः —

धन्याः स्मो वै वयं सर्वे महेश तव दर्शनात्।
अन्धकेन वयं सर्वे हृतराज्याः कृता विभो ॥ ३६ ॥

इन्द्रः स्वयं स वै दैत्यो यम आदित्य एव च।
एवं सर्वेषु स्थानेषु स एवास्ते महासुरः ॥ ३७ ॥

विचरामो वयं पृथ्व्यां मर्त्या इव सुदुर्बलाः।
त्वामेव शरणं प्राप्ता दुःखहन्ता त्वमेव हि ॥ ३८ ॥

वधे यत्नः प्रकर्तव्यो ह्यन्धकस्य दुरात्मनः।
त्वत्प्रसादाद्वयं देव विचरामो यथासुखम् ॥ ३९ ॥

इदं स्थानं त्वया नैव त्याज्यं देव युगे युगे।
त्वया समग्रभावेन स्थातव्यं पार्वतीपते ॥ ४० ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा देवादीनामहं प्रिये।
सन्तुष्टश्चाऽब्रुवं देवि देवान्सर्वान्महौजसः ॥ ४१ ॥

आप देवताओं के अधिदेव हैं, कल्याणमूर्ति तथा कालमूर्ति भी आप ही हैं। नरों की मुण्डमाला आपके गले में सुशोभित है, श्मशान रूप घर के निवासी आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

पार्वती के पति आप शिव के लिए सैकड़ों बार नमस्कार है । आपका कोई आदि नहीं है, मध्य नहीं है तथा अन्त नहीं है, अतः अनन्त स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार मेरे इस स्तोत्र का पाठ पापनाशक है। प्रतिदिन प्रातः उठकर जो इस स्तोत्र को पढ़ता है, वह शिव ही हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥

हे देवि ! इस प्रकार देवताओं ने जब मेरी स्तुति की, तब मैंने उनके सामने, प्रत्यक्ष होकर कहा-—मैं तुम देवताओं से सन्तुष्ट हूँ, अतः अपने वांछित वर की याचना करो ॥ ३४ ॥

हे देवि ! मेरे वचन को सुनकर वे सब देवता प्रसन्न मन होकर हाथ जोड़कर अपने उत्तम वर की प्रार्थना करने लगे ॥ ३५ ॥

देवताओं ने कहा—

हे महेश्वर ! आपके दर्शनों से हम सब धन्य हो गये हैं। हे विभो ! अन्धक दैत्य के द्वारा हम राज्यहीन कर दिये गये हैं ॥ ३६ ॥

वह अन्धक दैत्य स्वयं इन्द्र बन गया है, यम तथा सूर्य भी अपने को ही मानता है। अधिक क्या कहें। सभी स्थानों में वह महान् असुर विद्यमान है ॥ ३७ ॥

अति दुर्लभ मनुष्यों के समान हम पृथिवी में विचरण कर रहे हैं। आप दुःखों के नाशक हैं, अतः हम आपकी शरण में आये हैं ॥ ३८ ॥

है देव ! आपको उस दुरात्मा अन्धक दैत्य के वध का उपाय करना चाहिये । आपके प्रसाद से हम सुखी होकर भ्रमण कर सकेंगे ॥ ३९ ॥

हे देव ! इस स्थान का परित्याग आपको कभी नहीं करना चाहिए। हे पार्वतीपते ! आपको समग्रभाव से अपनी स्थिति यहीं करनी चाहिये ॥ ४० ॥

हे देवि ! प्रिये ! इस प्रकार उन देवताओं के वचन सुनकर मैंने सन्तुष्ट होकर उन सब महान् ओजस्वी देवताओं को कहा ॥ ४१ ॥

अंधकं वै दुरात्मानं हनिष्यामि दुरासदम् ।
हंता नास्ति त्रिलोकस्य मदन्यो निर्ज्जरेश्वरा: ।। ४२ ।।

इदं प्रियतरं स्थानं ममास्त्येव न सशय: ।
अत: समग्रभावेन पार्वत्या च गणै: सह ।। ४३ ।।

निवत्स्यामि सदा देवा युष्माकं प्रीतिकारणात् ।
अस्मात्स्थानान्न कुत्रापि स्थानं प्रियतरं मम ।। ४४ ।।

इति श्रुत्वा वचो देवि मामकीयं दिवौकस: ।
जय देव जयेशान जयरुद्र जयेश्वर ।। ४५ ।।

इत्युक्त्वा प्रययु: सर्वे स्वं स्वं स्थानं महेश्वरि ।
इति ते कथितं देवि यदादि सुतरां मम ।। ४६ ।।

स्थानं प्रियतरं जातं वासो गिरिजनन्दिनि ।
हेतुनानेन देवेशि त्वया सह स्थितिर्मम ।। ४७ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे तीर्थप्रशंसायां रुद्रालय-
माहात्म्यं नाम एकपञ्चाशोऽध्याय: ।

द्विपञ्चाशोऽध्याय:

कैलाशमाहात्म्यप्रसङ्गे रुद्रालयमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि वरारोहे तीर्थानि मम पार्वति ।
तत्र वैतरणी श्रेष्ठा पितॄणां तारिणी सरित् ।। १ ।।

तत्र पिंडप्रदानेन गयाकोटिफलं लभेत् ।
रम्यं शिवमुखं तत्र सर्वाभरणभूषितम् ।। २ ।।

एतस्य दर्शनादेव मुक्तो भवति मानव: ।
पूर्वं हि पांडवै: सर्वैर्गोत्रहत्यासमन्वितै: ।। ३ ।।

उस दुरात्मा, दुराचारी अन्धक दैत्य को मैं मारूँगा। हे देवताओ! तीनों लोकों में मेरे अलावा कोई इसे मारने वाला नहीं है ॥ ४२ ॥

हे देवो! यह मेरा निःसन्देह प्रियतर स्थान है। इसलिए पार्वती और अपने गणों के साथ समग्रभाव से ॥ ४३ ॥

आपकी प्रीति के लिए में सदा यहीं निवास करूँगा। इस स्थान से अधिक कोई भी स्थान मेरा प्रियतर नहीं है ॥ ४४ ॥

हे देवि! इस प्रकार के मेरे वचन सुनकर वे देवता, हे महेश्वरि! देव की जय हो, ईशान की जय हो, रुद्र की जय हो, ईश्वर की जय हो ॥ ४५ ॥

यह कहते-कहते अपने-अपने स्थान को चले गये। इस प्रकार हे देवि! जिस समय से मुझे यह स्थान प्रियतर हुआ है ॥ ४६ ॥

उसका वर्णन मैंने तुमसे कह दिया है। हे पर्वतपुत्रि देवेशि! इसी कारण मैं तुम्हारे साथ इस स्थान में निवास करता हूँ ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में तीर्थ प्रशंसा में
रुद्रालय माहात्म्य नाम का इक्यावनवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ५२

कैलास के माहात्म्य के प्रसंग में रुद्रालय के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

सुन्दर जघनों वाली हे पार्वति! देवि! मेरे तीर्थ स्थानों का वर्णन सुनो। वहाँ ही पितरों को तारने वाली नदियों से श्रेष्ठ वैतरणी नदी है ॥ १ ॥

वहां पिण्ड दान करने से गया में किये गये करोड़ों पिण्डदान का फल प्राप्त होता है। उस स्थान में सभी आमरणों से युक्त शिवजी का सुरम्य मुख विराजमान है ॥ २ ॥

जिसके मात्र दर्शनों से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। पहले जब पांडव गोत्र हत्या के पाप से पीड़ित हुये थे···॥ ३ ॥

पापक्षयाय देवोऽहमन्वेषितो बहुधा भृशम् ।
दृष्ट्वा केदारके देशे तान्दृष्ट्वाऽहं जगाम ह ।। ४ ।।

देशे दूरतरं तेऽपि मत्पृष्ठे च समाययुः ।
आगता निकटं दृष्ट्वा प्राविशं धरणीं तदा ।। ५ ।।

तथाविधं मां दृष्ट्वा तु पृष्ठदेशे समागताः ।
केदारसंज्ञके देवि पस्पर्शुः पृष्ठकं शुभम् ।। ६ ।।

स्पर्शमात्रेण ते सर्वे विमुक्ताः गोत्रहत्यया ।
पृष्ठभागं तु तत्रैव स्थितमद्यापि पार्वति ।। ७ ।।

केदारेश इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु मुक्तिदः ।
अधोमार्गेण देवेशि मन्मुखं तु महालये ।। ८ ।।

आगतं मुक्तिदं लोके ये स्युर्दर्शनकारिणः ।
ते मुक्ताः सर्वपापेभ्यो ज्ञानकंचुकसंवृताः ९ ।। ।।

लीनाः मदीये देहे तु भविष्यन्त्येव मानवाः ।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।। १० ।।

मानसं तीर्थमाख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ।
देवतायतनस्यार्वाक् क्रोशार्द्धे रक्तवर्णकम् ।। ११ ।।

तदेव मानसं ख्यातं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ।
यज्जले सकृदप्याहो उपस्पृश्य कृतांजलिः ।

प्रार्थययेद्देवदेवेशं महेशं मंत्रपूर्वकम् ।। १२ ।।

नमो देव महादेव भक्तानां मुक्तिदायक ।
देहि मं परमं स्थानं प्रसीद परमेश्वर ।। १३ ।।

यावन्ति मम जन्मानि जातान्येतेषु यन्मया ।
सुकृत दुष्कृतं वाऽपि त्वयि तिष्ठतु सर्वदा ।। १४ ।।

इत्युच्चार्य नरो देवि तज्जलं समुपस्पृशेत् ।
याति देवि क्षणादेव कृतकृत्यो नरोत्तमः ।। १५ ।।

अपने पापों के नाश के लिए उन्होंने मुझे अनेक स्थानों में जाकर बहुत ढूँढ़ा। जब मैंने उन्हें केदार क्षेत्र में आये देखा तब उन्हें देखकर मैं दूर चला गया ॥ ४ ॥

बहुत दूर देश तक वे पांडव मेरे धाम में मेरे पीछे-पीछे आये। उन्हें अपने निकट आया देखकर मैंने पृथिवी में प्रवेश किया ॥ ५ ॥

इस प्रकार की मेरी गति को देखकर वे पांडव मेरे पीछे-पीछे केदारनाम स्थान में आये। हे देवि ! वहाँ उन्होने केदार नाम के मेरे शुभ देने वाले पृष्ठ भाग का स्पर्श किया ॥ ६ ॥

उसके स्पर्श करने मात्र से उन पांडवों का गोत्र हत्या का पाप विनष्ट हो गया। हे पार्वति ! आज भी वहाँ केदार में मेरे पृष्ठभाग की स्थिति है ॥ ७ ॥

इस प्रकार केदारेश नाम से मुक्ति देने वाला मैं तीनों लोकों में प्रसिद्ध हूँ। हे देवेशि ! अधोमार्ग से महालय क्षेत्र में मेरा मुख विद्यमान है ॥ ८ ॥

इस क्षेत्र में आकर जो लोग मुक्तिदायक इस स्थान का दर्शन करते हैं, वे ज्ञान से आवृत हो सब पापों से मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

वे मनुष्य भविष्य में मेरे ही देह में लीन होंगे। अब मैं एक अन्य उत्तमोत्तम तीर्थ का वर्णन करता हूँ ॥ १० ॥

शिवलोक को प्रदान करने वाला एक मानस तीर्थ विख्यात है। देव मन्दिर से आधा कोस की दूरी पर लालवर्ण का स्थान है ॥ ११ ॥

वह ही तीनों लोकों में विख्यात अति दुर्लभ मानस नाम का तीर्थ विख्यात है। अहो, इसके जल का एक बार भी आचमन करके, हाथ जोड़कर शिवमन्त्र के साथ देवाधिदेव महेश्वर की प्रार्थना करे ॥ १२ ॥

हे देव ! महादेव ! भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाले परमेश्वर ! तुमको नमस्कार है। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ, मुझे परम स्थान प्रदान करो ॥ १३ ॥

मेरे जितने जन्म हो चुके हैं और मेरे द्वारा उनमें सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म किये गये हैं, वे हमेशा आप में ही स्थित रहें ॥ १४ ॥

हे देवि ! इस प्रकार उच्चारण करके उस जल का आचमन करना चाहिये। हे देवि ! इस प्रकार आचमन करने वाला उत्तम नर क्षणभर में ही कृतकृत्य हो जाता है ॥ १५ ॥

तस्य पूर्वे महाद्रौ हि सरः सारस्वतं स्मृतम् ।
तस्मिन्सरोवरे मत्स्यो मृकंडुर्नाम नामतः ।। १६ ।।

तस्य वै दक्षिणे भागे शिवलिंगमनुत्तमम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण नरः सायुज्यमाप्नुयात् ।। १७ ।।

स वै मत्स्यो महादेवि बहुवर्षसहस्रवान् ।
तस्मिन्सरोवरे मग्नः शिवसंगमकामुकः ।। १८ ।।

महाकृष्णचतुर्दश्यां भौमवारे स मत्स्यकः ।
चलते तज्जले देवि दृश्यमानः स्वकैर्जनैः ।। १९ ।।

तस्मिन्सरोवरे स्नात्वा कृष्णं प्रति चतुर्दशीम् ।
जडोऽपि वाक्पतेस्तुल्यः सत्यमेव न संशयः ।। २० ।।

प्रवालवर्णवर्णो हि तत्र लिंगधरो मृडः ।
तं पूजयित्वा रुद्रेण वृहत्साम्नाऽथवा शिवम् ।। २१ ।।

शिवसायुज्यमाप्नोति देहान्ते नगनन्दिनि ।
ततः पूर्वोत्तरे कोणे पीतवर्णं जलं शुभम् ।। २२ ।।

यत्राहं मणिभद्रेणाराधितस्तपसा शिवे ।
तस्मै प्रादां स्वकं स्थानं देवैरपि दुरासदम् ।। २३ ।।

तत्र त्रिरात्रमासीनो रसाक्षरयुतं मनुम् ।
जप्त्वा सहस्रत्रितयं खेचरीं गुटिकां लभेत् ।। २४ ।।

तत्राऽहं विष्णुना पूर्वं स्तुतो दानवहानये ।
तस्मै प्रादां बलं स्वीयं दानवानां निबर्हणे ।। २५ ।।

ततः पश्चिमदिग्भागे मम स्थानं सुदुर्ल्लभम् ।
तत्राऽहं सूर्य्यदेवेनाराधितो गिरिनन्दिनि ।। २६ ।।

स्तोत्रैर्बहुविधैर्गीतैर्नृत्यैर्भक्तिसुबृंहितैः ।
तुष्टस्तस्मै वरं प्रादां स्वनेत्रत्वं सुदुर्ल्लभम् ।। २७ ।।

उसके पूर्वभाग में महान् पर्वत में एक सारस्वत नाम का तालाब है। उस तालाब में मृकण्डु नाम का एक मत्स्य है ।। १६ ।।

उसके दक्षिण भाग में अति उत्तम शिवलिंग है। इसके दर्शन मात्र से मनुष्य शिव के सामुज्य को प्राप्त करता है ।। १७ ।।

हे महादेवि ! वह मृकण्डु नाम का मत्स्य शिव के साथ की कामना से अनेक हजार वर्षों से उस तालाब में निमग्न हो रहा है ।। १८ ।।

हे देवि ! कृष्णपक्ष की महाचतुर्दशी (शिवरात्रि) मंगलवार को वह मत्स्य अपने परिवार के साथ उस जल में चलता हुआ दिखाई देता है ।। १९ ।।

उस तालाब में जो कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को स्नान करता है, वह यदि मूर्ख भी हो, तब भी वृहस्पति के तुल्य हो जाता है। यह सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। २० ।।

उस स्थान में महादेव का सुख देने वाला लिंग मूंगे के समान रंग का है। उस शिव स्वरूप लिंग का पूजन रुद्राष्टाध्यायी अथवा बृहत् साम मन्त्रों से करे ।। २१ ।।

हे पर्वतसुते ! देह का अन्त होने पर वह पूजक शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है। उसके पूर्वोत्तर भाग में पीले रंग का शुभ को देने वाला जल है ।। २२ ।।

हे शिवे ! जहां मणिभद्र ने तपस्या द्वारा मेरी आराधना की थी। मैंने अपना वह स्थान उसे दे दिया था, जो देवताओं को भी दुर्लभ है ।। २३ ।।

वहां तीन रात्रि पर्यन्त षडक्षर (ओं नमः शिवाय) मन्त्र का मन से तीन हजार बार जप करने से खेचरी गुटिका (सिद्धि) का लाभ होता है ।। २४ ।।

वहां पहले विष्णु भगवान् ने दानवों का नाश करने के लिए मेरी स्तुति की थी। मैंने उन्हें दानवों का नाश करने के लिए अपना बल प्रदान किया था ।। २५ ।।

उसके पश्चिम दिशा में मेरा परम दुर्लभ स्थान विद्यमान है। हे पर्वतकन्यके ! उस स्थान में सूर्यदेवता ने मेरी आराधना की थी ।। २६ ।।

अनेक स्तोत्र, गीत, नृत्य आदि से भक्ति-भावना पूर्वक उन्होंने मुझे सन्तुष्ट किया था। सन्तुष्ट होकर मैंने परम दुर्लभ अपने नेत्र का स्थान उन्हें प्रदान किया था ।। २७ ।।

इति ते कृत्स्नशो देवि तीर्थानि प्रवराणि वै ।
पदे तत्र समाक्रान्ते क्रम्यते तीर्थपंचकम् ।। २८ ।।

नालं विस्तरतः प्रोक्तुं सर्वांशेन शतं समाः ।
सर्वाण्येतानि तीर्थानि गंगायां नास्ति संशयः ।। २९ ।।

तस्यामुच्चार्यमाणायां सर्वतीर्थे प्लुतो भवेत् ।
अयमेव विषेशोऽत्र पितुस्तव परिक्रमः ।। ३० ।।

परिक्रमात्तव पितुर्न भूयः स्तनयो भवेत् ।
ममालयस्य माहात्म्यं पठन्ते पाठयन्ति च ।
शृणुयाच्चैव यो मर्त्यो रुद्रलोके वसेच्चिरम् ।। ३१ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे तीर्थप्रशंसायां कैलासमाहात्म्ये
रुद्रालयमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

कैलाशमाहात्म्ये कल्पेश्वरोत्पत्तिवर्णनम्

ईश्वर उवाच--

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पंचमं वै ममालयम् ।
कल्पस्थलमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।। १ ।।

यत्राहं देवदेवेन ह्यर्चितः पर्वतात्मजे ।
मूठो दुर्वाससा शप्तो नष्टलक्ष्मीर्हतप्रभः ।। २ ।।

आराध्य मां त्वया युक्तं प्राप्तवान्कल्पपादपम् ।
अहं च देवदेवेशि कल्पेशत्वं समागतः ।। ३ ।।

वसिष्ठ उवाच—

इति श्रुत्वा वचो भर्त्तुः पार्वती भक्तितत्परा ।
उत्पत्तिं तस्य तीर्थस्य पप्रच्छ परमेश्वरम् ।। ४ ।।

इस प्रकार हे देवि ! मैंने समस्त उत्तम तीर्थों का वर्णन आपसे किया। उस तीर्थ में पैदल यात्रा करने पर पांच तीर्थों की यात्रा की हुई मानी जाती है ॥ २८ ॥

तीर्थों का सर्वांश रूप से वर्णन विस्तार से सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता। ये सभी तीर्थ गंगा में स्थित हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥

गंगा पद के उच्चारण करने मात्र से सब तीर्थों में स्नान करना माना जाता है। यही आपके पिता की विशेष परिक्रमा है ॥ ३० ॥

आपके पिता हिमालय की परिक्रमा करने से वाला पुनः स्तनपान का समय नहीं पाता (मुक्ति हो जाती है)। मेरे क्षेत्र का माहात्म्य जो मनुष्य पढ़ते हैं तथा सुनते हैं, वे मनुष्य चिरकाल तक शिवलोक में निवास करते हैं ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में तीर्थ-प्रशंसा में
कैलास-माहात्म्य प्रसङ्ग में रुद्रालय का माहात्म्य नाम
का बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ५३

कैलास के माहात्म्य के प्रसंग में कल्पेश्वर की उत्पत्ति का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे देवि ! सुनो। अब मैं अपने पाँचवें क्षेत्र का वर्णन करूँगा। सब पापों का नाश करने वाला यह क्षेत्र कल्पस्थल नाम से विख्यात है ॥ १ ॥

हे पर्वत कन्यके ! यहाँ दुर्वासा ऋषि के शाप से मूढ़ बने और राज्यलक्ष्मी एवं सौभाग्य के विनाश हो जाने पर हतप्रभ देवराज इन्द्र ने मेरी पूजा की थी ॥ २ ॥

मेरी तथा तुम्हारी आराधना करके इन्द्र ने कल्पवृक्ष प्राप्त किया। है देव देवेशि ! तब से मेरी कल्पेश संज्ञा हुई ॥ ३ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

पति के इस वचन को सुनकर पार्वती ने भक्ति में तत्पर होकर उस तीर्थ की उत्पत्ति का वृत्तान्त शिव से पूछा ॥ ४ ॥

पार्वत्युवाच —

देवदेव महादेव सर्गस्थित्यन्तकारक ।
कथं दुर्वाससा शप्तो वासवो बलवृत्रहा ।। ५ ।।

प्राप्तः कथं कल्पवृक्षो वासवेन कथं स्तुतः ।
त्वं कथं वरदस्तस्य स्थितस्तस्मिन्महेश्वर ।। ६ ।।

ईश्वर उवाच —

शृणु देवि वरारोहे यत्पृष्ठोऽहं त्वयाऽनघे ।
तद्गुह्यमपि वक्ष्यामि कल्पक्षेत्रस्य वैभवम् ।। ७ ।।

इतिहासमिमं देवि यथा दुर्वाससो मुनेः ।
कोपोऽभूद्वै हेमवति तत्सर्वं शृणु साम्प्रतम् ।। ८ ।।

पुरैकदा शचीनाथो गजराजसमास्थितः ।
स्तूयमानो मुनिगणैर्गीयमानोऽप्सरोगणैः ।। ९ ।।

हाहाहूहूप्रभृतयो गन्धर्वास्त्रिदिवौकसः ।
उर्वशी मेनका मंजुघोषाद्याः सुरनायिकाः ।। १० ।।

परिवार्य्य सुराधीशं जगुर्गंगाधरं विभुम् ।
सर्वैश्वर्य्यसमापन्नो नानामणिविराजितः ।। ११ ।।

ययौ कैलासनिलये द्रष्टुं गंगाधरं विभुम् ।
एतस्मिन्नन्तरे देवि दुर्वासा मुनिसत्तमः ।। १२ ।।

यदृच्छया महादेवि कैलासे हरभूषिते ।
आययौ मनसा देवि हृष्टेन संस्मरन् हि माम् ।।१३ ।।

ददर्श कांचिल्ललनां सुगंधिकुसुमस्रजम् ।
यथा चैतां स्रजं देवि शापभीताऽपि सा ददौ ।। १४ ।।

तां गृहीत्वा स्रजं दिव्यां भ्रमरैरुपनादिताम् ।
यदृच्छया ययौ तत्र यत्रासौ वृत्रसूदनः ।। १५ ।।

दृष्ट्वा सुरेन्द्रं स मुनिरैरावतसमास्थितम् ।
उवाच वचनं विप्रो करे धृत्वा परांस्रजम् ।। १६ ।।

पार्वती ने कहा—

सृष्टि की रचना, पालन और विनाश करने वाले हे देवताओं के देव ! महादेव ! वृत्रासुर के नाशक इन्द्र को दुर्वासा ऋषि ने शाप क्यों दिया ? ॥ ५ ॥

इन्द्र ने किस प्रकार कल्पवृक्ष प्राप्त किया, किस प्रकार स्तुति की। हे महेश्वर ! तुम किस प्रकार उसको वर देने के लिए वहाँ उपस्थित हुये ॥ ६ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे अनघे ! सुन्दर जघनों वाली देवि ! जो प्रश्न तुमने मुझे पूछा है, उसके अति गुप्त होने पर भी, कल्पक्षेत्र का वैभव मैं तुमसे कहूँगा। तुम सुनो ॥ ७ ॥

हिमालय की पुत्रि, हे देवि ! जिस प्रकार दुर्वासा मुनि को क्रोध हुआ था। उस सम्पूर्ण इतिहास को इस समय सुनो ॥ ८ ॥

पहले एक समय इन्द्र ऐरावत हाथी पर अधिष्ठित थे। उनकी मुनियों द्वारा स्तुति की जा रही थी, तथा अप्सरायें नृत्य कर रही थीं ॥ ९ ॥

हाहा हूहू आदि अनेक गन्धर्व और देवतागण, उर्वशी, मेनका, मंजुघोषा आदि सुरनायिकायें (अप्सरायें) ॥ १० ॥

देवराज इन्द्र को घेर कर गंगा को धारण करने वाले शंकर का कीर्तन कर रही थीं। उस समय समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न अनेक मणियों से विराजमान ॥ ११ ॥

इन्द्र गंगा को धारण करने वाले विभु शिव के दर्शन के लिए कैलास स्थान में आये। हे महादेवि ! मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा ऋषि ॥ १२ ॥

शिव से विभूषित कैलास पर अचानक ही आये। मन में प्रसन्न हो वे मेरा स्मरण कर रहे थे ॥ १३ ॥

उन्होंने सुगन्धित पुष्पों से बनी माला पहने एक स्त्री को देखा। उस स्त्री ने शाप के भय से वह माला ऋषि दुर्वासा को दे दी ॥ १४ ॥

भ्रमरों से गुंजारित उस दिव्य माला को ग्रहण कर इच्छानुसार वे ऋषि दुर्वासा वहाँ गये, जहाँ देवराज इन्द्र स्थित थे ॥ १५ ॥

उस मुनि ने देवराज इन्द्र को ऐरावत हाथी पर बैठा देखा। उन्होंने माला को हाथ में रख कर इन्द्र से इस प्रकार वचन कहा ॥ १६ ॥

भो भो सुरगणश्रेष्ठ ददामि स्रजमुत्तमाम् ।
इमां गृहाण परमां प्रीत्या दत्तां मया हरे ।। १७ ।।

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेर्दुर्वाससः प्रिये ।
जग्राह मदमत्तो वै मनसा प्रहसन्निव ।। १८ ।।

गृहीत्वा तां वरां मालां गजकुम्भे ददौ हरिः ।
न्यस्तां दृष्टवैव कुम्भे तां तं च दृष्ट्वैव पुरन्दरम् ।। १९ ।।

मदमत्तं महेशानि जगाद मुनिपुंगवः ।
क्रोधेन महताविष्टो जलं स्पृष्ट्वा महेश्वरि ।। २० ।।

दुर्वासा उवाच—

लक्ष्मीप्रमत्तो यस्मात्त्वं यतोऽहमवमानितः ।
तस्मात्त्रैलोक्यलक्ष्मीस्ते नष्टा[1] वै सम्भविष्यति ।। २१ ।।

ईश्वर उवाच—

इतिं तद्गदितं श्रुत्वा मुनेर्दुर्वाससो हरिः ।
प्रकम्पमानावयवस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ।। २२ ।।

उवाच गद्गदं वाचा मुनिं दुर्वाससं हरिः ।
प्रणम्य चाञ्जलिं बध्वा दण्डवत्प्रणतो विभुः ।। २३ ।।

इन्द्र उवाच—

अजानता मया विप्र मूढेन मनसा मुने ।
अवमानितोऽस्मि दुर्बुद्ध्या क्षन्तुमर्हसि साम्प्रतम् ।। २४ ।।

दुर्वासा उवाच—

अमोघो मामकः शापो भविष्यत्येव दुर्मते ।
महादेवं समाराध्य पुनः प्राप्स्यसि स्वं पदम् ।। २५ ।।

ईश्वर उवाच—

इत्युक्त्वा प्राययौ विप्रो यथास्थाने[2] महेश्वरि ।
इन्द्रोऽपि सहसा राज्यात्पपात शत्रुनिर्जितः ।। २६ ।।

---

१. ते नष्टा । २. स्थाने ।

देवताओं में श्रेष्ठ हे इन्द्र ! मैं आपको यह उत्तम माला प्रदान करता हूँ। हे इन्द्र ! मेरे द्वारा दी गई इस उत्तम माला को तुम ग्रहण करो ॥ १७ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे प्रिये ! उस दुर्वासा ऋषि के इस प्रकार के वचन को सुनकर मन में उपहास करते हुये मदमत्त इन्द्र ने उस माला को ग्रहण किया ॥ १८ ॥

उस दिव्य माला को ग्रहण करके इन्द्र ने हाथी के गण्ड स्थल में रख दिया। उस मुनि ने इन्द्र को उस माला को हाथी के गण्डस्थल में रखते हुये देख लिया ॥ १९ ॥

हे महेश्वरि ! क्रोध में भरकर जल का स्पर्श करके उस मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा ने मदमत्त देवराज से कहा ॥ २० ॥

दुर्वासा बोले—

क्योंकि राज्यलक्ष्मी से उन्मत्त होकर तुमने हमारा अपमान किया है, अतः तुम्हारी तीनों लोकों की राज्यलक्ष्मी का नाश हो जायेगा ॥ २१ ॥

ईश्वर ने कहा—

दुर्वासा के इस वचन को सुनकर इन्द्र के अंग काँपने और वह पर्वत के समान निश्चल खड़ा हो गया ॥ २२ ॥

इन्द्र ने हाथ जोड़कर, दण्डवत्प्रणाम करके गदगद् वाणी से मुनि दुर्वासा से कहा ॥ २३ ॥

इन्द्र बोला—

हे मुने ! ब्राह्मण ! मूढ़ मन से अनजाने ही मुझ दुर्बुद्धि ने आपका अपमान किया है, अतः आप इस समय क्षमा कीजिए ॥ २४ ॥

दुर्वासा ने कहा—

हे दुर्मते ! मेरा शाप अमोघ होगा। तुम शिव की आराधना करके पुनः अपने पद को प्राप्त करोगे ॥ २५ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे महेश्वरि ! यह कहकर वे ब्राह्मण दुर्वासा ऋषि अपने स्थान को चले गये। इन्द्र की राज्यलक्ष्मी भी शत्रुओं से जीती जाकर विनष्ट हो गई ॥ २६ ॥

त्रैलोक्यलक्ष्मोरपि च नष्टाऽभून्मुनिशापतः ।
नष्टायां तु पुनर्लक्ष्म्यां जगत्त्रस्तं चराचरम् ।। २७ ।।

हाहाकारमभूत्सर्वं नष्टे त्रैलोक्यनायके ।
निःस्वाध्यायवषट्कारं हव्यकव्यविवर्जितम् ।। २८ ।।

न किंचित्कोऽपि जानाति राजानं पितरं तथा ।
सर्वे दारिद्र्यसंच्छन्ना नष्टीभूता महेश्वरि[1] ।। २९ ।।

वनानि भेजिरे दीनाः सैनिकादिविवर्जिताः ।
स्वच्छन्दचारिणो भृत्या व्यभिचाररताः स्त्रियः ।। ३० ।।

प्रापुः परस्परं वर्णाः सांकर्य्यं गिरिनंदिनि ।
पुण्यश्लोकपरिभ्रष्टाः पतंति नभसश्च्युताः ।। ३१ ।।

अधर्म्मबहुला लोकाः स्वधर्मेण च्युताः शिवे ।
आसुरीं बुद्धिमापन्नाः काममोहसमावृताः ।। ३२ ।।

अगम्यागमनरता भ्रष्टाचारा द्विजातयः ।
न प्रजां पालते राजा न चाग्नौ हूयते द्विजैः ।। ३३ ।।

चरमं युगमिव हि बभूव सर्वतः प्रिये ।
अकालवर्षो पर्जन्यः स्वल्पपुष्पा महीरुहः ।। ३४ ।।

उल्कापाताश्च पेतुर्वै सागरो ववृधे ततः ।
सांगारं वर्षते मेघो गिरयश्च चकम्पिरे ।। ३५ ।।

एवं भूते त्रिलोके तु नष्टे स्थावरजंगमे ।
लक्ष्मीहीने महेशानि सम्भान्तास्त्रिदिवौकसः ।। ३६ ।।

नष्टेश्वरा हतश्रीका ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
शरण्यं सर्वलोकानां धातारं जगतां विभुम् ।
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे विनयाविष्टमानसाः ।। ३७ ।।

देवा ऊचुः —
नमो नमस्ते धात्रे विधात्रे सर्वजनिप्रद ।
हतश्रीका वयं सर्वे नष्टात्मानो हतेश्वराः ।। ३८ ।।

---

१. नरेश्वराः ।

मुनि के शाप से तीनों लोकों की लक्ष्मी भी विनष्ट हो गई। पुनः लक्ष्मी के नष्ट हो जाने पर समस्त चराचर जगत् संत्रस्त हो गया ॥ २७ ॥

त्रिलोकीनाथ के नष्ट हो जाने पर जगत् में हाहाकर मच गया। वेदपाठ, वषट्कार और हव्यकव्यकर्म सब नष्ट हो गये ॥ २८ ॥

हे महेश्वरि ! उस समय कोई राजा तथा पिता को जानने वाला न रहा। सब दारिद्र्य से घिर कर विनष्ट हो गये ॥ २९ ॥

सैनिकों से रहित दीन जन वनों में चले गये। सेवक स्वच्छन्दचारी हो गये तथा स्त्रियाँ व्यभिचार कर्म करने लगीं ॥ ३० ॥

हे पर्वतपुत्रि ! चारों वर्ण आपस में वर्णसंकर हो गये। सदाचार से विहीन होकर वे आकाश से निपतित होने लगे ॥ ३१ ॥

हे शिवे ! काम और मोह से समावृत होकर आसुरी बुद्धि के वे लोग अपने धर्म से रहित होकर अधर्म में रत रहने लगे ॥ ३२ ॥

द्विज लोग अगम्या-गमन में रत हो गये। वे भ्रष्टाचारी हो गये। राजा प्रजा का पालन नहीं करते थे। ब्राह्मण हवन नहीं करते थे ॥ ३३ ॥

हे प्रिये ! सर्वत्र कलियुगीन बर्ताब होने लगे। मेघ असमय में वर्षा करने लगे। वृक्षों पर पुष्प अल्प आने लगे ॥ ३४ ॥

नभोमण्डल से उल्कापात होने लगे। समुद्र ने अपनी मर्यादा छोड़ दी और बढ़ने लगा। मेघ अंगारों से युक्त पानी वर्षाने लगा और पर्वत कांपने लगे ॥ ३५ ॥

इस प्रकार से तीन लोकों में स्थावर और जंगम नष्ट होने लगे। हे महेश्वरि ! लक्ष्मी के नष्ट होने से देवता लोग घबरा गये ॥ ३६ ॥

जिनके स्वामी का तथा लक्ष्मी का विनाश हो गया, ऐसे देवता लोग समस्त जगत् के रक्षक ब्रह्मा की शरण में गये। विनय पूर्ण मन से वे सभी देवता हाथ जोड़कर बोले···॥ ३७ ॥

देवताओं ने कहा—

समस्त जगत् के निर्माणकर्ता ! आप समस्त संसार की रचना एवं पालन-पोषण करने वाले हैं, अतः आपको नमस्कार है। हमारी लक्ष्मी, आत्मा और अधीश्वर का विनाश हो गया है ॥ ३८ ॥

क्व यामोऽद्य वयं धातरनाथा हव्यवर्जिताः ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ।। ३९ ।।

ध्यात्वा क्षणं तु तज्ज्ञात्वा सर्वदेव समन्वितः ।
जगाम सहसा देवि क्षीरोदस्योत्तरे तटे ।
समाधाय मनो देवं स्तोतुं समुपचक्रमे ।। ४० ।।

ब्रह्मोवाच --

विश्वेशमाद्यं प्रभवं प्रभूणां चराचराणां सृजकं रमेशम् ।
सत्त्वादिरूपैस्त्रिविधं पुराणं पुराणगीतं मनसा स्मरामि ।। ४१ ।।

सर्वस्य देहे जगति प्रभो त्वं गेहे यथा गेहपतिर्गृही स्यात् ।
तथाप्यदेहोऽपि विभुर्हि देही सम्प्रोच्यसे त्वां मनसा स्मरामि ।। ४२ ।।

त्वन्मायया सम्वृतचेतनो वै न त्वां विजानामि हृदि स्फुरन्तम् ।
देहाभिमानी नरदेवमूर्त्तिश्चामीकरं कण्ठगतं यथाज्ञः ।। ४३ ।।

अनादिमाद्यं सुरयज्ञमूर्त्तिं संकल्परूपं दितिजप्रणाशनम् ।
सर्वस्य विश्वस्य परं निधानं तं धेनुकारिं मनसा स्मरामि ।। ४४ ।।

त्वत्प्रेरितोऽसौ नृजनः करोति कर्त्ताऽहमस्मीति विमूढबुद्धिः ।
मतिं पतिं त्वां भवहेतुभूतं जानाति नो वै मनसा स्मरामि ।। ४५ ।।

षट्चक्ररूपं द्विषताभिपीडं निरंजनं निर्गुणमप्रमेयम् ।
चराचराद्यं बलहन्तृरूपं सर्वेश्वरं तं मनसा स्मरामि ।। ४६ ।।

विशुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिनामधीश आत्माऽसि परं निधानम् ।
निराकृतिर्ज्ञानदृशा प्रतीयसे सर्वात्मकं त्वां मनसा स्मरामि ।। ४७ ।।

पुरा त्वया शंखभयाद्विलीना लोकाश्च वेदाश्च धृता महालयात् ।
धृत्वा महामीनवपुः परात्मन् महार्त्तितोऽस्मानव भार्गवीशः ।। ४८ ।।

हे विधाता ! हव्य भाग से रहित हम लोग कहाँ जायें। इस प्रकार के वचन देवताओं के लोक पितामह ब्रह्मा जी ने सुने ॥ ३६ ॥

हे देवि ! क्षण भर ध्यान करके सारे वृत्तान्त को जानकर वे सब देवताओं के साथ सहसा क्षीर समुद्र के उत्तरी तट पर पहुँचे। मन को एकाग्र कर वे भगवान् नारायण की स्तुति करने में प्रवृत्त हो गये ॥ ४० ॥

ब्रह्मा ने कहा—

समस्त विश्व के स्वामी, सब के आदि, प्रभुओं के उत्पत्ति स्थान, चराचर को रचने वाले, रमा के पति, सत्त्व, रजस् और तमोगुण के द्वारा तीन प्रकार से संसार के उद्बोधक, पुराण पुरुष एवं जिसके गीत पुराणों में गाये गये हैं, ऐसे पुरुष को मैं मन से स्मरण करता हूँ ॥ ४१ ॥

हे प्रभो ! आप ही समस्त जगत् के देह में ऐसे अधिष्ठित हैं जैसे घर का स्वामी घर में अधिष्ठित रहता है। आप देह रहित होते हुये भी सर्वव्यापक हैं, देही तथा आत्मस्वरूप आपको ही कहा जाता है। अतः मैं आपका मन से स्मरण करता हूँ ॥ ४२ ॥

जब आपकी माया से प्राणी अचेतन हो जाता है, तब वह हृदय में निवसित आपको नहीं जानता। जिस प्रकार देहाभिमानी अज्ञ राजा अपने गले में लगी सुवर्ण-माला को नहीं जानता है ॥ ४३ ॥

आप अनादि हैं। आपसे पूर्व का कोई नहीं है। आप यक्ष और देव मूर्ति हैं। कल्पना से उत्पन्न होने वाले आप दैत्यों का नाश करने वाले हैं। सम्पूर्ण संसार की व्यवस्था आप पर निर्भर है। आप धेनुक दैत्य के नाशक हैं। अतः मैं आपका मन से स्मरण करता हूँ ॥ ४४ ॥

आपके द्वारा प्रेरित होकर मन्द बुद्धि यह मानव अपने को ही कर्ता समझने लगता है। सबमें बुद्धि रूप से स्थित, सबके स्वामी, सबके कारणभूत, मन्दबुद्धियों द्वारा न जानने योग्य आपको मैं मन से स्मरण करता हूँ ॥ ४५ ॥

आप षट्चक्र रूप हैं, शत्रुओं को पीड़ा देने वाले हैं, निरंजन, निर्गुण तथा अप्रमेय हैं। आप चराचर के आदि हैं। बल राक्षस का आप नाश करने वाले हैं। सर्वेश्वरत्व को धारण करने वाले आपको में मन से स्मरण करता हूँ ॥ ४६ ॥

आपका ज्ञान विशुद्ध है, आप सम्पूर्ण देहधारियों के अधीश्वर और आत्म स्वरूप और परम निधान हैं। यद्यपि आपकी कोई आकृति नहीं है, किन्तु ज्ञान दृष्टि से उसकी प्रतीति होती है सर्वात्मक आपको मैं मन से स्मरण करता हूँ ॥ ४७ ॥

पहले जब शंखासुर लोक और वेदों को समुद्र में ले गया था, तब हे परमात्मन् ! आपने महामत्स्यावतार धारण करके उनका उद्धार किया था आप हमें इस संकट से बचाओ ॥ ४८ ॥

ईश्वर उवाच—

एवं स्तुतो देववरो विधात्रा[1] संदर्शयामास स्वकं स्वरूपम् ।
चतुर्भुजं शंखगदादिमंडितं किरीटकेयूरविभूषितांगम् ॥ ४९ ॥

अनेककोटीनसमानवर्णं[2] रमासमासादितवामभागम् ।
उवाच गम्भीरवचोभिरीश्वरस्तुवन्तमेनं द्रुहिणं पुरः स्थितम् ॥ ५० ॥

श्रीभगवानुवाच—

प्रसन्नोऽस्मि वरार्होऽसि यदर्थमिह चागतः ।
ज्ञातमेव तु तत्सर्वं स्वयं धास्यामि मा शुचः ॥ ५१ ॥

अलं हि पालने शक्तो नाशे रुद्रवपुः स्वयम् ।
सर्गे त्वमेव युक्तोऽसि ततो गच्छामहे शिवम् ॥ ५२ ॥

तद्वदिष्यति भगवान् गंगाशेखरधारकः ।
तत्सर्वं संविधास्यामो व्याप्तं येन जगत्त्रयम् ॥ ५३ ॥

इन्द्रं मार्गत भो देवा क्व चास्ते बलसूदनः ।
तेनैव सहितो देवा यतो नष्टं तदागसा ॥ ५४ ॥

रुद्रमाराधयिष्यामो हरिर्दुर्वाससा यतः ।
प्रोक्त आराधयिष्वेति ततः स्वस्थो भविष्यति ॥ ५५ ॥

ईश्वर उवाच—

इति कृत्वां मतिं देवा मार्गयामासुरिन्द्रकम् ।
ते मार्गमाणा बहुशो न प्रापुर्वासवं क्वचित् ॥ ५६ ॥

वायुं प्रोचुः सुराः सर्वे त्वं मार्गस्व विभुर्यतः ।
त्वं सर्वलोकदेहस्थो व्याप्तं लोकत्रय त्वया ॥ ५७ ॥

वातोऽपि तेषां वचनान्मार्गयामास वासवम् ।
कैलासे पर्वतश्रेष्ठे उत्तरस्यां दिशि प्रिये ॥ ५८ ॥

अलकनन्दोत्तरे तीरे श्रीक्षेत्रे क्षेत्रसत्तमे ।
इन्द्रं मशकरूपं वै ददर्श गिरिनन्दिनि ॥ ५९ ॥

---

१. स । २. सुनीलमेघैश्च । ३. इदं ।

ईश्वर ने कहा—

ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् नारायण ने अपना रूप दिखाया। उन्होंने सिर पर मुकुट लगाया हुआ था और जिनकी बाहु केयूर से विभूषित थी, शंख-गदा आदि से मण्डित उनकी चार भुजायें थीं ॥ ४६ ॥

अति नील वर्ण मेघों के समान उनका वर्ण था। लक्ष्मी उनके वाम भाग में सुशोभित थी। वे भगवान् सामने स्थित स्तुति करते हुये ब्रह्मा से गम्भीर वाणी में बोले ॥ ५० ॥

श्री भगवान् बोले--

हे ब्रह्मन् ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जिस लिए तुम यहाँ आये हो, तुम उस वर के योग्य हो। तुम शोक न करो। मैं स्वयं ही सब कुछ करूँगा ॥ ५१ ॥

मैं जगत् के पालन में समर्थ हूँ। शंकर सृष्टि के नाशक हैं। तुम सृष्टि का सृजन करने वाले हो। अतः हम शंकर भगवान् के समीप चलें ॥ ५२ ॥

गंगा रूपी शिरोभूषण को धारण करने वाले भगवान् शंकर तब हम से कहेंगे। सर्वव्यापक शिव जो कुछ कहेंगे, वही हमें करना होगा ॥ ५३ ॥

हे देवताओ ! इस समय बलासुर का नाशक इन्द्र कहाँ हैं, उसको खोजो। उन्हें ही आगे लेकर शंकर के पास चलें। क्योंकि उसके अपराध से ही सब नष्ट हुआ है ॥ ५४ ॥

हम शिव की आराधना करेंगे, क्योंकि दुर्वासा ऋषि ने भी इन्द्र से यही कहा था कि शिव जी की आराधना से ही तुम पुनः स्वस्थ होगे ॥ ५५ ॥

ईश्वर ने कहा —

इस प्रकार की सम्मति करके देवताओं ने अनेक स्थलों पर इन्द्र को ढूँढ़ा। परन्तु अनेक स्थानों को ढूँढ़ने पर भी इन्द्र उनको न मिला ॥ ५६ ॥

तदनन्तर देवताओं ने वायु से कहा कि तुम सर्वव्यापक हो, तुम समस्त देह-धारियों में अधिष्ठित हो, तुम त्रिलोकी में व्याप्त हो। अतः तुम इन्द्र का अन्वेषण करो ॥ ५७ ॥

उन देवताओं के कहने पर वायु ने भी इन्द्र का अन्वेषण किया। हे प्रिये ! उत्तर दिशा में पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर उसको खोजा ॥ ५८ ॥

हे पर्वतपुत्रि ! अलकनन्दा के उत्तरी तट पर सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र श्रीक्षेत्र में उसने इन्द्र को मच्छर रूप में देखा ॥ ५६ ॥

इन्दो वै कीलितो यस्मिन्निषसाद गिरौ यतः।
ततस्तदभिधानं तु इन्द्रकीलमभूच्छिवे ॥ ६० ॥

इन्द्रकीलात्ततः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः।
ऊचुर्वचो महेशानि हरिं मशकरूपिणम् ॥ ६१ ॥

एह्यागच्छ महाबाहो बलवृत्रनिषूदन।
त्वया त्यक्तमिदं सर्वं नष्टीभूतं जगत्त्रयम् ॥ ६२ ॥

नातः परं महाभाग ब्राह्मणेषु कदाचन।
अवलेपो न कर्तव्यो यतस्ते सर्वदेवताः ॥ ६३ ॥

कैलासवासिनं देवं शर्वं पशुपतिं विभुम्।
दुःखमुक्त्यै वयं सर्वे स्तोष्यामो बलसूदन ॥ ६४ ॥

ईश्वर उवाच—
इति श्रुत्वा वचस्तेषां वासवो देवतेरितः।
त्यक्त्वा तन्माशकं रूपं ययौ यत्र महेश्वरः ॥ ६५ ॥

देवैः परिवृतः सर्वैः संस्मरन् मनसा शिवम्।
यत्राहं परमेशानि त्वया सह स्थितः परः ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासमाहात्म्ये कल्पेश्वरोत्पत्तौ त्रिपंचाशोऽध्यायः

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

कल्पेश्वरोत्पत्तिवर्णनम्

ईश्वर उवाच—
ततः पुरन्दरो देवि भक्त्या परमया गिरौ।
ब्रह्मणा समनुज्ञातस्तप्तवान्परमं तपः ॥ १ ॥

दषवर्षसहस्राणि सस्मार मनसा हि माम्।
देवाः सर्वेऽपि तत्रैव तपः परममास्थिताः ॥ २ ॥

---

१. इन्द्राद्याः।

हे शिवे ! उस पर्वत में इन्द्र क्योंकि कीलित हुआ बैठा था, इसलिए उस पर्वत का नाम इन्द्रकील पर्वत हुआ ।। ६० ।।

तदनन्तर इन्द्रकील पर्वत में खड़े होकर सभी देवताओं ने, हे महेश्वरि ! मच्छर रूपधारी इन्द्र से कहा ।। ६१ ।।

बलासुर और वृत्रासुर को मारने वाले, हे महाबाहो ! आप यहाँ जाओ । आपके छोड़ देने से यह सम्पूर्ण जगत् नष्ट हो रहा है ।। ६२ ।।

हे महाभाग ! अब से ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र भी अपमान करना छोड़ देना । क्योंकि वे सभी देवता हैं ।। ६३ ।।

बलासुर को मारने वाले हे देवेन्द्र ! हम सब दुःख से मुक्ति पाने के लिए कैलाशवासी विभु पशुपति भगवान् शिव की स्तुति करेंगे ।। ६४ ।।

ईश्वर ने कहा—

इस प्रकार उन देवताओं के कहने पर इन्द्र ने मच्छर के रूप का त्याग करके उस स्थान को गमन किया, जहाँ भगवान् शिव विराजमान थे ।। ६५ ।।

हे परमेश्वरि ! आप के साथ जहाँ मैं स्थित था वहाँ सब देवताओं से घिरे हुए मेरा स्मरण करते-करते इन्द्र आये ।। ६६ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास माहात्म्य में
कल्पेश्वर की उत्पत्ति नाम का तिरेपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ५४

कल्पेश्वर की उत्पत्ति का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

तदनन्तर हे देवि ! इस पर्वत में ब्रह्मा जी की आज्ञा से इन्द्र ने भक्तिपूर्ण हो परम तप का आचरण किया ।। १ ।।

दस हजार वर्ष तक उस इन्द्र ने मन से मेरा स्मरण किया । सभी देवता लोग भी वहाँ ही परमतम में स्थित रहे ।। २ ।।

ब्रह्मा विष्णुश्च ये चान्ये साध्या विश्वे मरुद्गणाः ।
जयशब्देन मां प्रोचुर्भक्त्या सन्नतकंधराः ॥ ३ ॥

दुर्वासःशापसंविग्ना मामूचुस्त्राहि त्राहि च ।
तस्मिन्नेव च काले तु प्रसन्नोऽहं सुरार्चितः ॥ ४ ॥
आसं दृक्पथि देवानामिन्द्रादोनां महेश्वरि ।
अनेनैव हि रूपेण प्रत्यक्षमगमं पुरा ॥ ५ ॥
मां दृष्ट्वा द्रुहिणस्तूर्णं प्रणम्य स्तोतुमारभत् ।
भक्तिगद्गदया वाचा विनयाविष्टमानसः ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच—

नमस्त्रैलोक्यनाथाय भक्तिगम्याय वेधसे ।
पूर्णायानन्तमुद्राय क्षोदिष्ठाय नमो नमः ॥ ७ ॥

नमो विश्वसृजे तुभ्यं भूतानां पतये नमः ।
हिरण्यवाहवे तुभ्यं दिशाँ च पतये नमः ॥ ८ ॥

नमः कांचनरूपाय स्फटिकाभाय वे नमः ।
नमो विद्युन्मयूखाय करिचर्मधृते नमः ॥ ९ ॥

नमः पीयूषधाराय धारासाराय वै नमः ।
मनश्चन्द्रकलापाय कलानां पतये नमः ॥ १० ॥

नमः कपर्दिने तुभ्यं पुष्टानां पतये नमः ।
निषंगिणे चेषुमते नीलग्रोवाय ते नमः ॥ ११ ॥

नमस्त्रिशूलहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ।
त्रिगुणाय नमस्तुभ्यं त्रिश्वरूपाय ते नमः ॥ १२ ॥

त्रिवह्निसमनेत्राय नमस्त्रैलोक्यमूर्त्तये ।
नमस्त्रिवर्षरूपाय त्रिदिवाय नमो नमः ॥ १३ ॥

त्रिविक्रमस्वरूपाय त्रिविष्टपभृते नमः ।
त्रिशूलधारिणे तुभ्यं त्रयीविद्याय ते नमः ॥ १४ ॥

---

१. विघ्नाय ।

ब्रह्मा, विष्णु और अन्य साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण आदि ने ग्रीवा झुका कर भक्तिभाव से मेरा जय-जयकार किया ॥ ३ ॥

हम दुर्वासा के शाप से परिपीड़ित हैं, आप हमारी रक्षा करें, ऐसा उन्होंने मेरे से कहा। उसी समय मैं उन देवताओं की अर्चना से प्रसन्न हो गया ॥ ४ ॥

हे महेश्वरि ! इन्द्र आदि देवताओं के समक्ष मैं इसी रूप से प्रत्यक्ष प्रकट हुआ हूँ ॥ ५ ॥

मुझे देख कर यथाशीघ्र ब्रह्मा ने विनयान्वित मन से भक्तिपूर्ण गद्गद् वाणी से प्रणाम करके मेरी स्तुति करनी आरम्भ कर दी ॥ ६ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

तीनों लोकों के नाथ, भक्ति से प्राप्त होने वाले, सृष्टि का विधान करने वाले पूर्ण, अनन्त मुद्रावान्, आपका स्वरूप अत्यन्त ही सूक्ष्म अर्थात् अतीन्द्रिय है। आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥

विश्व की सृष्टि करने वाले, भूतों के अधिपति, हिरण्यबाहु, दिशाओं के स्वामी, सबसे महान् आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥

स्वर्ण के समान रूप वाले, स्फटिक सदृश कान्ति वाले, विद्युत के समान किरणों वाले, हस्तिचर्म को धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥

आप अमृतधारा तथा जलरूप धारा हैं। चन्द्रमा को धारण करने वाले आप कलाओं के पति हैं, आपको नमस्कार है ॥ १० ॥

आप जटाजूटों को धारण किये हैं, आप पुष्टों के स्वामी हैं, धनुष बाण को आपने धारण किया है आपकी ग्रीवा नीली है हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥

हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले, त्रिनेत्र, त्रिगुण, तीन स्वरूपों को धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥ १२ ॥

आपके तीनों नेत्र तीन अग्नियों के समान हैं, आप देव के लिए हम बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥

आप त्रिविक्रम स्वरूप हैं, देवताओं के स्वर्ग का पालन करने वाले हैं, आप त्रिशूल धारण करने वाले तथा त्रयी विद्यामय हैं। आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ १४ ॥

त्रिहुताशनसंस्थाय त्रिदण्डाय नमो नमः ।
त्रितीयाकरणार्थाय त्रिवर्गफलदायिने ॥ १५ ॥

त्रिपथगाशेखराय त्रिशीर्षाय नमो नमः ।
त्रिहीनाय नमस्तुभ्यं त्रिभागाय नमो नमः ॥ १६ ॥

न ते रूपं न ते ज्ञानं न मायां सर्वमोहिनीम् ।
जानन्ति हरिविश्वेशाः स्वयं वेत्सि महेश्वर ॥ १७ ॥

निर्गुणो निरहंकारो निर्ममो हि निरीश्वरः ।
त्वं महेश हि मायां स्वां विस्तारयसि संसृतौ ॥ १८ ॥

मोहजाले समाच्छन्नास्तदा त्वां सगुणं विदुः ।
देहगेहसमापन्नो लीलया भगवान् यदा ।
अहं कर्ता ह्यहं भोक्ताऽहंकारेण प्रतीयसे ॥ १९ ॥

यदा सृष्टो महादेव शक्तिमुक्तो निरीश्वरः ।
सदा ममत्वमापन्नो दारपुत्रगृहादिषु ॥ २० ॥

पुराऽहं बालिशो देव तवान्तं जगतः प्रभो ।
दिदृक्षुरगमं खे वै ह्यनन्तेऽनन्तविक्रम ॥ २१ ॥

ऊर्ध्वमूर्ध्वं गतश्चैव यतो ब्रह्माण्डभित्तिकाम् ।
तत्राहं परमाश्चर्यं दृष्टवान् जगदीश्वर ॥ २२ ॥

अहं प्रविष्टो कस्मात्ते लिंगेऽनन्तस्वरूपिणि ।
योगमाया समाच्छन्नो नाहं वेद्मि स्म किञ्चन ॥ २३ ॥

कोऽहं कुत्राहमापन्नः क्व गन्ता क्व च मे मतिः ।
वर्षाणां नवकोटीनां सहस्राणां शतं शिव ॥ २४ ॥

तत्रैव[1]मटमानोऽहमपश्यं कौतुकं महत् ।
तस्मिन्नेव महल्लिगे ब्रह्माण्डानां तु कोटयः ॥ २५ ॥

---

१. मट ।

तीन प्रकार की वह्नियों में आप स्थित हैं। आप त्रिदण्ड स्वरूप हैं। तृतीय करण रूप हैं। त्रिवर्ग फल को देने वाले हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥

गंगा को सिर पर धारण करने वाले, तीन सिरों वाले, त्रिगुणों से हीन, त्रिभाग रूप आप ही हैं। आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥

आपके रूप, ज्ञान एवं सर्वमोहिनी माया को ब्रह्मा, विष्णु भी नहीं जानते। हे महेश्वर ! आप अपने को स्वयं ही जानते हैं ॥ १७ ॥

आप निर्गुण हैं, अहंकारविहीन हैं, ममता से शून्य आप निरीश्वर हैं। हे महेश्वर ! आप स्वयं ही अपनी माया का विस्तार संसार में करते हैं ॥ १८ ॥

मोहजाल में समाविष्ट हुए लोग आपको सगुण जानते हैं। देहरूपी घर में अधिष्ठित हो आप अपनी माया का विस्तार करते हैं, जिससे मनुष्य मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, अहंकार से ऐसा कहने लगता है ॥ १६ ॥

हे महादेव ! जब निरीश्वर आप सृष्टि में अपनी माया का विस्तार करते हैं तो प्राणियों को स्त्री-पुत्र आदि का ममत्व होने लगता है ॥ २० ॥

हे अनन्त पराक्रम वाले संसार के स्वामी ! पहले मैं अपनी अज्ञानता के वशीभूत हो आपके अन्त को जानने की इच्छा करके अनन्त आकाश में गया ॥ २१ ॥

मैं ऊपर जाता हुआ ब्रह्माण्ड की दीवार तक पहुँच गया। हे जगदीश्वर ! वहाँ मुझे परमाश्चर्य दृष्टिगत हुआ ॥ २२ ॥

मैं आपके अनन्त स्वरूप लिंग में प्रविष्ट हो गया। योग माया से समाच्छन्न हो जाने से मैं कुछ न जान सका ॥ २३ ॥

हे शिव ! मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ मुझे जाना है और क्या मेरी मति है यह कुछ न जानकर मेरे नौ करोड़ एवं सैकड़ों हजार वर्ष व्यतीत हो गये ॥ २४ ॥

वहाँ ही विचरण करते हुये मैंने एक बड़ा कौतुक देखा। उसी महालिंग में करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमान थे ॥ २५ ॥

दोधूयमाना ह्यणुका गवाक्षे भानुभिर्यथा ।
तान् दृष्ट्वाश्चर्य्यरूपान्वै विस्मितश्चाभवं ततः ॥ २६ ॥

क्षणेन तस्मिन्नेकस्मिन् ब्रह्माण्डे ह्यगमं तदा ।
तत्र दृष्टा महादेव पारावाराः सहस्रशः ॥ २७ ॥

द्वीपाश्चैवानेकविधा नानाजनपदान्विताः ।
नद्यः सरांसि विविधा नानाकारजनास्तथा ॥ २८ ॥

अहं तत्र महादेव दृष्टो नार्य्या क्वचित्तथा ।
चतुर्मुखं चतुर्बाहुं दण्डपुस्तकधारिणम् ॥ २९ ॥

जग्राह पाणिनैकेन विस्मिता मां विलोक्य ह ।
कोऽयं कीटो हि कुत्रैते भवन्तीति जगाद ह ॥ ३० ॥

अन्याश्चापि हि तादृश्यः समाजग्मुः सुविस्मिताः ।
हस्ते हस्ते समाधाय लालयामासुरंजसा ॥ ३१ ॥

ततः कतिपयैर्देव दिवसैर्मोचितस्त्वहम् ।
परं खेदसमापन्नो मदहीन इभो यथा ॥ ३२ ॥

स्तुतवान्मनसा त्वां हि परं निर्वेदमागतः ।
पुनः क्षणेन तत्रैव निद्रावश इव स्थितः ॥ ३३ ॥

तत्रैव च समायातो यत्राहं मोहितः पुरा ।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं त्वन्मायाकृतमीश्वर ॥ ३४ ॥

विषादमगमं देव महिम्ने ते क्व विस्तरः ।
नान्तं न चादिं मध्यं ते न वेद्मि परमेश्वर ।
तस्मात्ते शतशो देव नमस्कुर्यां सुरेश्वर ॥ ३५ ॥

पुरा त्वया महादेव रक्षितास्त्रैपुराद्भयात् ।
पुनरधकभीतेस्तु रक्षिताः स्म महेश्वर ॥ ३६ ॥

इदानीमपि देवेश रक्ष दुर्वाससो भयात् ।
नष्टभागा वयं सर्वे भवामो हतचेतनाः ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार सूर्य की किरणें गवाक्षों में परमाणुओं को कंपाती हैं, इसी प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों को उस लिंग में देख कर मुझे परम आश्चर्य हुआ ॥ २६ ॥

उस समय क्षणभर में मैं उन ब्रह्माण्डों में से एक ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हो गया। हे महादेव ! वहाँ मैंने हजारों अपार समुद्र देखे ॥ २७ ॥

अनेक जनपदों से युक्त अनेक द्वीप, विविध नदियाँ, तालाब तथा अनेक आकार के मनुष्य देखे ॥ २८ ॥

हे महादेव ! चार मुख, चार भुजा, दण्ड और पुस्तक धारण किये हुये मुझ को एक स्त्री ने कहीं देखा ॥ २९ ॥

उस स्त्री ने विस्मित होकर एक हाथ से मुझे पकड़ लिया। मुझे देखकर वह कहने लगी कि यह कैसा कीट है। इस प्रकार के कीट कहाँ होते हैं ॥ ३० ॥

अन्य स्त्रियाँ भी वहाँ आकर विस्मित होकर उसी के समान कहने लगीं। एक स्त्री दूसरे के हाथ में रख-रख कर प्रसन्न हो मेरा लाड़ करने लगीं ॥ ३१ ॥

हे देव ! उसके बाद कुछ दिनों में उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मदहीन हुये हस्ती के समान मुझे परम खेद हुआ ॥ ३२ ॥

मैं वहाँ अत्यन्त खेद से पीड़ित हो मन से आपकी स्तुति करने लगा। पुनः क्षणभर में वहीं निद्रित सा हो बैठ गया ॥ ३३ ॥

और मैं उसी स्थान पर आ गया जहाँ मैं पहले मोह को प्राप्त हुआ था। हे महेश्वर ! आपकी माया के द्वारा किये गये इस महान् आश्चर्य को देखकर···॥ ३४॥

मुझे बड़ा दुःख हुआ। हे देव ! आपकी महिमा का विस्तार कहाँ मिल सकता है ? हे परमेश्वर ! मैं आपकी महिमा का आदि अन्त तथा मध्य नहीं जान सकता। इसलिए आपको हे सुरेश्वर ! सैकड़ों बार नमस्कार है ॥ ३५ ॥

हे महादेव महेश्वर ! आपने पहले त्रिपुरासुर और अन्धकासुर के भय से हमारी रक्षा की थी ॥ ३६ ॥

हे देवेश ! इस समय भी आप दुर्वासा ऋषि के भय से हमारी रक्षा करो। अपने भाग के न मिलने मे हमारी चेतना का नाश हो रहा है ॥ ३७ ॥

इन्द्रोऽपि राज्यतो भ्रष्टो लक्ष्म्या त्यक्तोऽतिदुःखितः।
उद्धरस्व महादेव विपदब्धौ निमज्जितान् ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच—

तत इन्द्रोऽपि तरसा परिक्रम्य प्रणम्य च।
भक्त्या परमया युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ३९ ॥

इन्द्र उवाच—

नमः सहस्रशिरसे सहस्राक्षाय वै नमः।
नमः सहस्रपादाय सहस्रबाहवे नमः ॥ ४० ॥

शाश्वताय त्रिनेत्राय तत्पुरुषाय वै नमः।
सप्तास्यसप्तहस्ताय सप्तभिर्वर्जिताय च ॥ ४१ ॥

सप्तजिह्वाय सप्ताय सप्तपंचरताय च।
पंचवक्त्राय क्रौंचस्य नाशकाय नमो नमः ॥ ४२ ॥

पंचेषुदमनायाशु पंचवेदपराय च।
नमो वेदान्तवेद्याय नमः सर्वहराय च ॥ ४३ ॥

नमः पर्वतवासाय भूतपरिदृढाय च।
नमः कोटरलीनाय महानादाय वै नमः ॥ ४४ ॥

फणीन्द्रशतशोभाय भालचन्द्राय वेधसे।
वह्न्यर्कशशिनेत्राय गंगाशेखरधारिणे ॥ ४५ ॥

तमोगुणप्रधानाय निर्लज्जाय कपालिनें।
नमः परशुहस्ताय नमो नृभुण्डमालिने ॥ ४६ ॥

स्थूललोम्ने नमस्तुभ्यं नीलकण्ठाय ते नमः।
व्याघ्रचर्मधारयित्रे करिचर्मधृते नमः ॥ ४७ ॥

नमो वृषभवाहाय शिवाय परमात्मने।
जलंधरनिहंत्रे ते त्रिपुरान्तकराय च।
नमोंऽधवधकर्त्रे ते कैलासस्थाय वै नमः ॥ ४८ ॥

इन्द्र भी राज्य से भ्रष्ट हो गया है। लक्ष्मी ने उसे छोड़ दिया है। हे महादेव ! विपत्ति के समुद्र में डूबने वाले हमारा उद्धार करो ॥ ३८ ॥

ईश्वर ने कहा—

उसके बाद इन्द्र भी यथाशीघ्र परिक्रमा और प्रणाम करके परम भक्ति से सम्पन्न हो स्तुति करने के लिए उपक्रम करने लगे ॥ ३९ ॥

हजारों सिर वाले, हजारों आँखों वाले, हजारों पैर वाले, हजारों हाथों वाले आपको नमस्कार है ॥ ४० ॥

आप शाश्वत (अविनाशी) हैं, आपके तीन नेत्र हैं, आप तत्पुरुष हैं, आपके सात मुख और सात हाथ हैं। परन्तु आप सातों से वर्जित हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥

आपकी सात जिह्वा हैं, सात स्वरूप आपके ही हैं, आप सात और पांच संख्याओ में रत रहने वाले हैं, आपके पांच मुख हैं। आप क्रौंच दैत्य का नाश करने वाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥

आप काम के नाशक, पांच वेदों को जानने वाले, वेदान्त वेद्य तथा समस्त पापों का हरण करने वाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥

आप पर्वतवासी हैं, भूतों से परिवृत हैं, कोटर में रहने वाले हैं, बड़े-बड़े शब्दों से आपका स्थान गुंजित रहता है। आपको नमस्कार है ॥ ४४ ॥

सैकड़ों सर्पों से आप सुशोभित हैं, सिर पर चन्द्रमा विराजमान है, अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा आपके तीन नेत्र हैं, आप सिर पर गंगा को धारण करने वाले हैं; आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥

आप तमोगुण प्रधान हैं; लज्जा नाम की वस्तु आप में विद्यमान नहीं है, कपाल को आपने धारण किया है, आपने परशु हाथ में लिया हुआ है, मनुष्य की मुण्डमाला धारण करते हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४६ ॥

आपके लोम स्थूल और कण्ठ आपका नीला है। आपके लिए नमस्कार है। आपने व्याघ्रचर्म तथा हस्तिचर्म धारण किया हुआ है। आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥

आपका वाहन बैल है, आप कल्याण करने वाले परमात्मा हैं, आप जलन्धर को मारने वाले और त्रिपुर का अन्त करने वाले हैं। आप अन्धक को मारने वाले तथा कैलास में वास करने वाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥

ईश्वर उवाच—

इति स्तुतोऽहमिन्द्रेण देवैः सर्वैश्व चण्डिके।
विष्णुना शतशश्चैव स्तुतोऽहं प्रभविष्णुना ॥ ४९ ॥

ततस्तुष्टो वरं प्रादां मनोऽभिलषितं शिवे।
भो भो वासव वृत्रघ्न त्वदर्थं वै समागताः ॥ ५० ॥

देवाः सर्वे महात्मानो विभूत्यर्थं तथात्मनः।
इदं मन्नेत्रसलिलं गृहाण सुरनायक ॥ ५१ ॥

निक्षिप्य सागरे तूर्णं मंथयध्वं सुरोत्तमाः।
सर्वेषामुपकाराय स्थितये जगतां तथा ॥ ५२ ॥

मंदरं च तथा कृत्वा मंथानं नेत्रवासुकिम्।
पृष्ठे धारयिता विष्णुः प्रभविष्णुः परात्परः ॥ ५३ ॥

नोचेत्पातालनिलये गमिष्यति स भूधरः।
लक्ष्मीश्च कल्पवृक्षश्च जनयिष्येत्तदा खलु ॥ ५४ ॥

तेन वै कल्पवृक्षेण नित्यं तृप्ता भविष्यथ।
यद्यदिच्छत तत्सर्वं शीघ्रं सम्पश्यते किल ॥ ५५ ॥

लक्ष्मीश्चापि समग्रा वै विष्णोश्च परमात्मनः।
आगमिष्यति त्रैलोक्यं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ५६ ॥

अन्यानि चापि रत्नानि भविष्यन्ति ततः परम्।
गच्छध्वं सागरस्यान्ते मथनाय सुरोत्तमाः ॥ ५७ ॥

इत्युक्त्वा तत्र देवेशि सोऽन्तर्द्धानं गतो ह्ययम्।
तेऽपि देवास्तत्र गत्वा ममंथुर्वरुणालयम् ॥ ५८ ॥

प्राप्तवन्तश्च रत्नानि कल्पादीनि महेश्वरि।
कल्पेश्वरत्वं तत्रापि गतोऽहं वरवर्णिनि ॥ ५९ ॥

उत्पत्तिः कल्पनाथस्य लक्ष्म्याश्चापि महेश्वरि।
ब्रह्मणा च यथाहं वै वासवेन यथा स्तुतः।
एतत्सर्वं समासेन कथितं ते महेश्वरि ॥ ६० ॥

ईश्वर ने कहा—

हे चण्डिके ! इस प्रकार मेरी इन्द्र ने, समस्त देवताओं ने तथा सामर्थ्यशाली विष्णु भगवान् ने सैकड़ों बार स्तुति की ॥ ४६ ॥

हे शिवे ! तब मैंने प्रसन्न होकर उन्हें मनोभिलषित वर प्रदान किया। हे वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र ॥ ५० ॥

ये सब देवता और महात्मा आपके कल्याण एवं ऐश्वर्य की कामना से यहाँ आये हैं। हे सुरेन्द्र ! इस मेरे नेत्र जल को ग्रहण करो ॥ ५१ ॥

हे देवताओ ! शीघ्र इसे समुद्र में डालकर उसका मंथन करो। सबके उपकार के लिए तथा संसार की स्थिति के लिए ॥ ५२ ॥

मन्दराचल को रई एवं वासुकि नाग को डोरी बनाओ। परम से भी परम सामर्थ्यशाली विष्णु उस पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करेंगे ॥ ५३ ॥

अन्यथा वह पहाड़ पाताल में चला जायेगा। इस प्रकार के उद्यम से निश्चय ही यह लक्ष्मी और कल्पवृक्ष को उत्पन्न करेगा ॥ ५४ ॥

उस कल्पवृक्ष के द्वारा भविष्य में आप तृप्त होते रहोगे। जो-जो आपकी इच्छा होगी वह आपको मिलता रहेगा ॥ ५५ ॥

परमात्मा विष्णु भगवान् की कृपा से तथा मेरे प्रसाद से लक्ष्मी तीनों लोकों में आ जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥

फिर इसके बाद अन्य रत्नों का भी प्रादुर्भाव होगा। हे देवताओ ! आप समुद्र-मन्थन के लिए समुद्र के तट पर चले जाओ ॥ ५७ ॥

हे देवेशि ! यह कह कर मैं अन्तर्धान हो गया। वे देवता भी वहाँ समुद्र-मन्थन के लिए चले गये ॥ ५८ ॥

हे महेश्वरि ! उन्हें उस स्थान में कल्पवृक्ष आदि रत्नों का लाभ हुआ। हे वरवर्णिनि ! वहाँ मैंने कल्पेश्वरत्व को प्राप्त किया ॥ ५९ ॥

हे महेश्वरि ! कल्पनाथ की उत्पत्ति, लक्ष्मी की प्राप्ति, ब्रह्मा और इन्द्र कृत स्तुति का वृत्तान्त मैंने, हे देवि ! आपसे संक्षेप में कह दिया है ॥ ६० ॥

श्रुत्वेमां तु कथां दिव्यां पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

प्रातः प्रातः समुत्थाय पठते यः समाहितः ।
इह लोके परान् भोगान् प्राप्य चान्ते शिवो भवेत् ॥ ६२ ॥

रोगार्त्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
अतः परं महादेवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासमाहात्म्ये कल्पेश्वरोत्पत्तिर्नाम
चतुःपंचाशोऽध्यायः

पंचपंचाशोऽध्यायः

कल्पेश्वरमाहात्म्यसङ्कीर्तनम्

पार्वत्युवाच—

पुरा एते[1] महेशान यानि तीर्थानि तत्र वै ।
तानि मे वद भक्तायै लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि वरारोहे तीर्थानि प्रवराणि वै ।
समासेन प्रवक्ष्यामि शिवलोकप्रदानि च ॥ २ ॥

मल्लिगदक्षिणे पार्श्वे कापिलं लिंगमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण मम लोके महीयते ॥ ३ ॥

तदधो गिरिकन्ये वै नदी हैरणमती मता ।
तस्या वै दक्षिणे तीरे भृंगीश्वर इतीरितः ॥ ४ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण कल्पं शिवपुरे वसेत् ।
इदं क्षेत्रं महेशानि क्रोशद्वयसमाहितम् ॥ ५ ॥

---

१. पुराएते ।

पाप नाश करने वाली, सब कामों को देने वाली, इस दिव्य कथा को सुनने से पुत्र चाहने वाले को पुत्र और धन चाहने वाले को धन प्राप्त होता है ।। ६१ ।।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर चित्त एकाग्र करके इस वृत्तान्त को पढ़ता है, वह इस लोक में अनेक भोगों को भोग कर अन्त में शिव रूप हो जाता है ।। ६२ ।।

रोग पीड़ित व्यक्ति रोग से मुक्ति प्राप्त करता है तथा बन्धन में पड़ा व्यक्ति बन्धन से मुक्त हो जाता है। अब हे देवि ! आपकी और क्या सुनने की इच्छा है ।। ६३ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास माहात्म्य के कल्पेश्वर की उत्पत्ति नाम का चौवनवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ५५

कल्पेश्वर माहात्म्य का वर्णन

पार्वती ने कहा—

हे महेश ! वहाँ और भी जितने प्राचीन तीर्थ हैं, उन सबका वर्णन आप मुझ भक्त के लिए लोकों की हित कामना से कीजिए ।। १ ।।

ईश्वर ने कहा—

सुन्दर जघनों वाली हे देवि ! जितने भी सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं और जो शिवलोक को प्रदान करने वाले हैं, उनका वर्णन मैं संक्षेप में करूंगा। तुम सुनो ।। २ ।।

मेरे लिंग के दक्षिण भाग में एक कपिल नाम का उत्तम लिंग है। इसके दर्शन करने मात्र से मेरे लोक की प्राप्ति होती है ।। ३ ।।

हे गिरिपुत्रि ! उसके नीचे के भाग में हैरण्मती नाम की नदी है। उसके दक्षिण तट पर एक भृङ्गीश्वर नाम का शिवलिंग है ।। ४ ।।

जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य एक कल्प तक शिवपुर में निवास करता है। हे महेशानि ! इस क्षेत्र का विस्तार दो कोस है ।। ५ ।।

अग्नितीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यत्र तत्र स्थले देवि शिवलिंगान्यनेकशः ।। ६ ।।

तस्माद्वै पश्चिमे भागे नाम्ना गोस्थलकं स्मृतम् ।
तत्राहं सर्वदा देवि निवसामि त्वया सह ।। ७ ।।

नाम्ना पश्वीश्वरः ख्यातो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ।
त्रिशूलं मामकं तत्र चिह्नमाश्चर्य्यरूपकम् ।। ८ ।।

ओजसा चेच्चाल्यते तन्नहि कम्पति कर्हिचित् ।
कनिष्ठया तु यत्स्पृष्टं भक्त्या तत्कंपते मुहुः ।। ९ ।।

अन्यच्च सम्प्रवक्ष्यामि चिह्नं तत्र सुरेश्वरि ।
एकस्तत्र पुष्पवृक्षोऽकालेऽपि पुष्पितः सदा ।। १० ।।

अत्र वै पंचरात्रं यो जपं कुर्यात्समाहितः ।
स सिद्धिं महतीं याति देवैरपि दुरासदाम् ।। ११ ।।

प्राणानत्र त्यजेद्यस्तु स लोके मामके वसेत् ।
ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा गुरुतल्परतोऽपि वा ।। १२ ।।

सोऽपि गच्छति देवेशि मामन्यस्य तु का कथा ।
तस्मात्पूर्वप्रदेशे वै वसामि झषकेतुहा ।। १३ ।।

मया तत्र पुरा दग्धो झषकेतुर्महेश्वरि ।
झषकेतुहरो नाम्ना सर्वतीर्थफलप्रदः ।। १४ ।।

पुना रत्या तोषितोऽहं पुनर्जन्मनिरूपकम् ।
प्रादां तत्परमेशानि तद्भक्त्या तत्र संस्थितः ।। १५ ।।

रतीश्वर इति ख्यातो मम संगमदायकः ।
रतिकुण्डं च तत्रास्ति[1] स्नानारन्मल्लोकदायकम् ।। १६ ।।

१.नाम्ना ।

अग्नि तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्ति पाता है। इस स्थान में स्थान-स्थान पर अनेक शिवलिंग विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

उसके पश्चिम भाग में गोस्थल नाम का स्थान है। हे देवि ! हमेशा वहाँ मैं आपके साथ निवास करता हूँ ॥ ७ ॥

मैं वहाँ पश्वीश्वर नाम से प्रसिद्ध हूँ और भक्तों की प्रीति बढ़ाने वाला हूँ। वहाँ मेरा चिह्न स्वरूप परम आश्चर्य को देने वाला एक त्रिशूल है ॥ ८ ॥

यदि बलपूर्वक भी उसे हिलाने का प्रयत्न किया जाय, तब भी वह चलायमान नहीं होता। यदि भक्तिपूर्वक कनिष्ठ अंगुली से भी उसे स्पर्श किया जाय तब वह बारम्बार कम्पित होता रहता है ॥ ९ ॥

और हे सुरेश्वरि ! वहाँ अन्य चिह्नों को भी मैं कहूँगा। एक वहाँ पुष्प का वृक्ष है, जो असमय में भी पुष्पित रहता है ॥ १० ॥

यहाँ जो मानव चित्त को एकाग्र कर पांच रात्रि तक जप करता है, उसे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो देवताओं को भी मिलनी दुर्लभ हैं ॥ ११ ॥

जो इस स्थान में अपने प्राणों का त्याग करता है, वह मेरे लोक में निवास करता है। चाहे कोई ब्रह्महत्या का पाप करने वाला हो, चाहे मदिरा पीने वाला हो और चाहे गुरु की शय्या में सोने वाला हो ॥ १२ ॥

वे भी मेरे लोक को जाते हैं, अन्य की तो बात ही क्या है ? उसके पूर्व भाग में कामदेव का विनाशक मैं निवास करता हूँ ॥ १३ ॥

हे महेश्वरि ! मैंने पहले वस कामदेव को भस्म कर दिया था। वहाँ झषकेतु-हर नाम से मेरी प्रसिद्धि है, जिसके दर्शन करने से सम्पूर्ण तीर्थों के फल का लाभ होता है ॥ १४ ॥

हे परमेशानि ! कामदेव की पत्नी ने पुनः वहाँ मेरी आराधना की थी ! मैंने उसे कामदेव के पुनर्जन्म होने का वर दिया और उसकी भक्ति से वहाँ ही स्थित रहा ॥ १५ ॥

तब मेरा वहाँ रतीश्वर नाम विख्यात हुआ, जो कि बिछुड़ों को मिलाने वाला है। वहाँ एक रतिकुण्ड है, जिसमें स्नान करने से मेरे लोक की प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

इति ते कथितं देवि कल्पक्षेत्रस्य वैभवम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कल्पेश्वरमाहात्म्यं नाम
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशोऽध्यायः

केदार-मध्यम-तुङ्ग-कल्प-रुद्रालयेति पञ्चकेदारमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

पंच स्थानानि देवेशि कथितानि तवानघे।
केदारं मध्यमं तुंगं कल्पेश्वरमहालयम् ॥ १ ॥

पंच तीर्थानि यो देवि गच्छते[1] भक्तिसंयुतः।
प्रसंगाद्वा वलात्काराज्ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ॥ २ ॥

न वै तत्सदृशो देवि पुण्यात्मा नात्र संशयः।
तस्य दर्शनमात्रेण पूताः स्युः पापयोनयः ॥ ३ ॥

ब्रह्माद्या लोकपालाश्च ते नमन्ति महेश्वरि।
इह चापि वरान् भोगान् मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

पंचकेदारमाहात्म्यं शृणुयाद्यः समाहितः।
सर्वतीर्थेषु स स्नातः पूजिताः सकलाः सुराः ॥ ५ ॥
यद्यदिच्छति तत्सर्वं प्राप्नोति गिरिनन्दिनि।
प्रातः स्मरति यो नित्यं तीर्थानां पंचकं शुभम् ॥ ६ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छति[1] परां गतिम्।
इति ते कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलाशमाहात्म्ये पंचकेदार-
माहात्म्यं नाम षट्पचाशोऽध्यायः ।

---

१. गच्छति ।

इस प्रकार हे देवि ! कल्पक्षेत्र के वैभव का वर्णन किया गया है। इसके सुनने से मनुष्य सब पापों से दूर हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। १० ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कल्पेश्वर
माहात्म्य नाम का पचपनवां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ५६

केदारनाथ-मध्यमेश्वर-तुंगनाथ-कल्पेश्वर-रुद्रनाथ इन पञ्च केदारों के माहात्म्य का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे निष्पाप देवि ! मैंने केदार, मध्यम, तुंग, कल्पेश्वर और महालय इन पांच क्षेत्रों का वर्णन किया है ।। १ ।।

हे देवि ! जो मानव भक्ति से युक्त होकर अथवा किसी प्रसंग से, जबरदस्ती ज्ञान या अज्ञान से भी इन तीर्थों की यात्रा करता है ।। २ ।।

उसके सदृश हे देवि ! कोई पुण्यातमा नहीं हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके दर्शन मात्र से पाप योनियाँ पवित्र हो जाती हैं ।। ३ ।।

हे महेश्वरि ! ब्रह्मा आदि देवता और लोकपाल भी वहाँ आकर नमस्कार करते हैं। जो मानव इस तीर्थ का दर्शन करता है, वह इस लोक में अनेक सुखों को भोग कर मरने के बाद मोक्ष का लाभ प्राप्त करता है ।। ४ ।।

जो एकाग्र चित्त हो पांच केदार क्षेत्रों का माहात्म्य सुनता है. उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया है, तथा सब देवताओं की पूजा करली है ।। ५ ।।

हे पर्वतबालिके ! वह जो चाहता उसे प्राप्त कर लेता है। जो मानव प्रातः-काल नित्य शुभ को देने वाले इन पांच तीर्थों का स्मरण करता है ।। ६ ।।

वह सब पापों से मुक्ति पाकर परम गति को प्राप्त करता है। हे देवि ! इस प्रकार पांच केदार का वर्णन मैंने आपसे किया, अब आप बताइये कि आपकी और क्या सुनने की इच्छा है ।। ७ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-माहात्म्य
पांच केदार माहात्म्य नाम का छप्पनवां अध्याय पूरा हुआ ।

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

बदरीक्षेत्रस्य स्थूलसूक्ष्मादिभेदमाननिर्देशपुरस्सरं माहात्म्यवर्णनम्

अरुन्धत्युवाच—

धन्यास्मि कृतपुण्यास्मि यस्या मे पतिरीदृशः ।
मत्समा नास्ति त्रैलोक्ये देवी मानुषी हि वा ।। १ ।।

पिबन्त्यास्त्वन्मुखाम्भोजान्तृप्तिर्नास्ति कथामृतम् ।
न मां क्षुधा न मां तृष्णा बाधते भगवन्मुने ।। २ ।।

बदरीवनमाहात्म्यं वद भर्त्तः कृपान्वितः ।
यथा प्राह महादेवो महेशानीं तपोनिधे ।। ३ ।।

कियन्मानं तु तत्क्षेत्रं किं फलं तत्र जायते ।
केन केन तपस्तप्तं वदर्य्याश्रममण्डले ।। ४ ।।

एतत्सर्वं समासेन कथयस्व प्रसादतः ।
यत्र गंगा ब्रह्मरूपा संस्थिताऽघौघनाशिनी ।। ५ ।।

सूत उवाच—

इति पृष्टो ह्यरुन्धत्या भगवान् द्रुहिणात्मजः ।
क्षणं ध्यात्वा नमस्कृत्य महेशं प्राह सुन्दरीम् ।। ६ ।।

वसिष्ठ उवाच—

शृण्वरुन्धति वक्ष्यामि यथाह भगवाञ्छिवः ।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि सावधानावधारय ।। ७ ।।

श्रुत्वा तत्पंचमाहात्म्यं पुनः पप्रच्छ पार्वती ।
महादेवं महात्मानं भक्तितत्परमानसा ।। ८ ।।

अध्याय ५७

बदरी क्षेत्र का उसके स्थूल-सूक्ष्म आदि भेद से परिमाण का वर्णन करते हुये माहात्म्य का वर्णन

अरुन्धती ने कहा—

आप मुझे ऐसे पति मिले हैं, जिससे मैं धन्य हूँ और कृतपुण्य हूँ । तीनों लोकों में न कोई देवी और न कोई मानुषी ही मेरे समान है ।। १ ।।

आपके कमल रूपी मुख से निर्गत अमृत रूपी कथाओं को पीने से मेरी तृप्ति नहीं होती। हे भगवन् ! मुने ! मुझे न भूख और न प्यास ही बाधित करती है। ।। २ ।।

हे पति ! अब आप बदरीवन का माहात्म्य कृपा करके कहिये । जिस प्रकार शिव ने पार्वती के प्रति वर्णन किया था । हे तपोनिधे ! वह सब आप मुझ से कहिये ।। ३ ।।

उस क्षेत्र का कितना विस्तार है और वहाँ की यात्रा से किस फल की प्राप्ति होती है और किस-किस ने बदरिकाश्रम क्षेत्र में तपस्या की है ।। ४ ।।

यह सब आप संक्षेप से उस स्थान के माहात्म्य को कहने की कृपा करो, जहाँ समस्त पापप्रक्षालिनी ब्रह्मरूपा गंगा स्थित है ।। ५ ।।

सूत जी बोले—

इस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र भगवान् वसिष्ठ ने अरुन्धती के पूछने पर क्षणभर तक महादेव का ध्यान करके उन्हें नमस्कार किया और तब अपनी पत्नी अरुन्धती से कहा ।। ६ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

हे अरुन्धति ! जिस प्रकार भगवान् शिव ने कहा था, उसी प्रकार से मैं आपसे वर्णन करूँगा, अतः आप इस समय सावधान होकर सुनें ।। ७ ।।

पंच केदार के माहात्म्य को सुनने के बाद फिर पार्वती ने भक्ति में तत्पर होकर अपने पति महात्मा महादेव से पूछा ।। ८ ।।

बदरीवनमाहात्म्यं कथयामास पार्वतीम् ।
तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ।। ९ ।।

कण्वाश्रमं समारभ्य यावन्नन्दगिरिर्भवेत् ।
तावत्क्षेत्रं परं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।। १० ।।

कण्वो नाम महातेजा महर्षिर्लोकविश्रुतः ।
तस्याश्रमपदे नत्वा भगवन्तं रमापतिम् ।। ११ ।।

दुरात्मानोऽपि गच्छन्ति पदं दुःखविवर्जितम् ।
नन्दप्रयागके स्नात्वा सम्पूज्य च रमापतिम् ।। १२ ।।

किं किं न जायते तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
धन्या कलियुगे घोरे ये नरा बदरीं गताः ।। १३ ।।

यत्र ब्रह्मादयो देवा हरिभक्तिरताः प्रिये ।
निवसन्ति स्थले रम्ये नानातीर्थविराजिते ।। १४ ।।

धन्यः स एव लोकेय् यो गच्छेद् वदरीं नरः ।
न तस्य पुण्यमहिमा वर्णनाय च शक्यते ।। १५ ।।

मनसापि च ये लोका वदरीवनमाश्रिताः ।
ते वै वासफलं देवि प्राप्नुवन्ति न संशयः ।। १६ ।।

ये तत्र वासिनो लोका वदर्य्याश्रममण्डले ।
विष्णुरूपधराः सर्वे भवन्ति वरवर्णिनि ।। १७ ।।

चतुर्धेदं[1] समाख्यातं क्षेत्रं परमपावनम् ।
स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं चेति प्रकीर्तितम् ।। १८ ।।

योजनत्रयविस्तीर्णं दीर्घं द्वादशयोजनम् ।
अगम्यं पापिनां तद्वै महदैश्वर्यदायकम् ।। १९ ।।

मनसापि स्मरेद्यो वै विशाले बदरीति च ।
तद्वासी सोऽपि विज्ञेयो मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ।। २० ।।

---

१. इदं चतुर्थं।

तब शंकर ने बदरीवन के माहात्म्य का पार्वती से वर्णन किया। उसी पाप-नाशक और पुण्यशाली माहात्म्य का मैं आपसे वर्णन करता हूँ ॥ ९ ॥

कण्व ऋषि के आश्रम से लेकर नन्द पर्वत तक जितना क्षेत्र है, वह परम पुण्यदायक तथा भुक्ति-मुक्ति को देने वाला है ॥ १० ॥

महातेजस्वी महर्षि कण्व लोक में विख्यात हैं। उनके आश्रम में लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान् को प्रणाम करके ॥ ११ ॥

दुरात्मायें भी दुःखों से मुक्ति पाकर परम पद को पाते हैं। नन्दप्रयाग में स्नान करके और विष्णु की पूजा करके ॥ १२ ॥

क्या प्राप्त नहीं हो सकता ? मुक्ति तो ऐसे व्यक्ति के कर में स्थित हो जाती है। वे लोग धन्य हैं, जो घोर कलियुग में भी बदरीवन की यात्रा करते हैं ॥ १३ ॥

हे प्रिये ! यहाँ ब्रह्मा आदि देवता हरिभक्ति में रत रहते हैं। वे अनेक तीर्थों से विराजित रम्य स्थल में निवास करते हैं ॥ १४ ॥

इस सुरम्य बदरी तीर्थ में जो मनुष्य जाते हैं, वे ही मनुष्य लोकों में धन्य हैं। उस तीर्थ की पुण्य महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १५ ॥

जो लोग मन से भी बदरीवन का आश्रय लेते हैं, हे देवि ! वे भी बदरीवन में निवास करने का फल प्राप्त करते हैं, इसमें लेश भी सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥

हे सुन्दरि ! जो मनुष्य उस बदरीवन में निवास करते हैं, वे सब विष्णु रूप को धारण करते हैं ॥ १७ ॥

यह परमपावन क्षेत्र चार प्रकार का कहा गया है। वह स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और शुद्ध रूप में वर्णित किया गया है ॥ १८ ॥

तीन योजन विस्तृत एवं बारह योजन लम्बा यह क्षेत्र पापियों के लिए अगम्य है और अन्य लोगों के लिए महान् ऐश्वर्य को देने वाला है ॥ १९ ॥

मन से भी जो मानव बदरीनाथ जी के विशालत्व का स्मरण करता है, उसे बदरीवन का ही निवासी समझना चाहिए, मरण के बाद उसे मुक्ति का लाभ प्राप्त होता है ॥ २० ॥

गंधमादनबदरीनरनारायणाश्रमः ।
कुबेरादिशिलारम्यो नानातीर्थविराजितः ।। २१ ।।

सर्वैर्देवगणैर्युक्तो नानामुनिगणान्वितः ।
चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ।। २२ ।।

तप्तोदकमयी धारा वह्नितीर्थसमुद्भवा ।
वर्त्तते तत्र सुभगे देवानामपि दुर्ल्लभा ।। २३ ।।

बदरीनाथनैवेद्यं यो मोहात्तु परित्यजेत् ।
चांडालादधभो ज्ञेयः सर्वधर्म बहिष्कृत ।। २४ ।।

लक्ष्मीः पचति नैवेद्यं भुंक्ते नारायणः स्वयम् ।
चाण्डालेनापि संस्पृष्टं न दोषाय भवेत्कचित् ।। २५ ।।

येन भुंक्तं तु नैवेद्यं श्रीविष्णोः परमात्मनः ।
सैव लोके परब्रह्मस्वरूपो नात्र संशयः ।। २६ ।।

बदरीनाथमूर्त्तिं वै मनसापि स्मरेत्तु यः ।
तेन तप्तं तपस्तीव्रं दत्ता तेन धराखिला ।। २७ ।।

माषमात्रं तु यो दद्यात्सुवर्णं रजतं हि वा ।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ।। २८ ।।

कणमात्रमपि जलं पितॄनुदिश्य येन वै ।
दत्तं तेन कृतं सर्वं पितॄणां मुक्तिकारणम् ।। २९ ।।

लोभमोहसमाविष्टे कलौ धर्मविवर्जिते ।
नरास्त एव धन्याः स्युर्बदरीं ये गताः प्रिये ।। ३० ।।

गमिष्यामि विशालां वै यो वै कथयतेऽनिशम् ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति बदरीनाथदर्शनात् ।। ३१ ।।

बदरीवासिनो लोका विष्णुतुल्या न संशयः ।
येषां दर्शनमात्रेण पापराशिः प्रणश्यति ।। ३२ ।।

गन्धमादन, बदरीवन, नरनारायणाश्रम, कुबेरशिला आदि सुरम्य नाना तीर्थों से विराजित ॥ २१ ॥

समस्त देवताओं से युक्त और नाना मुनिजनों से युक्त, यह बदरीवन है। मैं इस स्थान के चिह्नों का वर्णन करूँगा, जिससे आपको पहचान हो जाय ॥ २२ ॥

वह्नितीर्थ से उत्पन्न यहाँ तप्त जल की धारा विद्यमान है। हे देवि ! यह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥ २३ ॥

बदरीनाथ के नैवेद्य को जो मोह से त्याग देता है, उसको चाण्डाल एवं अधम समझना चाहिए और उसे सर्व धर्मों से बहिष्कृत जानना चाहिए ॥ २४ ॥

बदरीनाथ में लक्ष्मी नैवेद्य पकाती है और नारायण स्वयं भोग लगाते हैं। उसे यदि चाण्डाल भी स्पर्श कर दे तो कोई दोष नहीं होता ॥ २५ ॥

जिसने परमातमा श्री विष्णु भगवान् के नैवेद्य को खाया है, वह लोक में पर-ब्रह्म स्वरूप हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥

जो बदरीनाथ की मूर्ति का मन से भी स्मरण करता है, उसने मानो अति कठिन तप किया है, तथा अखिल धरा का दान किया है ॥ २७ ॥

जो इस स्थान में एक माषा भर सोने अथवा चांदी का दान करता है, उसे हजारों जन्म तक दारिद्र्य रूपी यातनायें नहीं भोगनी पड़ती हैं ॥ २८ ॥

पितरों के उद्देश्य से जो कणमात्र भी जल-तर्पण करता है, मानो उसने अपने पितरों को मुक्ति दिलाने के लिए सभी कुछ कर लिया है ॥ २९ ॥

लोभ और मोह से समाविष्ट, धर्म रहित कलियुग में वे ही नर धन्य हैं, हे प्रिये ! जो बदरीनाथ की यात्रा करते हैं ॥ ३० ॥

जो कहते हैं कि मैं बदरीनाथ जाऊँगा, उन्हें भी बदरीनाथ जी के दर्शन से जो फल मिलता है, वही फल प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

बदरीनाथ में निवास करने वाले लोग असंशय ही विष्णु के तुल्य हैं, जिनके दर्शन करने से पाप की राशि का विनाश हो जाता है ॥ ३२ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घोरे कलियुगे नरैः ।
कर्त्तव्यो बदरीवासः पापिनामपि मुक्तिदः ॥ ३३ ॥

न काशी न तथा कांची मथुरा न गया तथा ।
प्रयागश्च तथाऽयोध्या नावंती कुरुजांगलम् ॥ ३४ ॥

अन्यान्यपि च तीर्थानि यथाऽसौ कलिनाशिनी ।
बदरीतरुणा या वै मण्डिता पुण्यगास्थली ॥ ३५ ॥

यत्र साक्षात्सरिच्छ्रेष्टा गंगा पापौघनाशिनी ।
विष्णोश्चाप्यत्र सान्निध्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३६ ॥

यत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च विष्णुश्चैव सुरोत्तमाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नरा गुह्यकास्तथा ॥ ३७ ॥

प्रमथा यक्षरक्षांसि वसंति हरिमानसाः ।
एतत्परात्मकं क्षेत्र न त्याज्यं मुक्तिमिच्छता ॥ ३८ ॥

यावत्प्राणाः शरीरेऽस्मिन् यावदिन्द्रियशुद्धता ।
गात्राणि यावच्छैथिल्यं नाप्नुवन्ति महात्मभिः[1] ।
बदरीगमने तावद्विलम्बो न विधेयकः ॥ ३९ ॥

चरणानां च साफल्यं कुर्यादबदरिकागमात् ।
नेत्रयोश्चैव साफल्यं कुर्याद्विष्णोश्च दर्शनात् ॥ ४० ॥

तस्य वै जन्म सफलं तस्यैव सफलं तपः ।
बदरीवनमध्यस्थो देव एव न संशयः ।
यस्तं नमति भक्त्या वै तस्य पापक्षयो भवेत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे बदरीमाहात्म्ये
सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ।

---

१. महेश्वरि ।

इसलिए घोर कलियुग में मनुष्यों को चाहिए कि वे बदरीनाथ में निवास करने का प्रयत्न करें। बदरीनाथ वास ही पापियों को मुक्ति देने वाला है ॥ ३३ ॥

काशी, कांची. मथुरा, गया, प्रयाग, अयोध्या, अवन्ती और कुरुजांगल तीर्थों की बदरीनाथ के साथ समानता नहीं है ॥ ३४ ॥

अन्य भी और अनेक तीर्थ हैं, जो कलि के दोष को नष्ट करने वाले हैं। वे भी पुण्य देने वाली इस बदरीपुरी की समानता नहीं कर सकते हैं ॥ ३५ ॥

जहाँ नदियों में श्रेष्ठ पापों को नाश करने वाली गंगा हैं और समस्त पापों नाशक विष्णु भगवान् का सानिध्य है ॥ ३६ ॥

जहां ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, उत्तम देवता, गन्धर्व, अप्सरायें, किन्नर, गुह्यक, यक्ष ॥ ३७ ॥

प्रथम (शिवगण), यक्ष और राक्षस नारायण में मन लगाये हुए निवास करते हैं। अतः मुक्ति के इच्छुक को चाहिए कि वह इस परमपावन क्षेत्र का परित्याग न करे ॥ ३८ ॥

जब तक इस शरीर में प्राण हैं, जब तक इन्द्रियों की शुद्धता बनी है, जब तक अंगों में शिथिलता नहीं आती. हे महेश्वरि ? तब तक विना विलम्ब किये महात्माओं को बदरीनाथ की यात्रा कर लेनी चाहिए ॥ ३९ ॥

बदरीवन की यात्रा से पैरों को सफल कर लेना चाहिए तथा बदरीश भगवान् के दर्शन से नेत्रों को सफल करना चाहिए ॥ ४० ॥

उसी का जन्म सफल है और उसी का ही तप सफल है जो बदरीवन में निवास करता है। बदरीवन में निवास का करने वाला निःसन्देह देव रूप हो जाता है। जो बदरीश भगवान् को नतमस्तक होकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है, उसके पाप क्षय हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में बदरी-माहात्म्य
प्रसङ्ग में सत्तावनवां अध्याय पूरा हुआ।

अष्टपंचाशोऽध्याय

बदरीमाहात्म्ये नन्दप्रयागादिविविधतीर्थवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच—

नन्दप्रयागे तु यथा बभूव मम वल्लभे ।
यज्ञो नन्दस्य राज्ञो वै तच्छृणुष्व समाहिता ॥ १ ॥

नन्दो नाम महाराजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
यज्ञं चकार विधिवद् बह्वन्नं भूरिदक्षिणम् ॥ २ ॥

तत्र ब्रह्मादयो देवा भागं स्वं स्वं पुरा ददुः ।
मूर्त्तिमन्तो महात्मानो भक्त्या तस्य महीपते ॥ ३ ॥

नाम चक्रुश्च सन्तुष्टास्तन्नाम्ना समलंकृतम् ।
संगमे स्नानमात्रेण शुद्धा नन्दालकनन्दयोः ॥ ४ ॥

तत्र सन्निहितो विष्णुर्मया सह शिवेन च ।
ततो योजनके देवि शिवलिंगं सुदुर्ल्लभम् ॥ ५ ॥

वसिष्ठेशो महादेवो मया संराधितः पुरा ।
तत्र प्राणव्यपायेन शिवो भवति निश्चितम् ॥ ६ ॥

ततः उत्तरदिग्भागे नदी परमपाविनी ।
विरही नाम विख्याता सर्वपापहरा मता ॥ ७ ॥

ततो वै विरहवती[1] नाम्ना नदी पापप्रमोचिनी ।
विरहेण पुरा यत्र सत्यास्तप्तं शिवेन हि ॥ ८ ॥

ततः प्रभृति कल्याणि नाम्ना च विरही नदी ।
तपतस्तस्य देवस्य प्रत्यक्षं चण्डिकाऽभवत् ॥ ९ ॥

---

१. विरही ।

अध्याय ५८

बदरी माहात्म्य के प्रसंग में नन्दप्रयाग आदि अनेक तीर्थों का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—

हे मेरी प्रिये ! नन्दप्रयाग में राजा नन्द का जिस प्रकार यज्ञ हुआ था, उसे ध्यान लगाकर सुनो ।। १ ।।

नन्द नाम का राजा परम धर्मात्मा तथा सत्यप्रतिज्ञ था । उन्होंने बहुत अन्न और दक्षिणा से युक्त यज्ञ का विधिवत् अनुष्ठान किया ।। २ ।।

प्राचीन समय में वहां उस राजा की भक्ति से प्रसन्न होकर महात्मा ब्रह्मा आदि देवताओं ने सशरीर उपस्थित होकर अपने-अपने भाग के वर को राजा को दिया ।। ३ ।।

नन्दा (नन्दाकिनी) और अलकनन्दा के संगम में स्नान मात्र से शुद्धि ग्रहणकर, सन्तुष्ट होकर इस स्थान का नाम उसी राजा नन्द के नाम से समलंकृत (नन्दप्रयाग) किया ।। ४ ।।

उस स्थान पर मुझ शिव के साथ विष्णु सन्निहित हैं । हे देवि ! वहाँ से एक योजन की दूरी पर परम दुर्लभ शिवलिंग विद्यमान है ।। ५ ।।

पहले मैंने इस स्थान पर वशिष्ठेश महादेव की आराधना की थी । वहाँ प्राणों के त्यागने से निश्चित ही शिवत्व प्राप्त होता है ।। ६ ।।

वहाँ से उत्तर दिशा में परमपाविनी विरही नाम की नदी विख्यात है, जो समस्त पापों का नाश करने वाली है ।। ७ ।।

वहाँ विरही नाम की नदी समस्त पापों को नाश करने वाली है । पहले सती के विरह से पीड़ित शिव ने वहाँ तप किया था ।। ८ ।।

हे कल्याणि ! उसके बाद उस नदी का नाम विरही नदी हो गया । उन महादेव के तप करने से साक्षात् चण्डिका प्रत्यक्ष हुई ।। ९ ।।

सा वै जगाद देवेशं भविष्यामि गिरेर्गृहे ।
ततो मां सर्वलोका वै वदिष्यन्ति गिरेः सुताम् ।। १० ।।

भविष्यामि पुनर्भार्या तव देव महेश्वर ।
इति श्रुत्वा वचो देव्या हृष्टरोमा सदाशिवः ।। ११ ।।

जगाम कैलासगृहे ह्यंशेनैकेन तत्र हि ।
विरहेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः ।। १२ ।।

स्नानं दानं च मरणं त्रय तत्र विशिष्यते ।
ततः पूर्वं समाख्यातं मणिभद्रसरः परम् ।। १३ ।।

तत्र त्रिरात्रमाविश्य मणिभद्रं लभेन्नरः ।
प्राप्ते तस्मिन्महावीरे न प्राप्यं किमु सुन्दरि ।। १४ ।।

ततो दक्षिणतो भद्रे महाभद्रा नदी परा ।
तत्रैकचिह्नमाख्येयं शृणु स्वस्थेन चेतसा ।। १५ ।।

तत्रैको वटवृक्षोऽस्ति सप्तसप्तिपरिच्छदः ।
पत्राणि तानि दृष्ट्वा वै दृष्टिस्तम्भः प्रजायते ।। १६ ।।

तत्रैव सूर्यतीर्थं च चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
अन्यच्छृणु महातीर्थं गव्यूतौ पूर्वदिक्स्थितम् ।। १७ ।।

तत्र गाणेश्वरी मूर्त्तिः सर्वविघ्नविनाशिनी ।
दण्डाश्रमोऽपि तत्रैव यत्र राजा पुरा प्रिये ।। १८ ।।

दण्डो नाम्ना रवेः कुण्डे तेपे परमकं तपः ।
यन्नाम्ना दण्डकारण्यं ख्यातमस्ति त्रिलोकके ।। १९ ।।

सोऽयं दण्डो महाबाहुर्जजाप परमं शिवम् ।
दशवर्षशतादूर्ध्वं जगाम शिवमुत्तमम् ।। २० ।।

दण्डाश्रमेऽपि यो मर्त्यः स्नानं दानं जपं क्रियाम् ।
तत्कोटिगुणमाख्यातं भवतीति शिवेरितम् ।। २१ ।।

उन चण्डिका ने महादेव जी से कहा कि मैं भविष्य में हिमालय के घर में जन्म धारण करूँगी, जिससे लोग मुझे पर्वत की पुत्री कहेंगे ।। १० ।।

हे महेश्वर ! देव ! भविष्य में पुनः आपकी भार्या होऊँगी । चण्डिका के इन वचनों को सुनकर सदाशिव प्रसन्न रोमाञ्चित हुए ।। ११ ।।

वे कैलास के घर में चले गये। किन्तु अंशरूप से वे वहाँ भी स्थित रहे । इसलिए वहाँ समस्त कामों को पूर्ण करने वाला महादेव विरहेश्वर नाम से विख्यात हुआ ।। १२ ।।

वहाँ स्नान, दान और मरण ये तीनों विशेष समझे गये हैं । उसके पूर्व में एक परम विख्यात मणिभद्र नाम का तालाब है ।। १३ ।।

वहाँ तीन रात्रि तक निवास करने से मानव मणिभद्र यक्ष को प्राप्त करता है । हे सुन्दरि ! उस महावीर यक्ष के प्राप्त होने पर कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रह सकती ।। १४ ।।

उसके दक्षिण भाग में एक महाभद्रा नाम की सुरम्य नदी विद्यमान है । वहाँ वर्णन करने योग्य एक चिह्न है, उसे आप स्वस्थ मन से सुनो ।। १५ ।।

वहाँ एक वट वृक्ष है, जो कि सूर्य को आश्रय देने वाला है । उसके पत्तों को देखकर दृष्टि स्तम्भित हो जाती है ।। १६ ।।

वहीं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाला सूर्यतीर्थ है । वहाँ से दो गव्यूति की दूरी पर पूर्व दिशा में स्थित एक और महातीर्थ है । आप उसे सुनिये ।। १७ ।।

वहाँ समस्त विघ्नों का विनाश करने वाली गणेश की मूर्ति है । हे प्रिये ! वहाँ ही एक दण्डाश्रम है, जहाँ पहले एक राजा···।। १८ ।।

दण्ड नाम से प्रसिद्ध था । उन्होंने सूर्यकुण्ड में परम तप किया था । उसी के नाम से तीनों लोकों में दण्डकारण्य विख्यात है ।। १९ ।।

उस विशाल बाहुओं वाले दण्ड नाम के राजा ने परमेश्वर शिव का एक हजार वर्ष के अधिक समय तक जप किया, जिससे उसको उत्तम शिवलोक की प्राप्ति हुई ।। २० ।।

शिव का कथन है कि दण्डाश्रम में भी जो मनुष्य स्नान, दान और जप करता है, उसे उसका करोड़ गुणा फल का लाभ होता है ।। २१ ।।

अलकनन्दोत्तरे तीरे वृक्षगुल्मलतावृते ।
बिल्वेश्वरो महादेवस्तत्र तिष्ठति नित्यशः ॥ २२ ॥

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि निष्कंटो बिल्ववृक्षकः ।
बदरीफलमानानि फलानि श्रीफले प्रिये ॥ २३ ॥

ततो गरुडगंगायां गरुड़े दक्षिणे तटे ।
स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य पक्षीशं विष्णुरूपिणम् ॥ २४ ॥

पंचकोटिसहस्राणां वर्षाणां वसते चिरम् ।
विष्णुलोके योगगम्ये ततो योगिषु जायते ॥ २५ ॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
गरुडगंगाशिलाभागो यत्र तिष्ठति मत्प्रिये ॥ २६ ॥

न तत्र सर्पजभयं विद्यते न तथा विषात् ।
विषग्रस्तोऽपि यो मर्त्यो जले घृष्टं पिबेत्तु वै ॥ २७ ॥

न तस्य सर्पविषजं भयं भवति कर्हिचित् ।
ततो गणेशनद्यां वै स्नात्वा पापक्षयो भवेत् ॥ २८ ॥

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सिन्दूराभा सुमृत्तिका ।
तद्धारणात्स मनुजो गणेशो नात्र संशयः ॥ २९ ॥

दिव्या महर्षयो यत्र गायन्ति साम नित्यशः ।
शृण्वन्ति च महात्मानो दुरितैर्ये विवर्ज्जिताः ॥ ३० ॥

ततो गंगोत्तरे तीरे नाम्ना चर्मण्वती नदी ।
तस्यां स्नात्वा भवेन्मर्त्यो गणेशो गणपूजितः ॥ ३१ ॥

ततोऽनंगश्रियो राज्ञ आश्रमो मुनिपूजितः ।
तत्र वै चण्डिकां[1] नत्वा मृतश्चंडीपुरे वसेत् ॥ ३२ ॥

तस्मादूर्ध्वं तु मेघाद्रौ शिवलिंगमनुत्तमम् ।
तत्रैकं परमाश्चर्य्यं मध्याह्ने स्त्रीसहायवान् ॥ ३३ ॥

---

१. चण्डिके मर्त्यो ।

अलकनन्दा के उत्तरी तट पर वृक्षों, गुल्मों और लताओं से आच्छादित स्थान पर विल्वेश्वर महादेव नित्य निवास करते हैं ।। २२ ।।

वहाँ के चिह्न का मैं वर्णन करूँगा । वहाँ के बेल के वृक्ष पर कांटे नहीं होते हैं । हे प्रिये ! बिल्व वृक्ष पर बेर के फल के बराबर फल लगते हैं ।। २३ ।।

वहाँ से अलकनन्दा के दक्षिण तट पर स्थित गरुड़गंगा में स्नान करके विष्णु स्वरूप पक्षियों के राजा गरुड़ की पूजा करके ।। २४ ।।

मनुष्य योग से प्राप्त होने वाले विष्णु लोक में पांच करोड़ सहस्र वर्षों तक निवास करने के बाद पुनः योगियों में जन्म लेता है ।। २५ ।।

हे मेरी प्रिये ! शीघ्र ज्ञान को देने वाले एक और तीर्थ का मैं आप से वर्णन करूँगा, जहाँ गरुड़गंगा में शिला स्थित है ।। २६ ।।

वहाँ सर्पजनित भय नहीं होता और विष का भय भी नहीं होता । जो मनुष्य विषग्रस्त हो, यदि वह इस जल में घिस कर जलपान करता है···।। २७ ।।

उन्हें सर्प के विष का भय कदापि नहीं होता है । वहाँ गणेश नदी में स्नान करने से पापों का क्षय होता है ।। २८ ।।

वहाँ के लक्षणों का मैं वर्णन करूँगा । वहाँ की मिट्टी सिन्दूर के समान लाल है । उसके धारण करने से मनुष्य गणेश रूप हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। २९ ।।

जहाँ दिव्य महर्षि लोग सामगान करते हैं और पापों से वर्जित महात्मा लोग उस सामगान को सुनते हैं ।। ३० ।।

वहाँ गंगा जी के उत्तरी तट पर चर्मण्वती नाम की नदी है । उसमें स्नान से मनुष्य गणों के द्वारा पूजित गणेश हो जाता है ।। ३१ ।।

वहाँ मुनियों द्वारा पूजित अनंगश्री राजा का आश्रम है । हे चण्डिके ! वहाँ जो मनुष्य प्राण त्याग करता है, वह चण्डी लोक में निवास करता है ।। ३२ ।।

उससे ऊपर मेष पर्वत पर एक उत्तम शिवलिंग विराजमान है । वहाँ एक परमाश्चर्य है कि मध्याह्न में स्त्रियों के साथ···।। ३३ ।।

समायाति नरस्त्वेको महाप्रांशुर्महाभुजः।
दृष्ट्वा तां चण्डिकां देवीं देवं च परमेश्वरम् ॥ ३४ ॥

सम्पूज्य च पुनर्याति चिह्नं तव प्रकीर्त्तितम्।
ततः पूर्वोत्तरे कोणे गौर्य्याश्रम इतीरितः ॥ ३५ ॥

यत्र पूर्वं महादेवी तपः परममास्थिता।
पर्णखण्डाशना भूत्वा बहुवर्षसहस्त्रकम् ॥ ३६ ॥

तदारभ्य महत्पुण्यं बभूव वरवर्णिनि।
पर्णखण्डासना देवी जाता दैवतपूजिता ॥ ३७ ॥

गंगातीरे च तत्रैव महालिंगं स्वयम्भुवम्।
तत्रैव शिवकुण्डं वै शिवलोकप्रदायकम् ॥ ३८ ॥

ततः क्रोशार्द्धके देवि विष्णुकुण्डमिति श्रुतम्।
तस्मिन् स्नात्वा हरिं पूज्य वैकुण्ठे निवसेत्सुधीः ॥ ३९ ॥

ततः क्रोशद्वये पुण्यं ज्योतिर्धाम शुभप्रदम्।
नृसिंहरूपी भगवान् यत्रास्ते मुक्तिदायकः ॥ ४० ॥

यत्र प्रह्लादयोगीन्द्रो हरिभक्तिपरायणः।
एतत्तीर्थसमं नास्ति विष्णोः प्रीतिकरं परम् ॥ ४१ ॥

एतत्पीठसमं नास्ति सिद्धिदं सर्वकामदम्।
यदस्मिन् क्रियते कर्म्म तत्सर्व्वं कोटिसंख्यकम् ॥ ४२ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन्पापं समाचरेत्।
नृसिंहं पूजयेद् भक्त्या यदीच्छेद्विष्णुतां नरः ॥ ४३ ॥

विष्णुप्रयागके स्नात्वा विष्णुलोके महीयते।
यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः ॥ ४४ ॥

नानातीर्थानि सन्त्यत्र सर्वकामप्रदानि च।
प्रधानानि दशोक्तानि शृणुतान्यप्यरुन्धति ॥ ४५ ॥

अत्यन्त लम्बा और विशाल भुजाओं वाला एक मनुष्य आता है। वह चण्डिका देवी और देव परमेश्वर शिव का दर्शन करके ॥ ३४ ॥

और पूजन करके फिर लौट जाता है। उस स्थान के चिह्नों का मैंने वर्णन किया। वहाँ से पूर्वोत्तर कोण में एक गौर्य्याश्रम नाम का स्थान है ॥ ३५ ॥

जहाँ पहले महादेवी गौरी ने पत्तों के टुकड़ों का आहार करके हजारों वर्षों तक एकाग्र चित्त होकर तप किया था ॥ ३६ ॥

हे सुन्दरि ! उसी समय से यह स्थान परम पुण्य स्थान कहलाया और पर्ण-खण्डासना नाम से देवी प्रसिद्ध होकर देवताओं द्वारा पूजित हुई ॥ ३७ ॥

वहीं गंगा के तट पर स्वयं उत्पन्न हुआ एक महालिंग है। वहीं शिवलोक को देने वाला एक शिवकुण्ड विद्यमान है ॥ ३८ ॥

हे देवि ! वहाँ से आधे कोश की दूरी पर एक विष्णुकुण्ड सुना गया है। उसमें स्नान करके तथा भगवान् विष्णु का पूजन करके बुद्धिमान् मनुष्य वैकुण्ठ में निवास करता है ॥ ३९ ॥

वहाँ से दो कोस की दूरी पर पुण्यशाली शुभ को देने वाला एक ज्योतिर्धाम है, जहाँ मुक्ति को देने वाले नृसिंह रूप धारी भगवान् निवास करते हैं ॥ ४० ॥

जहाँ योगियों में सर्वोत्तम योगी प्रह्लाद भी हरिभक्ति में तत्पर होकर निवास करते हैं। इस तीर्थ के समान विष्णु को प्रीति देने वाला कोई अन्य तीर्थ नहीं है ॥ ४१ ॥

इस पीठ के समान सब कामनाओं को पूरा करने वाला तथा सब सिद्धियों को देने वाला कोई तीर्थ नहीं है। जो कर्म इसमें किये जाते हैं उन सबका करोड़ों गुना फल प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

मनुष्य को सर्वदा ऐसे प्रयत्न करने चाहिए कि इस तीर्थ में कोई पापाचरण न हो। जो मनुष्य विष्णुलोक चाहते हैं, उन्हें भक्तिभाव से नृसिंह भगवान् का पूजन करना योग्य है ॥ ४३ ॥

विष्णुप्रयाग में स्नान करके विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। जहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं ने परम सिद्धि का लाभ प्राप्त किया था ॥ ४४ ॥

हे अरुन्धति ! यहाँ समस्त कामनाओं को देने वाले यद्यपि अनेक तीर्थ विद्यमान हैं, किन्तु जो दस तीर्थ प्रमुख हैं, उनको सुनो ॥ ४५ ॥

यथोक्तानि शिवेनादौ शिवायै शुभदानि च।
ब्रह्मकुंडं तु प्रथमं विष्णुकुंडमतः परम् ।। ४६ ।।

शिवकुंडं वरारोहे तृतीयं कथितं तव।
गणेशं भृंगिकुण्डं च ऋषिकुण्डं च षष्ठकम् ।। ४७ ।।

सप्तमं सूर्य्यकुंडं च दुर्गाकुंडं ततः स्मृतम्।
नवमं धनदाकुंडं प्रह्लादं दशमं स्मृतम् ।। ४८ ।।

कुंडानां दशके स्नात्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः।
स्मृत्वा सर्वाणि पापानि नश्यन्ति मम बल्लभे ।। ४९ ।।

विष्णुकुण्डे प्रयागे तु यत्र विष्णुः सनातनः।
आराधितो नारदेन प्रत्यक्षमगमत्पुरा ।। ५० ।।

सर्वज्ञत्वं ददौ तस्मै सन्तुष्टो भगवान् हरिः।
तदादीदं महाभागे विष्णुकुंडमिति स्मृतम् ।। ५१ ।।

तत्र स्नात्वा जपं कृत्वा नारायणपरायणः।
नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ।। ५२ ।।

ततो गच्छेन्महाभागे बदर्य्याश्रममण्डले।
जयं च विजयं चैव सम्पूज्य द्वारपालकौ ।। ५३ ।।

गन्धमादनबदरीं पापिनो यदि कुर्वति।
गमनादेव पापानि नश्यंतीति शिवेरितम् ।। ५४ ।।

अतः परं परस्थानं देवानामपि दुर्लभम्।
सूक्ष्मक्षेत्रमिति प्रोक्तं सत्यं सत्यं न संशयः ।। ५५ ।।

कुण्डानि शृणु कथ्यन्ते प्रयागे विष्णुसंज्ञके।
धवलायां तु गंगायां यतः सा नवमी मता ।। ५६ ।।

धारा पापहरा प्रोक्ता गंगाया धूर्जटीरिता।
संगमाच्छरविक्षेपे उत्तरे पुलिने प्रिये ।। ५७ ।।

शुभ देने वाले उन तीर्थों का वर्णन पहले शिवजी ने पार्वती देवी से किया था। उनमें पहला ब्रह्मकुण्ड तथा दूसरा विष्णुकुण्ड है ॥ ४६ ॥

हे देवि ! तीसरा शिवकुण्ड तुमसे कहा है, चौथा गणेशकुण्ड, पांचवां भृङ्गि-कुण्ड और छठवां ऋषिकुण्ड है ॥ ४७ ॥

सातवां सूर्यकुण्ड, आठवां दुर्गाकुण्ड, नवां कुबेरकुण्ड और दसवां प्रह्लादकुण्ड है ॥ ४८ ॥

मनुष्य इन दस कुण्डों में स्नान करने से कृतकृत्य हो जाता है। हे मेरी प्रिये ! इन कुण्डों के स्मरण करने से समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

प्राचीन समय में प्रयाग (विष्णु प्रयाग) में विष्णुकुण्ड में नारद जी ने यहाँ सनातन विष्णु भगवान् की आराधना की थी। तब वे प्रत्यक्ष प्रादुर्भूत हुये थे॥ ५० ॥

हे महाभागे ! प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने नारद जी को सर्वज्ञत्व प्रदान किया था। उसी समय से यहाँ यह विष्णुकुण्ड प्रसिद्ध हुआ ॥ ५१ ॥

वहाँ स्नान करके 'ओ३म्' इस प्रणव पूर्वक नारायण भगवान् का "नमो-नारायणाय" इस मंत्र से जप करे ॥ ५२ ॥

हे महाभागे ! उसके बाद बदरिकाश्रम जाकर जय और विजय नामक द्वार-पालों की पूजा करे ॥ ५३ ॥

गन्धमादन एवं बदरीश की यात्रा यदि पापी लोग भी करें, तो यहाँ जाने से ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसा शिव जी ने कहा है ॥ ५४ ॥

इससे आगे एक परम पुण्य क्षेत्र है, जिसकी प्राप्ति देवताओं को भी दुर्लभ है। इसे सूक्ष्म क्षेत्र कहा गया है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥

विष्णुप्रयाग में जितने कुण्ड हैं, उनका वर्णन किया जा रहा है, आप सुनिये। धवला गंगा नाम की नवमी धारा है···॥ ५६ ॥

यह पापों को हरने वाली गंगा की धारा शंकर के द्वारा कही गई है। हे प्रिये ! संगम से एक सर विक्षेप दूर उत्तरी पुलिन प्रदेश पर···॥ ५७ ॥

ब्रह्मकुण्डमिति प्रोक्तं ब्रह्मलोकप्रदायकम् ।
शिवकुण्डं च विख्यातं तस्माद्दण्डषडष्टके ॥ ५८ ॥

स्नानमात्रेण मनुजः सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
तस्माच्छरार्द्धविक्षेपे तीर्थं गाणेशमंज्ञितम् ॥ ५९ ॥

गणत्वं प्राप्यते यत्र स्नानाद्दानात्तथाशनात् ।
धवलायां महाभागे तीर्थान्युक्तानि मत्प्रिये ॥ ६० ॥

शृणुष्वालकनन्दायां कुण्डानि प्रवराणि वै ।
विष्णुकुण्डाच्छरक्षेपे भृंगिकुण्डमिति स्मृतम् ॥ ६१ ॥

स्नानमात्रेण तत्रापि सर्वपापक्षयो भवेत् ।
ततः परं परं कुण्डं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ ६२ ॥

सूर्यकुण्डमिति ख्यातं सूर्यलोकप्रदायकम् ।
दुर्गाकुण्डं महापुण्यं ततो दण्डचतुष्टये ॥ ६३ ॥

दुर्गालोकप्रदं चेदं[1] सर्वकामफलप्रदम् ।
धनदा यक्षिणी नाम तस्यास्तीर्थं ततः परम् ॥ ६४ ॥

धनदा प्रीयते तस्य तत्र यः स्नानमाचरेत् ।
प्रह्लादकुंड त्वपरं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ ५५ ॥

मध्याह्ने तत्र पयसि मीनो वै प्लवते प्रिये ।
दृश्यते पुण्यकृद्भिः स तत्र ज्ञेयं सुतीर्थकम् ॥ ६६ ॥

यत्र स्नात्वा च जप्त्वा च कर्मानन्त्यं[2] लभेन्नरः ।
इदं विष्णुप्रयागाख्यं द्वारं विष्णोः प्रकीर्तितम् ॥ ६७ ॥

प्रायः कलौ मनुष्याणामगम्या बदरी भवेत् ।
यावद्विष्णुर्महीपृष्ठे यावद् गंगा महेश्वरि ॥ ६८ ॥

---

१. चैव ।
२. कर्मणोन्ते ।

ब्रह्मलोक को प्रदान करने वाला एक ब्रह्मकुण्ड विख्यात है। उससे चौदह (६ + ८) दण्ड की दूरी पर शिवकुण्ड विख्यात है ॥ ५८ ॥

जिसमें स्नान मात्र से मनुष्य समस्त यज्ञों के फल को प्राप्त करते हैं। उससे आधा शरविक्षेप दूर गणेश नाम का तीर्थ है ॥ ५६ ॥

जहाँ स्नान, दान और भोजन कराने से गणत्व की प्राप्ति होती है। हे महाभागे ! धवला गंगा में भी अनेक तीर्थ वर्णन किये गये हैं ॥ ६० ॥

अलकनन्दा में भी अनेक उत्तम कुण्ड विद्यमान हैं, उन्हें सुनो। विष्णुकुण्ड से एक वाण विक्षेप की दूरी पर भृङ्गिकुण्ड विद्यमान है ॥ ६१ ॥

उसमें भी स्नान मात्र से सब पाप विनष्ट हो जाते हैं। उससे आगे तीर्थों में सर्वोत्तम एक कुण्ड है ॥ ६२ ॥

सूर्यलोक को प्रदान करने वाला वह सूर्यकुण्ड नाम से विख्यात है, उससे चार दण्ड की दूरी पर महापुण्यशाली दुर्गाकुण्ड है ॥ ६३ ॥

समस्त कामनाओं को देने वाला वह कुण्ड दुर्गालोक को प्रदान करता है। उस तीर्थ से आगे एक धनदा यक्षिणी है। उसके वाद उसका परम तीर्थ है ॥ ६४ ॥

जो वहां स्नान करता है उस पर धनदा यक्षिणी प्रसन्न होती है। उससे आगे शीघ्र ज्ञान को देने वाला एक प्रह्लाद कुण्ड है ॥ ६५ ॥

हे प्रिये ! उस जल में मध्याह्न में एक मछली तैरती है। उस सुरम्य तीर्थ में उस मछली का दर्शन पुण्यात्माओं को ही होता है ॥ २६ ॥

जहाँ स्नान और जप करने से मनुष्य अनन्त कर्मों के फल पाता है। इस विष्णुप्रयाग नाम के स्थान को विष्णु का द्वार कहा गया है ॥ ६७ ॥

प्रायः कलियुग में मनुष्यों के लिए वदरीवन अगम्य होगा। हे महेश्वरि ! जव तक भूमि के ऊपर गंगा और विष्णु विद्यमान हैं ॥ ६८ ॥

तावद्वै बदरी गम्या दुर्गम्या च ततः परम् ।
बदरीनाथयात्रां वै करिष्यन्ति बहिः स्थलात् ॥ ६९ ॥

गन्धमादनदक्षे च पार्श्वे मुनिजनप्रिये ।
पुलिने धवलाया वै बदरी तत्र विश्रुता ॥ ७० ॥

घटोद्भवेल मुनिना पुरा संराधितो हरिः ।
चकार तत्र सांनिध्यं बदरीनाथको[1] हरिः ॥ ७१ ॥

प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः स्वल्पायुषः प्रिये ।
अल्पसत्त्वा भविष्यन्ति ह्यशक्ता दुर्गमे गमे ॥ ७२ ॥

धाराद्वयं समाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
उष्णोदकं महापुण्यं बह्निर्यत्रातपत्तप: ॥ ७३ ॥

स्नात्वा तयोर्महाभागे विष्णोर्लोकं व्रजेन्नरः ।
महादेवोऽपि तत्रैव मुनीश्वर इतीरितः ॥ ७४ ॥

तस्य संदर्शनादेव शिवलोकं व्रजेन्नरः ।
भविष्या बदरी प्रोक्ता महापापौघनाशिनी ॥ ७५ ॥

ततः यरं महापुण्यं घटोद्भवमुनिस्थलम् ।
चतुर्योजनविस्तारं पंचयोजनमायतम् ॥ ७६ ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवा निवसन्ति सुरार्चिताः ।
शिवस्य बहुलिंगानि स्थापितानि महात्मना ॥ ७७ ॥

देव्यालयास्तु बहवो देवानामालयास्तथा ।
घटाकर्णो मुनिस्तत्र सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ ७८ ॥

नानामुनिजनाकीर्णे आश्रमे देवपूजिते ।
कुर्वन्ति प्राणत्यागं ये न ते वै स्तनपाः पुनः ॥ ७९ ॥

मानसोद्भेदनगिरेर्निःसृता जाह्नवी परा ।
धवलेन पुरा राज्ञा सेविता सर्वकामदा ॥ ८० ॥

---

१ याथके ।

तब तक ही वह बदरीवन जाने योग्य है। उसके बाद अगम्य हो जायेगा। तब व्यक्ति बदरीनाथ की यह यात्रा बाहर के स्थल तक करेंगे ॥ ६९ ॥

हे मुनिजनों की प्रिय शिवे ! गन्धमादन के दक्षिण भाग में धवला नदी के तट पर प्रसिद्ध बदरी विख्यात है ॥ ७० ॥

पहले अगस्त मुनि ने उक्त स्थान पर भगवान् हरि की आराधना की थी, जिससे भगवान् हरि बदरीनाथ नाम से उस स्थान में रहे थे ॥ ७१ ॥

हे प्रिये ! घोर कलियुग प्राप्त होने पर मनुष्य अल्प आयु और अल्प बल के होंगे, जिससे वे अगम्य स्थान बदरीवन को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होंगे ॥ ७२ ॥

वहाँ शीघ्र ज्ञान को देने वाली दो धारायें विख्यात हैं। अग्नि ने इस स्थान में तप किया था, जिससे यह महापुण्यशाली उष्ण जल हुआ ॥ ७३ ॥

हे महाभाग्यशालिनि ! इन धाराओं में स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को जाते हैं। वहाँ ही महादेव जी भी मुनीश्वर नाम से विख्यात हुये हैं ॥ ७४ ॥

उनके दर्शन मात्र से ही मानव शिवलोक को जाते हैं। महापापों को नाश करने वाली वह भविष्य बदरी है ॥ ७५ ॥

उससे आगे परम पुण्य को देने वाला अगस्त्य ऋषि का आश्रम है। वह चार योजन चौड़ा तथा पांच योजन लम्बा है ॥ ७६ ॥

जहाँ देवताओं से पूजित होकर ब्रह्मा आदि देवता निवास करते हैं, तथा महात्माओं के द्वारा अनेक शिवलिंग स्थापित किये गये हैं ॥ ७७ ॥

वहाँ अनेक देवियों और देवताओं के मन्दिर हैं। वहां शीघ्र ज्ञान को दिलाने वाला घंटाकर्ण मुनि का निवास स्थान है ॥ ७८ ॥

अनेक मुनियों से आकीर्ण, देवताओं से पूजित इस आश्रम में जो प्राणों का त्याग करते हैं, उन्हें पुनः माता के स्तनपान का समय नहीं मिलता। अर्थात् मोक्ष मिल जाता है ॥ ७९ ॥

मानसोद्भेदन पर्वत से गंगा की एक धारा विनिर्गत हुई है। सब कामनाओं को देने वाली इस धारा का पहले धवल राजा ने सेवन किया था ॥ ८० ॥

नाम चक्रे च तस्याः स धवलेति पुनः श्रुता ।
एषा वै नवमो धारा गंगायाः शिवभाषिता ॥ ८१ ॥

यस्या दर्शनमात्रेण सद्यः पापैः प्रमुच्यते ।
बदरीमण्डले देवि सर्वपर्वतनिर्झराः ॥ ८२ ॥

महापुण्याः समाख्याता विस्तराद् गदिता हि वै ।
ये ये वै पर्वतास्तत्र तत्स्वरूपेण देवताः ॥ ८३ ॥

तपस्यन्ति महात्मानस्तथा मुनिजनाः प्रिये ।
विष्णुप्रयागतो देवि ईशाने बदरी परा ॥ ८४ ॥

यत्र विष्णुः समग्रेण भावेन महता स्थितः ।
पांडुना च तपस्तप्तं शप्तेन मृगरूपिणा ॥ ८५ ॥

मुनिना परकोपेन पांडुस्थानं ततः स्मृतम् ।
प्रसन्नो भगवानाह पांडुं परमसुन्दरम् ॥ ८६ ॥

भो भो पांडो तव क्षेत्रे धर्मादीनां सुताः किलः ।
भविष्यन्ति सुतात्मानः सर्वे शास्त्रार्थपारगाः ॥ ८७ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विष्णोश्च परमात्मनः ।
कृतकृत्यं स्वयं मेने दर्शनादेव सुन्दरि ॥ ८८ ॥

पांड्वीश्वरो महादेवो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ।
गंगाया दक्षिणे पार्श्वे पर्वते नरनामके ॥ ८९ ॥

तीर्थानां च सहस्राणि लिंगानां च शतानि च ।
अगम्यानि कानिचिद्वै तथा गम्यानि च प्रिये ॥ ९० ॥

तस्मिन्वै पर्वते नित्यं देवाः सर्वे महर्षिभिः ।
गायन्ति विष्णुमेकाग्रमनोभिर्वचसां गणैः ॥ ९१ ॥

मृदङ्गध्वनिघोषो वै भेरीशब्दा सहस्रशः ।
श्रूयन्ते पुण्यनिलये सामगानां तथा स्वनाः ॥ ९२ ॥

उसके वाद उसने इस धारा का नाम धवला रखा। यह शिव जी के द्वारा कही गई गंगा की नवमी धारा है ॥ ८१ ॥

जिसके मात्र दर्शन मात्र से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। हे देवि ! बदरी-नाथ क्षेत्र में जो समस्त पर्वत और झरने हैं ॥ ८२ ॥

वे महापुण्य को देने वाले कहे गये हैं। उन्हीं का विस्तार से वर्णन किया गया है। जो पर्वत वहाँ जिस स्वरूप में विद्यमान हैं, उसी स्वरूप में वे देवता हैं ॥ ८३ ॥

हे प्रिये ! मुनिजन और महात्मा लोग वहाँ तप करते हैं। हे देवि ! विष्णु-प्रयाग से ईशान कोण में पुण्य देने वाली एक अन्य बदरी विद्यमान है ॥ ८४ ॥

उस स्थान में विष्णु भगवान् समग्र रूप से स्थित रहते हैं। मृग रूप धारण करने वाले मुनि के द्वारा शापित पांडु राजा ने इसी स्थान पर तप किया था ॥ ८५ ॥

मुनि ने परम कुपित होकर शाप दिया था। तब से यह पाण्डु स्थान कहा जाता है। भगवान् ने प्रसन्न होकर परम सुन्दर पाण्डु से यह कहा था ॥ ८६ ॥

हे पाण्डो ! तुम्हारे क्षेत्र में धर्म आदि देवताओं से उत्पन्न पुत्र तुम्हारे पुत्र होकर अवश्य प्रादुर्भूत होंगे। वे सब शास्त्रों के पारंगत होंगे ॥ ८७ ॥

हे सुन्दरि ! परमात्मा विष्णु भगवान् के ये वचन सुनकर राजा पाण्डु ने भगवान् के दर्शन से ही अपने को कृतकृत्य माना ॥ ८८ ॥

भक्तों की प्रीति बढ़ाने वाले वहाँ पांड्वीश्वर महादेय हैं। गंगा के दक्षिण भाग में नर नामक पर्वत पर···॥ ८९ ॥

सहस्रों तीर्थ और सैकड़ों शिवलिंग विद्यमान हैं। हे प्रिये ! उनमें कोई अगम्य और कोई गम्य हैं ॥ ९० ॥

उस नर पर्वत पर नित्य देवता और महर्षि एकाग्र मन होकर वाणियों द्वारा नित्य भगवान् विष्णु का गान करते हैं ॥ ९१ ॥

मृदंग ध्वनियों का नाद और हजारों भेरी शब्द होते रहते हैं। उस पुण्य स्थान में सामगान की ध्वनि श्रुति-गोचर होती है ॥ ९२ ॥

तस्मिन् गिरौ हि वर्तन्ते पुण्यान्यायतनानि च ।
तप्तोदकानि बहुशः शीततोया जलाशयाः ।। ९३ ।।

सर्वे पुण्यसमारंभा विष्णुभक्तिकरास्तथा ।
उत्तरे पर्वते देवि तथा दिव्या महर्षयः ।। ९४ ।।

सिद्धा गुह्यास्तथा नागास्तथैवाप्सरसां गणाः ।
नृत्यन्ति गायमानाश्च विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।। ९५ ।।

नदीमामुत्तमा तत्र धारा परमपाविनी ।
गंगाया अष्टमी ज्ञेया नाम्ना बिन्दुमती मता ।। ९६ ।।

निःसृता बिन्दुसरसो महापापौघनाशिनी ।
दर्शनादेव यस्या वै महापापौघनाशनम् ।। ९७ ।।

जायते किमु स्नानाद्यैः सत्यं सत्यं न संशयः ।
ततः क्रोशद्वये देवि वैखानसमुनिस्थलम् ।। ९८ ।।

यज्ञभूमिस्तथा तत्र तेषां मुनिवरात्मनाम् ।
नदीनाँ प्रवरा सा वै महापातकनाशिनी ।। ९९ ।।

होतृस्थाने मुनीनां तु श्रृणु प्रत्ययलक्षणम् ।
अद्यापि तत्प्रदेशे हि यवा दग्धास्तथा तिलाः ।। १०० ।।

अंगाराश्चापि दृश्यन्ते होतृस्थाने महात्मनाम् ।
तदूर्ध्वं पर्वते रम्ये देवगन्धर्वसेविते ।। १०१ ।।

योगीश्वर इति ख्यातो भैरवोऽतिभयंकरः ।
तमर्च्चयित्वा नत्वा च गच्छेत्सूक्ष्मतरे स्थले ।। १०२ ।।

कुवेरस्य शिलां नत्वा दारिद्रयं नोपजायते ।
नरनारायणौ श्रेष्ठौ पर्वते मुनिवंदितौ ।। १०३ ।।

यो नमेत्परया भक्त्या न स भूयोऽभिजायते ।।
ये त्यजन्ति शरीराणि नरनारायणाश्रमे ।। १०४ ।।

उस पर्वत में अनेक पुण्य को देने वाले स्थान हैं और बहुत से उष्ण जलाशय एवं शीत जल से सम्पन्न जलाशय हैं ॥ ९३ ॥

हे देवि ! समस्त पुण्य कर्मों का आचरण करने वाले तथा विष्णु भक्ति में तत्पर दिव्य महर्षि गण उत्तर पर्वत में नियास करते हैं ॥ ९४ ॥

उसमें सिद्ध, गुह्यक, नाग तथा अप्सरायें परमेश्वर विष्णु का गान करते हुये नाचते रहते हैं ॥ ९५ ॥

वहां नदियों में उत्तम धारा परमपाविनी है, जिसे गंगा की आठवीं धारा बिन्दुमती नाम से जानना चाहिये ॥ ९६ ॥

बिन्दु तालाब से विनिर्गत महापापों का नाश करने वाली यह धारा दर्शन से ही महापातकों का नाश कर देती है ॥ ९७ ॥

स्नान से तो न जाने क्या लाभ होते हैं, मिलने में कोई संशय नहीं है, यह सत्य है, सत्य है । उससे दो कोश भी दूरी पर हे देवि ! वैखानस मुनियों का निवास स्थान है ॥ ९८ ॥

उस स्थान में उन श्रेष्ठ मुनियों की यज्ञ भूमि है । वहां महापातकों का नाश करने वाली श्रेष्ठ नदी विद्यमान है ॥ ९९ ॥

जिस स्थान में मुनि लोग बैठकर यज्ञ करते थे उसको पहचानने के लक्षण सुनो । आज भी उस प्रदेश में जले हुये यव और तिल विद्यमान हैं ॥ १०० ॥

उन महात्माओं के यज्ञ स्थल में अंगारे भी दिखाई देते हैं । उसके ऊपर देवताओं और गन्धर्वों से सेवित सुरम्य पर्वत पर···॥ १०१ ॥

अतिभयंकर योगीश्वर नाम के भैरव विख्यात है । उनका पूजन करके और उनको नमस्कार करके सूक्ष्मतर स्थल को जाना चाहिये ॥ १०२ ॥

कुबेर की शिला को नमस्कार करके दारिद्र्य जनित दुःख नहीं होता है। नर-नारायण नाम के श्रेष्ठ दो पर्वत मुनिवों द्वारा पूजित वहाँ हैं ॥ १०३ ॥

जो परम भक्ति भावना से इनको नमस्कार करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है । जो नर-नारायण आश्रम में शरीर का त्याग करते हैं ॥ १०४ ॥

न जायन्ते पुनर्देवि संसारेऽस्मिन्भयावहे।
स्नात्वा ऋषीणां गंगायां धारायां मे समाहिताः ॥ १०५ ॥

पानं कुर्वन्ति ते मर्त्या ब्रह्म तत्परमाप्नुयुः।
दत्त्वा चाश्रमवासिभ्यो जीर्णानि वसनानि च ॥ १०६ ॥

गच्छेच्छुद्धे महाक्षेत्रे श्रीमद्‌बदरिकाश्रमे।
आचमेत्कूर्मधारायां जलं परमपावनम् ॥ १०७ ॥

यदिच्छेत्सुतरां शुद्धिं दर्शनेन परात्मनः।
तथा पंचशिलां नत्वा परिक्रम्यार्चयेत् सुधीः ॥१०८॥

धन्यः स एव लोकेषु बदरीशे तथा प्रिये।
त्रुटिमात्रं किल स्वर्णं दद्याद्यो ब्राह्मणाय वै ॥ १०९ ॥

तस्य पुण्यफलं को वै वक्तुं शक्तः कथं भवेत्।
सम्पूज्य तत्र केदारं शिवलोके महीयते ॥११०॥

परिक्रमेत्तु यो देवं बदरीनायकं परम्।
ससमुद्रवनद्वीपा दत्ता भूमिर्महात्मना ॥१११॥

पितरस्तस्य गच्छन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।
धन्यास्त एव लोकानां यैर्दृष्टो बदरीतरुः ॥ ११२ ॥

तत्राश्रमे च यैर्वापि स्थितं विष्णुपरायणैः।
नारदीया यत्र शिला विष्णुलोकप्रदायिनी ॥ ११३ ॥

श्रूयन्ते यत्र निर्घोषा वेदानां सुमुनीरिताः।
तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंज्ञितम् ॥ ११४ ॥

नारदीये ह्रदे स्नात्वा न भूयः स्तनपो भवेत्।
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥ ११५ ॥

मृत्स्नाकुंकुमवर्णाभा दृश्यतेऽतीव सुन्दरा।
तत्र वह्व्यो मूर्त्तयश्च सन्ति श्रीश्रीपतेर्विभोः ॥ ११६ ॥

---

१. शाके।

हे देवि ! वे इस भयावह संसार में पुनर्जन्म नहीं लेते । जो चित्त को एकाग्र करके ऋषियों की गंगा (ऋषिगंगा) की धारा में स्नान करते हैं ।। १०५ ।।

अथवा जल का पान करते हैं वे मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं । यहां जीर्ण वस्त्रों को आश्रम वासियों को प्रदान करे ।। १०६ ।।

परम विशुद्ध महाक्षेत्र श्री बदरिकाश्रम में जाकर कूर्मधारा में परमपावन जल का आचमन करे ।। १०७ ।।

यदि परमात्मा के दर्शन करके परमशुद्धि के लाभ इच्छा हो तो, वह विद्वान् पंचशिला को प्रणाम करके, परिक्रमा करके उनकी पूजा करे ।। १०८ ।।

हे प्रिये ! वह लोक में धन्य है, जो बदरीनाथ में कण मात्र स्वर्ण भी ब्राह्मणों को दान देता है ।। १०९ ।।

उसके पुण्य फल को वर्णित करने में कौन समर्थ हो सकता है ? वहां केदारनाथ की पूजा करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है ।। ११० ।।

जो मनुष्य बदरीनाथ की परिक्रमा करता है, उस महात्मा ने मानो समुद्र, वन, द्वीप और भूमि को दान कर दिया है ।। १११ ।।

उसके पितर भगवान् विष्णु के परम पद को जाते हैं । वे मनुष्य लोकों में धन्य हैं, जिन्होंने बदरीवृक्ष के दर्शन किए हैं ।। ११२ ।।

अथवा जो मानव विष्णु भक्ति में तत्पर हो विष्णु लोक देने वाले आश्रम में, जहाँ नारदीय शिला विद्यमान हैं, निवास करते हैं ।। ११३ ।।

जहाँ श्रेष्ठ मुनियों द्वारा गाये जाते हुये वेदों के शब्द सुने जाते हैं । वहाँ जो भी कर्म किया जाता है । वह करोड़ों गुना फल देने वाला होता है ।। ११४ ।।

नारदकुण्ड में स्नान करने वाले को पुनः माता का स्तनपान नहीं करना पड़ता । वहां के चिह्नों का मैं वर्णन करता हूँ, जिससे तुम्हें उसकी पहचान हो सके ।। ११५ ।।

वहां की मिट्टी कुंकुम के वर्ण की है, जो देखने में बहुत सुन्दर है । हे उमे ! वहां श्रीपति श्री विष्णु भगवान् की अनेक मूर्तियाँ विद्यमान हैं ।। ११६ ।।

युगे-युगे भविष्यन्ति विष्णोरंशा मुनीश्वराः ।
स्थापयिष्यन्ति देवेशं बदरीनाथनामकम् ।। ११७ ।।

शिला यत्र च वाराही पापहा सर्वकामदा ।
वाराहकुंडं चाख्यातं विष्णुपद्यां हि मत्प्रिये ।। ११८ ।।

तत्र स्नात्वा तथा जप्त्वा फलानन्त्य लभेन्नरः ।
नारसिंही शिला तत्र सर्वपापप्रणाशिनी ।। ११९ ।।

कुंडं च तत्राख्यातं वै भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
मार्कण्डेयशिला तत्र सर्वलोकेषु दुर्लभा ।। १२० ।।

यां स्पृष्ट्वापि नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
गारुडी च तथा प्रोक्ता गरुड़ेन महात्मना ।। १२१ ।।

प्राप्तं हरेर्वाहनत्वं सख्यं च परमं हरेः ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तथाभ्यचर्य नरो नारायणो भवेत् ।। १२२ ।।

एतत्पंचशिला मध्ये ह्यासनं बदरीप्रभोः ।
वह्नितीर्थसमायुक्तं विष्णुलोकप्रदं शिवे ।। १२३ ।।

वह्नितीर्थं यत्र देवि वह्निनाऽऽराधितो हरिः ।
तस्मै स सर्वमेध्यत्वं विश्वात्माविश्वभावनः ।। १२४ ।।

अतः परतरं नास्ति तीर्थं त्रैलोक्यदुर्ल्लभम् ।
अस्मिन्क्षेत्रे तु बहुशस्तीर्थानि प्रवराणि च ।। १२५ ।।

समासेन हि कथ्यन्ते सर्वकामप्रदानि वै ।
ब्रह्मकपाले पितरः प्रेक्षमाणाः स्ववंशजम् ।। १२६ ।।

तिष्ठन्ति तस्मात्पिडानां प्रदानं मुनयोऽब्रुवन् ।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि भक्त्याऽभक्त्याथवा पुनः ।। १२७ ।।

यैरत्र पिंडवपनं कृतं जलसुतर्पणम् ।
तारिता पितरस्तेन दुर्गता अपि पापिनः ।। १२८ ।।

युग-युग में भगवान् विष्णु के अंश से मुनीश्वर उत्पन्न होकर देवेश बदरीनाथ नाम से भगवान् की स्थापना करते रहेंगे ।। ११७ ।।

जहां वाराही शिला पापों को हरण करने वाली तथा समस्त कामनाओं को देने वालो है । हे प्रिये ! विष्णुपदी में वाराहकुण्ड विख्यात है ।। ११८ ।।

वहां स्नान करने तथा जप करने से मनुष्य अनन्त फलों को प्राप्त करता है । वहाँ एक नारासिंहीं शिला है, जो सब पापों का नाश करने वाली है ।। ११९ ।।

वहाँ एक कुण्ड भी विख्यात है, जो भुक्ति और मुक्ति को देने वाला है । वहाँ एक मार्कण्डेय शिला भी है, जो समस्त लोकों में दुर्लभ है ।। १२० ।।

जिसका भक्तिपूर्वक स्पर्श करने से ही मनुष्य को सब पापों से मुक्ति मिलती है । गरुड़ ने इस शिला का कीर्तन किया था, अतः उसे गरुड़ शिला भी कहते हैं ।। १२१ ।।

गरुड़ को इसी से हरिवाहनत्व एवं भगवान् की मित्रता का लाभ मिला था । इस शिला के दर्शन, स्पर्श और पूजन करने से नर नारायण हो जाता है ।। १२२ ।।

पंच शिलाओं के मध्य में यही बदरीनाथ प्रभु का आसन है । हे शिवे ! यह वह्नितीर्थ से युक्त है और विष्णु लोक प्रदान करने वाला है ।। १२३ ।।

हे देवि ! जहाँ वह्नितीर्थ है, वहां अग्नि ने हरि की आराधना की थी । विश्वात्मा, विश्वभावन विष्णु ने उन्हें सर्व मेध्यत्व प्रदान किया था ।। १२४ ।।

अतः इससे अधिक पुण्यवान् तीर्थ तीनों लोकों में दुर्लभ है । इस क्षेत्र में बहुत से प्रमुख तीर्थ स्थान विद्यमान हैं ।। १२५ ।।

संक्षेप में समस्त कामनाओं को देने वाले तीर्थों का वर्णन किया जाता है । ब्रह्मकपाल में पितर जब अपने वंशजों को देखते हैं ।। १२६ ।।

उनसे पिंड ग्रहण की वे अभिलाषा करते हैं, ऐसा मुनि लोग कहते हैं । ज्ञान अथवा अज्ञान से, भक्ति अथवा भक्तिहीन होकर भी···।। १२७ ।।

जो यहां पिण्डदान और जल से तर्पण करते हैं, वे दुर्गति में गये पापी पितरों का भी तारण कर देते हैं ।। १२८ ।।

किं गयागमनाद्देवि किमन्यत्तीर्थतर्पणैः।
यैर्नरैर्ब्रह्मकापाले पितॄनुदिश्य भामिनि ॥ १२९ ॥

कृतं तत्सर्वमेवाशु कोटिकोटिगुणं भवेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्य्यादत्र सुतर्प्पणम् ॥ १३० ॥

पिंडानां पातनं चैव पितरो मुक्तिमाप्नुयुः।
मातृवंश्याश्च ये केचित् पितृवंश्यास्तथापरे ॥ १३१ ॥

श्यालाः संबन्धिनो वाऽपि सखायश्चापि भामिनि।
प्रिया वृक्षाः पक्षिणश्च तिर्यग्योनिगता अपि ॥ १३२ ॥

गच्छन्ति परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम्।
यानुद्दिश्य च सलिलं पिंडदानं तथैव च ॥ १३३ ॥

कृतं ते विष्णुलोकाय गच्छन्ति स्मरणादपि।
नित्यं जल्पन्ति पितरो मद्वंशे कश्चिदुत्तमः ॥ १३४ ॥

गमिष्यति विशालायां तारितास्तेन वै वयम्।
माहात्म्यं केन शक्येत वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ १३५ ॥

यत्र गंगा महाभागा बदरीनाथशोभिता।
नृसिंहश्चापि गंगायां शिलारूपी महामते ॥ १३६ ॥

तत्र नारायणं कुण्डं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
इदं परमकं स्थानं श्रीविष्णुः परमेश्वरः ॥ १३७ ॥

चतुर्युगे न त्यजति सत्यं सत्यं न संशयः।
पश्चिमे क्रोशखण्डार्द्धे बदरीनाथधामतः ॥ १३८ ॥

उर्व्वशीकुण्डमाख्यातं सर्वसौन्दर्य्यदायकम्।
पुरा पुरूरवा यत्र रेमे वत्सरपंचकम् ॥ १३९ ॥

उर्व्वश्या सह वामाक्षि जनयामास वै सुतान्।
अत्र यः पंचरात्रं वै स्नाति भक्तिसमन्वितः ॥ १४० ॥

हे देवि ! क्या गया जाने से, क्या अन्य तीर्थों में तर्पण करने से होगा ? हे भामिनि ! जो मनुष्य ब्रह्मकपाल में पितरों के उद्देश्य से···।। १२६ ।।

पिण्डदान या तर्पण करते हैं, वह सब करोड़ों गुण फल देने वाला है। इसलिए समस्त प्रयत्नों से यहां पितरों के तर्पण करना कर्त्तव्य है ।। १३० ।।

यहां पिंडदान करने से पितरों को मुक्ति का लाभ प्राप्त होता है। चाहे वे मातृवंश के पितर हों, चाहे अन्य पितृवंश के पितर हों ।। १३१ ।।

हे भामिति ! चाहे वे साले हों, मित्र हों, चाहे अन्य सम्बन्धी हों, प्रिय वृक्ष, पक्षीगण आदि तिर्यग्योनियों में भी पड़ा हुआ हो ।। १३२ ।।

वे सब विष्णु के परम पद के उत्तम स्थान को जाते हैं। और जिसके उद्देश्य से जल और पिंडदान···।। १३३ ।।

किया जाता है वे स्मरण से ही विष्णु लोक में जाते हैं। नित्य पितर कहते रहते हैं कि मेरे वंश में कोई ऐसा उत्तम पुरुष उत्पन्न होवे···।। १३४ ।।

जो बदरिकाश्रम की यात्रा करे और पिंड जप दान से हमारा उद्धार करे। कौन ऐसा होगा कि सौ वर्ष तक भी इस धाम के माहात्म्य को वर्णित कर सकेगा ।। १३५ ।।

जहां महाभाग्यशाली गंगा भी बदरीश भगवान् से सुशोभित है। हे मतिशालिनि ! नृसिंह रूपी भगवान् भी गंगा में शिलारूप में विद्यमान हैं ।। १३६ ।।

वहां नारायण नाम का कुण्ड भुक्ति और मुक्ति देने वाला है। श्री विष्णु परमेश्वर परम उत्तम स्थान को ।। १३७ ।।

चारों युगों में भी त्यागते नहीं हैं। यह सत्य है, सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। बदरीनाथ धाम से आधा कोस की दूरी पर पश्चिम में ।। १३८ ।।

समस्त सुन्दरताओं को देने वाला एक उर्वशी नाम का कुण्ड विख्यात है। पहले पुरुरवा ने यहाँ उर्वशी के साथ पांच वर्ष तक रमण किया था ।। १३९ ।।

हे सुन्दर आँखों वाली पार्वति ! उर्वशी के साथ रमण करके पुरूरवा ने पुत्रों को उत्पन्न किया था। यहां पांच रात्रि तक भक्ति में तत्पर हो जो स्नान करता है ।। १४० ।।

कंदर्प इव रूपाढ्यो जायते नात्र संशयः।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धसंयुक्तास्तीर्थान्यत्राश्रमे प्रिये ॥ १४१ ॥

परं परप्रधानानि रंभोरु श्रृणु साम्प्रतम्।
नानारोगार्त्तदेहोऽपि स्नानाद्यत्र सुखीभवेत् ॥ १४२ ॥

स्वर्णधाराभिधं तीर्थं देवाद् गव्यूतिमात्रतः।
तत्र स्नात्वा च विधिवद्दिनत्रयमुपोष्य च ॥ १४३ ॥

कुबेरं पश्यति क्षिप्रमुपासीत हरिं प्रभुम्।
सावधानतया तत्र स्थेयं विष्णुपरात्मना ॥ १४४ ॥

प्रसन्नो धनदो दद्यात्स्पर्शादि दृषदं[1] प्रिये।
वैखानसं परं तीर्थं महापापनिवारणम् ॥ १४५ ॥

स्नात्वा फलादिभक्षोऽत्र जयेन्मृत्युं हि वत्सरात्।
शेषतीर्थे महापुण्ये गंगायां स्नाति यो नरः ॥ १४६ ॥

इह लोके वरान् भोगान् परत्र च परां गतिम्।
बदरीनाथदेवस्य वामे तीर्थवरं स्मृतम् ॥ १४७ ॥

इन्द्रधारेति विख्यातं स्नात्वा चेन्द्रसमो भवेत्।
वेदधारामयं तीर्थं सर्वदेवमयं परम् ॥ १४८ ॥

ब्रह्महत्यादि शमनं पितॄणां मुक्तिदायकम्।
वसुधाराभिधं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १४९ ॥

पापिनां मूर्ध्नि तत्तोयबिन्दवो निपतन्ति वै।
चतुर्वर्गफलप्राप्तिर्जायतेऽत्र वरानने ॥ १५० ॥

नाम्ना धर्मशिला तत्र स्नात्वाविश्य महामतिः।
वसुवर्णजपं कुर्य्याद् वसुलक्षं समाहितः ॥ १५१ ॥

विष्णुसारूप्यतां याति सत्यमेव न संशयः।
सोमतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ १५२ ॥

१, बृषद।

वह कामदेव के समाग रूपवान हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे प्रिये इस आश्रम में साढे तीन करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं ॥ १४१ ॥

परन्तु हे रम्भोरु ! उसमें जो प्रमुख तीर्थ हैं, इस समय उसी को सुनो। नाना रोगों से पीड़ित देह वाला भी यहां स्नान करने से सुखी हो जाता है ॥ १४२ ॥

यहां से एक गव्यूति की दूरी पर स्वर्णधारा नाम का तीर्थ है। उसमें जो विधिवत् तीन दिन स्नान करता है और उपवास करता है ॥ १४३ ॥

उसे शीघ्र ही कुबेर के दर्शन होते हैं। वहाँ विष्णु के प्रति मन लगाकर सावधानी से रहना चाहिये और हरि प्रभु की उपासना करनी चाहिये ॥ १४४ ॥

हे प्रिये ! इस आचरण से कुबेर प्रसन्न होकर उसे पारस पाषाण दे देते हैं। उसके आगे समस्त पाप विनाशक वैखानस नाम का तीर्थ है ॥ १४५ ॥

एक वर्ष तक जो व्यक्ति फल आदि का भक्षण करके इस तीर्थ में स्नान करता है, वह मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पुण्यप्रद शेष तीर्थ में स्नान करते हैं ॥ १४६ ॥

वे इस लोक में उत्तम सुख भोग कर मरने के बाद परम गति को प्राप्त करते है। बदरीनाथ के वाम भाग में अतिश्रेष्ठ एक तीर्थ स्थान है ॥ १४७ ॥

जो इन्द्रधारा नाम से विख्यात है। उसमें स्नान करने से मानव इन्द्र के समान हो जाता है। इस वेदधारामय तीर्थ को सर्वदेवमय कहा गया है ॥ १४८ ॥

यह तीर्थ ब्रह्महत्या आदि पापों को नाश करने वाला तथा पितरों को मुक्ति देने वाला है। वसुधारा नाम का तीर्थ सब पापों को नाश करने वाला है ॥ १४९ ॥

हे सुन्दर मुख वाली ! उस धारा से निर्गत बिन्दु यदि पापियों पर भी पड़ जाते हैं तो उन्हें धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष चर्तुवर्ग फल की प्राप्ति होती है ॥ १५० ॥

वहां धर्मशिला नाम की एक शिला है, जो महामति स्नान करके उस पर प्रवेश करता है और चित्त को एकाग्र करके "ओं नमो नारायणाय" मन्त्र का जप करता है ॥ १५१ ॥

वह विष्णु के स्वरूप को प्राप्त करता है। यह सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है। सोमतीर्थ नाम का समस्त फलों को देने वाला एक तीर्थ विख्यात है ॥ १५२ ॥

वर्द्धते सह सोमेन ह्रसते तत्तथैव च ।
पुरा तत्र महाभागे तप्तं सोमेन वै तपः ।। १५३ ।।

प्राप्तवांश्च महद्रूपं सर्वलोकेषु दुर्ल्लभम् ।
स्नानाज्जपात्तथा दानादनंतं फलमश्नुते ।। १५४ ।।

परं सत्यं परं तीर्थं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ।
तत्र स्नात्वा महाभागे विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।। १५५ ।।

सर्वसिद्धिमवाप्नोति मंडलार्द्धेन भामिनि ।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा विष्णुलोकं व्रजेत्प्रिये ।। १५६ ।।

चक्रतीर्थस्य माहात्म्यादर्जुनः परमास्त्रवित् ।
भूत्वा स नाशयामास शत्रून्दुर्योधनादिकान् ।। १५७ ।।

द्वादशादित्यतीर्थं वै सर्वपापप्रणाशनम् ।
गायते यो वृहत्साम्ना श्रीविष्णुं रविवासरे ।। १५८ ।।

नीरोगोऽखिलभोगाढ्यो जायते जनवल्लभः ।
तथा सप्तर्षितीर्थे वै स्नात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ।। १५९ ।।

रुद्रतीर्थे तथा स्नात्वा रुद्रलोके महीयते ।
ब्रह्मतीर्थं तथा ख्यातं ब्रह्मलोकप्रदायकम् ।। १६० ।।

स्नानं दानं जपो होमस्तत्सर्व कोटिसंख्यकम् ।
नरनारायणं तीर्थं नरनारायणावृषी ।। १६१ ।।

तेपाते परमं देवि तपस्त्रैलोक्यतापनम् ।
तन्नाम्ना तु समाख्यातं तीर्थं परमपुण्यदम् ।। १६२ ।।

यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः ।
तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसख्यकम् ।। १६३ ।।

मुचुकुन्दाश्रमो रम्ये[1] देवदानवपूजिते[2] ।
कुण्डं तत्र समाख्यातं मौचुकुन्देति संज्ञितम् ।। १६४ ।।

---

१ रम्योऽ. २. पूजितः ।

हे महाभागे ! वह चन्द्रमा के साथ (कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष) में घटता-बढ़ता रहता है। पहले वहाँ चन्द्रमा ने तप किया था ॥ १५३ ॥

और ऐसे महान् रूप का लाभ प्राप्त किया था, जो सभी लोकों में दुर्लभ है। यहां स्नान, जप और दान करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ॥ १५४ ॥

हे महाभाग्यशालिनि ! परम सत्य पद देने वाला यह तीर्थ तीनों लोकों में दुर्लभ है। वहां स्नान करने से विष्णु का सायुज्य प्राप्त होता है ॥ १५५ ॥

हे प्रिये ! हे भामिनि ! आधा मण्डल की दूरी पर चक्र नाम के तीर्थ में जो स्नान करता है, वह सब सिद्धियों को प्राप्त कर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥ १५६ ॥

चक्रतीर्थ के माहात्म्य से ही अर्जुन ने अस्त्र विद्या में निपुण होकर दुर्योधन आदि अपने समस्त शत्रुओं का नाश किया था ॥ १५७ ॥

द्वादशादित्य तीर्थ समस्त पापों का नाशक है। वहाँ रविवार में बृहत्साम मन्त्रों द्वारा श्री विष्णु का जो कीर्तन करता है ... ॥ १५८ ॥

वह रोगों से युक्त होकर समस्त योग्य भोगों को भोगने वाला होता है। वह मनुष्य समाज में प्रिय होता है। वहीं सप्तर्षि नाम के तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्ममय हो जाता है ॥ १५९ ॥

रुद्रतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक को जाता है। वहीं एक ब्रह्मतीर्थ है, जो ब्रह्मलोक को देने वाला है ॥ १६० ॥

इस तीर्थ में स्नान, दान, जप और होम करने से करोड़ों संख्यक फल प्राप्त होते हैं। नर-नारायण तीर्थ में नरनारायण ऋषि विद्यमान हैं ॥ १६१ ॥

हे देवि ! उन दोनों ने इस स्थान में तीनों लोकों को तपा देने वाला परम उग्र तप किया था। अतः इस परम पुण्य देने वाले तीर्थ का नाम उन्हीं के नाम से विख्यात हो गया ॥ १६२ ॥

जहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं ने परम सिद्धि प्राप्त की थी। वहाँ जो कर्म किया जाता है, उसका करोड़ों गुणा फल मिलता है ॥ १६३ ॥

यहां देवताओं तथा दानवों से पूजित स्थान पर मुचुकुन्द नाम का एक सुरम्य आश्रम है। वहां एक कुण्ड है, जो मौचुकुन्द कुण्ड नाम से विख्यात है ॥ १६४ ॥

यत्र स्नात्वा सकृदपि न स भूयोऽभिजायते ।
व्यासतीर्थं समाख्यातं व्यासदेवेन सेवितम् ।। १६५ ।।

अवगाह्य तथा दत्त्वा जप्त्वा ब्रह्म लभेन्नरः ।
केशवप्रयागतीर्थं क्षेत्राणां परमं मतम् ।। १६६ ।।

मणिभद्राश्रमस्तत्र महाविष्णुश्च तत्र वै ।
पुरा यत्र वरारोहे भीमसेनोऽजयद्रिपून् ।। १५७ ।।

गन्धर्वाख्यान्महाभागे भद्रे भद्रपुरःसरान् ।
तत्र पांडवतीर्थं हि पांडवा यत्र संस्थिताः ।। १६८ ।।

तपश्चक्रुर्महात्मानो धौम्यलोमशसंयुताः ।
इति सर्वाणि मुख्यानि तीर्थानि कथितानि वै ।
श्रुत्वाऽपि सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। १६९ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये
नन्दप्रयागदितीर्थवर्णनं नाम अष्टपंचाशोऽध्यायः ।

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

नारदस्य पूर्वजन्मवृत्तकथनपुरस्सरं नारदकुण्डस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

अरुन्धत्युवाच—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ ह्युक्तानि बदरीवने ।
तीर्थानि कथितान्येव स्वर्गादिफलदानि च ।। १ ।।

अतः परं महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
केनकेनात्र चरितं तोर्थयात्राव्रतं मुने ।। २ ।।

किं किं फलं परं प्राप्तं माहात्म्यं कस्य कर्म्मणः ।
एतत्सर्वं समाख्यानं मम विस्तरतो वद ।। ३ ।।

जहां एकबार भी स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता। व्यासदेव से सेवित एक व्यास तीर्थ यहाँ विख्यात है ।। १६५ ।।

वहाँ स्नान, दान और जप करके मनुष्य को ब्रह्म की प्राप्ति होती है। क्षेत्रों में परमोत्तम एक केशवप्रयाग नाम का तीर्थ है ।। १६६ ।।

वहाँ मणिभद्र आश्रम तथा महाविष्णु विद्यमान हैं। हे सुन्दर जांघों वाली पार्वति ! पहले यहाँ भीमसेन ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी ।। १६७ ।।

हे महाभागे भद्रे पार्वति ! उसने भद्र आदि अनेक गन्धर्वों को जीता था। जहाँ पाण्डव रहे थे, वहीं पाण्डव तीर्थ है ।। १६८ ।।

धौम्य और लोमश से युक्त होकर उन महात्मा पाण्डवों ने उसी स्थान पर तप किया था। इस प्रकार समस्त मुख्य तीर्थों का वर्णन किया गया है। इस वर्णन को सुनने पर भी समस्त पापों का विनाश हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। १६६ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास प्रशंसा
में बदरीश माहात्म्य प्रसङ्ग में नन्दप्रयाग आदि तीर्थ
वर्णन नाम का अठ्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ५६

नारद के पूर्व जन्म के वृत्तान्त का कथन और नारद कुण्ड में स्नान के माहात्म्य का वर्णम

अरुन्धती ने कहा—

हे भगवन् ! समस्त धर्मों को जानने वाले ! आपने बदरीवन में स्वर्ग आदि फलों को प्रदान करने वाले तीर्थ स्थानों का वर्णन किया है ।। १ ।।

हे महाभाग मुने ! इससे आगे मैं यह सुनना चाहती हूँ कि किस-किस ने यहाँ तीर्थ यात्रा व्रत का आचरण किया था ।। २ ।।

उनको क्या-क्या परम फल प्राप्त हुआ था और किस कर्म का क्या माहात्म्य है ? इन सब आख्यानों को मेरे से विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ।। ३ ।।

क्षेत्रस्य परमाख्यानं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
शृण्वंत्यास्तस्य माहात्म्यं तृप्तिर्मे जायते न हि ॥ ४ ॥

वसिष्ठ उवाच—

साधु पृष्ठं त्वया देवि तत्ते सर्वं वदाम्यहम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

परमं गीतमाहात्म्यं बदरीनाथवेश्मनि ।
दृष्टं पुरा मया देवि नारदेन यथा पुरा ॥ ६ ॥

आराधितो महात्माभूद्भूतभावनभावनः ।
गीतेनाष्टकवर्य्येण संतुष्टो भगवान् ददौ ॥ ७ ॥

सर्वज्ञत्वं च देवत्वं नारदाय महात्मने ।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि सर्वपापहरं शुभम् ॥ ८ ॥

शृणु सर्वं पुरावृत्तं नारदस्य महात्मनः ।
दृषद्वत्यां बभूवाथ नाम्ना विष्णुमना द्विजः ॥ ९ ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो धर्मात्मा धर्मतत्परः ।
तस्य पुत्रो विष्णुरतिर्बभूव वरवर्णिनि ॥ १० ॥

पाठ्यमानोऽपि बहुधा पुत्रं विष्णुमना बहु ।
न पपाठ महाभागे विद्यां शास्त्रात्मिकां सदा ॥ ११ ॥

गाने तस्य मनो लग्नं गायनज्ञैश्च संगतः ।
ययौ देशान्तरं देवि भिक्षितुं नृपतींस्तदा ॥ १२ ॥

बहुधा वार्य्यमाणोऽपि मन्यते न कदाचन ।
पुत्रं निष्कासयामास क्रोधाविष्टो महीसुरः ॥ १३ ॥

सोऽपि विष्णुरतिर्मूर्खो गायनज्ञैश्च संगतः ।
नारायणं दयासिन्धुं गायन् साकं वरानने ॥ १४ ॥

प्रसंगात्तस्य वांमागि विष्णुभक्तिरजायत ।
शब्दो ब्रह्म यतो ह्युक्तं गीताख्यं परमं पदम् ॥ १५ ॥

इस क्षेत्र का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाला जो परम उत्तम आख्यान है, उसके माहात्म्य को सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ ४ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे देवि ! आपने यह अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, उसे मैं आपसे कहता हूँ, जिसके मात्र श्रवण करने से समस्त पापों का विनाश हो जाता है ॥ ५ ॥

हे देवि ! बदरिकाश्रम में नारद द्वारा गान करने का परम माहात्म्य पहले मैंने देखा था ॥ ६ ॥

भगवान् भूतनाथ शिवजी की आराधना करके वे नारद महात्मा हुये थे। उनके उत्तम अष्टक गीत से सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकर ने···॥ ७ ॥

महात्मा नारद को सर्वज्ञत्व और देवत्व प्रदान किया था। समस्त पापों का हरण करने वाले उस शुभ आख्यान को इस समय मैं आपसे वर्णित करूंगा ॥ ८ ॥

महात्मा नारद जी का जो पुरावृत्त है उसे श्रवण करो। दृषद्वती में एक विष्णुमना नाम का ब्राह्मण हुआ था ॥ ९ ॥

वह विष्णुमना सर्व शास्त्रों के अर्थों को जानने वाला, धर्मात्मा तथा धर्म में तत्पर रहने वाला था। हे सुन्दरि ! उसका विष्णुरति नाम का एक पुत्र हुआ ॥ १० ॥

हे महाभाग्यशालिनि ! विष्णुमना के द्वारा अपने पुत्र को पढाने पर भी वह शास्त्र विद्या को न पढ सका ॥ ११ ॥

उसका मन गान करने में तल्लीन रहता था, अतः उसने गायकों की संगति कर ली। हे देवि ! तब वह राजाओं से याचना करने के लिए विदेश चला गया ॥ १२ ॥

रोकने के अनेक उपाय करने पर भी जब वह न माना, तब क्रोध में आकर ब्राह्मण ने उस अपने पुत्र को घर से निकाल दिया ॥ १३ ॥

हे वरानने ! वह मूर्ख विष्णुरति भी गायकों के साथ मिलकर दयालु नारायण भगवान् का गान करने लगा ॥ १४ ॥

हे सुमुखि ! इस गान से उसमें विष्णु भगवान् के प्रति भक्ति का उदय हो गया, क्योंकि गान शब्द को परम पद देने वाला साक्षात् ब्रह्म कहा गया है ॥ १५ ॥

तस्य घोषात्कुतो देवि न भवेत् ब्रह्मतत्परः ।
गायते यो विना विष्णुं शिवं च परमेश्वरम् ॥ १६ ॥

पापात्मा स हि विज्ञेयो गीतशास्त्रविशारदः ।
तस्माद्गीयेत्परं ब्रह्म यदवाप्य न शोचति ॥ १७ ॥

गीत्वा यद्वै परं ब्रह्म शिवोऽभूद् ब्रह्मतत्परः ।
गानमेव परं मन्ये यतो विष्णुः प्रसीदति ॥ १८ ॥

ब्रह्मप्रीतिकरं ह्यस्माच्छीघ्रं नान्यविधिः प्रिये ।
असौ विष्णुरतिर्मूर्खो विष्णुभक्तोऽभवद्यतः ॥ १९ ॥

सोऽपि विष्णुरतिः संगं गायकानां तथा त्यजन् ।
एकाकी प्रययौ धीमान् कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ २० ॥

बदरीवनमध्ये तु नारायणसमीपतः ।
गीयते स्म तदा विष्णुर्भगवान्वै महात्मना ॥ २१ ॥

तदा तुष्टो वरं प्रादाच्छ्रीविष्णुरतये प्रिये ।
दुर्ल्लभं योगिनां यद्वै नारदत्वं च संगतः ॥ २२ ॥

अरुन्धत्युवाच—

कथं गीतो महाविष्णुः केन गीतेन वै प्रभो ।
तन्मे शंस महापुण्यं नारदत्वं कथं गतः ॥ २३ ॥

वसिष्ठ उवाच –

शृणु चित्तं समाधाय विष्णुभक्तिकरं परम् ।
यद्गीत्वा च पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २४ ॥

नानामृतं परं दिव्यं श्रीविष्णोः परमात्मनः ।
सिद्धिदं यत्र कुत्रापि किमु तद् बदरीवने ॥ २५ ॥

गंगायां स महाभागः स्नात्वा गृह्य जलं परम् ।
संगायति महाविष्णुं नित्यमेव तपोनिधिः ॥ २६ ॥

हे देवि ! अतः उसके शब्द से क्यों न ब्रह्म का साक्षात्कार हो । जो विष्णु, शंकर और परब्रह्म से रहित गान करता है ।। १६ ।।

वह गान विद्या में चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो, उसे पापात्मा समझना चाहिए । इसलिए परब्रह्म का गान करना चाहिए, जिसको प्राप्त करके शोक नहीं रहता ।। १७ ।।

जिसका गान ब्रह्म में तत्पर हो वह परब्रह्म शिव हो जाता है । हम तो गान को ही परब्रह्म मानते हैं, जिससे विष्णु प्रसन्न हो जाते है ।। १८ ।।

हे प्रिये ! ब्रह्म को शीघ्र प्रसन्न करने की यही विधि है, अन्य कोई विधि नहीं । इसी से मूर्ख विष्णुरति भी भगवान् विष्णु का भक्त हो गया ।। १९ ।।

वह बुद्धिमान् विष्णुरति उन गायकों का साथ छोड़कर एक समय अकेला ही सर्वोत्तम कैलास पर्वत के ऊपर गया ।। २० ।।

बदरीवन के मध्य में नारायण के समीप जाकर वह महात्मा वहाँ विष्णु का कीर्तन करने लगा ।। २१ ।।

तब हे प्रिये ! विष्णु ने प्रसन्न होकर उस विष्णुरति को नारद होने का वर प्रदान किया, जो योगियों को भी दुर्लभ है ।। २२ ।।

अरुन्धती ने कहा—

हे प्रभो ! कौन से गीत से, किस गान के द्वारा भगवान् का कीर्तन किया गया, उन्हें नारदत्व कैसे प्राप्त हुआ, आप उस पवित्र आख्यान को मेरे से कहिए ।। २३ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

विष्णु की परम भक्ति को देने वाले और जिसके गाने तथा पढ़ने से समस्त पापों का विनाश हो जाता है उस गीत को आप मन एकाग्र करके सुनो ।। २४ ।।

परमात्मा श्री विष्णु भगवान् के अनेक अमृत स्वरूप परम दिव्य नामों के गाने से बदरीवन में ही क्या, अपितु सर्वत्र सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।। २५ ।।

वह महाभाग तपस्वी विष्णुरति गंगा में स्नान करके तथा जल ग्रहण करके नित्य ही विष्णु भगवान् का गान करना था ।। २६ ।।

विष्णुस्तोत्र

विष्णुरतिरुवाच—

रमारमण बदरीपते हरे नृहरे श्रीपरमेश ।
भवाब्धितरणचरणेश प्रभो परमविचरेश ।। १ ।।
मामव मामव दुरिताम्बुधौ निमज्जंतम् ।
धरणिधर शुभकरण नारायण सुखनिकेतन ।
जलधरतनो सुमनोऽभ्यर्चितचरणतरणेऽव नः ।
मामव मामव दुरिताम्बुधौ निमज्जंतम् ।। २ ।।
मधुमथन मुरक्रथन शुभसदनपरिनिधान ।
गरुड़पदासन भासन सुरनरकरुणानिधान ।
मामव मामव दुरिताम्बुधौ निमज्जंतम् ।। ३ ।।
जीवजीवन बदरीवनसदन गोपीजनसानन्द ।
नरकविदारण दनुजविदारणकर परमानन्द ।
मामव मामव दुरिताम्बुधौ निमज्जंतम् ।। ४ ।।
राम रावणमथनपर सीतानन्दकर सुरनाथ ।
दुरितनिकृंतन जलधिमंथन शुभगाथ ।
मामव मामव दुरिताम्बुधौ निमज्जंतम् ।। ५ ।।
धरणिधरण शुभकरण नारायण सुखनिकेतन ।
जय जय हरिततनो भगवन् यदुवंशहरिनाम ।
मुरसूदन बलवते बलिच्छलन घृतबलिधाम ।
मामव मामव दुरिताम्बुधौ निमज्जंतम् ।। ६ ।।
भक्त्या परमया गीतं हर्षेण महता प्रिये ।
प्रत्यक्षं दृष्ट्वान् विप्रो महाविष्णुं परात्परम् ।। २७ ।।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशो द्योतयन् सर्वतो दिशम् ।। २८ ।।
उवाच परमं तुष्टो द्विजं भक्तिकरं परम् ।
वरं वरय भद्रं ते न हि ते दुर्ल्लभं क्वचित् ।। २९ ।।

विष्णुरतिरुवाच—

धन्योऽस्म्यहं जगन्नाथ परमात्मन् सनातन ।
न दृष्टं यत्पुरा कैश्चित्तव रूपं गतं मया ।। ३० ।।

विष्णुस्तोत्र

विष्णुरति बोला—

हे रमा में रमण करने वाले ! बदरीवन के स्वामी ! आप पापों को हरण करने वाले नर हरि हैं। हे परमेश्वर ! आपके चरण संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥ १ ॥

अतः हे प्रभो ! संसार रूपी पाप समुद्र में डूबने से मेरी रक्षा करो। आप पृथिवी को धारण करने वाले हैं, आप ही समस्त शुभ करने वाले तथा सुख के धाम नारायण हैं। आपका स्वरूप बादल की तरह श्याम है। समस्त देवता लोग पुष्पों से आपके चरणों की पूजा करते हैं अतः आप हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

मधु दैत्य एवं मुरदैत्य को नाश करने वाले, सुख के धाम आपकी परम कल्याण-मूर्ति है। गरुड़ पर आसीन रहते हैं, दीप्तिशाली हैं। देवताओं और मनुष्यों पर कृपा करके आप ही प्रकाशित होते हैं। अतः हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥

प्राणिमात्र के प्राणों के आधार बदरीवन में निवास करने वाले, गोपीजनों की आनन्दमूर्ति, नरकासुर को मारने वाले, दैत्य संगठन का नाश करने वाले, परम आनन्द को देने वाले आप ही हैं। अतः हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

हे देवेन्द्र ! रावण का नाश करने वाले, सीता को सुख देने वाले राम आप ही हैं। पापों का विनाश करने वाले तथा समुद्र को मथने वाले, आपके चरित्र का गान शुभ देने वाला है। आप हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

पृथिवी के धारक, शुभ करने वाले, सुख के धाम एवं नारायण आप ही हैं। आप श्यामल प्रभा शरीर में धारण किये हैं, यदुवंश में हरिनाम को धारण करने वाले आपकी बार-बार जय हो। मुर दैत्य को मारने वाले, बलवान् बलि को छलने वाले तथा उसे परम धाम का वास देने वाले आप ही है। अतः आप मेरी रक्षा करें ॥ ६ ।)

हे प्रिये ! परम भक्ति सें हर्ष से प्रफुल्लित हो जब उस ब्राह्मण ने इस गीत को गाया, तब उसने परमात्मा महाविष्णु को प्रत्यक्ष रूप में देखा ॥ २७ ॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला से वे विष्णु भगवान् विराजमान थे। करोड़ों सूर्यों की दीप्ति के समान दीप्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को वे उदीप्त कर रहे थे ॥ २८ ॥

परम उत्कृष्ट भक्ति करने वाले ब्राह्मण पर प्रसन्न होकर विष्णु ने उससे कहा। आप अपनी इच्छानुसार वर मांगिये आपको कुछ भी अदेय नहीं होगा, आपको दुर्लभ वर भी मैं दे सकूँगा ॥ २९ ॥

विष्णुरति ने कहा—

हे जगत्पति ! परमात्मन् ! सनातन ! मैं धन्य हूँ, क्योंकि मैंने आपके स्वरूप के दर्शन किये हैं, जो अब तक किसी को भी न मिल सके ॥ ३० ॥

भक्तिर्यथा भवेन्नित्यं त्वयि विष्णौ परेश्वरे।
तथाऽस्यां भगवन् देव गाने तु कुशलो भवे: ।। ३१ ।।
यत्र कुत्रापि त्वद्भक्तिर्भवतु मम माधव।
न पश्यामि भवं विष्णो वराणां मे चतुष्टयम् ।। ३२ ।।

श्रीभगवानुवाच—
याचितं यत्त्वया विप्र सर्वं तत्ते भविष्यति।
शिवमाराध्य रागज्ञो भविष्यसि महामुने ।। ३३ ।।
पुरा त्वं नारदो नाम्ना मम भक्तो मम प्रिय:।
दक्षशापेन संसारे प्राप्तोऽसि मुनिवन्दित ।। ३४ ।।
नारं दत्तं त्वया गांगं मह्यं तन्मम रूपकम्।
अतस्त्वं नारदो नाम्ना भविष्यसि तपोनिधे ।। ३५ ।।
इदं नारदकुण्डं हि सर्वमुक्तिप्रदायकम्।
भविष्यति महाभाग ममापि स्थितिरुत्तमा ।। ३६ ।।
मूर्त्तयश्चापि पंचाशद्वर्तन्ते तावके ह्रदे।
युगे-युगे ममांशश्च हरांशश्चैव शंकर: ।। ३७ ।।
उद्धरिष्यंति मे मूर्ति तावकीनह्रदाच्छुभात्।
अस्मिन् कुण्डे तु य: कश्चित्स्नानं दानं जपादिकम्।
करिष्यति महाभाग फलानंत्यं समश्नुते ।। ३८ ।।
निराहारेण य: कश्चित्प्राणांस्त्यजति बुद्धिमान्।
किं तस्य काशीमरणं किं वा योगशतैस्तथा।
धन्य: स एव लोकेषु पुण्यात्मा नात्र संशय: ।। ३९ ।।

वसिष्ठ उवाच—
इत्याभाष्य मुनिं विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत।
सोऽपि विप्रो महाभागे नारदत्वमुपागत: ।। ४० ।।
शिवमाराध्य विश्वेशं सर्वं संगीतमाप्तवान्।
मूर्त्तिमन्तस्तथा रागा भेजिरे नारदं मुनिम् ।। ४१ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां बदरी-माहात्म्ये
नारदोपाख्यानं नाम ऊनषष्टितमोऽध्याय:।

हे भगवन् ! मेरी आप में नित्य भक्ति होवे । हे देव ! मैं गान विद्या में निपुणता को प्राप्त करूँ ।। ३१ ।।

हे माधव ! मैं जहां कहीं भी रहूँ, आप में मेरी भक्ति निरन्तर बनी रहे। हे विष्णो ! मैं फिर जन्म धारण न करूँ । मुझे ये चार वर दीजिए ।। ३२ ।।

श्री भगवान् ने कहा—

हे ब्राह्मण ! जो तुमने मांगा है, वह सब तुमको प्राप्त होगा । हे महामुने ! शिव जी की आराधना करके भविष्य में तुम राग के ज्ञाता बनोगे ।। ३३ ।।

पहले तुम नारद नाम से मेरे परम प्रिय भक्त थे । हे मुनियों से पूजित ! दक्ष के शाप से तुम्हारा जन्म इस संसार में हुआ है ।। ३४ ।।

हे तपोनिधे ! मेरे स्वरूप गंगा जल को तुमने मेरे ऊपर चढ़ाया है । अतः भविष्य में भी तुम नारद नाम से विख्यात होओगे ।। ३५ ।।

यह नारदकुण्ड सबको मुक्ति देने वाला होगा है । हे महाभाग ! भविष्य में मेरी भी यहां उत्तम स्थिति होगी ।। ३६ ।।

तुम्हारे कुण्ड में पचास मूर्तियां भी विद्यमान हैं । प्रत्येक युग में मेरा अंश तथा कल्याणकारी शिव का अंश होगा ।। ३७ ।।

तुम्हारे शुभ कुण्ड में से हमारी मूर्ति का उद्धार किया करेगा । इस कुण्ड में जो कोई स्नान, दान और जप आदि करेगा, हे महाभाग ! वह अनन्त फलों का भोग प्राप्त करेगा ।। ३८ ।।

जो कोई बुद्धिमान् निराहार रहकर इसमें प्राणों का त्याग करता है, उसे काशी में मरने तथा सैकड़ों योग करने से भी कोई लाभ नहीं है । वह ही लोकों में पुण्यात्मा अथवा धन्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। ३९ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

हे महाभाग्यशालिनि ! मुनि को यह कह कर विष्णु भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । वह ब्राह्मण भी नारद रूप बन गया ।। ४० ।।

विश्वेश्वर महादेव की आराधना से उसे सम्पूर्ण गीत विद्या का लाभ हुआ । वे सम्पूर्ण राग मूर्तिमान् बन कर नारद मुनि को भजने लगे ।। ४१ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास प्रशंसा में बदरीनाथ माहात्म्य में नारद उपाख्यान नाम का उनसठवां अध्याय पूरा हुआ ।

षष्टितमोऽध्यायः

दुर्वृत्तशङ्करगुप्तोत्तमगतिप्राप्तिकथनपुरस्सरं बदरीनाथ माहात्म्यवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच—

शृण्वरुन्धति वक्ष्यामि यात्राया बदरीपतेः।
फलमाश्चर्य्यरूपं वै सावधानाऽवधारय ॥ १ ॥

इतिहासं महापुण्यं धनायुष्यप्रवर्द्धनम्।
कथयामि महावैश्यो ब्रह्महत्यायुतोऽपि सः ॥ २ ॥

निष्पापः प्राप भवनं वैकुण्ठाख्यं महास्पदम्।
प्रतिष्ठाने पुरे वैश्यो बभूव धनतोयधिः ॥ ३ ॥

नाम्ना शंकरगुप्तो वै धर्मात्मा विष्णुतत्परः।
अपुत्रो दुःखितो नूनं नालभच्छर्म कर्हिचित् ॥ ४ ॥

चिन्तयानोऽपि हि भृशं किं धनेन ममेति वै।
तस्यैकदा मतिर्जाता धनसंक्षयगामिनी ॥ ५ ॥

सर्वं धनं समानीय प्रभासे तीर्थनायके।
ब्राह्मणांश्च समाहूय नानादिग्भ्यो वरानने ॥ ६ ॥

सर्वान्प्रणम्य विप्रान्वै परिक्रम्य पुनः पुनः।
उवाच विनयाविष्टः पुत्रहीनस्य मे धनम् ॥ ७ ॥

गृह्णीध्वं मुनयः सर्वे गतिर्मे भविता खलु।
इति तस्य वचः श्रुत्वा कृपाविष्टा मुनीश्वराः ॥ ८ ॥

अध्याय ६०

दुराचारी शंकर गुप्त को उत्तम गति प्राप्त होने की कथा का वर्णन करते हुये बदरीनाथ के माहात्म्य का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—

हे अरुन्धति ! सुनो । मैं अब बदरीनाथ की यात्रा के आश्चर्य रूप फल को कहूँगा । आप सावधान होकर उसे सुनो ॥ १ ॥

धन और आयु को बढ़ाने वाला परम पुण्य इतिहास मैं कहता हूँ । एक महा-वैश्य ब्रह्महत्या करने पर भी बदरीनाथ की यात्रा के फल से···॥ २ ॥

निष्पाप होकर परमपद बैकुण्ठ को प्राप्त हुआ । प्रतिष्ठानपुर में एक धन का समुद्र वैश्य हुआ ॥ ३ ॥

वह धर्मात्मा और विष्णु-भक्ति में निरत रहने वाला था और शंकरगुप्त उसका नाम था । उसका पुत्र नहीं था, जिससे वह निरन्तर दुःखी रहता था ॥ ४ ॥

उसे कहीं भी शान्ति न मिलती थी । वह इस बात के लिए चिन्तित रहता था कि मुझे इस प्रभूत धन से क्या करना है । उसकी एक समय इच्छा हुई कि इस समस्त धन को व्यय कर देना चाहिए ॥ ५ ॥

अतः वह सम्पूर्ण धन को लेकर श्रेष्ठ तीर्थ प्रभास क्षेत्र में आया । हे वरानने ! और विभिन्न दिशाओं से ब्राह्मणों को आमंत्रित कर ॥ ६ ॥

उस वैश्य ने उन सब ब्राह्मणों को प्रणाम किया तथा बार-बार उनकी परि-क्रमा की । विनयान्वित होकर उस वैश्य ने उन ब्राह्मणों से कहा कि पुत्रहीन हूँ मेरे धन को ॥ ७ ॥

आप सब मुनिजन ले लीजिये, जिससे मुझे निश्चय ही सद्गति मिलेगी । इस प्रकार उस शंकरगुप्त के वचन को सुनकर ब्राह्मणों के मन में दया आ गयी ॥ ८ ॥

ऊचुः शंकरगुप्तं वै विनयाविष्टमानसम् ।
भो भो वैश्य महाभाग कुर्मः पुत्रेष्टिकां तव ।। ९ ।।

येनोपायेन ते पुत्रो भविता विष्णुतत्परः ।
परं दारुणवेलायां पृष्टाः स्मो भवता वयम् ।। १० ।।

तेन ते परमं पापं करिष्यति सुतः किल ।
पुनर्वै बदरीशस्य यात्रया भविताऽमलः ।। ११ ।।

इत्युक्त्वा ते महाभागे चक्रुरिष्टिं महाविधिम् ।
चरुमुत्पाद्य तत्रापि ददुस्तस्मै महात्मने ।। १२ ।।

सोऽपि वैश्यो महाभागो ददौ बहुतरं धनम् ।
तृप्तास्तेऽपि ययुर्विप्राः स्वं स्वं देशं मुदान्विताः ।। १३ ।।

शंकरोऽपि चरुं लब्ध्वा प्रतिष्ठाने पुरे शुभे ।
प्रियायै प्रददौ तूर्णं गर्भं प्राप वरांगना ।। १४ ।।

ततस्तु दशमे मासि प्रासूत वरपुत्रकम् ।
उवाच सा सुतं तं वै ब्रह्मदत्तेति नामतः ।। १५ ।।

ब्राह्मणैस्तु यतो दत्तोऽसौ ततो ब्रह्मदत्तकः ।
ववृधे सोऽपि वैश्यस्य पुत्रः शुक्ले यथा शशी ।। १६ ।।

वयोयौवनमापन्नो वैश्यपुत्रो महाद्युतिः ।
एकदा प्रययौ सोऽपि विक्रीतुं द्रव्यकं बहु ।। १७ ।।

गच्छमानो ददर्शाग्रे म्लेच्छद्वन्द्वं वरानने ।
तत्र म्लेच्छीं ददर्शासौ रूपयौवनशालिनीम् ।। १८ ।।

वराननां सुकेशीं च नेत्राभ्यां जितखंजनाम् ।
दृष्ट्वा मुमोह तां वेश्यां ब्रह्मदत्तो विशः सुतः ।। १९ ।।

धनं तस्यै ददौ सर्वं तत्संगे निरतोऽभवत् ।
तद्धर्मनिरतश्चापि बभूव वरवर्णिनि ।। २० ।।

तब उन्होंने विनयी मन वाले शंकरगुप्त को कहा—हे महाभाग ! वैश्य ! हम तुम्हारे लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं ।। ९ ।।

जिससे तुम्हारा विष्णु भक्ति में निरत रहने वाला पुत्र होगा । परन्तु अति दारुण काल में तुमने हम से प्रश्न किया है ।। १० ।।

अतः तुम्हारा पुत्र अतिशय पाप करने वाला होगा । पुनः वदरीनाथ जी की यात्रा करके निश्चय से वह निष्पाप हो जायेगा ।। ११ ।।

हे महाभाग्यशालिनि ! यह कह कर उन्होंने उत्तम विधान से पुत्रेष्टि यज्ञ को किया । चरु को उत्पन्न करके वहां उन ब्राह्मणों ने उस महात्मा वैश्य को दिया ।। १२ ।।

उस महाभाग वैश्य ने भी उन ब्राह्मणों को दक्षिणा में बहुत धन प्रदान किया । तृप्त हुये वे ब्राह्मण परम प्रसन्न होकर अपने-अपने देश को गये ।। १३ ।।

शंकरगुप्त भी चरु को लेकर शुभ को देने वाले प्रतिष्ठानपुर में आया और अपनी प्रिय भार्या को वह चरु प्रदान किया, जिससे उस वरांगना के उदर में गर्भ स्थित हो गया ।। १४ ।।

इसके बाद दसवें महीने में उसकी स्त्री ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । उसने अपने उस पुत्र को ब्रह्मदत्त नाम से पुकारा ।। १५ ।।

क्योंकि वह ब्राह्मणों के प्रसाद से दिया गया था, अतः बालक का ब्रह्मदत्त नामकरण किया । वह बालक वैश्य पुत्र शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा ।। १६ ।।

यौवन अवस्था को प्राप्त होने पर कान्तिमान् वह वैश्य का पुत्र एक समय बहुत सी वस्तुयें लेकर उन्हें बेचने के लिए गया ।। १७ ।।

हे वरानने ! जाते हुए उस वैश्य पुत्र ने अपने सम्मुख म्लेच्छ दम्पती को देखा । वहां उसने अन्त्यत सुन्दर रूपवाली, म्लेच्छ युवती को देखा ।। १८ ।।

जिसका मुख सुन्दर, उत्तम केश, और आँखें खञ्जन पर विजय पाने वाली थीं । उस वेश्या को देख कर वह वैश्य पुत्र मोह को प्राप्त हो गया ।। १९ ।।

उस वैश्य पुत्र ने सब धन उस वेश्या को दिया और उसी के साथ निरत हो गया । हे सुन्दरि ! वह उसी वेश्या के धर्म में निरत रहने लगा ।। २० ।।

धनं सर्वं क्षयं नीतं दस्युधर्मरतोऽभवत् ।
तां गृहीत्वा वने वेश्यामुवास जनवर्जिते ।। २१ ।।

एकदा ब्रह्मदत्तोऽसौ गतश्चौर्याय कानने ।
एतस्मिन्नन्तरे विप्राञ्जातरूपपरिच्छदान् ।। २२ ।।

आयातान् दृष्टवाँस्तूर्णं धनुः सज्जं चकार ह ।।
बाणं सन्धाय धनुषि ब्राह्मणान्निजघान ह ।। २३ ।।

यत्किञ्चिद्वसु विप्रेभ्यो मृतेभ्यो मम वल्लभे ।
जग्राह च पुनर्दृष्ट्वा विप्रकीर्णजटान्बहून् ।। २४ ।।

यज्ञोपवीतिनश्चापि मृतान्दृष्ट्वाऽतिदुःखितः ।
विप्राणां दर्शनादेव किञ्चित्पापं क्षयं गतम् ।। २५ ।।

चिन्तयामास बहुशो ब्रह्महत्याभिपीडितः ।
किं मया दुष्कृतं कार्य्यं कृतं पापेन कर्म्मणा ।। २६ ।।

धनलुब्धेन सुतरां क्व गच्छामि क्व मे गति ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन जातोऽस्मि पितृप्रार्थितः ।। २७ ।।

अत्यन्तं चिन्तयानोऽसौ ययौ यत्र पिता स्थितः ।
पादयोः पतितस्तस्य शंकरस्यातिदुःखितः ।। २८ ।।

मयातिदुष्कृतं तात नीतं सर्वं धनं क्षयम् ।
चांडाल्या सह सम्भोगी ब्रह्महत्यासमन्वितः ।। २९ ।।

कथं मे भविता तात गतिस्तां वद साम्प्रतम् ।
पापोऽहं पापकर्माहं मज्जमानो भवार्णवे ।। ३० ।।

शंकरगुप्त उवाच—

एवमेव पुरा तात ब्राह्मणैः समुदीरितम् ।
अन्यथा तद्वचः पुत्र भवेदत्र कथं खलु ।। ३१ ।।

भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ।
जन्मेजयो यथा राजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ।। ३२ ।।

जब इसका सम्पूर्ण धन नष्ट हो गया, तब वह दस्यु कर्म करने लगा और उस वेश्या को लेकर निर्जन वन में रहने लगा ॥ २१ ॥

एक समय वह ब्रह्मदत्त चोरी करने के लिए वन में गया । इसी समय स्वर्णिम वस्त्र पहने ब्राह्मणों को···॥ २२ ॥

आता देख इसने शीघ्र धनुष को उठाकर उसमें बाण का सन्धान कर उन ब्राह्मणों को मार डाला ॥ २३ ॥

हे मेरी प्रिये ! जो कुछ धन उन मृत ब्राह्मणों के पास था, उसे उसने ले लिया और पुनः उन ब्राह्मणों की बड़ी-बड़ी जटायें फैली देख कर ॥ २४ ॥

और उनके यज्ञोपवीत देखकर तथा उनकी मृतावस्था देखकर वह बड़ा दुःखित हुआ । ब्राह्मणों के दर्शन से उस वैश्य का कुछ पाप नष्ट हो गया था ॥ २५ ॥

किन्तु ब्रह्महत्या से दुःखी होकर वह अतिशय चिन्ता करने लगा । हाय, धन के लोभ से वशीभूत हो पाप कर्म करने वाले मैंने यह क्या पाप का कार्य किया है ॥ २६ ॥

अतः मैं अब कहाँ जाऊँ, मेरी क्या गति होगी । मेरे पिता के द्वारा ब्राह्मणों की प्रार्थना करने पर उनके प्रसाद से मेरा जन्म हुआ था ॥ २७ ॥

अति चिन्तातुर होकर वह वहां गया जहां उसके पिता उपस्थित थे । अति दुःखी हुआ वह अपने पिता णंकरगुप्त के पैरों में पड़ा और कहने लगा ॥ २८ ॥

हे पितः ! मैंने घोर पाप कर्म किया है और सब धन मैंने नष्ट कर लिया है । मैं चांडाली के साथ सम्भोग करने वाला तथा ब्रह्महत्या करने वाला हूँ ॥ २९ ॥

हे तात ! मुझे सद्गति का लाभ कैसे होगा अब आप बताइये । मैं पापी हूँ, पाप कर्म करने वाला हूँ अतः इस संसार सागर में डूबता चला जा रहा हूँ ॥ ३० ॥

शंकरगुप्त ने कहा—

हे पुत्र ! पहले ब्राह्मणों ने ऐसा कह दिया था । हे सुत ! उनके वचन निश्चय करके अन्यथा कैसे हो सकते हैं ॥ ३१ ॥

होनहार अवश्य होके रहती है, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए । जिस प्रकार सत्यवादी धर्मात्मा राजा जनमेजय···॥ ३२ ॥

अष्टादशब्राह्मणानां हत्यां प्राप वने सुत।
तथा त्वमपि हत्यां वै प्राप्तवान्देवनिर्मिताम् ।। ३३ ।।

पुत्र उवाच –

किं कर्तव्यं मयेदानीं कथं वै निष्क्रतिर्भवेत्।
मज्जमानं हि पापाब्धौ रक्ष तात कृपान्वितः ।। ३४ ।।

शंकरगुप्त उवाच—

तैरेव गदितं पुत्र ब्राह्मणैर्यन्महात्मभिः।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि सावधानोऽवधारय ।। ३५ ।।

कैलासपर्वतश्रेष्ठे गन्धमादनपर्वते।
बदरीवनमध्ये वै बदरीनाथको हरिः ।। ३६ ।।

दृष्ट्वाऽयं ब्रह्महत्याभिर्मुच्यते नात्र संशयः।
पुत्र त्वमपि गच्छस्व बदरीनाथदर्शने ।। ३७ ।।

वसिष्ठ उवाच –

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य महात्मनः।
ययौ गणेशं सम्पूज्य नमस्कृत्य च ब्राह्मणान् ।। ३८ ।।

गंगाद्वारे समागत्य नमस्कृत्य महेश्वरम्।
भैरवं चापि सम्पूज्य फलरक्षणहेतवे ।। ३९ ।।

केदारेशं च सम्पूज्य स्नात्वा तत्र यथाविधि।
बदरीनाथभवनं नरनारायणस्थले ।। ४० ।।

तत्रत्येषु च तीर्थेषु स्नातः सर्वकृतक्रियः।
बदरीनाथभवनं गतवान्विष्णुतत्परः ।। ४१ ।।

प्रदक्षिणं च कृतवान् ननाम बहुशो हरिम्।
प्रसादं बदरीशस्य भुक्तवांश्च मुदान्वितः ।। ४२ ।।

नमस्कृत्य पुनर्गेहमाययौ भक्तितत्परः।
सर्वपाप विनिर्मुक्तो बभूव द्विजनन्दनः ।। ४३।।

वन में अठारह ब्राह्मणों की हत्या के पाप को प्राप्त हुआ था। हे पुत्र ! उसी प्रकार तुम भी देव निर्मित ब्रह्महत्या के पाप से लिप्त हुये हो ।। ३३ ।।

पुत्र ने कहा—

इस समय मुझे क्या करना चाहिए, मेरी शुद्धि किस प्रकार होगी ? मैं पापरूपी सागर में डूबता चला जा रहा हूँ । हे पितः ! कृपा करके मेरी रक्षा कीजिये ।। ३४ ।।

शंकरगुप्त बोला—

हे पुत्र ! महात्मा उन ब्राह्मणों द्वारा बताया गया उपाय ही इस समय मैं तुमसे कहूँगा । तुम सावधान होकर सुनो ।। ३५ ।।

कैलास क्षेत्र में गन्धमादन पर्वत के ऊपर बदरीवन में भगवान् बदरीनाथ जी विद्यमान हैं ।। ३६ ।।

जिनके दर्शन करने से ब्रह्महत्या के पाप विनष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है । हे पुत्र ! तुम भी बदरीनाथ जी के दर्शन करने के लिए जाओ ।। ३७ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

महात्मा उस शंकरगुप्त के इस प्रकार वचन सुनकर गणेश जी की पूजा करके और ब्राह्मणों को नमस्कार करके उसने यात्रा के लिए प्रस्थान किया ।। ३८ ।।

गंगाद्वार (हरिद्वार) में जाकर शिव जी को नमस्कार करके उसने फल की रक्षा के लिए भैरव की भी पूजा की ।। ३९ ।।

और वहां विधिपूर्वक स्नान करके उसने केदारेश्वर का पूजन किया । तब वह नरनारायण स्थल बदरीनाथ जी के निवास स्थान को गया ।। ४० ।।

वहां के समस्त तीर्थों में स्नान और योग्य कर्म किये । तब वह विष्णु भक्ति में तत्पर रहने वाला वैश्य बदरीनाथ जी के मन्दिर में गया ।। ४१ ।।

उसने मन्दिर की परिक्रमा की, और भगवान् विष्णु को बार-बार प्रणाम किया और बदरीनाथ जी के प्रसाद को खाकर वह परमहर्षित हुआ ।। ४२ ।।

हरिभक्ति में तत्पर वह वैश्य बदरीनाथ भगवान् को प्रणाम करके पुनः अपने घर को आया । इससे वह वैश्य कुमार समस्त पापों से मुक्त हो गया ।। ४३ ।।

उत्पाद्य बहुशः पुत्रांस्तद्विष्णोः परमं पदम्।
ययौ पितॄणैर्युक्तः स्तूयमानः सुरोत्तमैः॥ ४४॥

इति ते बदरीनाथदर्शनस्य च वैभवम्।
पुण्यं पवित्रमाख्यातं किमन्यत्कथयामि ते॥ ४५॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये
शङ्करगुप्त वैश्योपाख्यानं नाम षष्टितमोऽध्यायः

एकषष्टितमोऽध्यायः

जनमेजस्य ब्राह्मणवधहत्यापापकर्मणः बदरीक्षेत्रे व्यासमुखेन महाभारतकथाश्रवणात् क्षयवर्णनम्

अरुन्धत्युवाच—

अष्टादशब्राह्मणानां हत्यां वै जनमेजयः।
प्राप्तवान् धर्मतत्त्वज्ञो भवितव्यमभूत्कथम्॥ १॥

एतद्विस्तरतो ब्रूहि भगवन् संशयोऽस्ति मे।
निर्मुक्तश्च कथं नाम महतः पापसंचयात्॥ २॥

वसिष्ठ उवाच—

शृण्वरुन्धति वृत्तांतं पारीक्षित नृपस्य हि।
एकदा नृपतेस्तस्य यज्ञे सर्पभयानके॥ ३॥

पूर्णे चावभृथस्नाने भगवान् मुनिनायकः।
प्रपौत्रो मम रंभोरु व्यासः सत्यवतीसुतः॥ ४॥

जगाम भवने राज्ञोऽनेकशिष्यैः समावृतः।
आगतं तमृषिं ज्ञात्वा राजासौ जनमेजयः॥ ५॥

आययौ भक्तिसम्पन्नो ह्यानेतुं बादरायणिम्।
तं दृष्ट्वा सहसा राजा प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ ६॥

इहत पुत्रों को जन्म देकर वह वैश्य अपने पितरों के साथ परमपद विष्णुलोक को गया और देवताओं द्वारा उसकी स्तुति की जाने लगी ।। ४४ ।।

इस प्रकार परम पुण्य और पवित्र बदरीनाथ दर्शन के वैभव के आख्यान को आपसे वर्णित किया है । अब और आप से क्या वर्णित करूँ ।। ४५ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास प्रशंसा में
बदरीनाथ माहात्म्य में शंकरगुप्त नामक वैश्य उपाख्यान
नाम का साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ६१

जनमेजय द्वारा किये गये ब्राह्मण वध हत्या रूप पाप कर्म का बदरीक्षेत्र में व्यास ऋषि द्वारा वर्णित महाभारत की कथा का श्रवण करने से क्षय का वर्णन

अरुन्धती ने कहा—

धर्म के तत्व को जानने वाले राजा जनमेजय को अठारह ब्राह्मणों की हत्या का पाप क्यों लगा ? इस प्रकार की भवितव्यता क्यों हुई ? ।। १ ।।

इस प्रश्न को हे भगवन् ! विस्तार से बताइये, मुझे इसमें बड़ा सन्देह है और इतने बड़े पाप करने से उसे मुक्ति कैसे हुई ? ।। २ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

हे अरुन्धति ! परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजय का वृतान्त सुनो । एक समय उस राजा के भयानक सर्पयज्ञ के ।। ३ ।।

पूर्ण होने पर यज्ञान्त स्नान के समय मुनियों के अधीश्वर भगवान् हे रम्भोरु ! मेरे प्रपौत्र सत्यवती के पुत्र व्यास ।। ४ ।।

अनेक शिष्यों को साथ में लेकर राजा जनमेजय के घर गये । भक्ति से सम्पन्न वह राजा जनमेजय यह जानकर कि व्यास जी आ रहे हैं ।। ५ ।।

उनको लेने के लिए आया । सब शास्त्रों के ज्ञाता बादरायणि व्यास जी को देखकर राजा ने सहसा पुनः-पुनः प्रणाम करके ।। ६ ।।

करं दक्षं तु संगृह्य मुनिं सर्वविशारदम् ।
प्रवेशयामास गृहं नानारत्नोपशोभितम् ।। ७ ।।

पाद्यमाचमनीयं च स्वासनं रत्नभूषितम् ।
ददौ तस्मै महाराजोऽभिमन्योरात्मजात्मजः ।। ८ ।।

जनमेजय उवाच—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य त्वं गृहमागतः ।
कुशलं तव शिष्येषु कच्चित्ते तपसि स्थिताः ।। ९ ।।

अग्निहोत्रेषु वेदेषु आश्रमीयमृगेषु च ।
किमागमनकृत्यं ते तव किं करवाणि भो ।। १० ।।

व्यास उवाच—

त्वयि राजनि सर्वत्र कुशलं मे नृपेश्वर ।
धन्योऽसि त्वं महाबाहो यस्य ते मतिरीदृशी ।। ११ ।।

कुरूणां पश्चिमो राजा धर्मिष्ठो जनमेजय ।
मम पौत्रा महात्मानो युधिष्ठिरमुखा नृपाः ।। १२ ।।

तेषां प्रपौत्रोऽस्ति भवान्मोहो मे विगतस्त्वयि ।
दिष्ट्या त्वं कृतयज्ञोऽसि पितुरुद्धारकारकः ।। १३ ।।

द्रष्टुं त्वां नृप प्राप्तोऽस्मि धन्यः कुरुकुलोद्वह ।
इदं सर्वं तु यज्जातं कुरूणां कुलनाशनम् ।। १४ ।।

भाव्यमेवेति संजातमहं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
दिष्ट्या त्वमपि धर्मात्मा कुरूणां वंशवर्द्धनः ।। १५ ।।

जनमेजय उवाच—

भवता जानता भाव्यं यतः प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
उक्तं तेभ्यः कथं ब्रह्मन् भवितव्यं न हि त्वया ।। १६ ।।

उक्तं चापि त्वया सर्वे किमर्थं संगरः कृतः ।
वैरं नाभूत्कारणीयं पूर्वमेव पितामहैः ।। १७ ।।

सब विद्याओं में विशारद मुनि का दाहिना हाथ पकड़ कर अनेक रत्नों से सुसज्जित भवन में प्रवेश कराया ॥ ७ ॥

उनको पाद प्रक्षालन और आचमन कराके अभिमन्यु के पौत्र राजा जनमेजय ने उन्हें रत्न जटित सुन्दर आसन दिया ॥ ८ ॥

जनमेजय बोला—

मैं धन्य हूँ और अनुगृहीत हूँ, जो आप मेरे घर आवे है। तपस्या में स्थित आपके शिष्य तो कुशल हैं ? ॥ ९ ॥

अग्निहोत्र, वेदपाठ और आश्रम के मृग तो कुशल से हैं ? हे प्रभो ! आप यहाँ किसलिए आये, मैं आपका क्या उपकार करूँ ? ॥ १० ॥

व्यास बोले—

हे राजेन्द्र ! आप हमारे राजा हैं, अतः हम सब तरह से कुशल से हैं। हे महाबाहो ! आप धन्य हैं जो कि आपकी मति इस प्रकार की है ॥ ११ ॥

हे जनमेजय ! आप कुरुओं में श्रेष्ठ धर्मिष्ठ राजा हैं। हमारे प्रपौत्र महात्मा युधिष्ठिर आदि प्रमुख महात्मा राजा हुये हैं ॥ १२ ॥

उनके आप प्रपौत्र हैं, अतः आपको देखकर हमें विशेष मोह होना स्वाभाविक ही है। भाग्य से आपने पिता के उद्धार के लिए यज्ञ किया है ॥ १३ ॥

उससे आप धन्य हो। हे कुरुकुल के उद्धार कर्ता ! मैं आपको देखने आया था, वह मुझे मिल गया। यह समस्त कुरुवंश का जो विनाश हो गया है ॥ १४ ॥

यह मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है कि होनहार अवश्य होके ही रहती है। किन्तु यह भी मैंने देखा कि धर्मात्मा आप कुरुवंश को बढ़ाने वाले हैं ॥ १५ ॥

जनमेजय बोला—

आप होनहार को जानते ही थे और आपने उसको प्रत्यक्ष देख लिया है। हे ब्रह्मन् ! आपने उनसे उस भवितव्यता को क्यों नहीं बताया ? ॥ १६ ॥

यदि आपने होनहार उन्हें बता दी थी तो उन्होंने युद्ध क्यों किया ? पहले ही हमारे पितामह आदि को वैर नहीं करना चाहिए था ॥ १७ ॥

एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वज्ञो नास्ति त्वत्समः ।
धर्मात्मानं महाभाग नैवं भवितुमर्हति ॥ १८ ॥

वसिष्ठ उवाच[1]—
विहस्य भगवान् व्यासो राजानं जनमेजयम् ।
उवाच भक्तिसम्पन्नं विस्मयाविष्टमानसम् ॥ १९ ॥

श्री वेद व्यास उवाच—
भवितव्यं भवत्येव विज्ञानामपि पार्थिव ।
निमित्तमात्रं भवति कर्त्ता हर्त्ता न संशयः ॥ २० ॥

इन्द्रोऽपि राज्याद्विभ्रष्टो नहुषः स्वर्चितस्तथा ।
रामो दाशरथिर्वीरः सर्वात्मा दृढविक्रमः ॥ २१ ॥

प्राप्तवान् सोऽपि दुःखं हि नलश्चापि महीपतिः ।
जानद्भिरेतैर्नृपते न कृतं दूरतस्तथा ॥ २२ ॥

भवितव्यं महाराज न व्यर्थं भवति क्वचित् ।
एतत्सर्वं मयाख्यातं पृष्टं यद् भवता नृप ॥ २३ ॥

जनमेजय उवाच—
भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्यास सत्यवतीसुत ।
वदान्यदपि यद्भाव्यं न कुर्य्यामहमध्यथ ॥ २४ ॥

किमग्रे भविता ब्रह्मन् राज्ये मत्पालिते प्रभो ।
भवेद्यावन्महाभाग भवितव्यं न वै मुने ॥ २५ ॥

वसिष्ठ उवाच—
इति तद्भाषितं श्रुत्वा व्यासः सत्यवतीसुतः ।
जानञ्जहास वचनं प्रोचे च भवितव्यताम् ॥ २६ ॥

व्यास उवाच[1]—
शृणु राजन् महाबाहो भवितव्यं यथा तव ।
अचिरेणैव कालेन ब्रह्महत्या भविष्यति ॥ २७ ॥

---

१. वसिष्ठ उवाच—विहस्य··· मानसम् पाठ इसमें नहीं है ।
१. व्यास उवाघ—शृणु···भविष्यति'' पाठ इसमें नहीं है ।

आप मेरे इस संशय को दूर करें. क्योंकि आपके समान सर्वज्ञ और नहीं है। हे महाभाग ! धर्मात्मा को ऐसा युद्ध करना ठींक नहीं था ।। १८ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

भक्ति से भरे, विस्मय से आविष्ट मन वाले राजा जतमेजय से भगवान् व्यास ने हंसकर कहा ।। १६ ।।

श्री वेद व्यास ने कहा—

हे राजन् ! विशेष ज्ञानियों के लिए भी होनहार होती ही है। करने वाले या हरने वाले तो निमित्तमात्र ही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। २० ।।

पूज्य राजा नहुष तथा इन्द्र भी राज्य से भ्रष्ट हुये। परब्रह्म परमात्मा रूप अतिशय बलशाली राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र थे ।। २१ ।।

वे भी दुःख को प्राप्त हुए और राजा नल को भी क्लेश हुआ। ये सब भवितव्यता को जानते हुए भी उसे दूर न कर सके ।। २२ ।।

हे महाराज ! होनहार कभी टल नहीं सकती। हे राजन् ! जो आपके द्वारा पूछा गया था, वह सब मैंने आपसे कह दिया ।। २३ ।।

जनमेजय ने कहा—

सत्यवती के पुत्र सब धर्मों को जानने वाले हे व्यास भगवन् ! आप होनहार को बताइये, जिससे मैं उसे ना करूँ ।। २४ ।।

हे ब्रह्मन् ! प्रभो ! मेरे द्वारा पालित राज्य में आगे क्या होने वाला है ? हे महाभाग ! मुने ! आप इस समय मुझे भवितव्यता को बताइये ।। २५ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

सत्यवती के पुत्र व्यास जी ने जब इस प्रकार जनमेजय के वचन सुने, तब वे हंसे और भवितव्यता को जानकर बोलने लगे ।। २६ ।।

व्यास ने कहा—

हे महाबाहो ! राजन् सुनो। जिस प्रकार तुम्हारी भवितव्यता है। थोड़े समय में ही तुम्हारे द्वारा ब्रह्महत्या होगी ।। २७ ।।

जनमेजय उवाच—

कथं मे भविता ब्रह्मन् ब्रह्महत्या गरीयसी।
किमर्थं ब्राह्मणं हन्यां जगत्पूज्यं मुनीश्वर॥ २८॥

केन वै कारणेनापि ब्रह्महत्या भविष्यति।
न कुर्यां कारणं पूर्वं येन पापं भविष्यति॥ २९॥

व्यास उवाच—

भविष्यत्येव यद्भाव्यं परं शृणु महीपते।
अतस्तु षोडशे घस्र विक्रेता जनमेजय॥ ३०॥

हयानां सिंधुजानां हि नाम्नो वै क्षेमकर्णकः।
एको वै भविता तत्र तुरगो ह्यतिवेगवान्॥ ३१॥

आरोक्ष्यसि त्वं तुरगं वेगवन्तं महीपते।
स नेष्यति तदा त्वां हि विपिने निर्जने त्वरन्॥ ३२॥

तत्र दृष्टाऽसि नृपते नारीं परमसुन्दरीम्।
तां दृष्ट्वा त्वं महाराज कामस्य वशमागतः॥ ३३॥

मोहितश्चापि भविता दृष्ट्वा तां रतिरूपिणीम्।
तां गृहीतुं मनो राजन् भविष्यति तदा तव॥ ३४॥

सा वदिष्यति हे राजन् एते ब्राह्मणपुंगवाः।
भर्त्तारो मम संतीति तान्मारय महीपते॥ ३५॥

निर्भयं ते भविष्यामि भार्या परमसुन्दर।
पाणिं गृहाण मे शीघ्रं गृहीतुं यदि चेच्छसि॥ ३६॥

तस्मिन्नेव हि काले त्वं भविष्यसि विमोहितः।
मारयिष्यसि तान् विप्रान् वेदवेदांगपारगान्॥ ३७॥

साऽपि नारी तु तत्सर्वं कृत्वान्तर्धानमेष्यति।
इति ते कथितं राजन् यद् भविष्यति तेऽग्रतः॥ ३८॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासे पर्वतोत्तमे।
गन्धमादनशृंगे तु श्रीमद्बदरिकाश्रमे॥ ३९॥

जनमेजय ने कहा—

हे ब्रह्मन् ! मेरे द्वारा महान् ब्रह्महत्या का पाप कैसे होगा ? हे मुनीश्वर ! मैं जगत् के लिये पूज्य ब्राह्मण को क्यों मारूँगा ? ॥ २८ ॥

किस कारण से मेरे द्वारा ब्रह्महत्या होगी ? जिससे कि मैं उस कारण को पहले ही न करूँ, जिससे यह पाप होगा ॥ २९ ॥

व्यास जी बोले—

हे राजन् जनमेजय ! जो भविष्य में होना है, वह अवश्य होता है । तथापि सुनिये । आज से सोलहवें दिन एक विक्रेता…॥ ३० ॥

क्षेमकर्णक नाम का, सिन्धु देश के घोड़ों को बेचने वाला आवेगा । उसके पास एक घोड़ा अति वेग से चलने वाला होगा ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! तुम उस वेगशाली घोड़े पर चढ़ोगे । वह तुम्हें अतिशीघ्र निर्जन वन में ले जायेगा ॥ ३२ ॥

हे महाराज ! वहां तुम एक परम सुन्दरी स्त्री को देखोगे । उसे देखकर तुम काम के वशीभूत हो जाओगे ॥ ३३ ॥

उस रति के समान रूप वाली स्त्री को देखकर तुम मोहित हो जाओगे । हे राजन् ! तब आपकी मनोभिलाषा उसे ग्रहण करने की होगी ॥ ३४ ॥

वह कहेगी कि हे राजन् ! ये श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे पति हैं । हे महीपते ! आप उनको मारो ॥ ३५ ॥

हे परम सुन्दर ! मैं भय रहित होकर तुम्हारी भार्या हो जाऊँ । यदि तुम मुझ को ग्रहण करना चाहते हो तो मेरे हाथ को शीघ्र पकड़ लो ॥ ३६ ॥

उसी समय तुम बिमोहित हो जाओगे और उन वेद पारग ब्राह्मणों को मार डालोगे ॥ ३७ ॥

यह सब कर लेने के बाद वह स्त्री भी अन्तर्धान हो जावेगी । हे राजन् ! इस प्रकार आपको जो भविष्य में होने वाला है, उसे मैंने कहा ॥ ३८ ॥

आपका कल्याण हो । अब मैं पर्वत श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर जाऊँगा, जहां गन्धमादन पर्वत के शिखर पर श्रीमद्‌बदरिकाश्रम है ॥ ३९ ॥

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्त्वा वचनं देवि पाराशर्यो महामुनिः।
शिष्यैः परिवृतो विप्रैर्बदर्य्याश्रममण्डले ॥ ४० ॥

षष्टिलक्षं भारतं च निर्ममे ज्ञानिनां वरः।
अद्यापि तत्प्रदेशे हि वर्त्तते व्यासपुस्तकम् ॥ ४१ ॥

यो वै पंचाह्निकं तत्र सोपवासो जितेन्द्रियः।
व्यासं सत्यवतीपुत्रं वरदं स हि पश्यति ॥ ४२ ॥

सोऽपि राजा महाबाहुः संत्रस्तो जनमेजयः।
स्मरन्व्यासस्य दचनं सावधानोऽभवत्तदा ॥ ४३ ॥

नाचचक्षे स कस्मैचिद्गुह्यं परमकं प्रिये।
ततस्तु षोडसे घस्रे प्रातरेव कृतक्रियः ॥ ४४ ॥

मंत्रिणश्च सुभृत्यांश्च प्रोवाच जनमेजयः।
अद्य मां यः प्रभाषेत स मे वध्यो भविष्यति ॥ ४५ ॥

इत्याभाष्य नृपस्तूर्णं शुद्धान्तं प्रविवेश ह।
मुद्रयित्वा कपाटादीनेकाकी जनमेजयः ॥ ४६ ॥

सुष्वाप च महाभागे पर्य्यंके शयने शुभे।
तोऽपराह्णसमये ह्यागतः क्षेमकर्णकः ॥ ४७ ॥

विक्रेतुं तुरगान् देवि बहून्वै वातरंहसः।
दृष्ट्वा नागरिकास्तान्वै सिंधुसौवीरदेशजान् ॥ ४८ ॥

आरोढुं चैव शक्ता नो बभूवुः कोऽपि सुन्दरि।
आययुर्नृपतेर्द्वारि कौतुहलयुता जनाः ॥ ४९ ॥

तत्रैकोऽसितरूपोऽश्वो वातरंहा सुलक्षणः।
तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे हयं परमरंहसम् ॥ ५० ॥

कोलाहलं परं चक्रुर्दृष्ट्वा तत्पतिताञ्जनान्।
एतस्मिन्नन्तरे राजा भाविकर्मविमोहितः ॥ ५१ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे देवि ! व्यास मुनि ने इस प्रकार के वचन कहकर अपने शिष्यों और ब्राह्मणों के साथ बदरिकाश्रम मण्डल में प्रवेश किया ।। ४० ।।

परम ज्ञानी व्यास जी ने बदरिकाश्रम में साठ लाख श्लोकों के भारत ग्रन्थ का निर्माण किया । आज भी उस स्थान में व्यास की पुस्तक विद्यमान है ।। ४१ ।।

जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर उपवास करके पांच दिन तक वहां निवास करता है, वह सत्यवती के वरद पुत्र व्यास के दर्शनों को प्राप्त करता है ।। ४२ ।।

वह राजा महाबाहु जनमेजय भी व्यास के वचनों को सुनकर भयभीत हो गया और उन्हें स्मरण कर सावधान हो गया ।। ४३ ।।

हे प्रिये ! इस परम गुप्त रहस्य को उस राजा ने किसी से नहीं बताया । उस दिन से सोलहवें दिन प्रातः ही नित्य कर्म से निवृत्त होकर ।। ४४ ।।

राजा जनमेजय ने अपने नौकरों तथा मन्त्रियों से कहा कि आज जो कोई मेरे से बोलेगा वह मारा जायेगा ।। ४५ ।।

यह कहकर वह राजा शीघ्र अपने अन्तःपुर में चला गया । किवाड़ बन्द करके वह राजा जनमेजय अकेला ही ।। ४६ ।।

हे महाभाग्यशालिनि ! शयन कक्ष में एक शुभ शय्या पर सो गया । इसी समय तीसरे प्रहर में क्षेमकर्णक आ गया ।। ४७ ।।

वायुवेग से समान चलने वाले अनेक अश्वों को बेचने के लिए आया । हे देवि ! नगर निवासियों ने सिन्धुसौवीर देश के उन अश्वों को देखा ।। ४८ ।।

किन्तु हे सुन्दरि ! उन पर सवार होने में कोई भी समर्थ न हुआ । कौतूहल से युक्त हो सब लोग राजा के द्वार पर आये ।। ४९ ।।

उन अश्वों में एक काले रंग का घोड़ा था, जो सब शुभ लक्षणों से युक्त था और वायुवेग के समान गतिशाली था । उस परम वेगवान् अश्व को देखकर सब लोग विस्मित हो गये ।। ५० ।।

जब लोग उस अश्व के ऊपर से गिरते थे, तो उसे देखकर लोग परम कोलाहल करते थे । इसी समय भवितव्यता के वशीभूत हो राजा ।। ५१ ।।

गवाक्षजालसंछन्नौ ददर्श कौतुक महत् ।
ददर्श च तदा राजा चपलं तुरगं प्रिये ।। ५२ ।।

सर्वलक्षणसम्पन्नं दुष्टचिह्नविवर्जितम् ।
चिन्तयामास राजाऽपि ह्यागतस्तुरगोऽप्ययम् ।। ५३ ।।

उद्घाट्य तद्गवाक्षं वै स्थितवान् कौतुकान्वितः ।
यद्यारोक्ष्यामि तुरगं गमिष्यामि न वै वनम् ।। ५४ ।।

यतोऽस्वतत्रास्तुरगा इत्येवं चिन्तयन्नृपः ।
अवाततार स्वर्गेहात्क्षीणपुण्यो यथा नरः ।। ५५ ।।

आरुरोह हयं तूर्णं दर्शयन् हयलाघवम् ।
मोहितो भवितव्येन चकार नृपतिर्जवम् ।। ५६ ।।

रेखेव वाजिनां यद्वद्वाजिनश्च जवक्रमे ।
रेजे सव्यापसव्येन द्विमुखो हयसत्तमः ।। ५७ ।।

वलये वलयाकारस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
इति वै लालयन्नश्वं चकार हयलाघवम् ।। ५८ ।।

अथो राजा महाबाहुर्भाविकर्मविमोहितः ।
जवक्रमं चकाराशु कर्मणा वै विकर्षितः ।। ५९ ।।

निन्ये तत्र महाराजं तुरगो ह्यतिवेगवान् ।
वने मृगगणाक्रान्ते झिल्लीझंकारनादिते ।। ६० ।।

एतस्मिन्नन्तरे काले ददर्श स्त्रियमेकलाम् ।
श्यामां सुनेत्रां चार्वांगीं कामस्येव रतिं यथा ।। ६१ ।।

दृष्ट्वा तां मोहमापन्नो जगाद वचनं नृपः ।
का त्वं कस्य किमर्थं वै वनेऽस्मिन्निर्जने शुभे ।। ६२ ।।

जनमेजय भी इस महान् कौतुक को झरोखों के छिद्रों से देखने लगा। हे प्रिये ! तब राजा ने उस चंचल अश्व को देखा ॥ ५२ ॥

समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न और दुष्ट चिह्नों से रहित था। राजा ने विचार किया कि यह अश्व आ गया है ॥ ५३ ॥

वह गवाक्षों के द्वार खोलकर कौतुक से भरा हुआ बैठ गया। राजा ने विचार किया कि यदि घोड़े पर सवार हो जाऊँ, तो वन को नहीं जाऊंगा ॥ ५४ ॥

क्योंकि अश्व तो पराधीन (सवार के ही अधीन) होते हैं। जिस प्रकार पुण्यों के क्षीण होने पर मनुष्य स्वर्ग से नीचे उतर आते हैं ॥ ५५ ॥

उसी प्रकार वह शीघ्र अपने महल से उतर कर अश्वारोहण की चतुरता दिखाने के लिए उस घोड़े पर आरूढ़ हुआ। होनहार के वशीभूत हुए उस राजा ने घोड़े की गति तेज कर ली ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार घुड़दौड़ के समय घोड़ों की एक श्रेणी बड़े वेग से दौड़ती है, उसी प्रकार वह अश्व दौड़ने लगा। वह श्रेष्ठ अश्व सव्य (बाईं) और अपसव्य (दाईं) गति से चलने के कारण दो मुख वाला सा प्रतीत होने लगा ॥ ५७ ॥

ऐसा आश्चर्य हुआ कि वह घेरे में दौड़ता हुआ अश्व वलयाकार सा दिखाई देने लगा। इस प्रकार उस अश्व को लाड़ करके घुड़सवारी की चातुराई दिखाने लगा ॥ ५८ ॥

महाबाहु वह राजा भवितव्यता से विमोहित हो अपने कर्म-भोगों से आविष्ट हो घोड़े की गति और तेज करने लगा ॥ ५९ ॥

वह अति वेग से गमन करने वाला घोड़ा राजा को उस वन में ले गया, जो झिल्लियों के झंकारों से शब्दित तथा मृगों से आकीर्ण था ॥ ६० ॥

इसी समय राजा ने एक अकेली स्त्री को देखा, जो श्याम रंग की, सुन्दर नेत्रों वाली, सुन्दर अंगों वाली तथा कामदेव की पत्नी रति के समान रूपवाली थी ॥ ६१ ॥

उस स्त्री को देखकर विमोहित हो उस राजा ने कहा—तुम कौन हो, किसकी (कन्या या स्त्री) हो, और किसलिए इस सुन्दर निर्जन वन में विचरण कर रही हो ॥ ६२ ॥

त्वदधीनोऽस्यहं भद्रे शाधि मां कामपीडितम् ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा बभाषे वचनं ततः ।। ६३ ।।

स्त्र्युवाच—

भो भो राजन् महावाहो श्रृणु मे वचनं शुभम् ।
एते ह्यष्टादश प्रोक्ता ब्राह्मणाश्च जितेन्द्रियाः ।। ६४ ।।

वृद्धाः परं मह्राभाग भृशमुद्विग्नमानसाः ।
नित्यं वसामि दुःखेन यौवनोन्मादशालिनी ।। ६५ ।।

भवादृशं महाराज शरणागतपालकम् ।
अन्वेषयामि सर्वत्र को मे दुःखं हरेत्प्रभो ।। ६६ ।।

महाराज महाभाग भाग्येन मिलितो ह्यसि ।
एते वृद्धतराः क्रूरा नित्यं वै विजितेन्द्रियाः ।। ६७ ।।

सवेपमानहृदया दृष्ट्वा ताञ्च्छ्मश्रुलांस्तथा ।
तपस्विनः कर्कशांगान् कृशान् वै कर्कशद्युतीन् ।। ६८ ।।

वसिष्ठ उवाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवितं बहुधा तु तत् ।
करुणापूर्णहृदयो बभाषे वचनं पुनः ।। ६९ ।।

राजोवाच—

किं करोमि महाभागे येन त्वं सुखिता भवेः ।
कथमेते त्यजिष्यन्ति ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ।। ७० ।।

स्त्र्युवाच—

भो भो राजन्महाभाग दया ते हृदि यद् भवेत् ।
एतान्मारय शीघ्र त्वं मत्पाणिग्रहणं कुरु ।। ७१ ।।

राजोवाच—

कथं हन्यां महाभागे ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
एतन्मे शंस सुभगे कथं ते सुप्रियं भवेत् ।। ७२ ।।

हे भद्रे ! मैं तुम्हारे अधीन हूँ मुझ काम पीड़ित की इच्छा को पूर्ण करो। इस प्रकार उस राजा के वचन सुनकर उस स्त्री ने कहा ।। ६३ ।।

स्त्री बोली—

हे राजन् ! महाबाहो ! मेरे शुभ वचनों को सुनिए। ये अठारह जितेन्द्रिय ब्राह्मण हैं ।। ६४ ।।

हे महाभाग ! परन्तु ये अति वृद्ध हैं। मेरा मन बडा उद्विग्न रहता है। यौवन के उन्माद से मैं इनके साथ दुःख से निवास करती हूँ ।। ६५ ।।

हे महाराज ! आपके समान शरण में आये हुये का पालन करने वाले को मैं सर्वत्र खोजती रहती हूँ। हे प्रभो ! मेरा दुःख कौन दूर करेगा ।। ६६ ।।

हे महाराज ! महाभाग ! मेरे भाग्य से ही आप मुझे मिले हैं। ये ब्राह्मण क्रूर स्वभाव के तथा अतिशय वृद्ध हैं और नित्य ही जितेन्द्रिय हैं ।। ६७ ।।

इनकी दाढ़ी और मूछों को देखकर मेरा हृदय कम्पायमान रहता है। इन तपस्वियों का अंग कठोर, आकृति क्रूर तथा शरीर दुर्बल है ।। ६८ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार उस स्त्री द्वारा बहुत से कहे गये वाक्यों को सुनकर राजा ने करुणामय हृदय से पुनः इस प्रकार के वचन बोले ।। ६९ ।।

राजा ने कहा—

हे महाभाग्यशालिनि ! मैं किस कार्य को करूँ, जिससे तुम सुखी हो जाओ। प्रशंसित व्रत वाले ब्राह्मण तुम्हें कैसे छोड़ेंगे ।। ७० ।।

स्त्री ने कहा—

हे राजन् ! महाभाग ! यदि आपके हृदय में मेरे प्रति दया का आविर्भाव हुआ है तो आप इन ब्राह्मणों को शीघ्र मार कर मेरा पाणिग्रहण करो ।। ७१ ।।

राजा ने कहा—

हे महाभागे ! तुम यह तो बताओ कि मैं इन वेदपारग ब्राह्मणों को कैसे मारूँ ? हे सुभगे ! जिससे तुम्हारा प्रिय हो सके ।। ७२ ।।

स्त्र्युवाच—

देह एव परात्मा वै स्वस्य वै जनमेजय।
अयं सुखी यथा भूयात्कर्तव्यं तत्तथैव हि॥ ७३॥

राजोवाच —

तव चेत्सुप्रियं सुभ्रु जायतेऽनेन कर्म्मणा।
त्वदर्थं वै करिष्यामि वधमेषां दुरात्मनाम्॥ ७४॥

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्त्वा तां तथा राजा भाविकर्मप्रचोदितः।
विस्मृतं तच्च व्यासोक्तं कामस्य वशमागतः॥ ५७॥

निजघान तदा विप्रान् खड्गेनैकेन सत्वरम्।
कामः प्रिये महाञ्छत्रुः सर्वेषां हृदि संस्थितः॥ ७६॥

यस्यावेशान्नरः सर्वं करोति हि वरानने।
प्रियान्पुत्रांस्तथा भर्तॄन्भ्रातॄन्ब्राह्मणसत्तमान्॥ ७७॥

तृणवन्मनुते कामी तस्मात्क्षेमेप्सुरुत्सृजेत्।
मारयित्वा तदा राजा ब्राह्मणान्वेदपारगान्॥ ७८॥

आययौ तत्र सुभगे यत्र सा मिलिताह्यभूत्।
न ददर्श ततस्तां वै विस्मितश्चाभवन्नृपः॥ ७९॥

चिन्तयामास बहुशो राजाऽसौ जनमेजयः।
त्यक्त्वा गृहादिकं सर्वं ययौ बदरिकाश्रमे॥ ८०॥

तत्र गत्वा महाभागे चक्रे प्रायोपवेशनम्।
व्यासपुस्तकपार्श्वे तु पंचरात्रं महीप्रभुः॥ ८१॥

निराहारो निरानन्दो मरणे कृतनिश्चयः।
व्यासं ददर्श नृपतिर्जरामंडलधारिणम्॥ ८२॥

दण्डवत्प्रणिपत्यासौ परिक्रम्य पुनः पुनः।
उवाच वचनं त्रस्तो रक्ष रक्षेति चासकृत्॥ ८३॥

स्त्री ने कहा—

हे जनमेजय ! अपनी यह देह ही परमातमा है । इसलिए जिस उपाय से यह सुखी रहे ऐसे हो उपाय करने चाहिएं ।। ७३ ।।

राजा ने कहा—

हे सुभ्रु ! यदि इसी कर्म को करने से आपका मनोरथ पूरा होता है, तो आपके लिए मैं इन दुरातमाओं का वध करूँगा ।। ७४ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

भवितव्यता के द्वारा प्रेरित राजा ने उस स्त्री से इन वचनों को कहा और पूर्व कहे गये व्यास जी के वचनों को वह काम के वशीभूत हो भूल गया ।। ७५ ।।

वहां उस राजा ने एक खड्ग से जल्दी ही उन ब्राह्मणों को मार डाआ । हे प्रिये ! कामरूपी महान्शत्रु सबके हृदय में स्थित रहता है ।। ७६ ।।

हे वरानने ! इसी काम के आवेश में मनुष्य सब कुछ करता है । प्रिय पुत्रों, पतियों, भ्राताओं तथा सज्जन ब्राह्मणों को भी···।। ७७ ।।

कामी पुरुष तृण के समान मानने लगता है । इसीलिए अपने कल्याण को चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि वह इसका परित्याग कर दे । वहाँ उन वेदपारग ब्राह्मणों को मारकर वह राजा जनमेजय···।। ७८ ।।

उस स्थान पर आया, जहाँ वह सुन्दर स्त्री उसे मिली थी । उसे वहां न देखकर वह राजा परम विस्मय को प्राप्त हुआ ।। ७९ ।।

वह राजा जनमेजय बहुत चिन्ता करने लगा । समस्त गृह आदि के सुखों को छोड़कर यह वदरिकाश्रम में चला गया ।। ८० ।।

हे महाभागे ! वहां जाकर उस राजा ने व्यास की पुस्तक के पास वैठकर पाँच रात्रि तक उपवास किया ।। ८१ ।।

राजा ने निराहार होकर आनन्द का त्याग कर मरने का निश्चय किया । इसी अवसर पर उसे जटामण्डल को धारण किए हुये व्यास के दर्शन हुए ।। ८२ ।।

व्यास को उसने दण्डवत प्रणाम किया और बार-वार उनकी परिक्रमा करके भयभीत हुये उस राजा ने—"मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो", निरन्तर ये वचन कहे ।। ८३ ।।

उवाच वचनं व्यासो माभैर्माभैर्महीपते ।
भवितव्यं भवत्येव मयोक्तं पूर्वमेव हि ।
साम्प्रतं श्रृणु राजेन्द्र भारतं कल्मषापहम् ।। ८४ ।।

वसिष्ठ उवाच—
शुश्राव भारतं सर्वं व्यासस्य वदनात्ततः ।
निष्कल्मषो वभूवाथ श्रवणाद् भारतस्य हि ।। ८५ ।

इति ते कथितं सुभ्रु भवितव्यस्य वैभवम् ।
जनमेजयस्य च यथा ब्रह्महत्या बभूव ह ।। ८६ ।।

बदर्य्याश्रममाहात्म्यात्तथा भारतसंश्रवात् ।
राजाऽसौ कल्मषैर्हीनो बभूव वरवर्णिनि ।। ८७ ।।

इदं यशस्यमायुष्यं ब्रह्महत्यानिवारणम् ।
कथितं ते महाभागे किमन्यत्कथयामि ते ।। ८८ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायांबदरीमाहात्म्ये
जनमेजयोपाख्यानं नाम एकषष्टितमोऽध्यायः

द्विषष्टितमोऽध्यायः

**चन्द्रगुप्तबैश्यधर्मदत्तब्राह्मणोदन्तकथाप्रसङ्गेन बदरीनाथ-
यात्राविधि वर्णनञ्च । चन्द्रगुप्तवधू करिरदनाकङ्कणस्य
बदरीक्षेत्रे पतनेनतदस्थ्नो ज्योतीरूपदिव्य पुरुष
रूपस्य दन्तिनो वैकुण्ठधामप्राप्तिः**

अरुन्धत्युवाच—
कथय त्वं महाभाग मरणस्य च वैभवम् ।
कुत्र तेषां गतिर्देव पतितं तत्र कीकसम् ।। १ ।।

तब व्यास ने कहा—हे महीपते ! भय न करो, भय न करो। होनहार अवश्य होके ही रहती है। यह मैंने पहले ही आपको बता दिया था। हे राजेन्द्र ! इस समय तुम पापों का नाश करने वाले महाभारत का श्रवण करो ॥ ८४ ॥

वसिष्ठ ने अहा—

तब व्यास जी के मुख से समस्त महाभारत का राजा ने श्रवण किया। महाभारत के सुनने से वह राजा निष्पाप हो गया ॥ ८५ ॥

इस प्रकार हे सुभ्रु ! भवितव्यता का वैभव मैंने आपसे कहा। जिस प्रकार जनमेजय ब्रह्महत्या के पाप से संलिप्त हुआ, वह भी कहा ॥ ८६ ॥

हे सुन्दरि ! बदरिकाश्रम की यात्रा का माहात्म्य तथा महाभारत सुनने का फल, जिससे वह राजा जनमेजय पाप रहित हो गया था, मैंने सब आप से वर्णित किया है ॥ ८७ ॥

यह आख्यान यश तथा आयु को बढ़ाने वाला, और ब्रह्महत्या आदि पापों का नाश करने वाला है। इसको मैंने आप से कह दिया है। हे महाभागे ! अब आप बताइये कि आपकी और अब क्या सुनने की इच्छा है जिसे मैं कहूँ ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास प्रशंसा में
बदरीनाथ माहात्म्य में जनमेजय-उपाख्यान नाम का
इकसठवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ६२

चन्द्रगुप्त वैश्य और धर्मदत्त ब्राह्मण की कथा के प्रसंग से बदरीनाथ के माहात्म्य तथा यात्रा विधि का वर्णन चन्द्रगुप्त की पत्नी के हाथी-दान्त निर्मित कङ्कण के बदरी क्षेत्र में गिरने से उस अस्थि के हाथी का ज्योति रूप दिव्य पुरुष रूप में वैकुण्ठ धाम को प्राप्त करना

अरुन्धती बोली—

हे महाभाग ! अब मृत्यु के वैभव का वर्णन कीजिए कि बदरिकाश्रम में जिनकी हड्डियाँ गिरती हैं, उनको किस गति का लाभ मिलता है ॥ १ ॥

बदरीनाथभवने क्षेत्रे क्षेत्रोत्तमे प्रभो ।
एतन्मे शंस भगवन् श्रोतुकामास्मि हे मुने ।। २ ।।

केन वै विधिना कुर्याद्यात्रां तु बदरीपतेः ।
पुण्यं पवित्रमाख्यानं शृण्वन्त्या भक्तिरुत्तमा ।। ३ ।।

वसिष्ठ उवाच—

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं बदरीपतेः ।
तीर्थश्रवणमाहात्म्ये धन्या ते बुद्धिरीदृशी ।। ४ ।।

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि सावधानावधारय ।
अवन्तिनगरे पूर्वं बभूवामितधार्मिकः ।। ५ ।।

चन्द्रगुप्त इति ख्यातो धनधान्यनिधिः प्रिये ।
वाणिज्येन कृताजीवो दशपुत्रोऽमितप्रभः ।। ६ ।।

सम्पत्तिर्बृहती तस्य गजाश्वादिमयी तथा ।
दन्तिनाञ्च हयानां च विक्रेता स वरानने ।। ७ ।।

एकदा तस्य भवने धर्मदत्तो महीसुरः ।
बदर्य्याश्रमवासी वै आययौ भिक्षितुं विशम् ।। ८ ।।

तस्य वै दर्शनाद्वैश्यो बभूव मलवर्जितः ।
पप्रच्छ तं धर्मदत्तं चन्द्रगुप्तो महामतिः ।। ९ ।।

कुतः समागतं विप्र कुत्रत्योऽसि महामते ।
मां किमाज्ञापयसि भो किं करोमि तव प्रियम् ।। १० ।।

ब्राह्मण उवाच—

अहं कैलासपार्श्वे वै बदरीवनमंडिते ।
देशे वसामि नित्यं वै कण्वगोत्रसमुद्भवः ।। ११ ।।

भिक्षितुं त्वां समायातो बहुपुत्रकलत्रकः ।
धनं मे नास्ति भवने ततस्त्वां समुपागतः ।। १२ ।।

हे प्रभो ! सर्वोत्तम क्षेत्र बदरीनाथ में हड्डियाँ पड़ने का क्या लाभ है, इसे मुझे कहिये । हे भगवन् ! मुने ! मेरी इसे सुनने की इच्छा है ॥ २ ॥

किस विधि से बदरीश भगवान् की यात्रा करनी चाहिए । पुण्य और पवित्र आख्यान को सुनकर मुझे उत्तम भक्ति की प्राप्ति हुई है ॥ ३ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे प्रिये ! मैं बदरीश भगवान् के माहात्म्य को कहुँगा, तुम सुनो । तुम्हारी इस तरह की बुद्धि धन्य है जो तीर्थों के माहात्म्य को सुनने की अतिशय इच्छा रखती है ॥ ४ ॥

इस समय एक इतिहास को मैं कहूँगा, आप सावधान होकर उसे सुनिये । पहले की बात है कि अवन्ती नाम के नगर में, एक अत्यन्त धार्मिक मनुष्य हुआ था ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! चन्द्रगुप्त नाम से विख्यात वह धन-धान्य से समृद्ध था । वह वाणि-ज्यकर्म से अपनी आजीविका करता था । उस परम तेजस्वी के दस पुत्र थे ॥ ६ ॥

हे सुन्दरि ! उसके पास हाथी और घोड़ों की बहुत बड़ी सम्पत्ति थी । वह हाथी और घोड़ों का व्यापार करता था ॥ ७ ॥

एक समय उस वैश्य के घर पर धर्मदत्त नाम का बदरिकाश्रम में निवास करने वाला ब्राह्मण भिक्षा लेने के लिए आया ॥ ८ ॥

उस ब्राह्मण के दर्शन से वह वैश्य चन्द्रगुप्त निष्पाप हो गया । महामति चन्द्र-गुप्त ने उस धर्मदत्त से पूछा ॥ ९ ॥

हे ब्राह्मण ! तुम कहां से आ रहे हो और कहां के रहने वाले हो । हे महामते ! मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है, मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूँ ॥ १० ॥

ब्राह्मण ने कहा—

कण्व गोत्र में उत्पन्न हुआ मैं नित्य कैलास पर्वत के पास स्थित बदरीवन से सुशोभित बदरीनाथ धाम का निवासी हूँ ॥ ११ ॥

मेरी बहुत सी स्त्रियाँ और बहुत पुत्र हैं । धन मेरे घर में नहीं है । अतः धन मांगने की इच्छा से आपके पास आया हूँ ॥ १२ ॥

चन्द्रगुप्त उवाच –

कुत्र वै तन्महाक्षेत्रं बदरीवनसंज्ञितम्।
को देवः पूज्यते तत्र लभ्यते किं फलं नरैः ॥ १३ ॥

प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
यद्वदिष्यसि तत्सर्वमहं कर्त्ताऽस्मि सुव्रत ॥ १४ ॥

ब्राह्मण उवाच—

गंगाद्वारात्पूर्वभागे त्रिशंयोजनसंमिते।
वर्त्तते तन्महाक्षेत्र भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १५ ॥

यत्र देवाः सगन्धर्वा मुनयः शंसितव्रताः।
तपस्यन्ति महात्मानः संसारपरिमुक्तये ॥ १६ ॥

अनन्तानि च तीर्थानि पापनाशकराणि वै।
गंगा तत्र महाभाग परा त्रैलोक्यपाविनी ॥ १७ ॥

बदरीनाथभवनं प्रणमेद्यो महामतिः।
स वै विष्णुपुरं याति पूज्यमानो मुनीश्वरैः ॥ १८ ॥

सकृद्येनापि भवनं दृष्टं वै बदरीपतेः।
न स संसारमार्गस्य पांथो जायेत कर्हिचित् ॥ १९ ॥

बदरीनाथनैवेद्यं भुक्तं यैर्भक्तितत्परैः।
अभोज्याशनदोषश्च मुच्यते नात्र संशयः ॥ २० ॥

तस्यैव जन्म सफलं यो गतो बदरीपतिम्।
तस्य संसारजलधिर्महान्वै गोष्पदायते ॥ २१ ॥

इति ते कथितं वै श्य त्वया पृष्टोऽस्मि यद्यथा।
धन्योऽसि तीर्थयात्रायां यस्य बुद्धिर्महामते ॥ २२ ॥

चन्द्रगुप्त उवाच—

केन वैं विधिना ब्रह्मन् कुर्याद्यात्रां रमापतेः।
किं भोज्यं वै किमाचारो गमने बदरीपतेः ॥ २३ ॥

चन्द्रगुप्त ने कहा—

वह बदरीवन नाम का पुण्य क्षेत्र कहाँ है ? वहाँ किस देवता की पूजा की जाती है और मनुष्यों के द्वारा क्या फल प्राप्त किया जाता है ? ॥ १३ ॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मेरी तत्त्वतः इसे सुनने की इच्छा है । हे सुव्रत ! आप जो कुछ कहेंगे, मैं वही सब करूँगा ॥ १४ ॥

ब्राह्मण नें कहा—

गंगा द्वार से पूर्व दिशा में तीन सौ योजन दूरी पर वह महाक्षेत्र विद्यमान है, जो मुक्ति एवं भुक्ति को देने वाला है ॥ १५ ॥

जहां देवता, गन्धर्व तथा प्रशंसित व्रत का आचरण को करने वाले, महात्मा लोग संसार रूपी सागर से पार होने के लिए तपस्या करते हैं ॥ १६ ॥

पापों के विनाशक वहां अनेक असंख्य तीर्थ विद्यमान हैं । हे महाभाग ! वहाँ तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा भी विराजमान हैं ॥ १७ ॥

जो बुद्धिमान् व्यक्ति बदरीनाथ के मन्दिर को प्रणाम करता है, वह निश्चित ही श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा पूजित होकर विष्णुलोक को जाता है ॥ १८ ॥

एक बार भी जो बदरीश भवन के दर्शन कर लेता है, वह कदापि इस संसार मार्ग के पथ का अवलम्बन नहीं करता है ॥ १९ ॥

भक्ति में तत्पर होकर जो बदरीनाथ के नैवेद्य का भक्षण करता है, उसके अभक्ष्य भोजन करने के दोष नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २० ॥

उसी का जन्म सफल है, जिसने बदरीनाथ जी की यात्रा की है । उसके लिए यह अपार संसार सागर गौ के खुर के समान हो जाता है ॥ २१ ॥

हे वैश्य ! आपके पूछने के अनुसार मैंने इस प्रकार वर्णन कर लिया है । हे महामते ! तुम धन्य हो, जिसकी बुद्धि तीर्थ यात्रा में विश्वास रखती है ॥ २२ ॥

चन्द्रगुप्त ने कहा—

हे ब्रह्मन् ! किस विधि से रमापति विष्णु भगवान् बदरीनाथ जी की यात्रा करनी चाहिए ? बदरीश की यात्रा में क्या भोजन और क्या आचरण करना चाहिये ? ॥ २३ ॥

एतत् सर्वं महाभाग कृपया परया युतः।
वद मे भक्तितस्त्वां वै पृच्छेयं ब्रह्मपारगम्॥ २४॥

ब्राह्मण उवाच—

शृणु धर्मज्ञ वक्ष्यामि प्रसंगाद्यन्मया श्रुतम्।
पृच्छते सत्यधर्माय नारदोक्तं महामते॥ २५॥

सत्यधर्मो महाराजः पप्रच्छ नारदं क्वचित्।
यदुक्तं तेन महता तत्सर्वं शृणु सुव्रत॥ २६॥

कर्तव्या बदरीयात्रा भीतेन भवबन्धनात्।
सम्पूज्य गणपं पूर्वं स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥ २७॥

पुण्याहं वाचयत्तत्र बदरीनाथमारसः।
ततः सम्प्रार्थयेद्विप्रान्पूजितान्वसनादिभिः॥ २८॥

आज्ञापयध्वं भूदेवा मां वः शरणमागतम्।
भतवां कृपया देवाः कृतयात्रो यथा पुनः॥ २९॥

आगच्छेयं सुख गेहे लभेयं धर्ममुत्तमम्।
भवन्तो ब्राह्मणाः पूर्वं निर्मिता धर्मदर्शकाः॥ ३०॥

सर्वे यज्ञास्तथा देवास्तीर्थानि विविधानि च।
भवच्चरणगेहानि ततो वो भक्तितो नमः॥ ३१॥

इति सम्प्रार्थ्य विप्रांस्तु कृतकर्पटिवेषकः।
जितेन्द्रियः शुद्धमना भूमिशायी महामतिः॥ ३२॥

सन्ध्यात्रयमुपासीत एकस्थाने फलाशनः।
पद्भ्यां गच्छेन्न यानेन यदीच्छेद्धर्ममुत्तमम्॥ ३३॥

गोयाने गोवधः प्रोक्तो वैफल्यं हययानतः।
अर्द्धफलं नरारोहे तस्माद्यानं विवर्ज्जयेत्॥ ३४॥

हे महाभाग ! मेरे ऊपर परम कृपा करके इन सब प्रश्नों का समाधान आप करो । मैं भक्तिपूर्वक आप ब्रह्मज्ञानी से पूछ रहा हूँ ।। २४ ।।

ब्राह्मण ने कहा—

हे धर्मज्ञ ! प्रसंगवशात् जो मैंने सुना है, मैं उसका वर्णन करूँगा । तुम सुनो । हे महामते ! एक बार सत्यधर्म ने नारद से पूछा था और नारद ने कहा था।। २५ ।।

हे सुव्रत ! महाराजा सत्यधर्म ने, जो नारद से कभी पूछा और जो कुछ उन महात्मा के द्वारा उत्तर दिया गया, वह सब आप सुनिये ।। २६ ।।

संसार रूपी सागर में डूबने के भय से भयभीत जनों को बदरीनाथ की यात्रा करनी चाहिए । सर्व प्रथम स्वस्तिवाचन पूर्वक गणेश की पूजा करनी चाहिए ।। २७ ।।

फिर मन से बदरीनाथ का स्मरण करके पुण्याहवाचन करे । तब वस्त्र आदि से पूजित ब्राह्मणों से प्रार्थना करे ।। २८ ।।

हे ब्राह्मणो ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप आज्ञा कीजिए । आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा कीजिये कि आपकी कृपा से यात्रा करके पुनः···।। २९ ।।

सुखपूर्वक घर लौट कर आजाऊँ और उत्तम धर्म को प्राप्त कर सकूं । आप ब्राह्मणों को ही पहले धर्मदर्शक निर्मित किया गया है ।। ३० ।।

समस्त यज्ञ, देवता और अनेक तीर्थ आपके चरणों में निवास करते हैं । इसलिए आपको में भक्ति भावना से नमस्कार करता हूँ ।। ३१ ।।

इस प्रकार ब्राह्मणों को नमस्कार करके, तीर्थ यात्री का वेष बनाकर, भूमि में शयन करता हुआ, शुद्धमन हो, जितेन्द्रिय वह महामति···।। ३२ ।।

फलाहार करके एक ही स्थान में तीन सन्ध्याओं की उपासना करे । यदि उत्तम धर्म की प्राप्ति की इच्छा हो तो किसी वाहन से नहीं, वरन् पैदल चल कर ही यात्रा सम्पन्न करे ।। ३३ ।।

गो-वाहन से यात्रा करने से गोवध का पाप लगता है और अश्व-वाहन से यात्रा करने पर यात्रा फलीभूत नहीं होती । मनुष्य से ढोये जाने वाले वाहन से यात्रा करने पर यात्रा का आधा फल ही मिलता है । इसलिए यान से यात्रा नहीं करनी चाहिए ।। ३४ ।।

अन्न परस्यनो भुंजेद्यतो निष्फलता स्मृता ।
यद्यत्कर्म महाभाग क्रियते वै यदन्नदैः ।। ३५ ।।

स तस्य किल्विषं भुंक्ते अन्नदातुश्च तत्फलम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्जयेत्सुधीः ।। ३६ ।।

अध्यात्मचिन्तनं कुर्वन् शृण्वन्वै तीर्थवैभवम् ।
गच्छेन्नारायणस्थानं सर्वदेवैरनुष्ठितम् ।। ३७ ।।

गंगाद्वारे समागत्य ह्यर्चयेन्नीलभैरवम् ।
ततः सम्प्रार्थयेन्नम्रो गंगायां कृतसत्क्रियः ।। ३८ ।।

नमो नमस्ते भगवन्नीलभैरव क्षेत्रप ।
अनुज्ञां देहि यात्रायं धन्यः स्यां त्रिजगत्सु वै ।। ३९ ।।

ततः कण्वाश्रमे गत्वा बदरीनाथक्षेत्रके ।
तत्रत्येपु च सर्वेषु स्नात्वा चैव यथाविधि ।। ४० ।।

ततः केदारभवनं गच्छेत्पापापनुत्तये ।
केदारनाथं सम्पूज्य गृहीत्वाऽऽज्ञां ततः सुधीः ।। ४१ ।।

कार्य्यं बदरि केशस्य दर्शनं शुभदायकम् ।
अकृत्वा दर्शनं वश्य केदारस्याघनाशिनः ।। ४२ ।।

यो गच्छेद् बदरीं तस्य यात्रा निष्फलतां व्रजेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वं केदारदर्शनम् ।। ४३ ।।

कार्य्यं पुण्येप्सुना श्रेष्ठिन्न भेदः शिवकृष्णयोः ।
क्षेत्रे सूक्ष्मे ततो गत्वा ऋषिगंगोत्तरे नरः ।। ४४ ।।

क्षेत्रोपवासं कुर्य्याद्वै दिनमेकं जितेन्द्रियः ।
प्रातः स्नात्वा तु गंगायां नारदीयह्लदादिषु ।। ४५ ।।

वह्नितीर्थे ततः स्नायान्नियतो यतमानसः ।
बदरीनाथ[1]भवनं गच्छेद्वै हरिमानसः ।। ४६ ।।

---

१. बदरीनाथ भवनं हरिमानसः पाठ इसमें नहीं हैं ।

दूसरे के अन्न का भोजन करने से भी यात्रा निष्फल हो जाती है। हे महाभाग ! जो पापकर्म अन्न देने वाले के किये होते हैं ॥ ३५ ॥

उन सब पापकर्मों का भोग यात्रा काल में परान्न खाने वाले को करना पड़ता है और यात्रा का पुण्य फल उस अन्न देने वाले को मिल जाता है। इसलिए विद्वान् को चाहिए कि सभी प्रयत्नों से यात्रा काल में दूसरे के अन्न का भक्षण न करे ॥ ३६ ॥

यात्री ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ, तीर्थ के माहात्म्य को सुनता हुआ सब देवताओं द्वारा सेवित नारायण स्थान बदरीनाथ को जावे ॥ ३७ ॥

गंगाद्वार में आकर नील भैरव की पूजा करे। तदनन्तर गंगा जी में उत्तम क्रियाओं का आचरण करके नम्र होकर प्रार्थना करे ॥ ३८ ॥

हे नील भैरव ! आप क्षेत्र की रक्षा करने वाले हैं। अतः आपको नमस्कार है। मुझे यात्रा के लिए आप आज्ञा प्रदान करें, जिससे मैं तीन लोकों में धन्य होऊँ ॥ ३९ ॥

उसके बाद बदरीनाथ क्षेत्र में स्थित कण्वाश्रम में जाकर उस तीर्थ में स्थित समस्त तीर्थ स्थलों में विधिपूर्वक स्नान करके ॥ ४० ॥

तब पापों के विनाश के लिए केदारनाथ जी के मन्दिर में प्रवेश करे। विद्वान् को चाहिए कि वह केदारनाथ जी की पूजा करके उनसे आज्ञा मांगकर ॥ ४१ ॥

शुभदायक बदरीश भगवान् के दर्शन करे। हे वैश्य ! पापनाशक केदारनाथ जी के दर्शन किए विना ॥ ४२ ॥

जो बदरीनाथ जी की यात्रा करता है, उसकी यात्रा निष्फल हो जाती है। इसलिए पुण्य के अभिलाषी को समस्त ऐसे प्रयत्न करने चाहियें, जिससे बदरीश यात्रा से पूर्व केदारेश्वर के दर्शन हो जावें ॥ ४३ ॥

हे सेठ ! शिव और कृष्ण में कोई भेद नहीं समझना चाहिये। फिर यात्री को चाहिए कि ऋषिगंगा के उत्तर में सूक्ष्म क्षेत्र में जाकर ॥ ४४ ॥

वह जितेन्द्रिय एक दिन उस क्षेत्र में उपवास करे। प्रातः काल गंगा जी में स्नान कर नारद आदि कुण्डों में स्नान करे ॥ ४५ ॥

तदन्तर मनोनिग्रह पूर्वक बह्नितीर्थ में स्नान करे। उसके बाद मन में हरि को धारण करके बदरीनाथ के मन्दिर में प्रवेश करे ॥ ४६ ॥

उपायनं यथा शक्त्या भक्त्या हि मनुजोऽर्पयेत् ।
आकिरीटांघ्रिपर्य्यन्तं पश्येन्नारायणं ,विभुम् ।। ४७ ।।

यथा शक्त्या ब्राह्मणेभ्यो दद्यादत्र महामनाः ।
प्रदक्षिणां ततः कुर्य्याद् भक्त्या वै परया युतः ।। ४८ ।।

ततस्तीर्थेषु चागत्य दद्याद्दानानि शक्तितः ।
गोचर्यमात्रा पृथिवी येन दत्ता कुटुम्बिने ।
तेन सर्वा मही दत्ता ब्रह्मणे वेदवादिने ।। ४९ ।।

त्रुटिमात्रं हिरण्यं वै दत्तं वेदविदे पुनः ।
सुवर्णस्य तुलादानाद्यत्तत्फलमवाप्नुयात्।। ५० ।।

देवालये महाविष्णोर्गंगाया रोधसि प्रभो ।
दीपा देयाश्चन्द्रगुप्त संसारपरिमुक्तये ।। ५१ ।।

दीपदश्चक्षुराप्नौति स्वर्णदो वपुरुत्तमम् ।
अन्नदस्तृप्तिमाप्नोति धातुदो भाग्यमुत्तमम् ।। ५२ ।।

गोप्रदाता महाभाग संसारे न स जायते ।
हयदो गजदश्चैव यानं प्राप्नोति सत्तमम् ।। ५३ ।।

यदत्र क्रियते कर्म कोटि कोटि गुणं भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैवात्र कारयेत् ।। ५४ ।।

अन्यान्यपि च तीर्थानि गच्छेद्वै भक्तितत्परः ।
स्नायाद्यथोक्तविधिना दान दद्याच्च भक्तितः ।। ५५ ।।

प्रसादं हरिनैवेद्यं भुंजीयाद् भक्तितत्परः ।
ततः स्वगृहमागच्छेद् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।। ५६ ।।

एवं यः कुरुते यात्रां न स भूयोऽभिजायते ।
अश्वमेधादि यज्ञानां पादे पादे फलं लभेत् ।। ५७ ।।

धन्यः स्यात्त्रिषु लोकेषु सुरैरपि स पूज्यते ।
तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ गच्छ श्रीबदरीवनम् ।। ५८ ।।

मनुष्य को चाहिए कि यथाशक्ति भक्तिभाव से भगवान् को उपहार अर्पित करे। तदनन्तर मुकुट से लेकर पैरों तक भगवान् बदरीश नारायण का दर्शन करे ॥ ४७ ॥

मनस्वी को चाहिए कि यथाशक्ति ब्राह्मणो को भी यहां दक्षिणा देवे। उसके बाद परम भक्तिपूर्वक भगवान् की परिक्रमा करे ॥ ४८ ॥

उसके बाद अन्य तीर्थों में शक्ति के अनुसार दान करे। गृहस्थी ब्राह्मण को गोचर्म के बराबर भी जो यहां भूमि-दान करता है, उसने वेदविद् ब्राह्मणों को समस्त पृथिवी दान कर दी है, ऐसा मानना चाहिए ॥ ४६ ॥

जो यहां कण मात्र भी सुवर्ण का दान वेद ज्ञाता ब्राह्मण को करता है, उसे सुवर्ण से तुलादान करने का फल प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

हे प्रभो ! चन्द्रगुप्त ! संसार से मुक्ति के लिए महाविष्णु के मन्दिर में तथा गंगा के तट पर दीपक जलाने चाहिए ॥ ५१ ॥

दीप दान करने वाले को उत्तम नेत्र, स्वर्ण दान करने वाले को उत्तम शरीर, अन्न दान करने वाले को तृप्ति तथा धातु दान करने वाले को उत्तम भाग्य की प्राप्ति होनी है ॥ ५२ ॥

गाय को दान देने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता। हाथी और घोड़ा दान करने वाले को उत्तम वाहन की प्राप्ति होती है ॥ ५३ ॥

यहां जो कर्म किए जाते हैं, उनका करोड़ों गुणा फल मिलता है। इसलिए ऐसे प्रयत्न करने चाहियें कि यहां कोई पाप न किया जा सके ॥ ५४ ॥

और भक्ति में तत्पर हो अन्य तीर्थों की यात्रा भी करनी चाहिए। उसमें वशोक्त विधि से स्नान करके भक्तिपूर्वक दान देना चाहिए ॥ ५५ ॥

प्रसाद रूप में भक्तिपूर्वक भगवान् के नैवेद्य को खाना चाहिए। उसके बाद अपने घर पर जाकर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥ ५६ ॥

इस विधि मे जो यात्रा करता है, उमे संसार में पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता। पद-पद पर उसे अश्वमेध आदि यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

वह तीन लोकों में धन्य है, और देवताओं द्वारा भी उसकी पूजा होती है, जिसने बदरीनाथ यात्रा करली हो। इसलिए, हे धर्म को जानने वाले ! तुम भी श्री बदरीवन की यात्रा के लिए जाओ ॥ ५८ ॥

सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो जन्मजन्मार्जितैरपि ।
मुक्तो भविष्यसि तदा सत्यं सत्यं न संशयः ।। ५९ ।।

एतत्सर्वं महाभाग यत्पृष्टं कथितं तव ।। ६० ।।

वसिष्ठ उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
यात्रामेव परां मेने बदरीनायकस्य सः ।। ६१ ।।

पुत्रैः परिवृतः सर्वैर्बन्धुभिश्च सदारकैः ।
यथोक्तविधिना चक्रे गमनादिविधिं प्रिये ।। ६२ ।।

यथोक्त तेन विप्रेण माहात्म्यं बदरीपतेः ।
चकार तत्तथैवासौ चन्द्रगुप्तो महामतिः ।। ६३ ।।

एका तस्य वधू रम्या गजदन्तविभूषणा ।
तस्याः करात् पपातापि गजदन्तविभूषणम् ।। ६४ ।।

शिलानां पंचके देवि स्नातायाः प्रियवादिनि ।
एतस्मिन्नेव काले तु चन्द्रगुप्तादयस्तथा ।। ६५ ।।

स्तूयमानं मुनिगणैर्ददृशुस्ते[1] महौजसम् ।
विमानस्थं शंखचक्रगदापद्म विराजितम् ।। ६६ ।।

पुरुषं पुरुषैर्देवि नीयमानं तु वैष्णवैः ।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं किमेतदिति चिन्तयन् ।। ६७ ।।

शुश्राव वाणीं मधुरां वैश्य वैश्येति चासकृत् ।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं जातोऽहं त्वत्प्रसादतः ।। ६८ ।।

गजो वै गुरुदन्तोऽहं वैकुण्ठे गमनं मम ।
इति तद्वचनं श्रुत्वा गोष्ठी परमविस्मिता ।। ६९ ।।

जगाद वचनं तं च चन्द्रगुप्तो वरानने ।
केन वै कर्मणा हस्तिन् गतोऽसि परमां गतिम् ।। ७० ।।

---

१. स्ते ।

जन्मजन्मान्तर के समस्त किए गये पापों से आपको यात्रा करने से मुक्ति मिलेगी। यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥

हे महाभाग ! आपने जो पूछा है, उसको मैंने आपसे कह दिया है ॥ ६० ॥

वसिष्ठ ने कहा—

महात्मा उस ब्राह्मण के इस प्रकार के वचन सुनकर उस वैश्य ने बदरीश भगवान् की यात्रा को सर्वोत्तम माना ॥ ६१ ॥

हे प्रिये ! अपने पुत्रों, स्त्रियों और समस्त बन्धुओं के साथ यात्रा की यथोक्त विधि का पालन करते हुये उसने यात्रा की ॥ ६२ ॥

जिस प्रकार बदरीश के माहात्म्य को उस ब्राह्मण ने कहा था, ठीक उसी प्रकार से महामतिशाली चन्द्रगुप्त ने बदरीश की यात्रा की ॥ ६३ ॥

उसकी एक सुन्दर पत्नी के, जिसके हाथी के दांत के आभूषण थे, हाथ से एक हाथी दांत का बना आभूषण गिर गया ॥ ६४ ॥

हे प्रियवादिनि देवि ! जब वह पंचशिला में स्नान कर रही थी। इसी समय वहां उपस्थित चन्द्रगुप्त आदि ने ॥ ६५ ॥

मुनिगणों द्वारा स्तुति किये जाते हुए महातेजस्वी एक देवता को देखा। वहां विमान में बैठा हुआ पुरुष शंख, चक्र, गदा और पद्म से सुशोभित विराजमान था ॥ ६६ ॥

तथा वैष्णव पुरुषों के द्वारा ले जाया जा रहा था। उसे देख परम आश्चर्य में निमग्न वे लोग, "यह क्या हुआ", यह सोच ही रहे थे कि तब तक ॥ ६७ ॥

उन्होने मधुर वाणी में हे वैश्य ! हे वैश्य ! ऐसा सुना। मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हो गया हूँ, आपके प्रसाद से मेरा यह स्वरूप हुआ है ॥ ६८ ॥

मैं बड़े-बड़े दांतों वाला हाथी था। मैं वैकुण्ठ जा रहा हूँ। इस प्रकार उसके वचन सुनकर वह गोष्ठी परम विस्मित हुई ॥ ६९ ॥

हे वरानने ! और तब चन्द्रगुप्त ने उससे कहा। हे हस्तिन् ! किस कर्म को करने से तुम्हें परमगति का लाभ हुआ है ॥ ७० ॥

गज उवाच—

उक्तं त्वया पराश्चर्य्यं मया ते किं कृतं गज ।
मम दंतकृताभूषा वधू रम्या महामते ॥ ७१ ॥

तवेयं ह्यागता तीर्थे श्रीमद्बदरिकाश्रमे ।
त्रुटितं पतितं ह्यत्र भूषणं तत्कराद्विभो ॥ ७२ ॥

तेन पुण्यप्रभावेन निष्पापो ह्यभवं तदा ।
तिर्य्यग्योनिगतोऽहं च कुतो वैकुण्ठमन्दिरम् ।
तव प्रसादात्प्राप्ता हि मया विष्णुसलोकता ॥ ७३ ॥

वसिष्ठ उवाच —

इति तं कथयित्वाऽसौ स्तूयमानो मुनीश्वरैः ।
गतो वैकुण्ठभवने सम्भाष्य च पुनः पुनः ॥ ७४ ॥

इति तत्परमाश्चर्य्यं दृष्ट्वा श्रेष्ठी महामनाः ।
सर्वेभ्योऽभ्यधिकं मेने ह्यात्मानं कृतदर्शनम् ॥ ७५ ॥

सोऽपि तत्रैव निवसन् प्राणांस्तत्याज सुप्रियान् ।
परमं लयमापन्नो जन्मनाशादिवर्जितम् ॥ ७६ ॥

बभूवुस्तेऽपि तन्वंगि दाराः पुत्रास्तथा परे ।
गृहे भुक्त्वा वरान्भोगानन्ते ते वैष्णवं ययुः ॥ ७७ ॥

इति ते कथितं सर्वं यच्च पृष्टं त्वया प्रिये ।
पुण्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं धन्यधान्यदम् ॥ ७८ ॥

माहात्म्यं बदरीशस्य सर्वपापविमोचनम् ।
श्रुत्वाऽप्येतन्महाभागे विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७९ ॥

सर्वे मनोरथास्तस्य पूर्णाः स्युर्नात्र संशयः ।
माहात्म्यतमेद्यद्गेहे लिखितं वर्त्तते प्रिये ॥ ८० ॥

आधिव्याधिभयं नैव चौरराजाऽग्निजं भयम् ।
श्रीविष्णोर्नित्यसान्निध्यं यद्गेहे पुस्तकं त्विदम् ॥ ८१ ॥

गज ने कहा—

हे गज ! मैंने आपका क्या उपकार किया, जो कि आपने यह आश्चर्य की बात कही । हे महामते ! आपकी एक सुन्दर वधू मेरे दांतों का आभूषण लेकर ॥ ७१ ॥

बदरिकाश्रम तीर्थ में आयी है । हे भगवन् ! उसके हाथ से टूटकर वह आभूषण इस तीर्थ में गिर गया ॥ ७२ ॥

उस पुण्य के प्रभाव से मैं निष्पाप हो गया हूँ । तिर्यग्योनि में उत्पन्न मुझे बैकुण्ठ का लाभ कहां से मिल सकता था ? अतः आपके प्रसाद से ही मैंने विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त किया है ॥ ७३ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार उससे कहकर मुनियों के द्वारा स्तुति किया जाता हुआ वह बार-बार सम्भाषण करता हुआ बैकुण्ठ लोक को चला गया ॥ ७४ ॥

इस प्रकार उस महामना सेठ ने जब उस परम आश्चर्य को देखा, तब उसने अपने लिए यह माना कि सबसे अधिक दर्शनों का लाभ मुझे ही हुआ है ॥ ७५ ॥

उस वैश्य ने भी वहीं निवास करते हुये अपने प्रिय प्राणों को त्याग दिया, जिससे उसने जन्म-मरण आदि से वर्जित परम पद मोक्ष को प्राप्त किया ॥ ७६ ॥

हे तन्वंगि ! वे उसके पुत्र और स्त्रियाँ भी भगवान् की परम भक्ति में लीन हो गये । घर में उत्तम भोगों को भोग कर अन्त में वे विष्णु लोक को चले गये ॥ ७७ ॥

हे प्रिये ! इस प्रकार जो आपने पूछा था, उसे मैंने आपको कह दिया । पुण्य देने वाला, यश देने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, पुत्र देने वाला, धन और धान्य को बढ़ाने वाला···॥ ७८ ॥

बदरीश भगवान् का माहात्म्य समस्त पापों को विनष्ट करने वाला है । हे महाभागे ! इस माहात्म्य को सुनने मात्र से विष्णु का सायुज्य प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥

हे प्रिये ! जिसके घर में यह माहात्म्य लिखा हुआ रहता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथ सफल हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८० ॥

उस घर में आधि-व्याधियों मा भय नहीं रहता, चोर, राजा और अग्नि का भय नहीं रहता । जिस घर में विष्णु की यह पुस्तक रहती है, उस घर में विष्णु नित्य निवास करते हैं ॥ ८१ ॥

दुःस्वप्नो नश्यते शीघ्रं रोगी मुच्येत वै गदात।
श्रुत्वा बदरिमाहात्म्यं वाचकाय ददेद्धनम॥ ८२ ॥

एतत्सर्वं महाभागे नियमेन मम प्रिये।
माहात्म्यमेतच्छृणुयात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां श्रीबदरीमाहात्म्यं
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

रुद्रप्रयागे रागजिज्ञासवे नारदाय श्रीशिवेन रागोत्पादनम्

अरुन्धत्युवाच—

मुनीश्वर महाभाग ह्यन्यत्पृच्छामि विस्तरात।
महादेवात्कथं रागान् प्राप्तवान्नारदो मुनिः॥ १ ॥

के के रागाः समाख्याता उत्पन्नाश्च कथं प्रभो।
कस्मिन्क्षेत्रे स्तुतस्तेन शिवश्च शिवदायकः॥ २ ॥

एतत्सर्वं महाभाग प्रियायै वद विस्तरात।
कथं रागसमुद्भूतिः परं कौतूहलं हि मे॥ ३ ॥

वसिष्ठ उवाच—

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि यथा वैं नारदः पुरा।
श्रीगंगापुलिने देवि नारदस्तप आचरत॥ ४ ॥

रुद्रप्रयागे तन्वंगि सर्वतीर्थोत्तमे शुभे।
यत्र[1] नागाश्च शेषाद्यास्तपश्चक्रुर्महात्मनः॥ ५ ॥

---

१. महान्तो यत्र नागाश्च शेषाद्यास्तप आचरन्।

वहाँ के दुःस्वप्न नष्ट हो जाते हैं तथा रोगी रोग से शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है। बदरीनाथ माहात्म्य को सुनकर वाचक को धन देना चाहिए ॥ ८२ ॥

इस प्रकार हे महाभागे ! मेरी प्रिये ! नियम से इस माहात्म्य को सुनने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास प्रशंसा में
श्रीबदरीश माहात्म्य नाम का बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ६३

रुद्रप्रयाग में रागों को जानने के अभिलाषी नारद के समक्ष श्री शिव द्वारा रागों का उत्पादन

अरुन्धती ने कहा—

हे महाभाग ! मुनीश्वर ! मैं अन्य प्रश्न पूछती हूँ, अतः आप उसे विस्तार से यताइये। नारद मुनि को शिव जी से रागों की प्राप्ति किस प्रकार हुई थी ॥ १ ॥

राग कौन-कौन से कहे गये हैं और हे प्रभो ! वे किस प्रकार से उत्पन्न हुये ? कल्याण को देने वाले शिव की स्तुति नारद ने किस क्षेत्र में की थी ॥ २ ॥

हे महाभाग। इन सब प्रश्नों का उत्तर विस्तार से अपनी प्रिया से कहिये कि राग किस प्रकार उत्पन्न हुये ? इसमें मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ ३ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे प्रिये देवि ! सुनो। पहले जिस प्रकार नारद मुनि ने गंगा के तट पर तप किया था, मैं उसका वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥

हे तन्वंगि ! शुभ को देने वाला सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ रुद्रप्रयाग तीर्थ है। यहां महात्मा शेषनाग आदि नागों ने भी तपस्या की थी ॥ ५ ॥

प्रापुर्विभूषणत्वं[1] मम हि देवस्य सुन्दरि ।
अद्यापि तत्र रम्भोरु नागानामालयाः शुभाः ॥ ६ ॥

तत्रासौ नारदो गत्वा स्मरन वै मनसा शिवम् ।
तपश्चचार परमं रुद्रतीर्थे महातपाः ॥ ७ ॥

ग्रीष्मे पंचाग्निसन्तप्तो वर्षाधारा सहस्तथा ।
हेमन्ते हिमवातादिसहो जातो महातपाः ॥ ८ ॥

निराहारो वर्षशतमेकपादेन तस्थिवान।
शिवध्यानपरो देवि तथा षड्वर्गतत्परः ॥ ९ ॥

तारः पूर्वं शिवायेति तारान्ते नम उच्यते ।
जपन्नेवं महाभागे मात्रास्पर्शैरसंयुतः ॥ १० ॥

नारदस्य तपो दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः ।
न स्थातुं शक्नुवन्तो वै तस्याग्रे देवदानवाः ॥ ११ ॥

इति सन्तपतस्तस्य प्रसन्नो भगवान शिवः ।
प्रमथैः सेव्यमानश्च पार्वत्या सहितः प्रभुः ॥ १२ ॥

कैलासगौरे नंद्याख्ये वृषभे महति स्थितः ।
व्यालैः सहस्रशो भूषो नीलकण्ठो महाहनुः ॥ १३ ॥

त्रिनेत्रो भूतपः सिद्धैः सेव्यमानः सुरासुरैः ।
करिचर्मा सिंहचर्मा कोटिसूर्यसमप्रभुः ॥ १४ ॥

जयशब्दैर्घोष्यमाणो ययौ नारदसन्निधौ ।
वत्स वत्स नारदेति जगाद च पुनः पुनः ॥ १५ ॥

किं ते कार्य्यं महाभाग तपस्ते पूर्णतां गतम् ।

वसिष्ठ उवाच--

इति तन्नारदः श्रुत्वा शिवोक्तं वर वर्णिनि ॥ १६ ॥

१, "प्रापुः......मनसाऽभिवम्" पाठ इसमें नहीं है ।

हे सुन्दरि ! उन्होंने मुझ महादेव का विभूषण होने का वर पाया था। हे रम्भोरु ! आज भी वहां नागों के शुभ घर हैं ॥ ६ ॥

मन में शिव का स्मरण करते हुये महातपस्वी नारद ने वहां जाकर रुद्रतीर्थ में परम तप किया ॥ ७ ॥

महातपस्वी नारद ने ग्रीष्मकाल में पंचाग्नि से सन्तप्त हो तथा वर्षा ऋतु में हजारों मेघधाराओं को सह कर उस रुद्रतीर्थ में परम तप का आचरण किया। महा-तपस्वी ने हेमन्त ऋतु में शीत और वायु को सह कर ॥ ८ ॥

तथा निराहार रहकर एक सौ वर्ष तक एक पैर से खड़े होकर तपस्या की शिव के ध्यान में तत्पर रहकर षडक्षर मंत्र का जप किया ॥ ९ ॥

तार: अर्थात् ओम के अन्त में नमः युक्तकर "शिवाय" यह चतुर्थ्यन्त शब्द मिलाने से "ओन्नमः शिवाय" ऐसा षडक्षर मन्त्र बनता है। हे महाभागे ! इसी मन्त्र का शुद्ध रूप से वे जप करते रहे और इन्द्रियों के भोगों से रहित रहे ॥ १० ॥

नारद के तप को देखकर समस्त प्राणी संत्रस्त होने लगे। उनके आगे खड़े रहने की देवता तथा दानवों की भी शक्ति नहीं थी ॥ ११ ॥

इस प्रकार उनकी कठोर तपस्या से भगवान् शिव जी प्रसन्न हो गये। प्रमथ गणों से सेवित और पार्वती के साथ शंकर भगवान् ॥ १२ ॥

कैलास पर्वत के समान श्वेत रंग के नन्दी नामक महावृषभ पर अधिरूढ हुये। हजारों सर्पों से विभूषित नीलकंठ और विशाल ठोडी वाले ॥ १३ ॥

त्रिनेत्र धारण करने वाले, भूतों के स्वामी सिद्धों एवं देवताओं और दैत्यों द्वारा सेवित हस्तिचर्म और सिंहचर्म को धारण करने वाले, करोड़ों सूर्यों के समान कान्तिमान् शिव ॥ १४ ॥

जय शब्द से घोषित होते हुये नारद जी के समीप गये। वे बार-बार हे वत्स नारद ! हे वत्स नारद ! यह कहने लगे ॥ १५ ॥

हे महाभाग ! तुम्हारा क्या कार्य है, आपकी तपस्या पूर्ण हो गई है।

वसिष्ठ ने कहा—

हे वरवर्णिनि ! इस प्रकार शिव के वचनों को सुनकर ॥ १६ ॥

उन्मील्य चक्षुषी प्रायो ददर्श शिवमन्तिके ।
तुष्टाव परया भक्त्या सहस्त्रैर्नामभिस्तथा ।। १७ ।।

प्राप्तं तत्सर्वमखिलं रागाख्यं परमं शिवम् ।
उत्पन्नाः शिवतो रागाः पुरुषाः षट्क सम्मिताः ।। १८ ।।

ततस्तेषां च पत्न्यो वै पंच पंच मम प्रिये ।
अष्टावष्टौ[1] सुताश्चैव पुत्रवध्वस्तथा प्रिये ।। १९ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे रुद्रप्रयागे रागोत्पत्तिर्नाम
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

१. "अष्टा······प्रिये" पाठ इसमें नहीं है ।

नारद ने अपनी आँखों को खोला और अपने समक्ष शिव जी को देखा। परम भक्ति भावना से नारद जी ने तब शिवसहस्रनाम स्तोत्र का पाठ किया ॥ १७ ॥

जिससे उन्हें परम शिव रूप सम्पूर्ण रागों की प्राप्ति हुई। महादेव जी से पुरुष रूप में छः राग उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥

हे मेरी प्रिये ! उनके एक-एक के पांच-पांच पत्नियाँ हुईं। हे प्रिये ! उनके आठ-आठ पुत्र और उतनी ही पुत्रवधुयें हुईं ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में रुद्रप्रयाग में राग-उत्पत्ति नाम का तिरेसठवां अध्याय पूरा हुआ।

लेखक का संक्षिप्त परिचय
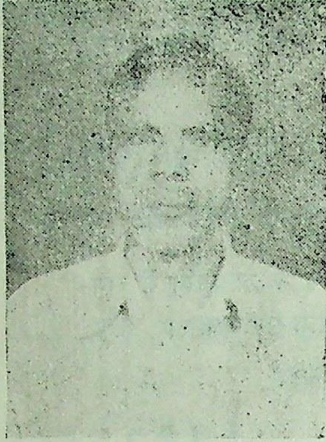
जन्म तिथि—१० फरवरी १९२५

जन्म स्थान—मुरादाबाद

पारिवारिक पृष्ठभूमि—पिता श्री भूषणशरण मुरादाबाद नगर के समृद्ध व्यापारी थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया और अंग्रेजी शासन द्वारा कारागृह में बन्द किये गये थे। माता श्रीमती रामप्यारी धार्मिक वृत्ति की महिला थीं। पिता का स्वर्गवास १९४८ ई० में हुआ। अपने जीवन काल में ही उनको स्वतन्त्र भारत में श्वास लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

१९४६ ई० में डा कृष्णकुमार का विवाह श्रीमती दमयन्ती देवी से हुआ। उनके तीन पुत्र प्रदीपकुमार, आलोककुमार और मयङ्ककुमार हैं तथा एक पुत्री मंजुला कुमारी है। सभी सन्तानें योग्य हैं तथा जीवन में सफल हैं।

शिक्षा—राष्ट्रीय विचारधारा से प्रेरित पिता ने पुत्र को ७ वर्ष की छोटी आयु में ही अंग्रेजी स्कूल से उठाकर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में अध्ययन के लिये भेज दिया। १४ वर्ष तक अध्ययन कर आप यहाँ से स्नातक हुए और आयुर्वेलंकार उपाधि प्राप्त की। तदन्तर आपने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की। संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से साहित्य विषय में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की और गढ़वाल विद्यालय श्रीनगर से डी० लिट्० उपाधि प्राप्त की।

अध्यापन—गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार तथा सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर में प्रवक्ता पद पर कार्य करने के अनन्तर उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्नाकोत्तर राजकीय महाविद्यालयों में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर कार्य किया। अन्त में गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए १९८५ में सेवानिवृत्त हुए।

शोधकार्य—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से अनेक शोध योजनायें पूरीं कीं। इनमें कुछ निम्न हैं—

१. केदारखण्ड पुराण और उसका विवेचनात्मक अध्ययन

२. संस्कृत नाटकों मे जन्तु और वनस्पतियाँ

३. संस्कृत शास्त्रों की प्रशासनिक संस्थायें

४. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास

५. गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख ।

आपके निर्देशन में ५० से अधिक छात्र डाक्टरेट डिग्री प्राप्त कर चुके हैं ।

लेखन—डॉ० कृष्णकुमार की ४० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । विषयानुसार कुछ ग्रन्थ निम्न हैं—

(१) प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा इतिहास—भारतीय संस्कृति के आधार तत्त्व, वैदिक साहित्य का इतिहास, गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ, संस्कृत साहित्य का इतिहास गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख, प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख और उनका ऐतिहासिक महत्व ।

(२) समालोचना—पं० अम्बिकादत्त व्यास—एक अध्ययन, संस्कृत–नाटक–सूक्ति–तरङ्गिणी, संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश, संस्कृत नाटकों का वानस्पतिक पर्यावरण, संस्कृत नाटकों का जीव-जगत् ।

(३) काव्यशास्त्र—अलङ्कार शास्त्र का इतिहास, ध्वन्यालोक व्याख्या, छन्दोऽलङ्कार-प्रकाश ।

(४) वैदिक साहित्य—वैदिक साहित्य का इतिहास, ऋक्सूक्तसंग्रह, वैदिक-सूक्त-संग्रह, ऋक्सूक्त-सुधाकर, चतुर्वेदसूक्त सुधाकर ।

(५) मौलिक संस्कृत लेखन–उदयनचरितम् (उपन्यास), अस्ति–कश्चिद्-वागर्थीयम् (नाटक), तपोवनवासिनी (उपन्यास) ।

(६) व्याख्यायें—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रियदर्शिका, प्रतिमा नाटक, रघुवंश, किराता-र्जुनीयम्, शिवराजविजय, कुसुमलक्ष्मी ।

(७) काव्यानुवाद—मेघदूतानुशीलनम्, चौरपञ्चाशिका ।

(८) ग्रन्थ विवरणी – Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts तीन भागों में ।

(९) पुराण –केदारखण्ड पुराण विस्तृत भूमिका एवं समीक्षा सहित चार खण्डों में ।

(१०) चिकित्सा—विषविज्ञान, पोषण के लिये विटामिन और खनिज, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ । प्रकाशन के लिये निम्न ग्रन्थ तैयार हैं—

वाल्मीकि रामायण का अनुवाद, केदारखण्ड के तीर्थ स्थल, संस्कृत शास्त्रों की प्रशासनिक संस्थायें, तपोवनवासिनी (संस्कृत उपन्यास), विधिपौरुषम् (संस्कृत उपन्यास) ।

इनके अतिरिक्त डा० कृष्णकुमार के अनेक शोध लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं । सेवा निवृत्त होने के अनन्तर भी वे सरस्वती देवी की उपासना में निरन्तर समय व्यतीत करते हैं ।